ब्रजभाषा सूर-कोश

(द्वितीय खंड)

निर्देशक

डॉ॰ दीनदयालु गुप्त, एम॰ ए॰, एल-एल॰ बी॰, डी॰ लिट्॰
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिंदी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

संपादक

प्रेमनारायण टंडन, एम॰ ए॰
रिसर्च एवं मोदी स्कॉलर, लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शब्द संख्या ५६७३

डाक व
स्थ

BVP- 2113
11/6/18

48/54

क

क—देवनागरी वर्णमाला का प्रथम व्यंजन । कंठ्य और स्पर्श वर्ण ।

कं—संज्ञा पुं. [सं. कम्] (१) जल । (२) मस्तक । उ.—सिंधु मथ के पत्र वन दो बने चक्र अनूप । देव कं को छत्र छावत सकल सोभा रूप । (३) अग्नि । (४) काम । (५) सोना । (६) सुख ।

कँउधा—संज्ञा स्त्री. [हिं. कौंधना] बिजली की चमक ।

कंक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सफेद चील । (२) बगुला । (३) यम । (४) युधिष्ठिर का कल्पित नाम जो उन्होंने राजा विराट के यहाँ रक्खा था । (५) कंस का एक भाई ।

कंकड़—संज्ञा पु. [सं. कर्कर, प्रा. कक्कर] छोटा टुकड़ा, पत्थर का टुकड़ा, रोड़ा ।

कँकड़ीला—वि. [हिं. कंकड़] जिसमें कंकड़ अधिक हों ।

कंकण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कड़ा या चूड़ा नामक आभूषण जो कलाई में पहना जाता है । (२) एक धागा जिसमें सरसों की पुटली, लोहे का छल्ला आदि बाँधकर दुलहिन और दूल्हे के हाथ में पहनाते हैं । विवाह के पश्चात दूल्हा दुलहिन का और दुलहिन दूल्हे का कंकण खोलती है । (३) ताल का एक भेद ।

कंकन—संज्ञा पुं. [सं. कंकण] (१) कलाई में पहनने का एक आभूषण, कंगन, चूड़ा । उ.—तेरो भलो मनैहौं झगरिनि, तू मत मनहिं डरै । दीन्हौं हार गर, कर कंकन, मोतिनि थार भरै—१०-१७ । (२) एक धागा जिसमें सरसों की पुटली, लोहे का छल्ला आदि बाँधकर दुलहिन और दूल्हे के हाथ में बाँधते हैं । विवाह के पश्चात दूल्हा दुल्हिन का कंकन खोलता है और दुलहिन दूल्हे का खोलती है । उ.—कर कंपै, कंकन नहिं छूटै । राम-सिया-कर परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटै —६-२५ ।

कँकना—संज्ञा पुं. [सं. कंकण] कलाई में पहनने का कड़ा । उ.—तज्यौ तेल तमोल भूपन अंग बसन मलीन । कँकना कर बाम राख्यौ गढ़ी भुज गहि लीन— ३४५१ ।

कँकरीला—वि. [हिं. कंकड़, कँकड़ीला] जिसमें कंकड़ अधिक हों ।

कंकाल—संज्ञा पुं. [सं.] हड्डियों का ढाँचा, ठठरी, अस्थिपंजर ।

कंकालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्गा का एक नाम । (२) कर्कशा स्त्री ।

वि.—झगड़ालू, दुष्टा ।

कंकाली—संज्ञा पुं [सं. कंकाल] किंगरी बजाकर भीख माँगनेवाली जाति ।

संज्ञा स्त्री. [सं. कंकालिनी] दुर्गा ।

वि.—झगड़ालू, दुष्टा, कर्कशा ।

कंकोल—संज्ञा पुं. [सं.] शीतल चीनी की जाति का एक वृक्ष ।

कँगन, कँगना—संज्ञा पुं. [सं. कंकण] (१) हाथ में पहनने का एक गहना, कड़ा, कंकण । (२) लोहे का चक्र या कड़ा ।

कँगनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कँगना] छोटा कंगन ।

संज्ञा स्त्री. [सं. कंगु] एक अन्न, काकुन ।

कँगला—वि. [हिं. कंगाल] भुखमरा, गरीब, बहुत लालची ।

कंगाल—वि. [सं. कंकाल] (१) भुखमरा । (२) दरिद्र ।

कंगाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंगाल] (१) भुखमरी । (२) गरीबी, दरिद्रता ।

कँगुरिया, कँगुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनगुरिया] छिगुनी, उँगली, छोटी उँगली । उ.—जैसी तान

तुम्हारे मुख की तैसिय मधुर उपाऊँ। जैसे फिरत रंध्र मगु कँगुरी तैसे मैंहुँ फिराऊँ—पृ. ३११।

कँगूरन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. कँगूरा] **शिखर, चोटी।** उ.—स्रवनन सुनत रहत जाको नित सो दरसन भये नैन। कंचन कोट कँगूरन की छबि मानहु बैठे मैन —२५५६।

कँगूरा—संज्ञा पुं. [फा. कुँगरा] **(१) शिखर, चोटी। (२) किले का बुर्ज। (३) गहनों में शिखर की तरह की बनावट।**

कंघा—संज्ञा स्त्री. [सं. कंक] **बाल झाड़ने की वस्तु।**

कंच—संज्ञा पुं. [हिं. काँच] **शीशा, काँच।**

कंचन—संज्ञा पुं. [सं. कांचन] **(१) सोना, स्वर्ण। (२) धन, संपत्ति। (३) धतूरा।**

वि.—**(१) स्वस्थ। (२) सुन्दर।**

कंचनराज—संज्ञा पुं. [सं.] **एक प्राचीन नगर जो विदर्भ देश में था। यहाँ भीष्मक राज करते थे, जिनकी पुत्री रुक्मिणी को श्रीकृष्ण हर ले गये थे।** उ.–कंचनराज को काज सँवारयौ भूपन को यह काज–१० उ.–१०८।

कंचनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचन] **(१) वेश्या। (२) अप्सरा।**

कंचुक—संज्ञा पुं. [सं] **(१) चपकन, अचकन। (२) वस्त्र। (३) एक प्रकार का कवच जो घुटने तक होता था।**

संज्ञा स्त्री.— **(१) चोली, अँगिया। (२) केंचुल।**

कंचुकि, कंचुकी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचुकी] **(१) अँगिया, चोली।** उ—(क) कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हियै–१०-१४। (ख) कोउ केसरि कौ तिलक बनावति, कोउ पहिरति कंचुकी सरीर—१०–३५। (ग) कबहिं गुपाल कंचुकि फारी, कब भये ऐसे जोग—७७४। (घ) कनक-कलस कुच प्रकट देखियत आनन्द कंचुकि भूली—२५६१। **(२) केंचुल।** उ.—सुत-पति नेह जगत इहि जान्यौ। ब्रज जुवती तिनका सों मान्यौ। काचो सूत तोरि सो डारयौ। उरग कंचुकी फिरि न निहारयौ—पृ. ३१६।

संज्ञा पुं. [सं. कंचुकिन्] **(१) रनिवास के दास-दासियों का अध्यक्ष जो प्रायः विश्वासपात्र बूढ़ा ब्राह्मण होता था। (२) द्वारपाल। (३) साँप। (४) वह अन्न जो छिलकेदार होता है जैसे चना।**

कंचुरि—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचुली] **साँप का केंचुल।** उ.—नैना हरि अंग रूप लुब्धे रे माई। लोकलाज कुल की मर्जादा बिसराई। जैसे चन्दा चकोर मृगीनाद जैसे। कंचुरि ज्यों त्यागि फनिक फिरत नहीं तैसे —पृ.३२१।

कंचुली—संज्ञा स्त्री. [सं.] **साँप की केंचुल।**

कंचुवा—संज्ञा पुं. [सं. कंचुकी] **चोली, अँगिया।**

कंचेरा—संज्ञा पुं. [सं. काँच] **काच का काम करनेवाला।**

कंज—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) ब्रह्मा। (२) कमल। (३) अमृत। (४) सिर के बाल, केश।**

कंजई—वि. [हिं. कंजा] **धुएँ के रंग का, खाकी।**

संज्ञा पुं.—**(१) खाकी रंग। (२) कंजई रंग की आँख का घोड़ा।**

कंजज—संज्ञा पुं. [सं. कंज + ज] **कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।**

कंजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कंज] **राधा की एक सखी का नाम।** उ.—कहि राधा किन हार चोरायो। ब्रज जुवतिन सबहिन मैं जानति घट-घट लै लै नाम बतायौ। अमला अबला कंजा मुकुता हीरा नीला प्यारि—१५८०

संज्ञा पुं. [सं. करँज] **एक कटीली झाड़ी।**

वि.—**(१) गहरे खाकी की रंग की। (२) जिसकी आँख गहरे खाकी रंग की हो।**

कँजियाना—क्रि. अ. [हि. कंजा] **(१) काला पड़ना। (२) मुरझाना।**

कंजूस—वि. [सं. कण + हिं चूस] **धन होने पर भी जो उसे खाये-खरचे नहीं, कृपण, सूम।**

कंट—संज्ञा पुं. [सं. कंटक] **काँटा, कंटक,** उ.—द्रुमनि चढ़े सब सखा पुकारत, मधुर सुनावत बेनु। जनि धावहु बलि चरन मनोहर, कठिन कंट मग ऐनु —५०२।

कंटक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काँटा। (२) विघ्न, बाधा। (३) वह जो विघ्न या बाधा डाले। (४) रोमांच। (५) कवच।

कंटकित—वि. [सं. कंटक] (१) काँटेदार। (२) पुलकित, रोमांचयुक्त।

कँटाय—संज्ञा स्त्री. [सं. किंकिणी] एक कँटीला पेड़ जिस की लकड़ी यज्ञ-पात्र बनाने के काम आती थी।

कंटिका—संज्ञा स्त्री [सं.] 'पिन' की तरह लोहे-पीतल का पतला काँटा।

कँटिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँटी] (१) छोटी कील। (२) सिर का एक गहना।

कँटीला—वि. पुं. [हिं. काँटा + ईला (प्रत्य)] जिसमें काँटे लगे हों, काँटेदार।

कंठ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गला। (२) स्वर, शब्द। (३) वह रंगीन रेखा जो तोते, पंडुक जैसे पक्षियों के गले में युवावस्थामें पड़ जाती है। (४) कंठा, हँसुली।

मुहा—कंठ फूटना—(१) बच्चों का स्वर साफ होना। (२) युवावस्थामें स्वर-परिवर्तन। (३) पक्षियों के गले में रेखा पड़ना। कंठ लाइ—गले लगाकर। उ.—ध्रुव राजा के चरननि परयौ। राजा कंठ लाइ हित करयौ—४६।

कंठगत—वि. [सं.] जो गले में अटका हो, जो निकलने को हो।

मुहा०—प्राण कंठगत होना—मरने लगना।

कंठमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] गले का एक रोग जिसमें बहुत सी गाँठे पड़ जाती हैं।

कँठला—संज्ञा पुं. [हिं.-कंठ +ला (प्रत्य.)] वह गहना जिसमें नजरबट्ट, बाघनख, और दो चार ताबीज गूँथ कर बच्चे को इसलिए पहनाते हैं कि उसे नजर न लगे और अन्य आपत्तियों से वह रक्षित रहे।

कंठश्री, कंठसिरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] सोने का एक जड़ाऊ गहना जो गले में पहना जाता है, कंठी।

कंठस्थ—वि. [सं.] (१) गले में स्थित, कंठगत। (२) कंठाग्र, जो जबानी याद हो।

कँठहरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कंठहार का अल्प.] कंठी। उ.—सूर सगुन बँटि दियो गोकुल में अब निर्गुन को बसेरो। ताकी छटा छार कँठहरिया जो ब्रज जानो दुसेरो—३१५४।

कंठहार—संज्ञा पुं. [सं.] गले का एक गहना, कंठी।

कंठा—संज्ञा पुं. [हिं. कंठ] (१) पक्षियों के गले में पड़ने वाली रंग-बिरंगी रेखा। (२) गले का एक गहना जिसमें सोने, मोती आदि के मनके होते हैं। (३) कुरते आदि पहनावों का गले पर पड़नेवाला भाग।

कंठाग्र—वि. [सं.] जो जबानी याद हो।

कंठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंठ का अल्पा.] (१) माला जो छोटी छोटी गुरियों की बनी हो। (२) तुलसी आदि की माला।

कंठ्य—वि. [सं.] (१) जो गले से उत्पन्न हो। (२) जिसका उच्चारण कंठ से हो।

संज्ञा पुं—वह वर्ण जिसका उच्चारण कंठ से हो।

कँडरा—संज्ञा स्त्री [सं.] रक्त की नाड़ी।

कंडाल—संज्ञा पुं. [सं. करनाल] (१) तुरही नामक बाजा। (२) डोल नामक बरतन।

कंत—संज्ञा पुं. [सं. कांत] (१) पति, स्वामी। उ.—सूरदास लै जाउँ तहाँ जहँ रघुपति कंत तुम्हार—६-८६। (२) ईश्वर।

कंता—संज्ञा पुं. [सं. कांत] पति, स्वामी। उ.—छीर सिंधु अहि सयन मुरारी। प्रभु स्रवननि तहँ परी गुहारी। तब जान्यौ कमला के कंता। दनुज भार पुहुनी में भंता—२४५६।

कंथ—संज्ञा पुं. [सं. कांत] पति, स्वामी।

कंथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुदड़ी, कथरी। उ.—(क) सीस सेली कंस मुद्रा कनक बीरी बीर। बिरह भस्म चढ़ाइ बैठी सहज कंथा चीर—३१२६। (ख) सृ गी मुद्रा कनक खपर करिहौं जोगिन भेष। कंथा पहिरि बिभूति लगाऊँ जटा बँधाऊँ केस—२७५४। (ग) वे मारे सिर पटिया पारे कंथा काहि उढ़ाऊँ—३४६६।

कंथारी—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष।

कंथी—संज्ञा पुं. [सं. कंथा=गुदड़ी] (१) फकीर जो गुदड़ी धारण करे। (२) भिखमंगा।

कंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गूदेदार और बिना रेशे की

जड़ (२) कोमल मीठी दूब। उ.—बिहल भई जसोदा डोलतदुखित नंद उपनंद। धेनु नहीं पय स्रवति रुचिर मुख चरति नाहिं तृन कंद—२७६०। (२) बादल।
संज्ञा पुं. [फ़ा] जमी हुई चीनी, मिसरी।

कंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाश, ध्वंस। (२) नाशक, ध्वंस करनेवाला।

कंदना—क्रि. स. [हिं. कंदन] नाश करना, मारना।

कंदर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुफा, गुहा। उ.—(क) सप्त पृथ्वी करी बिस्तार। गृह गिरि-कंदर करे अपार —२-२०। (ख) अहो बिहंग, अहो पन्नग-नृप, या कंदर के राइ। अबकैं मेरी बिपति मिटावौ, जानकि देहु बताइ—६-६४। (२) अंकुश।
संज्ञा पुं. [सं. कंद] (१) बादल। (२) मूल। उ.—सुंदर नंद महर के मंदिर प्रगट्यौ पूत सकल सुख-कंदर—१०-३२।

कंदरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुफा, गुहा। उ.—(क) कहन लगे सब अपुनमें सुरभी चरैं अघाइ। मानहुँ पर्वत-कंदरा, मुख सब गए समाइ—४३१। (ख) स्याम बलराम गये धनुपसाला। लियौ रथ तें उतरि रजक मारयौ जहाँ कंदरा तें निकसि सिंह-बाला—२५८५।

कंदर्प—संज्ञा पुं. [सं.] कामदेव।

कंदा—संज्ञा पुं. [सं. कंद] (१) कंद। (२) शकरकंद।

कंदुक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गेंद। (२) गोल तकिया।

कंदुक तीर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रज का एक तीर्थ। श्री कृष्ण यहाँ गेंद खेलते थे; अतएव उनके उपासकों के लिए यह दर्शनीय स्थान है।

कँदैला—वि. [हिं. काँदो+ला (प्रत्य.)] गँदला, मैला, मलिन।

कंध—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध] (१) कंधा। उ.—चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ। टूटे कंधऽरु फूटी नाकनि, कौ लौं धौं भुस खैहौ—१-३३१। (२) सिर। उ.—तू भूल्यौ दससीस बीस भुज, मोहि गुमान दिखावत। कंध उपारि डारिहौं भूतल, सूर सकल सुख पावत—९-१३३। (३) तने का ऊपरी भाग जहाँ से शाखाएँ फूटती हैं।

कंधनी—संज्ञा स्त्री [हिं. करधनी] मेखला, करधनी।

कंधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गरदन (२) बादल।

कँधरा—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंधर] गरदन।

कंधा—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध, प्रा. कंध] (१) गले और मोढ़े के बीच का भाग। (२) बाहुमूल, मोढ़ा।

कंधार, कंधारी—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] (१) केवट, मल्लाह, माँझी। उ.—कहो कपि कैसे उतरयौ पार। दुस्तर अति गंभीर बारिनिधि सत जोजन बिस्तार। राम-प्रताप सत्य सीता को यहै नाव कंधार। बिन अधार छन में अवलंब्यौ आवत भई न बार—९-८७। (२) पार लगानेवाला।

कँधावर—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंधा+आवर (प्रत्य.)] चादर या दुपट्टा जो कंधे पर डाला जाय।

कँधेला—संज्ञा पुं. [हिं. कंधा+एला (प्रत्य.)] साड़ी का वह भाग जो स्त्रियाँ कंधे पर डालती हैं।

कँधैया—संज्ञा पुं. [हिं. कन्हैया] श्रीकृष्ण।

कंप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काँपना, कँपकँपी, धड़कन। (२) एक सात्विक अनुभाव।

कँपकँपी—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँपना] थरथराहट, कंपन।

कंपत—क्रि. अ. [हिं. काँपना] (१) भयभीत होकर, डरा हुआ। उ.—कृपासिंधु पै केवट आयौ, कंपत करत सो बात। चरन-परसि पाषान उड़त है, कत बेरी उड़ि जात—९-४१। (२) शीत से काँपता है। उ.—हा हा करति घोष कुमारि। सीत तें तन कँपत थर-थर बसन देहु मुरारि—७८६।

कँपतिँ—क्रि. अ. [सं. कंपन, हिं. कँपना] शीत से काँपती हैं। उ.—थर-थर अंग कपतिँ सुकुमारी —७९६।

कंपति—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र।

कंपन—संज्ञा पुं. [सं.] कँपना, कँपकँपी।

कँपना—क्रि. अ. [सं. कंपन] (१) हिलना-डोलना, काँपना। (२) डर से काँपना।

कँपनी—संज्ञा स्त्री [हिं. काँपना] कँपकँपी।

कंपा—संज्ञा पुं. [हिं. काँपना] बहेलियों की बाँस की

पतली तीलियाँ जिनमें लासा लगाकर वे चिड़ियों को फँसाते हैं।

कँपाना—क्रि. स. [हिं. कँपना का प्रे.] (१) हिलाना-डोलाना। (२) डराना।

कँपावत—क्रि. स. [हिं. कँपाना] हिलाते हो, हिलाकर धमकाते हो। उ.—तुम्हरे डर हम डरपत नाहिंन कहा कँपावत बेत—सारा. ८६२।

कँपायौ—क्रि. स. [हिं. कँपाना] भयभीत किया, डराया। उ.—मनौ मेघनायक रितु पावस, बान वृष्टि करि सैन कँपायौ—६-१४१।

कँपावत—क्रि. स. [हिं. 'कँपना' का प्रे. कँपना] हिलाता-डुलाता (है), कंपित करता (है)। उ.—मुँह सम्हारि तू बोलत नाहीं, कहत बराबरि बात। पावहुगे अपनौ कियौ अबहीं, रिसनि कँपावत गात—५.३७।

कंपित—वि. [सं.] काँपता हुआ, अस्थिर, चलायमान। उ.—छोभित सिंधु, सेष सिर कंपित, पवन भयौ गति पंग—६-१५८।

कंपै—क्रि. अ. [हिं. कँपना] काँपता या हिलता डोलता है। उ.—(क) कंपै ध्रुव, बर्षा नहिं होइ—१-२८६। (ख) कर कंपै, कंकन नहिं छूटै—६-२५। (ग) जसुदा मदन गुपाल सुवावै। देखि सयन-गति त्रिभुवन कंपै, ईस बिरंचि भ्रमावै—१०-६५।

कँप्यौ—क्रि. स. [सं. कंपन, हिं. काँपना] डरा, भयभीत हुआ। उ.—रिपिन कह्यौ, तुव सतम जज्ञ आरम्भ लखि, इन्द्र कौ राज-हित कँप्यौ हीयौ—४-११।

कंबर, कंबल—संज्ञा पुं. [सं. कंबल] ऊन का बना मोटा कपड़ा जो ओढ़ने-बिछाने के काम आता है।

कंबु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शंख। उ.—कंबु-कंठ-धर, कौस्तुभ-मनि-धर, बनमालाधर, मुक्तमाल-धर—५.७२। (२) शंख की चूड़ी। (३) घोंघा।

कंबुक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शंख, (२) शंख की चूड़ी। (३) घोंघा।

कँवल—संज्ञा पुं. [सं. कमल] कमल।

कंस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मथुरा का अत्याचारी राजा जो उग्रसेन का पुत्र और श्रीकृष्ण का मामा था। इसने अपनी बहिन देवकी को पति-सहित जेल में डाल रखा था। इसके अत्याचार से जब त्राहि-त्राहि मच गयी तब श्रीकृष्ण ने इसे मार कर अपने माता-पिता का उद्धार किया और नाना उग्रसेन को गद्दी पर बैठाया। (२) काँसा। (३) कटोरा (४) सुराही (५) झाँझ।

कंसताल—संज्ञा पुं. [सं.] झाँझ। उ.—कंसताल कठ-ताल बजावत सृंग मधुर मुँहचंग।

कंसासुर—संज्ञा पुं. [सं. कंस+असुर] मथुरा का अत्याचारी राजा जो अपने अत्याचारों के कारण असुर समझा जाता था।

क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) कामदेव। (४) सूर्य। (५) यम। (६) मयूर। (७) शब्द। (८) जल। (९) अग्नि। (१०) वायु। (११) आत्मा।

कइक—वि. [हिं. कई + एक] कई एक, कुछ। उ.—राम दिन कइक ता ठौर अवरो रहे आइ बल्वल तहाँ दई दिखाई—१० उ.-१८०।

कइत—संज्ञा स्त्री. [हिं. कित] ओर, तरफ।

कई—वि. [सं. कति, प्रा. कइ] एक से अधिक, अनेक।

संज्ञा स्त्री. [सं. कावार, हिं. काई] हलके हरे रङ्ग की महीन घास जो जल या सील में होती है। उ.—अब इह बरषा बीति गई।....घटी घटा रव अभिन मोह मद तमिता तेज हई। सरिता संयम स्वच्छ सलिल जल फाटी काम कई—२८५३।

ककड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्कटी, पा. कक्कटी] (१) एक बेल जिसमें पतले-पतले पर लंबे फल लगते हैं। (२) एक बेल जिसमें धारीदार बड़े खरबूजे की तरह के फल लगते हैं और 'फूट' कहलाते हैं।

ककना—संज्ञा पुं. [सं. कंकण, हिं. कँगना] हाथ का एक गहना, कँगन।

ककनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कँगना] हाथ का कँगूरेदार चूड़ीनुमा गहना।

ककनू—संज्ञा पुं. [देश.] एक पक्षी जिसके गाने से

घोसले में आग लग जाती है और वह स्वयं जल मरता है।

ककमारी—सं. स्त्री. [सं. काक=कौवा+मारना] एक तरह की लता जिसके फल मछलियों और कौओं के लिए मादक होते हैं।

ककरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ककड़ी] ककड़ी का फल। उ.—(क) ककरी कचरी अरु कचनारयौ। सुरस निमोननि स्वाद सँवारयौ—२३२१। (ख) सुनत जोग लागत हमैं ऐसो ज्यों करुई ककरी—३३६०।

ककहरा—संज्ञा पुं. [हिं.] (१) 'क' से 'ह' तक वर्ण-माला। (२) प्रारंभिक बातें, साधारण ज्ञान।

ककही—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंघी] कंघी।

संज्ञा स्त्री. [सं. कंकती, प्रा. कंकई] एक तरह की कपास जिसकी रुई कुछ लाल होती है।

ककुद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बैल के कन्धे का कूबड़। (२) राजचिह्न।

ककुभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अर्जुन का पेड़। (२) वीणा का ऊपरी भाग। (३) दिशा। (४) एक राग।

ककुभा—संज्ञा स्त्री. [सं. ककुभ] दिशा।

ककोड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कर्कोटक, पा. कक्कोडक] खेखसा या ककरौल नामक तरकारी।

ककोरना—क्रि. स. [हिं. कोड़ना] (१) खुरचना, कुरेदना। (२) मोड़ना, सिकोड़ना।

ककोरा—संज्ञा पुं [सं. कर्कोटक, प्रा. कक्कोडक, हिं. ककोड़ा] खेखसा, ककरौल, । उ.—कुँदरू और ककोरा कौरे। कचरी चार चचेड़ा सौरे—२३२१।

कक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काँख, बगल। (२) काँछ, कछोटा, लाँग। (३) कछार। (४) कमरा, कोठरी। (५) दुपट्टे या चादर का आँचल। (६) श्रेणी, दर्जा। (७) पटुका, कमरबंद।

कक्षा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) समता, बराबरी। (२) श्रेणी, दर्जा। (३) काँख, बगल। (४) काँछ, कछोटा, लाँग।

कखिआँ, कखियाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. कक्ष, हिं. काँख] बाहुमूल, काँख। उ.—चल्यौ न परत पग गिरि परी सूखे मग भामिनि भवन ल्याई कर गहे कखिआँ—२३६६।

कखौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँख] काँख, बगल।

कगर—संज्ञा पुं. [सं. क=जल+अग्र=समाना] (१) ऊँचा किनारा, बाढ़। (२) मेंड, डाँड़। (३) कँगनी।

क्रि. वि.—(१) किनारे पर। (२) पास, निकट। (३) अलग, दूर।

कगरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कगर] (१) किनारा, करार। (२) टीला। उ.—ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं। हंस सुता की सुंदर कगरी अरु कुंजन की छाहीं।

कगरो—क्रि. वि. [हिं. कगर] अलग, दूर। उ.—जसुमति तेरो बारो अतिहि अचगरो। दूध दही माखन लै डारि दयौ सगरो। लियो दियो कछु सोऊ डारि देहु कगरो—१०५६।

कगार—संज्ञा पुं. [हिं. कगर] (१) किनारा जो ऊँचा हो। (२) नदी का किनारा। (३) टीला।

कच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बाल। (२) झुंड। (३) बादल। (४) बृहस्पति का पुत्र जो दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पास संजीवनी-विद्या सीखने गया था।

संज्ञा पुं. [अनु.] चुभने का शब्द या भाव।

कचनार—संज्ञा पुं. [सं. कांचनार] एक छोटा पेड़ जो सुन्दर फूलों और कलियों के लिए प्रसिद्ध है।

कचनारयौ—संज्ञा. पुं. [हिं. कचनार] कचनार की कली। उ.—ककरी कचरी अरु कचनारयौ। सुरस निमोननि स्वाद सँवारयौ—२३२१।

कचपच—संज्ञा पुं. [अनु.] बहुत सी चीजों को गचपच करके थोड़े से स्थान में रखना।

कचपची—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचपच] (१) छोटे-छोटे तारों का गुच्छा या समूह, कृतिका नक्षत्र। (२) चमकीली टिकलियाँ या बुँदे जिन्हें स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं।

कचबची—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचपच] चमकीले बुंदे या बिंदियाँ जिन्हें स्त्रियाँ माथे या गाल पर लगाती हैं, सितारा, चमकी।

कचरना—क्रि. स. [सं. कच्चरण=बुरी तरह चलना] (१) रौंदना, कुचलना, दबाना। (२) चबाना, खाना।

कचरा—संज्ञा पुं. [हिं. कच्चा] (१) खरबूजा या ककड़ी का कच्चा फल। (२) सेमल का ढोंढा। (३) कूड़ा-करकट। (४) सेवार।

कचरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कच्चा] (१) ककड़ी की तरह की एक बेल जिसे सुखाकर और तलकर खाया जाता है। कहीं-कहीं इसकी चटनी भी बनती है। उ.-(क) पापर बरी फुलौरी कचौरी। कूरबरी कचरी औ मिथौरी। (ख) ककरी कचरी अरु कचनारयौ। सुरस निमोननि स्वाद सँवारयौ–२३२१। (२) काट कर सुखाये हुए फल-मूल आदि जो आगे तरकारी बनाने के लिए सुखाकर रख लिये जाते हैं। उ.—कुँदरू ककोड़ा कौरे। कचरी चार चचेंडा सौरे–२३२१। (३) छिलकेवाली दाल।

कचहरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचकच = वादविवाद + हरी (प्रत्य.)] (१) जमाव, गोष्ठी। (२) दरबार, राज-सभा। (३) न्यायालय, अदालत, कोर्ट (४) कार्यालय, दफ्तर।

कचाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कच्चा + ई (प्रत्य.)] (१) कच्चा होना, पक्का न होना (२) अज्ञानता, अनुभवीहीनता।

कचाना, कचियाना—क्रि. अ. [हिं. कच्चा] (१) हिम्मत हार कर पीछे हटना। (२) डरना।

कचीली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचपची] (१) तारों का समूह, कृत्तिका। (२) जबड़ा, दाढ़।

कचूर—संज्ञा पुं. [सं. कर्चूर] हल्दी की जाति का एक पौधा।

संज्ञा पुं. [हिं. कचोरा] कटोरा।

कचोटना—क्रि. अ. [हिं. कुचोना] चुभना, गड़ना।

कचोरा—संज्ञा पुं. [हिं. काँसा + ओरा (प्रत्य.)] कटोरा, प्याला। उ.-मुकुलित केस सुदेस देखियत नीलबसन लपटाये। भरि अपने कर कनक कचोरा पीवति प्रियहि चुखाये–१० उ.–१३८।

कचोरी—संज्ञा. स्त्री. [हिं. कचोरा + ई (प्रत्य.)] कटोरी, प्याली।

कचौड़ी, कचौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कचरी] मोटी पूरी जिसमें उरद या और किसी दाल की पीठी भरी जाती है। उ.—पूरि सपूरि कचौरी कौरी। सदल सु उज्जवल सुन्दर सौरी—२३२१।

कच्चा—वि. [सं. कषण = कच्चा] (१) जो (फल आदि) पका न हो, अपक्व। (२) जो आँच पर अच्छी तरह पका या सिका न हो। (३) जिसका पूरा विकास न हुआ हो (४) जो ठीक से तैयार न हो। (५) जो मजबूत या स्थायी न हो। (६) जो ठीक या उचित न हो। (७) जो प्रामाणिक तोल या नाप से कम हो। (८) नासमझ, जो कुशल या चतुर न हो।

संज्ञा पुं.—(१) बखिया, सीवन। (२) ढाँचा, खाका। (३) जबड़ा, दाढ़। (४) पांडुलेख।

कच्छ—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] कछुआ।

संज्ञा पुं. [सं.] नदी या जलाशय के किनारे की जमीन, कछार।

संज्ञा पुं.—तुन का पेड़।

कच्छप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कछुआ नामक जलजंतु। (२) विष्णु के २४ अवतारों में से एक। उ.—हरि जू की आरती बनी। अति विचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी। कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँडी सहस फनी—२–२८।

कच्छपी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कछुई। (२) छोटी वीणा। (३) सरस्वती की वीणा का नाम।

कच्छा—संज्ञा पुं. [सं. कच्छ] एक तरह की नाव।

कच्छू—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] कछुआ।

कछना—संज्ञा स्त्री. [हिं. काछना] पहिनना, धारण करना।

कछनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. काछना] घुटने के ऊपर चढ़ा कर पहनी हुई छोटी धोती। उ.—(क) कोउ निरखि कटि पीत कछनी मेखला रुचिकारि। कोउ निरखि हृद-नाभि की छबि डारयौ तन-मन-बारि—६३४। (ख) खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी। कटि कछनी पीताम्बर बाँधे, हाथ लए भौंरा, चक, डोरी—६७२।

कछप—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] (१) विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक। उ.—सुरनि-हित हरि कछप-रूप धारयौ। मथन करि जलधि, अंमृत निकारयौ —८-८। (२) कछुआ।

कछरा—संज्ञा पुं. [सं. क = जल + क्षरण = गिरना] मिट्टी का चौड़े मुँह का एक पात्र जिसकी अवँठ ऊँची और दृढ़ होती है।

कछान—संज्ञा पुं. [हिं. काछना] घुटने से ऊँची धोती पहनना।

कछार—संज्ञा पुं. [हिं. कच्छ] नदी या अन्य जलाशय के किनारे की नीची और तर भूमि, खादर, दियारा।

कछु—वि. [सं. किंचित्, पा. किंची, पू. हिं. किछु, हिं. कुछ] थोड़ी संख्या या मात्रा का, जरा, थोड़ा, टुक।

सर्व. [सं. कश्चित, पा. कोचि] कोई (वस्तु या बात)।

कछुअ—वि. [हिं. कुछ] कुछ, थोड़ा। उ.—ऊधो जो तुम बात कही। ताको कछुअ न उत्तर आवै समुझि विचारि रही—३३७०।

कछुआ—संज्ञा पुं. [सं. कच्छप] एक जल-जन्तु जिसकी पीठ बड़ी कड़ी होती है। यह जमीन पर भी चल सकता है।

कछुक—वि. [हिं. कछु + एक] कुछ, थोड़ा। उ.—(क) जबै आवौं साधु-संगति कछुक मन ठहराइ—१–४५। (ख) सूर कहौ क्यौं कहि सकै, जन्म-कर्म-अवतार। कहे कछुक गुरु-कृपा तैं श्री भागवतऽनुसार—२–३६।

मुहा.—कछुक कही नहिं जात—दुविधा या असमंजस के कारण कुछ कहा नहीं जाता। उ.—स्रवन सुनत अकुलात साँवरो कछुक कही नहिं जात—सारा०–६४६।

कछुव—वि. [हिं. कुछ] कुछ। उ.—(क) तुम प्रभु अजित, अनादि, लोकपति, हौं अजान मतिहीन। कछुव न होत निकट उत लागत, मगन होत इत दीन—१–१८१। (ख) जोग-जुक्ति हम कछुव न जानैं ना कछु ब्रह्मज्ञानो—३०६४।

कछुवा—संज्ञा पुं. [हिं. कछुआ] कछुआ।

कछुवै—वि. [हिं. कुछ] कुछ भी। उ.—(क) जय अरु बिजय कथा नहिं कछुवै, दसमुख बध-बिस्तार—१–२१५। (ख) बालापन खेलत ही खोयौ, जोबन जोरत दाम। अब तो जरा निपट नियरानी, करयो न कछुवै काम—१–५७। (ग) तीरथ ब्रत कछुवै नहिं कीन्हौ, दान दियौ नहिं जागे—१–६१।

कछू—सर्व. [सं. कश्चित्, पा. कोचि, हिं. कुछ] (१) कोई वस्तु। (२) कोई काम, कोई विशेष बात। उ.—जौ सुरपति कोप्यौ ब्रज ऊपर, क्रोध न कछू सरै—१–३७।

कछोटा—संज्ञा पुं. [हिं. काछ] घुटने के ऊपर तक पहनी हुई धोती, कछोटी, ऊपर चढ़ायी हुई धोती।

कछोटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कछोटा] छोटी धोती।

कज—संज्ञा पुं. [फा.] (१) टेढ़ापन। (२) दोष, ऐब, कसर।

कजरा—संज्ञा पुं. [हिं. काजल] (१) काजल। उ.—ता दिन तैं कजरा मैं देहौं। जा दिन नँदनंदन के नैनन अपने नैन मिलैहौं—२७७६। (२) बैल जिसकी आँखें काली हों।

वि.—काली आँखोंवाला।

कजराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. काजल] कालापन।

कजरारा—वि. [हिं. काजल+आरा (प्रत्य.)] (१) जिस (नेत्र) में काजल लगा हो, अंजनयुक्त। (२) (काजल के समान) काला।

कजरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. काजल, कजली] काली आँखों वाली गाय। उ.—(क) कजरी कौ पय पियहु लाल जासौं तेरि बेनि बढ़ै—१०–१७४। (ख) अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब आनि करौ इक ठौरी। ·······। पियरी, मौरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती—४४५। (ग) कजरी, धौरी, सेंदुरी, धूमरि मेरी गैया—६६६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. काजल] (१) कजराई, कालापन। (२) एक त्योहार जो कहीं सावन की पूर्णिमा को और कहीं भादों बदी तीज को मनाया जाता है। इस दिन से कजली गाना बंद कर दिया जाता है। (३) एक गीत जो बरसात में गाया जाता है।

संज्ञा पुं. [सं. कज्जल] एक तरह का काला धान।

कजरौटा—संज्ञा पुं. [हिं. कजलौटा] काजलकी डिबिया।

कजला—संज्ञा पुं. [हिं. काजल] (१) काली आँखों वाला बैल। (२) एक काला पक्षी।

वि.—काली आँखों वाला।

कजलाना—क्रि. अ. [हिं. काजल] (१) काला हो जाना। (२) आग बुझना।

क्रि. स.—काजल लगाना, आँजना।

कजली—संज्ञा स्त्री. [हिं. काजल] (१) कालापन, कालिख। (२) काली आँख वाली गाय। (३) सफेद भेंड़ जिसकी आँख के बाल काले होते हैं। (४) एक गीत जो बरसात में गाया जाता है। (५) एक त्योहार जो कहीं सावन की पूर्णिमा को और कहीं भादों बदी तीज को मनाया जाता है। इस दिन से कजली का गीत गाना बन्द कर दिया जाता है। (६) वे हरे अंकुर जिन्हें कजली का त्योहार मनाकर स्त्रियाँ अपने संबंधियों को बाँटती हैं।

कजलीबन—संज्ञा पुं. [सं. कदलीवन] केले का बन।

कजलौटा—संज्ञा पुं. [हिं. काजल+औटा (प्रत्य.)] काजल रखने की डिबिया।

कजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कांजी] काँजी, माँड।

कजाक—संज्ञा पुं. [तु. क़ज़्ज़ाक़] लुटेरा, डाकू, ठग।

कजाकी—संज्ञा पुं. [हिं. कजाक] (१) लूटमार। (२) छल-कपट, धोखाधड़ी।

कज्जल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंजन, काजल। उ.—(क) ललित कन-संजुत कपोलनि लसत कज्जल अंक। मनहु राजत रजनि, पूरन कलापति सकलंक—३५३। (ख) उनै उनै घन बरषत चष उर सरिता सलिल भरी। कुमकुम कज्जल कीच बहै जनु कुच जुग पारि परी—२८१४। (२) सुरमा। (३) कालिख, स्याही, (४) बादल।

कज्जलित—वि. [सं.] (१) जिस नेत्र में काजल लगा हो, आँजा हुआ। (२) काला।

कट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का गंडस्थल। (२) नरकट की घास या उसकी बनी चटाई। (३) खस की घास या उसकी बनी टट्टी। (४) शव। (५) टिकटी, अरथी। (६) श्मशान। (७) समय।

संज्ञा पुं. [हिं. कटना] (१) एक प्रकार का काला रंग। (२) 'काट' का संक्षिप्त रूप।

वि.—(१) बहुत (२) उग्र।

कटक—संज्ञा पुं. [सं. कंटक]—काँटा, दुख।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) सेना, दल। उ.—महाराज, तुम तौ हौ साध। मम कन्या तैं भयौ अपराध। या कन्या कौं प्रभु तुम बरौ। कटक-सूल किरपा करि हरौ—६-२। स्याम बलराम जब कंस मारयौ। सुनि जरासंध बृतांत अस सुता तैं युद्ध हित कटक अपनौ हँकारयौ—१० उ.-१। (२) राजशिविर। (३) चूड़ा, कंकण, कड़ा। (४) चक्र। (५) समूह।

कटकई—संज्ञा स्त्री. [सं. कटक+ई (प्रत्य.)] सेना, दल, लश्कर।

कटकट—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) दाँत बजने का शब्द। (२) लड़ाई, झगड़ा।

कटकटान, कटकटाना—क्रि. अ. [हिं. कटकट] क्रोध से दाँत पीसना।

कटकाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कटक+आई (प्रत्य.)] सेना, दल, लश्कर।

कटजीरा—संज्ञा पुं. [सं. कणजीरक] काला जीरा। उ.—कूट कायफर सोठि चिरैता कटजीरा कहुँ देखत। आल मजीठ लाख सेंदुर कहुँ ऐसेहिं बुधि अवरेखत—११०८।

कटत—क्रि. अ. [हिं. कटना] (१) कटते हैं, खंड खंड होते हैं। (२) नष्ट या दूर होते हैं, छीजते हैं। उ.—(क) जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे—१-६४। (ख) कमल नैन की लीला गावत कटत अनेक बिकार—२-२।

कटताल—संज्ञा पुं. [हिं. काठ+ताल] करताल नामक काठ का बाजा।

कटनंस—संज्ञा पुं. [हिं. काटना+नाश] काट कर नष्ट करने की क्रिया।

कटना—क्रि. अ. [सं. कर्तन, प्रा. कट्टन] (१) टुकड़े-टुकड़े होना। (२) (किसी नोक आदि से) कट फट जाना। (३) (किसी अंश या भाग का) अलग हो जाना। (४) मरना। (५) कतरना। (६) नष्ट या दूर होना। (७) समय बीतना। (८) समाप्त होना। (९) चुपचाप खिसक जाना। (१०) लज्जित होना। (११) ईर्ष्या से जलना। (१२) मोहित होना। (१३) बेकार खर्च होना। (१४) बिक जाना। (१५) प्राप्त होना। (१६) (सूची से नाम) हटा दिया जाना।

कटनास—संज्ञा पुं. [सं. कीट अथवा हिं. कटना + नाश] नीलकंठ पक्षी।

कटनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. कटना] (१) काट। (२) रीझ, प्रीति, आसक्ति।

कटनी—संज्ञा स्त्री. [हिं कटना] (१) काटने का काम। (२) काटने का औजार। (३) फसल काटना। (४) आड़े-तिरछे भागना।

कटरा—संज्ञा पुं. [हिं. कटार] कटार।

कटवा—संज्ञा पुं. [देश.] गले का एक गहना।

कटसरैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कटसारिका] एक कँटीला पौधा।

कटहर, कटहल—संज्ञा पुं. [सं. कंठकिफल, हिं. काठ + फल] (१) एक पेड़ जिनमें बड़े-बड़े फल लगते हैं। (२) इस पेड़ का फल जिसके ऊपरी मोटे छिलके पर नुकीले कँगूरे होते हैं।

कटा—संज्ञा. पुं. [हिं. काटना] (१) मार-काट। (२) वध, हत्या। (३) प्रहार, चोट।

कटाइक—वि. [हिं. काटना] काटनेवाला।

कटाई—क्रि. स. [हिं. कटाना] (१) कटाया। (२) अपयश कराया। उ.—कौन कौन कौ बिनय कीजिए कहि जेतिक कहि आई। सूर स्याम अपने या ब्रज की इहि बिधि कान कटाई—३०७७।

कटाउ—संज्ञा पुं. [हिं. कटाव] (१) काट-छाँट। (२) काटकर बनाये हुए बेल-बूटे।

क्रि. स. [हिं. कटाना] काट लो, काटने का काम करो। उ.—पालनौ अति सुन्दर गढ़ि ल्याउ रे बढ़ैया। सीतल चंदन कढाउ धरि खराद रंग लाउ, बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बढ़ैया—१०—४१।

कटाऊ—संज्ञा पुं. [हिं. कटाव] (१) काट-छाँट। (२) बेल-बूटे।

कटाक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तिरछी चितवन या नजर। उ.—चंचलता निर्तनि कटाक्ष रस भाव बतावत नीके—सा. उ.—८। (२) व्यंग्य, ताना। (३) लीला या अभिनय के अवसर पर पात्रों के नेत्रों के बाहरी कोरों पर खींची जानेवाली पतली काली रेखाएँ।

कटाच्छ—संज्ञा पुं. [सं. कटाक्ष] (१) चितवन, दृष्टि। उ.—(क) नमो नमो हे कृपानिधान। चितवत कृपा-कटाच्छ तुम्हारी, मिटि गयौ तम-अज्ञान—२—३३। (ख) कृपा-कटाच्छ कमल-कर फेरत सूर-जननि सुख देत—१०—१५४। (२) कृपादृष्टि। उ.—काली बिष-गंजन दह आइ। देखे मृतक बच्छ बालक सब लये कटाच्छ जिवाइ—५७८। (३) तिरछी चितवन या नजर, कटाक्ष। उ.—कबहिं करन गयौ माखन चोरी। जानै कहा कटाच्छ तिहारे, कमलनैन मेरौ इतनक सो री—१०—३०५।

कटाछनि—संज्ञा पुं. सवि. [सं. कटाक्ष] तिरछी दृष्टि या चितवन। उ.—भृकुटी सूर गही कर सारँग निकर कटाछनि चोट—सा. उ.—१६।

कटान—संज्ञा स्त्री. [हिं. काटना + आन (प्रत्य.)] काटने की क्रिया या भाव।

कटाना—क्रि. स. [हिं. 'काटना' का प्रे०] काटने के काम में लगाना या नियुक्त करना।

कटार, कटारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कट्टार] एक छोटा दुधारी हथियार।

कटाव—संज्ञा पुं. [हिं. काटना] (१) काट-छाँट, कतर-ब्योंत। (२) काटकर बनाये गये बेल-बूटे।

कटाह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा कड़ाव। (२) कछुए की खोपड़ी। (३) कुआँ। (४) नरक। (५) भैंस का बछड़ा जिसके सींग निकलते हों। (६) ऊँचा टीला।

कटि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमर। उ.—गये कटि नीर लौं नित्य संकल्प करि करत स्नान इक भाव

देख्यौ—२५५४। (२) मंदिर का द्वार। (३) हाथी का गंडस्थल। (४) पीपल।

कटिजेब—संज्ञा स्त्री. [सं. कटि + फ़ा जेब] करधनी, किंकिणी।

कटिबंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमरबंद। (२) गरमी-सरदी के आधार पर किये हुए पृथ्वी के पाँच भाग।

कटिबद्ध—वि. [सं.] (१) कमर बाँधे हुए। (२) तैयार, उद्यत।

कटि-बसन—संज्ञा स्त्री. [सं. कटि+बसन] कमर में पहनने का वस्त्र, साड़ी।

कटियाना—क्रि. अ. [हिं. काँटा] हर्षित या पुलकित होना।

कटिसूत्र—संज्ञा पुं. [सं.] सूत की करधनी, मेखला।

कटी—क्रि. अ. भूत [हिं. कटना] (१) कट गयी। (२) दूर होती है, नष्ट होती है, छँटती है। उ०—हृदय की कबहु न जरनि घटी। बिनु गोपाल बिथा या तन की कैसैं जाति कटी—१-६८।

कटीला—वि. [हिं. काँटा] (१) तेज, तीक्ष्ण। (२) खूब चुभने या गहरा प्रभाव करनेवाला। (३) मोहित करनेवाला। (४) छैल-छबीला।

कटीलियाँ—वि. [हिं. कटीली] (१) बहुत शीघ्र प्रभाव डालनेवाली, गहरा असर करनेवाली, मोहित करनेवाली। उ०—(क) ओढ़े पीरी पावरी हो पहिरे लाल निचोल। भौंहैं काट कटीलियाँ मोहिं मोल लई बिन मोल—८९३। (ख) भौंहैं काट कटीलियाँ सखि बस कीन्हीं बिन मोल—१४६३।

कटीले—वि. [हिं. काँटा] काँटेदार, काँटों से भरे हुए। उ०—कमल-कमल कहि बरनिए हो पानि पिय गोपाल। अब कवि कुल साँचे से लागे रोम कटीले नाल—पृ० ३४८ (५८)।

कटु—वि. [सं.] (१) मन को बुरा लगनेवाला, कड़ुआ। उ०—कै सरनागत कौं नहिं राख्यौ। कै तुमसौं काहू कटु भाख्यौ।—१-२८६। (२) छः रसों में से एक, चरपरा, कड़ुआ। उ०—कंचन-काँच कपूर कटु खरी एकहिं सँग क्यौं तोले—३२६४।

कटुआ—वि. [हिं. काटना] कटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े।

कटुक—वि. [सं.] (१) कड़ुआ, कटु। (२) जो चित्त को बुरा लगे। उ०—(क) मुख जो कही कटुक सब बानी हृदय हमारे नाहीं—११६१। (ख) एते मान भये बस मोहन बोलत कटुक डराई। दीपक प्रेम क्रोध मारुत छिन परसत जिनि बुझि जाई—१२७५। (३) खट्टे। उ०—सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई। जूठनि की कछु संक न मानी भच्छ किए सत-भाई—१-१३।

कटुके—वि. [सं. कटुक] (१) कड़ुआ, कटु। (२) अप्रिय, जो चित्त को भला या प्रिय न हो। उ०—लीजो जोग सँभारि आपनो जाहु तहीं तटके। सूर स्याम तजि कोउ न लैहै या जोगहिं कटुके—३१०७।

कटुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] कड़ुआपन, अप्रियता।

कटूक्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. कटु + उक्ति] कड़ुई या अप्रिय बात।

कटे—क्रि. अ. भूत. [हिं. कटना] छीज गये, नष्ट हुए, दूर हो गये। उ०—बिप्र बजाइ चल्यौ सुत कैं हित कटे महा दुख भारे—१-१५८।

कटैं—क्रि. अ. [हिं. कटना] कटते हैं, बंधन कटते हैं, मुक्ति पाते हैं। उ०—जरासंध बंदी कटैं नृप-कुल जस गावै—१-४।

कटैया—संज्ञा पुं. [हिं. काटना] (१) काटनेवाला। (२) फसल काटनेवाला।

कटोरा—संज्ञा पुं. [हिं. काँसा + ओरा (प्रत्य.) = कँसोरा] कटोरी से बड़ा बरतन, प्याले के ढंग का बना धातु का बरतन।

कटोरे—संज्ञा पुं. [हिं. कटोरा] कटोरे में। उ०—जोग कटोरे लिए फिरत है ब्रजबासिन की फाँसी—३१०८।

कटोरी—संज्ञा. स्त्री. [हिं. कटोरा का अल्पा.] (१) प्याली। (२) अँगिया का वह भाग जिसमें स्तन रहते हैं।

कट्टर—वि. [हिं काटना] (१) अपने विश्वास के अतिरिक्त कुछ न सहन करनेवाला। (२) हठी। (३) पक्का।

कट्टे—क्रि. स. [सं. कर्त्तन, प्रा. कट्टन, हिं. काटना] दो टुकड़े या खण्ड किये। उ.—तब बिलंब नहिं कियौ, सीस दस रावन कट्टे—१-१८०।

कट्यानी—क्रि. अ. [हिं कटियाना] **हर्षित या पुलकित हुई।**

कठताल, कठताला—संज्ञा पुं. [हिं. काठ+ताल) **करताल नाम का बाजा जो काठ का बना होता है।** उ.—कंसताल कटताल बजावत सृङ्ग मधुर मुँहचंग। मधुर, खंजरी, पटह, पणव, मिलि सुख पावत रत भंग।

कठमलिया—संज्ञा पुं. [हिं. काठ+माला] **(१) काठ की कंठी या माला पहननेवाला, वैष्णव। (२) बनावटी या झूठा साधु।**

कठला—संज्ञा पुं. [सं. कंठ+ला (प्रत्य.)] **बच्चों को पहनाने की माला जिसमें सोने-चाँदी की चौकियों के साथ बघनख, ताबीज आदि गुथे रहते हैं।**

कठारा—संज्ञा पुं. [सं. कंठ=किनारा+हिं. आरा (प्रत्य.)] **जलाशय या नदी का किनारा।**

कठारी—संज्ञा स्त्री.[हिं काठ+आरी (प्रत्य.)] **(१) काठ का पात्र। (२) कमंडल।**

कठिन—वि. [सं.] **(१) कड़ा, सख्त।** उ.—(क) रुधिर-मेद मल मूत्र कठिन कुच उदर गंध-गंधात। तन-धन-जोबन ता हित खोवत, नरक की पाछैं बात—२-२४। (ख) बालक बदन बिलोकि जसोदा कत रिस करति अचेत। छोरि उदर तैं दुसह दाँवरी डारि कठिन कर बेंत—३४६। (२) **दयारहित, निर्दयी, कठोर।** उ.—तैं ककई कुमंत्र कियो। अपने कर करि काल हँकार्यौ, हठ करि नृप अपराध लियौ। श्रीपति चलत रह्यौ कहि कैसैं, तेरौ पाहन कठिन हियौ— ६-४८। **(३) मुशकिल, दुःसाध्य, दुष्कर।** उ.—ग्रह-पति सुत-हित अनुचर को सुत जारत रहत हमेस। जलपति भूषन उदित होत ही पारत कठिन कलेस—सा. २७।

संज्ञा स्त्री.—**(१) कठिनता।** उ.—(क) उत बृष-भानुसुता उठी वह भाव बिचारै। रैनि बिहानी कठिन सौं मन्मथ बल मारै—१५४१। (ख) जब जब दीननि कठिन परी। जानत हौं करुनामय जन कौं, तब-तब सुगम करी—१-१६। **(२) विपत्ति, कष्ट,संकट।** उ.—(क) महाकष्ट दस मास गर्भ बसि अधोमुख सीस रहाई। इतनी कठिन सही तब निकस्यौ अजहुँ न तू समुझाई। (ख) कपट-रूप निसिचर तन धरिकै अमृत पियौ गुन मानी। कठिन परैं ताहू मैं प्रगटे, ऐसे प्रभु सुख-दानी—१-११२।

कठिनई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कठिन] **(१) कड़ाई। (२) कठोरता। (३) संकट।**

कठिनता, कठिनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. कठिन] **(१) कड़ापन, सख्ती। (२) मुश्किल, दिक्कत। (३) निर्दयता, कठोरता। (४) मजबूती, दृढ़ता।**

कठिनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कठिन+आई (प्रत्य.)] **मुश्किल, जबरदस्ती, हठ।** उ.—ऊधौ जो तुम हमहिं बतायौ। सो हम निपट कठिनई करि-करि या मन कौ समझायौ—३३८५।

कठुला—संज्ञा पुं. [हिं. कंठ+ला (प्रत्य.)—कठला] **बच्चों के गले में पहनाने की एक माला जिसमें चाँदी, सोने की चौकियों के साथ बाघ के नख, नजर से बचाने की ताबीज आदि गुथे रहते हैं। विश्वास है कि इसको पहनाने से बच्चे को नजर नहीं लगती।** उ.—कठुला कंठ बज्र केहरि-नख, मसि-बिंदुका सु मृग-मद भाल। देखत देत असीस नारि-नर, चिर-जीवौ जसुदा तेरौ लाल—१०-८४।

कठेठ—वि. पुं. [सं. कंठ+एठ (प्रत्य.)] **(१) कड़ा, कठोर, सख्त। (२) बली, बलवान।**

कठेठी—वि. स्त्री. [हिं. कठेठा] **कड़ी, कठोर, सख्त। (२) बलवाली।**

कठोर—वि. [सं.] **(१) कड़ा, सख्त।** उ.— केस ओर निहार फिर फिर तकत उरज कठोर—सा. ३४। **(२) निर्दयी, निठुर।** उ.—केस गहे अरि कंस पछ-रिहौं। असुर कठोर जमुन लै डरिहौं—११६१।

कठोरता, कठोरताई—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) कड़ापन, सख्ती। (२) निर्दयता, निठुरता।**

कठोरपन—संज्ञा पुं. [हिं. कठोर+पन (प्रत्य.)] **(१) कठोरता। (२) निर्दयता।**

कठोरी—वि. [सं. कठोर] **कठोर, कड़ा।** उ.—दै दै दगा बुलाइ भवन मैं भुज भरि भेंटति उरज-कठोरी —१०-३०५।

कठौता—संज्ञा पुं. [हिं. काठ+औता (प्रत्य.)] **काठ का एक पात्र जो परात से ऊँचा होता है।**

कठौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. कठौता] छोटा कठौता।

कड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़कड़] (१) कड़कड़ाहट का शब्द। (२) कड़कने की क्रिया या भाव। (३) गाज, बज्र। (४) रुक-रुक कर उठनेवाला दर्द, कसक।

कड़कड़ाना—क्रि. स. [अनु.] घी को आँच पर तपाना।

कड़कना—क्रि. अ. [हिं. कड़कड़] (१) 'कड़कड़' शब्द करना। (२) गरजना, तड़पना। (३) फटना, दरकना।

कड़खा—संज्ञा पुं. [हिं. कड़क] ओजपूर्ण प्रशंसात्मक गीत जिन्हें सुनकर युद्ध में जानेवाले बीर उत्तेजित हो जाते हैं।

कड़खैत—संज्ञा पुं. [हिं. कड़खा+ऐत(प्रत्य.)] (१) कड़खा गानेवाले। (२) भाट, चारण।

कड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कटक] (१) हाथ-पैर का एक गहना। (२) धातु का गोल छल्ला या कुंडा।

वि. [सं. कड्ड] (१) कठोर, कठिन, ठोस। (२) जो कोमल न हो, रूखा। (३) उग्र, दृढ़। (४) तगड़ा, हृष्ट-पुष्ट। (५) तेज। (६) सहनशील, धैर्यवान। (७) जिसका करना सरल न हो, मुश्किल। (८) तीव्र। (९) बुरा लगनेवाला। (१०) कर्कश, कठोर।

कड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ा] कड़ापन, कठोरता, सख्ती।

कड़ाही—संज्ञा स्त्री. [हिं.] लोहे पीतल आदि का पात्र जिसे चूल्हे पर चढ़ाकर पूरी-मिठाई बनाते हैं।

कड़ियल—वि. [हिं. कड़ा] कठोर, सख्त।

कड़िहार—वि. [हिं. काढ़ना, कढ़िहार] (१) काढ़ने या निकालनेवाला। (२) उद्धार करने वाला।

कड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ा] (१) जंजीर का छल्ला। (२) गीत का एक चरण। (३) लगाम।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ा=कठिन] विपत्ति, कठिनाई।

वि.—कठिन, कठोर।

कड़ुवा—वि. [सं. कटुक, प्रा. कडुआ] (१) जिसका स्वाद उग्र या तीक्ष्ण हो। (२) उग्र या तीक्ष्ण स्वभाववाला। (३) अप्रिय, अरुचिकर। (४) कठिन, मुशकिल।

कड़ुआना—क्रि. अ. [हिं. कडुआ (१) स्वाद में उग्र या तीक्ष्ण लगना। (२) बिगड़ना, खीझना। (३) नींद न आने पर आँख में दर्द होना।

कड़ूला—संज्ञा पुं. [हिं. कड़ा+ऊला] छोटा कड़ा जो बच्चे को हाथ-पैर में पहनाते हैं।

कड़ेरा—संज्ञा पुं. [हिं. कैंड़ा] वस्तु को खरादकर ठीक करनेवाला।

कढ़त—क्रि. अ. [हिं. कढ़ना] निकलता है, बाहर आता है। उ.—नाहिंन कढ़त और के काढ़े सूर मदन के बान—२०५१।

कढ़ति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. कढ़ना] निकलती हैं, बाहर आती हैं। उ.—अब वै बातैं इहयाँ रही।...........। अब वै सालति हैं उरसहियाँ कैसेहु कढ़ति नहीं —२५४२।

कढ़ना—क्रि. अ. [सं. कर्षण, पा. कड्ढन] (१) निकलना, बाहर आना। (२) उदय होना। (३) होड़ में आगे बढ़ना। (४) स्त्री का प्रेमी के साथ निकलना। (५) औटने से दूध का गाढ़ा होना। (६) लाभ होना।

कढ़नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कढ़ना] मथानी घुमाने की डोरी, नेती।

कढ़राना, कढ़लाना—क्रि. स. [हिं. काढ़ना+लाना] घसीटना, घसीटकर बाहर करना।

कढ़वाना—क्रि. स. [हिं. काढ़ना+लाना] निकलवाना।

कढ़ाइ—क्रि. स. [हिं. कढ़ाना] खींचना, अलग करना। उ.—दिन दिन इनकी करौं बड़ाई अहिर गये इतराइ। तौ मैं जो वाही सौं कहिकै उनकी खाल कढ़ाइ—२५७८।

कढ़ाई—क्रि. स. स्त्री. [हिं. कढ़ाना, कढ़वाना] निकलवायी, बाहर की, खींच ली। उ.—सुनु मैया, याके गुन मोसौं, इन मोहिं लयौ बुलाई। दधि मैं पड़ी सेंत की मौपैं चीटी सबै कढ़ाई—१०-३२२।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ाह] कड़ाही।

संज्ञा स्त्री. [हिं. काढ़ना] (१) निकालने की क्रिया या मजदूरी। (२) बूटा-कसीदा काढ़ने की क्रिया या मजदूरी।

कढ़ाना—क्रि. स. [हिं. काढ़ना का प्रे०] **निकलवाना, बाहर कराना, खिंचाना।**

कढ़ावना—क्रि. स. [हिं. काढ़ना का प्रे०] **निकलवाना, बाहर कराना, खिंचाना।**

कढ़िराइ—क्रि. स. [हिं. कढ़लाना] **घसीटकर, घसीटकर बाहर करके।** उ.—नाहिं काँचौ कृपानिधि हौं, करौ कहा रिसाइ। सूर तबहुँ न द्वार छाँड़ै, डारिहौ कढ़िराइ—१-१०६।

कढ़िहार—वि. [हिं. काढ़ना] **(१) निकालनेवाला। (२) उबारने या उद्धार करनेवाला।**

कढ़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कढ़ना = गाढ़ा होना] **बेसन को पतला करके और आग पर गाढ़ा करके बनाया जानेवाला एक प्रकार का सालन या भोजन।** उ.—(क) दाल-भात घृत कढ़ी सलोनी अरु नाना पकवान। आरोगत नृप चारि पुत्र मिलि अति आनन्द निधान। (ख) खाटी कढ़ी बिचित्र बनाई। बहुत बार जेंवत रुचि आई—२३२१।

कढ़ै—क्रि. अ. [सं. कर्षण, पा. कड्ढन, हिं. कढ़ना] **निकले, बाहर हो, दूर हो।** उ.—सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै—१०-१७४।

कढ़ैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कड़ाह] **कड़ाही।**

संज्ञा पुं. [हिं. काढ़ना] **(१) निकालनेवाला। (२) उद्धार करनेवाला।**

कढ़ोरना—क्रि. स. [सं. कर्षण] **घसीटना।**

कढ़ोरि—क्रि. स. [हिं. कढ़ोरना] **घसीटकर।**

कढ़ोरिबो—क्रि. स. [हिं. कढ़ोरना] **घसीटना।**

कढ़ोलना—क्रि. स. [हिं. कढ़ोरना] **घसीटना।**

कढ़्यौ—क्रि. अ. [सं. कर्षण, पा. कड्ढन, हिं. कढ़ना] **निकला, बाहर आया।** उ.—(तब) लादि पंकज कढ़्यौ बाहिर, भयौ ब्रज-मन-भावना—५७७।

कण—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) किनका, रवा या जर्रा। (२) चावल का छोटा टुकड़ा। (३) अन्न के दो-चार दाने। (४) भिक्षा।**

कणकण—संज्ञा पुं. [सं. कंकणक] **कंकण के बजने का शब्द।**

कणिका—संज्ञा स्त्री. [सं] **किनका, कण, छोटा टुकड़ा।**

कण्व—संज्ञा पुं. [सं.] **एक ऋषि जिन्होंने शकुन्तला को पाला था।**

कत—अव्य. [सं. कुतः, पा. कुतो] **क्यों, किस लिए, काहे को।** उ०—(क) सूरदास भगवंत भजन बिनु धरनी जननि बोझ कत मारी?—१-३४। (ख) काल-ब्याल, रज-तम-बिष-ज्वाला कत जड़ जंतु जरत—१-५५। (ग) छये पति कत जात खेलत कान मेरे प्रान—सा० ९३।

कतई—क्रि. वि. [अ.] **निपट, बिलकुल।**

कतक—अव्य. [सं. कुतः] **किस लिए, क्यों।**

वि. [सं. कियत, हिं. कितना] **किस परिणाम या मात्रा का।**

कतरना—क्रि. स. [सं. कर्तन] **किसी औजार या कैंची से कतरना।**

संज्ञा पुं. **(१) बड़ी कैंची। (२) वह व्यक्ति जो बीच में बात काट देता हो।**

कतर-ब्योंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. कतरना + ब्योंतना] **(१) काट-छाँट। (२) उलट-फेर। (३) सोच-विचार। (४) युक्ति, जोड़-तोड़।**

कतलबाज—संज्ञा पुं. [अ. क़त्ल + फ़ा. बाज़] **बधिक, हत्यारा, मारनेवाला।**

कतली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कतरना] **एक प्रकार की मिठाई या पकवान।**

कतवार—संज्ञा पुं. [हिं. कातना] **कातनेवाला।**

संज्ञा पुं. [हिं. पतवार = पताई] **कूड़ा-करकट।**

कतहुँ, कतहूँ—अव्य. [हिं. कत + हूँ] **कहीं, किसी जगह।** उ०—ममता-घटा मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारौ! बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन ओट अधारौ—१-२०९।

कता—संज्ञा स्त्री. [अ. क़तअ] **बनावट, आकृति। (२) ढंग, रीति। (३) काट-छाँट।**

कतान—संज्ञा पुं. [सं.] **एक तरह का बढ़िया कपड़ा।**

कतार—संज्ञा स्त्री. [अ. क़तार] **(१) पाँति, पंक्ति, श्रेणी। (२) समूह, झुंड।**

कतारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कतार] **ढंग।**

कति—वि. [सं.] (१) (संख्या में) कितने। (२) (तौल या माप में) कितना। (३) कौन। (४) बहुत, अगणित।

कतिक—वि. [सं. कति+एक] (१) कितना। (२) थोड़ा, जरासा। (३) बहुत, अनेक।

कतिपय—वि [सं.] (१) कई, कितने ही। (२) कुछ, थोड़े से।

कतेक—वि. [सं. कति+एक] (१) कितने। (२) थोड़े, कुछ। (३) अनेक।

कतौनी—संज्ञा स्त्री [हिं. कातना] (१) कातने की क्रिया, भाव या मजदूरी। (२) काम में विलंब। (३) बेकार काम।

कत्ता—संज्ञा पुं. [सं. कर्तरी] (१) बाँका नामक औजार। (२) छोटी टेढ़ी तलवार। (३) चौपड़ का पासा।

कत्ती—संज्ञा स्त्री. [हिं. कत्ता] (१) छुरी। (२) छोटी तलवार या कटारी। (३) पगड़ी जो बटकर पहनी जाती है।

कत्थक—संज्ञा पुं. [सं. कथक] वे जो गाने-बजाने का पेशा करते हों।

कत्था—संज्ञा पुं. [सं. क्वाथ] (१) खैर की लकड़ियों का उबाल कर निकाला हुआ रस जो पान में लगाकर खाया जाता है। (२) खैर का पेड़।

कथक—संज्ञा पुं. [सं.] कथा-पुराण कहने वाला।

कथत—क्रि. स. [हिं. कथना] (१) कहते हो, बखानते हो। उ.—(क) बेनु बजाय रास बन कीन्हो अति आनँद दरसायौ। लीला कथत सहस मुख तौऊ अजहूँ पार न पायौ। (ख) हमतौ निपट अहीरि बावरी जोग दीजिए जानन। कहा कथत मौसी के आगे जानत नानी-नानन—३३२६। (ग) ए अलि चपल मोद रस लंपट कटु संदेस कथत कत कूरे—३०४२। (२) निंदा या बुराई करते हो।

कथति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. कथना] कहती है, बखानती है। उ.—दिवस बितवति सकल जन मिलि कथति गुन बलबीर—३४७६।

कथन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कहना। (२) कही हुई बात, उक्ति। (३) वक्तव्य, बयान।

कथना—क्रि. स. [सं. कथन] (१) कहना, बोलना। (२) निंदा या बुराई करना।

कथनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कथन+ई (प्रत्य.)] (१) बात, कथन। (२) बकवाद, विवाद।

कथनीय—वि. [सं.] कहने या वर्णन करने योग्य। (२) बुरी, निंदनीय।

कथरी—संज्ञा पुं. [सं. कंथा+री (प्रत्य.)] चिथड़े-गुदड़ों से बनाया हुआ बिछौना, गुदड़ी।

कथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) धार्मिक आख्यान। (२) बात, चर्चा। उ.—नाहक मैं लाजनि मरियत है, इहाँ आइ सब नासी। यह तौ कथा चलैगी आगै, सब पतितनि मैं हाँसी—१-१६२। (३) समाचार, हाल, रहस्य। उ.—(क) सूरदास बलि जात दुहुन की लिखि-लिखि हृदय-कथा चित पाती—सा. ५०। (ख) सुनहु महरि, तेरे या सुत सौं हम पचि हार रहीं। चोर अधिक चतुरई सीखी जाइ न कथा कही—१०-२६१। (४) वाद-विवाद, कहा-सुनी, झगड़ा।

कथानक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कथा। (२) कथा का सारांश, कहानी।

कथावस्तु—संज्ञा स्त्री. [सं] नाटक, उपन्यास आदि की कहानी।

कथीर, कथील, कथीला—संज्ञा पुं. [सं. कस्तीर, पा. कत्थीर] राँगा।

कथोपकथन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वार्तालाप। (२) बातचीत।

कदंब—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, ढेर, झुंड। उ.—सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल, भागे जंजाल-जाल दुख-कदंब हारे—१-२०५। (२) कदम का वृक्ष। उ.—अति रमनीक कदंब-छाँह-रुचि परम सुहाई—४९२।

कदंश—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा या साररहीन भाग।

कद—संज्ञा स्त्री. [अ. कद] (१) ईर्ष्या, द्वेष। (२) हठ, जिद।

संज्ञा पुं. [अ. कद] डील, ऊँचाई।

संज्ञा पुं. [सं. कं=जल+द] बादल।

अव्य. [सं. कदा] **कब, किस दिन, किस समय ।**

कदध्व—संज्ञा पुं. [सं. कदध्वा] **कुपथ ।**

कदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) युद्ध, संग्राम, नाश । उ.—परैं भहराइ भभकंत रिपु घाइ सौं, करि कदन रुधिर भैरौं अघाऊँ—६-१२६ । **(२) मरण, विनाश । (३) हिंसा, पाप । (४) दुख । (५) घातक, हत्यारा ।**

कदन्न—संज्ञा पुं. [सं.] **वह अन्न जिसका खाना मना हो ।**

कदम—संज्ञा पुं. [सं. कदंब] **(१) एक बड़ा पेड़ जिसमें पीले फूल और हरे फल लगते हैं ।** उ.—(क) सीतल कुंज कदम की छहियाँ छाक छहूँ रस खैए—४४५ । (ख) कहि धौं कुंद कदम बकुल बट चंपक लता तमाल—१८०८ ।

संज्ञा पुं. [अ. क़दम] **(१) पैर, पग । (२) पैर का चिह्न । (३) दो पगों का अंतर, पैंड ।**

कदर—संज्ञा पुं. [सं] **(१) अंकुश । (२) गाँठ ।**

संज्ञा स्त्री. [अ. क़दर] **(१) मात्रा । (२) मान, बड़ाई ।**

कदरई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कादर] **कायरता ।**

कदरज—संज्ञा पुं. [सं. कदर्य] **एक प्रसिद्ध पापी ।**

कदरमस—संज्ञा स्त्री. [सं. कदन + हिं. मस (प्रत्य.)] **मारपीट, लड़ाई ।**

कदराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कादर + ई. (प्रत्य.)] **कायरता ।**

कदरात—क्रि. अ. [हिं. कदराना] **कायर बनते हो, कचियाते हो, खिन्न होते हो, मन छोटा करते हो ।** उ.—स्याम भुज गहि दूतिका कहि मृदुबानी । काहे को कदरात हौ मैं राधा आनी—१८६० ।

कदराना—क्रि. अ. [हिं. कादर] **(१) डरना । (२) कायरता दिखाना, कचियाना, पीछे हटना ।**

कदरो—संज्ञा स्त्री. [सं. कद + रव = शब्द] **मैना के बराबर एक पक्षी ।**

कदर्थ—संज्ञा पुं. [सं.] **बेकार चीज ।**

वि.—**बुरा, व्यर्थ, बेकार, कुत्सित ।**

कदर्थना—संज्ञा स्त्री. [सं. कदर्थन] (१) बुरी दशा, दुर्गति । (२) निंदा, बुराई ।

कदर्थित—वि. [सं.] **जिसकी दुर्दशा हुई हो ।**

कदर्य—वि. [सं.] **कंजूस, लोभी, कृपण ।**

कदलि, कदली—संज्ञा स्त्री. [सं.] **केला ।** उ०—कमल ऊपर सरस कदली कदलि पर मृगराज—सा० **१४ ।**

कदली-छिकुला—संज्ञा पुं. [सं. कदली + हिं. छिलका] **केले का छीलन, केले के छिलके ।** उ०—प्रेम-बिकल, अति आनँद उर-धरि, कदली-छिकुला खाये—१-१३ ।

कदा—क्रि. वि. [सं.] **कब, किस समय ।**

कदाच, कदाचि—क्रि. वि. [सं. कदाचन] **शायद, कदाचित, कभी ।**

कदाचार—संज्ञा पुं. [सं.] **बुरा आचरण, दुराचार ।**

कदाचित—क्रि. वि. [सं.] **कभी, शायद कभी ।**

कदापि—क्रि. वि. [सं.] **कभी भी, किसी समय ।**

कदी—क्रि. वि. [सं. कदा] **कभी ।**

कदे—क्रि. वि. [हिं. कदी] **कभी ।**

कद्रुज—संज्ञा पुं. [सं. कद्रू + ज] **कश्यप की एक स्त्री कद्रू के पुत्र, सर्प, नाग ।** उ०—इभ टूटत अरु असन पंक भये बिधिना आन बनाइ । कद्रुज पठि पताल दुरे रहे खगपति हरि-बाहन भये जाइ—२२२४ ।

कद्रू—संज्ञा स्त्री. [सं.] **कश्यप की एक स्त्री जिससे सर्प पैदा हुए थे ।**

कनंक—संज्ञा पुं. [सं. कनक] **सोना ।**

कन—संज्ञा पुं. [सं. कण] **(१) अन्न, अनाज के दाने ।** उ०—(क) जौ लौं मन-कामना न छूटै । तौ कहा जोग-जज्ञ-ब्रत कीन्हैं, बिनु कन तुस कौं कूटै—२-१६ । (ख) ऐसी को ठाली बैसी है तोसौं मूड़ लड़ावै । झूठी बात तुसी सी बिन कन फटकत हाथ न आवै—३२८७ । **(२) बालू या रेत के कण ।** उ०—कौने रंक संपदा बिलसी सोवत सपने पाई········ । अरु कन के माला कर अपने कौने गूँथ बनाई—३३४३ । **(३) किसी वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा, कण । (४) प्रसाद, जूठन । (५) भीख, भिक्षान्न । (६) चावल की कनी । (७) शक्ति, सत । (८) कान का संक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दों के आदि में जुड़ता है । (९) बूँद ।** उ०—गिरिजा-पतिपतिनी पति ता सुत गुन गुन गनन उतारै । तन-सुत-कन से धन-बिचार के तुरत भूमि पै डारै—सा०-५ ।

कनई—संज्ञा स्त्री. [सं. कांड या कंदल] **कल्ला, कोंपल ।**

कनउँगली—संज्ञा स्त्री. [सं. कनीयान, हिं. कानी + उँगली] सबसे छोटी उँगली।

कनउँड—वि. [हिं. कनौड़ा] दासी, सेविका।

कनउड़—वि. [कनौड़ा] (१) दीनहीन। (२) लज्जित। (३) कृतज्ञ उपकृत। (४) काना, अपंग।

कनक—संज्ञा पुं [सं.] (१) सोना, स्वर्ण। उ०—सखी री वह देखो रथ जात···। छत्र पत्र कनकदल मानो ऊपर पवन बिहात। (२) धतूरा। (३ टेसू,पलाश। (४) नागकेसर।

संज्ञा पुं. [सं. कणिक = गेहूँ का आटा] (१) गेहूँ का आटा। (२) गेहूँ।

कनककली—संज्ञा. पुं. [सं. कनक+हिं. कली] कान में पहनने की लौंग।

कनकना—वि. [हिं. कन+कना (प्रत्य०)] जो जरा सा जोर लगने से टूट जाय।

वि. [हिं. कनकनाना] (१) कनकनाने या चुनचुनानेवाला। (२) अरुचिकर। (३) जो जरासी बात में चिढ़ जाय।

कनकपुर—संज्ञा. पुं. [सं.] सोने का नगर, लंका नगर। उ.—भलैं राम कों सीय मलाई, जीति कनकपुर गाउँ—६-७५।

कनकपुरि, कनकपुरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कनकपुरी] लंका। उ.—(क) सौ जोजन बिस्तार कनकपुरी, चकरी जोजन बीस। मनौं बिश्वकर्मा कर अपुनैं, रचि राखी गिरि-सीस—६-७४। (ख) सुनौ किन कनकपुरी के राइ। हौं धि-बल-छल करि पचि हारी, लख्यौ न सीस उचाइ—६-७८। (ग) लुटत सक्र के सीस नरन तर जुग गत समए। मानहु कनकपुरी-पति के सिर रघुपति फेरि दए—६८४।

कनकपाल—संज्ञा. पुं. [सं.] धतूरे का फल।

कनकबेलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] स्वर्णवल्लरी, स्वर्णलता। उ.—रसना जुगल रसनिधि बोलि। कनकबेलि तमाल अरुझी सुभुज बंध अखोलि—सा. उ. ५।

कनका—संज्ञा पुं. [सं. कण] कनकी, कण।

कनकाचल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोने का पर्वत। (२) सुमेरु पर्वत।

कनकानी—संज्ञा पुं. [देश.] घोड़ों की एक जाति।

कनकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनका] कण।

कनखा—संज्ञा पुं. [सं. कांड] (१) कोंपल। (२) शाखा, डाल।

कनखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोन+आँख] दूसरों की दृष्टि बचाकर देखना। (२) आँख का संकेत।

कनखैया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनखी] तिरछी चितवन।

कनगुरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कानी + अँगुरी या अँगुरिया] सबसे छोटी उँगली।

कनछेदन, कनछेदनि—संज्ञा पुं. [हिं. कान + छेदना] एक संस्कार जो प्रायः मुंडन के साथ होता है और जिसमें बच्चों के कान छेदे जाते हैं। उ.—कान्ह कुँवर कौ कनछेदन है हाथ सोहारी भेली गुर की—१०-१८०।

कनधार—संज्ञा पुं [सं. कर्णधार] मल्लाह, केवट। उ.—हाटकपुरी कठिन पथ, बानर, आए कौन अधार? राम प्रताप, सत्य सीता कौ, यहै नाव-कनधार। तिहिं अधार छिन मैं अवलंघ्यौ, आवत भई न बार—६-८६।

कनफुँका, कनफुँकवा—वि. [हि. कान+फूँकना] (१) कान फूँकने वाला, दीक्षा देनेवाला। (२) जिसने दीक्षा ली हो।

संज्ञा पुं.—(१) गुरु जिसने दीक्षा दी हो। (२) चेला जिसने दीक्षा ली हो।

कनफूल—संज्ञा. पुं. [हिं. कान + फूल] फूल की तरह का एक गहना जो कान में पहना जाता है।

कनबतिया—संज्ञा. स्त्री. [हिं. कान + बात] धीरे से या कान में कही हुई बात।

कनमनाना—क्रि अ. [अनु०] (१) सोते-सोते हिलना-डुलना। (१) थोड़ी-बहुत चेष्टा करना, हाथ-पैर हिलाना।

कनय—संज्ञा पुं. [सं. कनक] सोना, सुवर्ण।

कनरस—संज्ञा पुं. [हिं. कान+रस] (१) संगीत का आनन्द। (२) संगीत का व्यसन या रुचि।

कनसार—संज्ञा पुं. [हिं. काँसा+आर (प्रत्य.)] ताम्रपत्र पर लिखनेवाला।

कनसुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कान+सुनना] आहट, टोह।

कनहार, कनहारू—संज्ञा. पुं. [सं. कर्णधार, प्रा. कण्ण-हार] **मल्लाह, केवट।**

कनाउड़ा, कनाउड़ो—वि. [हिं. कनौड़ा] (१) **दीन-हीन।** (२) **लज्जित।** (३) **कृतज्ञ, उपकृत।**

कनात—संज्ञा स्त्री. [तु. कनात] **कपड़े का ऊँचा परदा जिससे दीवार की तरह कोई स्थान घेरते हैं।**

कनावड़ा—वि. [हिं. कनौड़ा] (१) **दीनहीन।** (२) **लज्जित।** (३) **कृतज्ञ, उपकृत।**

कनागत—संज्ञा पुं. [सं. कन्यागत] **पितृपक्ष।**

कनिआरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्णिकार] **कनकचंपा का पेड़।** उ.—अति ब्याकुल भईं गोपिका ढूँढ़ति गिर-धारी। बूझति हैं बन बेलि सौं देखे बनवारी। जाही-जूही सेवती करना कनिआरी। बेलि चमेली मालती बूझति द्रुम डारी—१८२२।

कनिक—संज्ञा स्त्री. [सं. कणिक]। (१) **गेहूँ।** (२) **गेहूँ का आटा।** उ.—षटरस ब्यंजन को गनै बहु-भाँति रसोई। सरस कनिक बेसन मिलै रुचि रोटी पोई—१५५५।

कनिका—संज्ञा पुं. [सं. कणिका] **कण, बूँद।** उ.—मुख आँसू अरु माखन कनिका (कनुका) निरखि नैन छबि देत। मानौ स्रवत सुधानिधि मोती उडुगन अवलि समेत—३४६।

कनिगर—संज्ञा पुं. [हिं. कानि+फ़ा० गर] **मान-मर्यादा और कीर्ति का ध्यान रखनेवाला।**

कनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँध] **गोद, कोरा, उछंग।** उ.—(क) नैंकु गोपालहिं मोंकों दै री। देखौं बदन कमल नीकैं करि, ता पाछैं तू कनियाँ लै री—१०-५५। हरि किलकत जसुदा की कनियाँ—१०-८१। (ग) इहि आँगन गोपाल लाल को कबहुँक कनियाँ लैहौं—२५५०।

कनियाना—क्रि. अ. [हिं. कतराना] **कतराकर या बच कर निकल जाना।**

क्रि. अ. [हिं. कनिया] **गोद में उठाना।**

कनियार—संज्ञा पुं. [सं. कर्णिकार] **कनक चंपा।**

कनिष्ठ—वि. [सं.] (१) **छोटा।** (२) **जो पीछे जन्मा हो।** (३) **हीन।**

कनिष्ठा—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) **छोटी उँगली।** (२) **नव विवाहिता छोटी पत्नी जिसपर पति का प्रेम कम हो।**

कनिहार—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] **मल्लाह, केवट।**

कनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कण] (१) **कण, छोटा टुकड़ा।** (२) **हीरे का कण।** (३) **चावल का कण।** (४) **बूँद।** उ.—(क) कहा काँच संग्रह के कीने हरि जो अमोल मनी। बिष सुमेरु कछु काज न आवै, अमृत एक कनी—८६४। (ख) ससि सम सुन्दर सरस अँदरसे। ऊपर कनी अमी जनु बरसे—२३२१।

कनीनिका—संज्ञा स्त्री [सं.] **आँख की पुतली का तारा।** उ.—सजल चपल कनीनिका पल अरुन ऐसैं डोर (ल)। रस भरे अंबुजनि भीतर, भ्रमत मानों भौंर—३६४।

कनीर—संज्ञा पुं. [हिं. कनेर] **कनेर का वृक्ष या फूल।**

कनु—संज्ञा पुं. [सं. कण] (१) **कण।** (२) **बूँद।**

कनुका, कनूका—संज्ञा पुं. [सं. कणिका] **(किसी वस्तु का) छोटा टुकड़ा या थोड़ा अंश, कण।** उ.—मुख आँसू अरु माखन कनुका, निरखि नैन छबि देत। मानौ स्रवत सुधानिधि मोती, उडुगन, अवलि समेत—३४६।

कने—क्रि. वि [सं. कोण] (१) **पास, समीप** (२) **ओर, तरफ।**

कनेखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनखी] **तिरछी चितवन।**

कनेर, कनैर—संज्ञा पुं. [सं. करनेर] **एक पेड़ जिसमें लाल या सफेद फूल लगते हैं। यह पेड़ बड़ा विषैला होता है।**

कनेरिया—वि. [हिं. कनेर] **कनेर के फूल के रंग का, श्यामता लिये हुए लाल रँग का।**

कनेखा—वि. [हिं. कनखी] **कटाक्षयुक्त।**

कनौड़ा—वि. [हिं काना + औड़ा (प्रत्य.)] (१) **काना।** **जिसका कोई अंग टूटा या हीन हो।** (३) **जो बदनाम हो।** (४) **दीन-हीन।** (५) **लज्जित।** (६) **कृतज्ञ, उपकृत, एहसानमंद।**

कनौड़े—वि. [हिं. कनौड़ा = काना + औड़ा (प्रत्य.)] **कृतज्ञ, उपकृत, एहसानमंद, दबैल।** उ.—अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरधर नार नवावति। आपुन पौढ़ि अधर सज्जा पर, कर-पल्लव पलुटावति—६५५।

कनौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. कान + औती (प्रत्य.)] (१) **पशुओं के कानों की नोक। (२) कानों को उठाने का ढंग। (३) कान में पहनने की बाली।**

कन्ना—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण, प्रा. कंड] (१) **किनारा, कोर। (२) संबंध।**

संज्ञा पुं. [सं. कण] **चावल का कन।**

कन्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कन्ना] (१) **किनारा, कोर। (२) धोती या चादर का किनारा।**

संज्ञा पुं. [सं. स्कंध] **कोंपल।**

—संज्ञा पुं. [सं. कान्यकुब्ज, प्रा. कराणउज्ज] **फरुखाबाद जिले का एक नगर जो किसी समय बड़े विस्तृत साम्राज्य की राजधानी था।**

कन्यका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **पुत्री। (२) अविवाहित लड़की।**

कन्यनि—संज्ञा स्त्री. सवि. बहु. [सं. कन्या] **पुत्रियों ने।** उ०—सब कन्यनि सौभरि कौं बरयौ—९-८।

कन्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **अविवाहित लड़की। (२) पुत्री, बेटी। (३) एक राशि।** उ०—(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर को पुत्र-जन्म सुनि आयौ। लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुम्हहिं सुनायौ··· । पचऐं बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं—१०-८६।

कन्हाई—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, प्रा. कराह] **श्रीकृष्ण।**

कन्हावर—संज्ञा पुं. [हिं. कँधावर] **कंधे पर डाला जाने वाला दुपट्टा।**

कन्हैया—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, प्रा. कराह] (१) **श्रीकृष्ण। (२) प्रिय व्यक्ति। (३) सुंदर बालक। (४) बाँका युवक।**

कपट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **छल, दंभ, धोखा।** उ०–बकी कपट करि मारन आई, सो हरिजू बैकुंठ पठाई—१-४। (२) **दुराव, छिपाव।** उ०—कपट हीन न मीन एरी मरत बिछुरत प्यार—सा० २४।

कपटना—क्रि. स. [सं. कपट] (१) **काटना, छाँटना। (२) चुपके से किसी चीज का कुछ अंश निकाल लेना।**

कपटिन—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. कपट] **छली-धूर्तों की।** उ०—भँवर कुरंग काग अरु कोकिल कपटिन की चटसार—२६८७।

कपटी—वि. [हिं. कपट] **छली, धूर्त्त।** उ०—साधु-निंदक, स्वाद-लंपट, कपटी, गुरु-द्रोही। जेते अपराध जगत, लागत सब मोही—१-१२४।

कपड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कर्पट, प्रा. कप्पट, कप्पड़] (१) **वस्त्र, पट। (२) पहनावा।**

कपनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंपन] **कँपकँपी, काँपना, थरथराहट।** उ०—चारि चारि दिन सबै सुहागिनि री ह्वै चुकी मैं स्वरूप अपनी। कोउ अपने जिय मान करै माई हो मोहि तौ छुटति अति कपनी—१६६२।

कपरा—संज्ञा पुं. [हिं. कपड़ा] (१) **वस्त्र, पट। (२) पहनावा।**

कपर्द, कपर्दक, कपर्दिका—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **शिव की जटा। (२) कौड़ी।**

कपर्दिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **दुर्गा, शिवा, भवानी।**

कपर्दी—संज्ञा पुं. [सं. कपर्दिन्] **शिव।**

कपाट—संज्ञा पुं. [सं.] **किवाड़, पट।** उ०—(क) प्रगट कपाट बिकट दीन्हे हे, बहु जोधा रखवारे। तैंतिस कोटि देव बस कीन्हे, ते तुम सौं क्यौं हारे—९-१०५। (ख) काजर कुलफ मेलि मैं राखे पलक कपाट दये री—सा० उ० ७। (ग) नहसुत कील कपाट सुलच्छन दै दृग द्वार अकोट—सा० उ० १६।

कपाटनि—संज्ञा पुं. [सं. कपाट + नि (प्रत्य०)] **दरवाजे।** उ०—तुम बिनु भूलोइ भूलौ डोलत। लालच लागि कोटि देवनि के, फिरत कपाटनि खोलत—१-१७७।

कपार, कपाल—संज्ञा पुं. [सं. कपाल] (१) **खोपड़ी। (२) मस्तक। (३) अदृष्ट, भाग्य। (४) खप्पर।**

कपालक—संज्ञा पुं. [सं. कापालिक] **साधु जो हाथ में नर-कपाल लिये रहते हैं और शैव मत मानते हैं।**

कपालमाली—संज्ञा पुं. [सं.] **शिव, महादेव जो मनुष्य की खोपड़ियों की माला पहनते हैं।**

कपालिक—संज्ञा पुं. [सं. कापालिक] साधु जो मनुष्य की खोपड़ी लिये रहते हैं और भैरव या शक्ति को बलि चढ़ाते हैं। उ.—जा परसैं जीतैं जग-सैनी, जमन, कपालिक, जैनी—६-११।

कपालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] खोपड़ा।

संज्ञा स्त्री. [सं. कापालिक = शिव] काली, रणचंडी।

कपालिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा, काली।

कपाली—संज्ञा पुं. [सं. कपालिन्] (१) शिव। (२) भैरव। (३) भिक्षुक।

कपास—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्पासि] (१) रुई का पौधा। (२) रुई।

कपासी—वि. [हिं. कपास] कपास के फूल की तरह बहुत हल्के रंग का।

कपिंजल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चातक, पपीहा। (२) तीतर। (३) एक मुनि।

कपि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बंदर। (२) हनुमान। उ०—काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहिं भय दुरजन डरिहै—१-२६। (३) हाथी। (४) सूर्य।

कपिकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] अर्जुन जिनके रथ की ध्वजा पर हनुमान जी थे।

कपिध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] अर्जुन जिसकी ध्वजा में कपि का चिह्न था। उ.—स्यंदन खंडि महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०।

कपिपति—संज्ञा पुं. [सं.] दरों का राजा सुग्रीव। उ.—इहिं गिरि पर कपिपति सुनियत है, बालि-त्रास कैसैं दिन जात—६-६६।

कपिराइ—संज्ञा पुं [हिं. कपिराय] श्रेष्ठ बंदर हनुमान। उ.—कैसैं पुरी जरी कपिराइ। बड़े दैत्य कैसैं कै मारे, अंतर आप बचाइ—६-१०५।

कपिल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक ऋषि जिन्होंने राजा सगर के साठ हजार पुत्रों को भस्म कर दिया था। (२) अग्नि। (३) महादेव। (४) सूर्य। (५) विष्णु।

वि.—(१) भूरा। (२) सफेद।

कपिला—वि. स्त्री. [सं.] (१) भूरे या सफेद रंग की। (२) सीधी-सादी।

संज्ञा स्त्री.—(१) सफेद रंग की गाय। (२) दक्षप्रजापति की एक कन्या।

कपिश—वि. [सं.] भूरे रंग का, मटमैला।

कपिस—वि. [सं. कपिश] भूरा या मटमैला। उ.—पुरइन कपिस निचोल बिबिध रँग बिहँसत सचु उपजावै। सूरस्याम आनंन-कंद की सोभा कहत न आवै।

संज्ञा पुं.—रेशमी वस्त्र।

कपी—संज्ञा पुं. [सं. कपि] बंदर। उ.—भक्ति के बस स्याम सुन्दर देह धरे आवैं। नंदघरनि बाँधि बाँधि कपी ज्यौं नचावैं—३६४।

कपीश—संज्ञा पुं. [सं.] बानरों का राजा।

कपूत—संज्ञा पुं. [सं. कुपुत्र] बुरे चाल-चलन का लड़का।

कपूती—संज्ञा स्त्री. [हिं. कपूत] पुत्र का बुरा आचरण।

कपूर—संज्ञा पुं. [सं. कर्पूर, पा. कप्पूर, जावा कापूर] सफेद रंग का जमा हुआ एक सुगन्धित द्रव जो जलाने से जलता है और खुला रहने पर हवा में उड जाता है।

कपोत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कबूतर। (२) परेवा। (३) चिड़िया।

कपोतव्रत—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कबूतर की रीति-नीति। (२) कबूतर की तरह अत्याचार सहन करना।

कपोल—संज्ञा पुं. [सं.] गाल।

संज्ञा स्त्री. [सं.] नृत्य या अभिनय में कपोल की क्रिया अथवा चेष्टा।

कपोलकल्पना—संज्ञा स्त्री. [सं.] मनगढ़ंत या बनावटी बात।

कपोलै, कपोलो—संज्ञा पुं. [सं. कपोल] गाल पर। (क) मकराकृत कुंडल छबि राजति लोल कपोलै—३१२६। (ख) चंदन मिटाये तनु अति ही अलसात नागरी की पीक लगी तो कपोलो—१६५६।

कप्पर—संज्ञा पुं. [सं. कर्पट, हिं. कपड़ा] वस्त्र, कपड़ा, पट।

कफ—संज्ञा पुं. [सं.] खाँसने-थूकने से निकलने वाली लसदार चीज, बलगम। उ.—परमारथ उपचार करत हौ बिरह-बिथा है जाहि। जाकौ राजरोग कफ बाढ़त दह्यौ खवावत ताहि—३१४५।

संज्ञा पुं. [अ. कफ़] लोहे का टुकड़ा जो चकमक से आग झाड़ने के काम आता है।

कफ़न—संज्ञा पुं. [अ. क़फ़न] वस्त्र जो शव पर लपेटा जाता है।

कफ़नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कफ़न] साधुओं के पहनने का बिना सिला कपड़ा, जिसमें सिर डालने के लिए एक बड़ा छेद होता है।

कबंध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बिना धड़ का शरीर। उ.—(क) पारथ बिमल बभ्रुबाहन कौं सीस-खिलौना दीनौ। इतनी सुनत कुंति उठि धाई, बरषत लोचन-नीर। पुत्र-कबंध अंक भरि लीन्हौ, धरति न इक छिन धीर—१-२९। (ख) परि कबंध भहराइ रथनि तैं, उठत मनौ भर जागि—९-१५८। (२) एक राक्षस जिसके पेट में मुँह था। यह श्रीरामचन्द्र जी द्वारा दंडकारण्य में पराजित हुआ था। हाथ,पैर काट-कर इन्होंने उसे जीता ही भूमि में गाड़ दिया था। उ.—मारग में कबंधरिपु मारयौ सुरपति काज सँवारयौ—सारा.-२७१। (३) बादल। (४) पेट। (५) राहु।

कब—क्रि. वि. [सं. कदा, हिं. कद] (१) किस समय। (२) नहीं, कदापि नहीं।

कबरा—वि. [सं. कर्बर, पा. कब्बर] सफेद रंग पर काले-पीले-लाल या काले-पीले-लाल रंगों पर सफेद दाग वाला, चितकबरा।

कबरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कवरी] स्त्रियों की चोटी, वेणी। उ.—अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित गुँथे सुमन रसालहि। कबरी अति कमनीय सुभग सिर राजति गोरी बालहि—पृ. ३४५ (४१)।

कबहुँक—क्रि. वि. [हिं. कब] कब, कभी तो। उ.—(क) कबहुँक तृन बूड़ै पानी मैं, कबहुँक सिला तरै—१-१०५। (ख) इहिं आँगन गोपाल लाल कौ कबहुँक कनियाँ लैहौं—२५५०। (ग) कबहुँक कर करताल बजावत नाना भाँति नचावत—सारा. ४५८।

कबाय—संज्ञा पुं. [अ. कबा] एक ढीला-ढाला कपड़ा जो प्रायः संत पहनते हैं।

कबार—संज्ञा पुं [हिं. कारोबार या कबाड़] (१) व्यापार। (२) बेकार चीजें।

कबाहट, कबाहत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) बुराई। (२) अड़चन।

कबि—संज्ञा पुं [सं. कवि] काव्य-रचयिता, कवि। उ.—तौ जानौं जौ मोहिं तारिहौ, सूर कूर कबि-ठोट—१-१३२।

कबीर—संज्ञा पुं [अ. कबीर=बड़ा, श्रेष्ठ] (१) एक प्रसिद्ध संत कवि। (२) एक प्रकार के अश्लील गीत जो होली में गाये जाते हैं।

कबीला—संज्ञा पुं. [अ. कबीलः] (१) समूह, झुंड। (२) एक परिवार का सदस्य।

संज्ञा स्त्री.—पत्नी, स्त्री।

कबुलाई—क्रि. स. [हिं. कबुलाना] (कोई बात)स्वीकार करायी।

कबुलाना—क्रि. स. [हिं. कबूलना का प्रे.] (कोई बात) स्वीकार कराना।

कबूतर—संज्ञा पुं. [फ़ा. (सं. कपोत)] एक पक्षी, कपोत।

कबै—क्रि. वि. [हिं. कब] किस समय, कब। उ०—कमल कोस मैं आनि दुरायौ बहुरि दरस धौं होइ कबै—१३००।

कभी, कभू—क्रि. वि. [हिं. कब+ही] किसी समय, किसी अवसर पर।

कमंडल—संज्ञा पुं. [सं. कमंडलु] साधु-संतों का जल-पात्र जो दरियाई नारियल या तुमड़ी आदि का होता है।

कमंडली—संज्ञा पुं. [सं. कमंडलु+ई (प्रत्य०)] ब्रह्मा। उ०—उतै देखि धावै, इत आवै, अचरज पावै, सूर सुरलोक ब्रजलोक एक ह्वै रह्यौ। बिबस ह्वै हार मानी, आपु आयौ नकबानी, देखि गोप मंडली कमंडली चितै रह्यौ—४८४। (२) साधु।

वि. [सं. कमंडलु+ई (प्रत्य०)] पाखंडी, आडंबर रखनेवाला।

कमंडलु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधु-संन्यासियों का जल-पात्र जो प्रायः धातु, मिट्टी, तुमड़ा, दरियाई नारियल आदि का होता है। (२) एक पेड़।

कमंद—संज्ञा पुं. [सं. कबंध] बिना सिर का धड़।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] रेशम, सूत या चमड़े का फंदा।

कमंध—संज्ञा पुं. [सं. कबंध] **(१) बिना धड़ का शरीर।** उ०—(क) राधे सो रस बरनि न जाई। जा रस को सुर भान सीस दियो सो तैं पियौ अकुलाई। पचि हारे सब बाल कमलमुख चंद्र बदन ठहराई। अजहुँ कमंध फिरत तेहि लालच सुंदरि सैन बुझाई—१२३५। (ख) मन हठ परयौ कमंध जोधा लौं हारेहु नाहीं जीति—३२३७। **(२) कलह, झगड़ा।**

कम—वि. [फ़ा.] **(१) थोड़ा, तनिक। (२) बुरा।**

क्रि. वि.-**प्राय: नहीं, बहुत थोड़ा, कदाचित ही।**

कमठ—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) कछुआ, कच्छप।** उ०—(क) बासुकी नेति अरु मंदराचल रई, कमठ में अपनी पीठ धारौं—२-८। (ख) मथि समुद्र सुर असुरन के हित मंदर जलधि धसाऊ। कमठ रूप धरि धरयौ पीठि पर तहाँ न देखे हाऊ—१०-२२१। **(२) साधुओं का तुंबा। (३) पुराने ढंग का एक बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा जाता था।**

कमठा—संज्ञा पुं. [सं. कमठ=बाँस] **धनुष।**

कमठी—संज्ञा पुं. [सं.] **कछुई।**

कमत—क्रि. अ. [हिं. कमना] **कम होता है।**

कमना—क्रि. अ. [हिं. कम] **कम होना, घटना।**

कमनी—वि. [सं. कमनीय] **सुंदर।**

कमनीय—वि. [सं.] **(१) सुंदर, मनोहर। (२) कामना करने या चाहने योग्य।**

कमनीयता—संज्ञा स्त्री. [सं. कमनीय] **सुंदरता।**

कमनैत—संज्ञा पुं. [फ़ा. कमान + हिं. ऐत (प्रत्य०)] **धनुष चलानेवाला, तीरंदाज।**

कमनैती—संज्ञा पुं. [हिं. कमनैत] **तीर चलाने की कला या विद्या, धनुर्विद्या।**

कमर—संज्ञा स्त्री. [फा.] **कटि।**

कमरख—संज्ञा पुं. [सं. कर्मरंग, पा० कम्मरंग] **(१) एक पेड़ जिसके फल खटमिट्ठे होते हैं, कमरंग। (२) कमरंग का फल।**

कमरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमली] **कमली, कंबल।** उ.—(क) काँध कमरिया, हाथ लकुटिया, बिहरत बछरनि साथ—४८७। (ख) बन बन गाय चरावत डोलत काँध कमरिया राजै—सारा. ७४१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कमर] **कमर।**

कमरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमली] **कमली, कंबल।**

कमल—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) पानी में होने वाले एक पौधे का फूल जो अधिकतर लाल, सफेद या नीले रंग का होता है। (२) इस पेड़ का फूल। (३) जल।**

कमलनाभ—संज्ञा पुं. [सं.] **विष्णु।**

कमलनाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] **कमल की डंडी, मृणाल।**

कमलनैन—संज्ञा पुं. [सं. कमलनयन] **(१) कमल के समान नेत्र हैं जिसके वह श्रीकृष्ण।** उ.—कमलनैन काँधे पर न्यारो पीत बसन फहरात—२५३६। **(२) विष्णु। (३) राम।**

वि.—**सुंदर नेत्रवाला।**

कमलबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] **सूर्य।**

कमलभव, कमलभू—संज्ञा पुं. [सं.] **ब्रह्मा।**

कमला—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) लक्ष्मी। (२) धन, संपत्ति। (३) राधा की एक सखी का नाम।** उ.—कहि राधा किन हार चुरायौ।...सुखमा सीला अवधा नंदा बृंदा यमुना सारि। कमला तारा बिमला चंदा चंदावलि सुकुमारि—१५८०।

संज्ञा स्त्री. [सं. कमल] **कमलिनी।** उ.—चलि सखि तिहिं सरोवर जाहिं। जिहिं सरोवर कमल-कमला, रवि बिना बिकसाहिं—१-३३८।

कमलाकंत, कमलाकांत—संज्ञा पुं. [सं. कमला=लक्ष्मी+कांत=पति] **विष्णु, श्रीकृष्ण।** उ.—सूर कछू यह ह्याँ री अद्भुत लीला कमलाकंत—२२२२।

कमलाकर—संज्ञा पुं [सं.] **सरोवर।**

कमलाग्रजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कमला=लक्ष्मी+अग्रजा=बड़ी बहन] **लक्ष्मी की बड़ी बहन, दरिद्रा।**

कमलापति—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) लक्ष्मीपति विष्णु के अवतार श्री रामचंद्र।** उ.—तीनि जाम अरु बासर बीते, सिंधु गुमान भरयौ। कीन्हौ कोप कुँवर कमलापति, तब कर धनुष धरयौ—९-१२२। **(२) श्रीकृष्ण।** उ.—हमसों कठिन भए कमलापति काहि सुनावौं रोई—२८८१। **(३) विष्णु।**

कमलावली—संज्ञा स्त्री. [सं. कमल+अवली] **कमलों की पाँति, कमल-समूह।** उ.—बिकसत कमलावली, चले प्रपुंज-चंचरीक, गुंजत कलकोमल धुनि त्यागि, कंज न्यारे—१०-२०५।

कमलासन—संज्ञा पुं० [सं०] **ब्रह्मा।**

कमलिनी—संज्ञा स्त्री [सं०] **(१) कमल। (२) वह तालाब जिसमें कमल हों।**

कमली—संज्ञा स्त्री. [हि. कंबल] **छोटा कंबल।**

कमाइच—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमानी] **सारंगी बनाने की कमानी।**

कमाई—क्रि. स. स्त्री. [हिं. कमाना] **संचय की, एकत्र की।** उ.—लंका फिरि गईं राम दोहाई। कहति मंदोदरि सुनि पिय रावन, तैं कहा कुमति कमाई—९-१४०।

संज्ञा स्त्री.—**(१) कमाया हुआ धन।** उ.—भानु भानुसुत सी सुभान मम सबहित सरस कमाई—सा.-१६। **(२) कमाने का धंधा, व्यवसाय।**

कमाऊ—वि. [हिं. कमाना] **धन कमानेवाला।**

कमान—संज्ञा स्त्री. [फा.] **(१) धनुष।** उ.—(क) कुबुधि-कमान चढ़ाइ कोप करि, बुधि-तरकस रितयौ—१-६४। (ख) पिय बिन बहत बैरिन बाय। मदन बान कमान ल्यायौ करषि कोप चढ़ाय—सा. ३२। **इंद्रधनुष। (३) तोप, बंदूक।**

कमाना—क्रि. स. [हिं. काम] **(१) धन पैदा करना। (२) सेवा के काम करना। (३) कर्म करना।**

क्रि. अ.—**तुच्छ काम करना।**

क्रि. स.—**कम करना।**

कमानियाँ—संज्ञा पुं. [फा. कमान] **धनुष चलानेवाला।**

कमानिया—वि. [हिं. कमानी] **मेहराबदार।**

कमानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमान] **धातु की लचीली तीली।**

कमायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. कमाना] **कर्म संचय किया, कर्म किया।** उ.—(क) जोग-जज्ञ जप तप नहिं कीन्हौं, बेद बिमल नहिं भाख्यौ। अति रस-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं, अनत नहीं चित राख्यौ। जिहिं जिहिं जोनि फिर्‌यौ संकट बस, तिहिं तिहिं यहै कमायौ। (ख) कहा होत अब के पछिताएँ, पहिलैं पाप कमायौ—१-३३५।

कमाल—संज्ञा पुं. [अ.] **(१) कुशलता, निपुणता। (२) अनोखा काम। (३) कारीगरी। (४) कबीर के पुत्र का नाम।**

वि.—**(१) पूरा। (२) सबसे श्रेष्ठ। (३) अत्यंत।**

कमासुत—वि. [हिं. कमाना + सुत] **कमा कर रुपया लाने वाला।**

कमिहै—क्रि. अ. [हिं. कमना] **कम होगा, घट जायगा।**

कमी—संज्ञा स्त्री. [फा. कम] **(१) न्यूनता, अभाव, अल्पता।** उ.—(क) कहा कमी जाके राम धनी—१-३९। (ख) तुमही कहौ कमी काहे की नवनिधि मेरैं धाम—३७६। **(२) हानि, घाटा।**

कमुकंदर—संज्ञा पुं. [सं. कार्मुक + दर] **शिवजी का धनुष तोड़नेवाले राम।**

कमोदन—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुमुदिनी] **कोईं, कुमुदिनी।**

कमोदिक—संज्ञा पुं. [सं. कामोद = एक राग + क] **(१) वह संगीतज्ञ जो कामोद राग गाता हो। (२) गवैया, संगीतज्ञ।** उ.—बेगि चलौ बलि कुँअरि सयानी। समय बसंत बिपिन रथ हय गय मदन सुभट नृप-फौज पलानी। ... ..। बोलत हँसत चपल बंदीजन मनहुँ प्रसंसित पिक बर बानी। धीर समीर रटत बर अलिगन मनहुँ कमोदिक मुरलि सुठानी।

कमोदिन, कमोदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमुदिनी] **कोईं, कुमुदिनी।**

कमोरा—संज्ञा पुं. [सं. कुंभ + ओरा (प्रत्य)] **(१) मिट्टी का चौड़े मुँह का पात्र जिसमें दूध, दही रखा जाता है। (२) घड़ा।**

कमोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कमोरा] **मिट्टी का चौड़े मुँह का बर्तन जिसमें दूध-दही रखा जाता है, मटका।** उ.—(क) माखन भरी कमोरी देखत, लै लै लागे खान। ....। जौ चाहौ सब देउँ कमोरी, अति मीठौ कत डारत—१०-२६५। (ख) मीठौ अधिक, परम रुचि लागै, तौ भरि देउँ कमोरी—१०-२६७। (ग) हेरि मथानी धरी माट तैं, माखन हो उतरात। आपुन गई कमोरी माँगन हरि पाई ह्याँ घात। .... ..। आइ गई कर लिए कमोरी, घर तैं निकसे ग्वाल—१०-२७०। (घ) कहि धौं मधुर बारि मथि माखन काढ़ि जो भरो कमोरी—३०२८।

कया—संज्ञा स्त्री. [हिं. काया] **शरीर, काया।**

कये—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] **किये, करने से।**

उ.—नीर छीर ज्यों दोउ मिलि गये। न्यारे होत न न्यारे कये—११-६।

करक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मस्तक। (२) कमंडलु। (३) नारियल की खोपड़ी। (४) ठठरी, ढाँचा, कंकाल।

करंज, करंजा—संज्ञा. पुं. [सं.] (१) झाड़ी, कंजा नाम की कटीली झाड़ी। उ.—भटकत फिरत पात द्रुम बेलनि कुसुम करंज भये। सूर विमुख पद अंबु न छाँड़े बिपैनि बिष दर छये—२६६२। (२) एक पेड़।

वि.—(१) भूरी आँख वाला। (२) खाकी।

करंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शहद का छत्ता। (२) तलवार। (३) करंडव हंस। (४) डलिया, पिटारी। (५) हथियार तेज करने का पत्थर।

कर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथ।

मुहा.—कर जोरे—(१) प्रार्थना करती हुई। (२) अनुनय-विनय करती हुई। उ.—मैं अपराध किये सिसु मारे कर जोरे बिललाई—सारा. ३८६। (३) प्रणाम करती हुई। (४) सविनय, विनम्र होकर, सेवा के लिए तत्पर। उ.—अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे द्वारैं रहत खरी—१०-७६। कर देति—(१) हाथ पकड़ती है, सहारा देती है। उ.—सूच्छम चरन चलावत बल करि। अटपटात कर देति सुन्दरी उठत तबै सुजतन तन-मन धरि—१०-१२०। (२) रोकती है, मना करती है। कर पसारौं—(किसी से कुछ) माँगूँ, याचना करूँ, कुछ देने के लिए विनती करूँ। उ.—अब तुम मोकौं करौ अजाँची जो कहुँ कर न पसारौं—१०-३७। कर मारै—हाथ मलता है, झुँझलाता है, निराश या दुखी होता है। उ.—केस पकरि ल्यायौ दुस्सासन, राखी लाज मुरारे। ......। नगन न होति चकित भयौ राजा, सीस धुनै, कर मारै—१-२५७। कर मीड़त—हाथ मलता है, पछताता है, निराश या दुखी होता है। उ.—(क) हरि दरसन कौं तड़पत अँखियाँ। झाँकति झपति झरोखा बैठी कर मीड़त ज्यौं मखियाँ—२७६६। (ख) सूरदास प्रभु तुमहिं मिलन कौं कर मीड़त पछितात—३३५०। कर मीड़ै—दुखी होता है, पछताता है। उ.—सुदामा मन्दिर देखि डरयौ। सीस धुनै, दीऊ कर मीड़ै अंतर सौंच परयौ—१०उ.—१६८। कर मीजै—हाथ मलकर, दुखी या निराश होकर। उ.—सूरदास बिरहिनी बिकल मति कर मीजै पछिताइ—२७१८।

(२) हाथी की सूँड। उ.—देखि सखी हरि-अंग अनूप। ....। कबहुँ लकुट तैं जानु फेरि लै, अपने सहज चलावत। सूरदास मानहु करभी कर बारंबार डुलावत—६३२। (३) सूर्य की किरण। (४) प्रजा की आय या उपज से लिया गया राजा का भाग। (५) उत्पन्न करनेवाला। (६) छल, पाखंड।

प्रत्य. [सं. कृतः] का। उ.—जिनके क्रोध पुहुमि नभ पलटै सूखै सकल सिंधु कर पानी—६-११६।

करइयै—क्रि. स. [हिं. 'करना' का प्रे. 'कराना'] कराइयै, करने में लगाइयै। उ.—दुरजोधन कैं कौन काज जहँ आदर-भाव न पइयै। गुरुमुख नहीं, बड़े अभिमानी, कापै सबे करइयै—१-२३६।

करई—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] करता है। उ.—(क) नसै धर्म मन बचन काम करि, सिंधु अचंभौ करई—६-७८। (ख) इतनी कहत गगनबानी भई, हनू सोच कत करई—६—६६। (ग) बिधु बैरी सिर पर बसे निसि नींद न परई। हरि सुर भानु सुभट बिना यहि को बस करई—२८६१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. करवा] एक पात्र, करवा।

संज्ञा स्त्री. [सं. करक] एक छोटी चिड़िया।

करक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमंडलु, करवा। (२) अनार, दाड़िम। उ.—सहज रूप की रासि नागरी भूपन अधिक बिराजै...नासा नथ मुक्ता बिंबाधर प्रतिबिंबित असमूच। बीध्यौ कनक पास सुक सुन्दर करक बीच गहि चूँच। (३) पलाश।

संज्ञा पुं. [हिं. कड़क] (१) कसक, चिनक। (२) शरीर पर रगड़ से पड़ने वाला चिन्ह।

करकट—संज्ञा पुं. [हिं. खर + सं. कट] कूड़ा।

करकना—क्रि. अ. [हिं. कड़क (करक)] (१) किसी वस्तु का चिटकना। (२) दर्द करना, कसकना, खटकना।

करकरा—संज्ञा पुं. [सं. कर्करेटु] एक तरह का सारस, करकटिया।

वि. [सं. कर्कर] **खुरखुरा, जो चिकना न हो।**

करकस—वि. [सं. कर्कश] **कड़ा, कठोर, सख्त।**

करखना—क्रि. अ. [सं. कर्षण] **(१) खीचना। (२) जोश, उमंग या आवेश में आना।**

करखा—संज्ञा पुं. [हिं. कड़खा] **युद्ध के अवसर पर गाये जाने वाले वीरोत्तेजक गीत।**

संज्ञा पुं. [सं. कर्ष] **उत्तेजना, बढ़ावा, जोश, लाग-डाँट।** उ.—नैननि होड़ बदी बरखा सौं राति दिवस बरसत झर लाये दिन दूना करखा सों—३४५७।

संज्ञा पुं [हिं. कालिख] **करिखा, कालिख।**

करगत—वि. [स.] **हाथ में आया हुआ, हस्तगत।**

करगस—संज्ञा पुं. [सं. कर + हिं. गाँस] **तीर, भाला, काँटा।**

करगह—संज्ञा पुं. [हिं करघा] **कपड़ा बिनने का यंत्र।**

करगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कर + गहना] **बाढ़।**

करघा—संज्ञा पुं. [फा. कारगाह] **कपड़ा बिनने का यंत्र।**

करचंग—संज्ञा पुं. [हिं. कर + चंग] **(१) एक बाजा जिससे ताल दी जाती है। (२) डफ।**

करछा—संज्ञा पुं. [हिं करौछ = काला] **एक पक्षी।**

करछैयाँ—संज्ञा स्त्री] हिं. करौछ = काला] **हलके काले रंग की गाय।**

करछौंह—संज्ञा पुं. [हिं. करौंछ = काला] **हलका काला रंग।**

करज—संज्ञा पुं. [सं. कर + ज = उत्पन्न] **(१) नख, नाखून।** उ.—उरज करज मनो सिव सिर पर ससि सारंग सुधागरी—२१११। (२) **उँगली।** उ.—(क) सिय अन्देस जानि सूरज प्रभु लियौ करज की कोर। टूटत धनु नृप लुके जहाँ-तहँ ज्यों तरागन भोर—९-२३। (ख) करज मुद्रिका, कर कंकन छबि, कटि किंकिन नूपुर छबि भ्राजत। (ग) बलिहारी वा बाँस-बंस की बंसी-सी सुकुमारी। सदा रहत है करज स्याम के नेकहु होत न न्यारी—३४१२।

संज्ञा पुं. [अ. कर्ज़, कर्ज] **ऋण, उधार।** उ.—करि अवारजा प्रेम प्रीति कौ, असलत हाँ खतियावै। दूजे करज दूरि करि दैयत नैंकु न तामैं आवै—१-१४२।

करट—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) कौआ। (२) हाथी का गंडस्थल।**

करटी—संज्ञा पुं. [सं.] **हाथी।**

करण—संज्ञा पुं [सं.] **(१) एक कारक। (२) औजार। (३) देह। (४) क्रिया, कार्य। (५) हेतु। (६) इन्द्रिय।**

करणिक—संज्ञा पुं. [सं.] **काम का कर्त्ता, कार्यकर्त्ता।**

करणी, करणीय—वि. [सं. करणीय] **करने योग्य।**

करत—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] **करते हैं।** उ.—(क) बिनु बदलैं उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई—१-३। (ख) हौं कहा कहौं सूर के प्रभु के निगम करत जाकी कीति—१० उ.-१७५।

मुहा०—करत (रैनि)—**रात करते हो, रात तक बाहर रहते हो, देर लगाते हो।** उ.—जसुमति मिलि सुत सौं कहत रैनि करत किहिं काज—४३७।

करतब—संज्ञा पुं. [सं. कर्तव्य] **(१) करनी, करतूत।** उ.—देखौ आइ पूत के करतब, दूध मिलावत पानी—१०-३३७। **(२) कला, गुण। (३) जादू।**

करतरी, करतल, करतली—संज्ञा पुं. सवि. [सं.] **(१) हाथ।** उ.—करतल-सोभित बान धनुहियाँ—९-१९। **(२) हथेली, हाथ की गदेरी।**

करतव्य—संज्ञा पुं. [सं. कर्तव्य] **करने योग्य कार्य या धर्म।**

वि.—**करने योग्य।**

करता—संज्ञा पुं. [सं. कर्त्ता] **(१) रचने या करनेवाला।** उ.—(क) नर के किएँ कछू नहिं होइ। करता-हरता आपुहिं सोइ—१-२६१। (ख) मैं हरता करता संसार—५-२। (ग) येई हैं श्रीपति भुवनायक, येई करता हैं संसार—४६७। **(२) विधाता, ईश्वर। (३) एक कारक।**

करतार—संज्ञा पुं. [सं. कर्त्तार] **सृष्टि करनेवाला, ईश्वर।** उ.—धर्मपुत्र तू देखि बिचार। कारन करनहार करतार—१-२६१।

करतारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. करतारी] **ईश्वरीय लीला।**

संज्ञा स्त्री. [सं. कर+हिं. ताली] **(१) हाथ से**

ताली बजाने की क्रिया। (२) ताल देने का एक बाजा।

करताल, करतालो—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दोनों हथेलियों के परस्पर बजाने का शब्द, ताली। उ.—दै करताल बजावति, गावति राग अनूप मल्हावै—१०-१३०। (२) एक बाजा जो लकड़ी या काँसे का होता है। इसका एक जोड़ा हाथ में लेकर बजाते हैं। (३) झाँझ, मजीरा।

करतालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] हथेली। उ.—गावत हँसत, गँवाय हँसावत, पटकि पटकि करतालिका—८०६।

करताहि—संज्ञा पुं. [सं. कर्त्ता+हि (हिं. प्रत्य.)] कर्त्ता को, ईश्वर को। उ.—रही ग्वालि हरि कौ मुख चाहि। कैसे चरित किए हरि अबहीं बार-बार सुमिरहि करताहि—१०-३१६।

करति—क्रि. स. [हिं. करना] (१) करती है, संपादन करती है। उ०—करति बयारि निहारति हरि-मुख चंचल नैन बिसाल—३६७। (२) पकाती है, बनाकर तैयार करती है। उ०—नंदधाम खेलत हरि डोलत। जसुमति करति रसोई भीतर आपुन किलकत बोलत—१०—१११।

करतूत, करतूति—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्तृत्व] (१) कर्म, करनी, काम, करतब। उ०—(क) जग जानै करतूति कंस की, बृष मारयौ, बल-बाहीं—२—२३। (ख) सब करतूति कैकेई कैं सिर, जिन यह दुख उपजायौ—६—५०। (ग) कहा कठिन करतूति न समुझत कहा मृतक अबलनि सर मारति—२८४१। (२) कला, हुनर, गुण।

करतौ—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] (काम) चलाता, संपादित करता, करता। उ०—(क) भक्ति बिना जौ कृपा न करते, तौ हौं आस न करतौ—१—२०३। (ख) जौ तू हरि कौ सुमिरन करतौ। मेरैं गर्भ आनि अवतरतौ—४—६।

करद—वि. [सं. कर+द=देनेवाला] (१) कर देने वाला, अधीन। (२) सहारा देनेवाला।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. कारद] छुरा, चाकू।

करदम—संज्ञा पुं. [सं. कर्दम] (१) कीचड़। (२) पाप। (३) मांस।

करदा—संज्ञा पुं. [हिं. गर्द] (१) बट्टा, कटौती। (२) बदलाई।

करधनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. करधनी] कमर में पहनने का एक गहना। बच्चों के लिए यह घुँघरूदार होता है; जब वे चलते हैं तब इसके घुँघरू बजते हैं। उ०—तनक कटि पर कनक-करधनि छीन छबि चमकाति—१०—१८४।

करधनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कटि+आधाना। सं. किंकिणी] (१) कमर में पहनने का सोने-चाँदी का एक गहना जिसमें बच्चों के लिए घुँघरू लगाये जाते हैं। (२) कई लड़ों का सूत जो करधनी की तरह कमर में पहनने के काम आता है। इस सूत का रंग प्रायः काला होता है।

करधर—संज्ञा पुं. [सं. कर=वर्षोपल+धर=धारण करनेवाला] बादल, मेघ। उ०—करधर की धरमैर सखी री की सुक सीपज की बगपंगति की मयूर की पीड़ पखी री।

करन—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण] कुंती का सबसे बड़ा पुत्र जो उसके कन्या काल में ही सूर्य से उत्पन्न हुआ था। उ०—करन-मेघ बान-बूँद भादौं-झरि लायौ। जित-जित मन अर्जुन कौ तितहिँ रथ चलायौ—१—२३।

क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) करना, (२) संपादित करना। (क) पारथ-तिय कुरुराज-सभा मैं बोलि करन चहै नंगी। स्रवन सुनत करुना-सरिता भये बाढ़े बसन उमंगी—१-२१। (२) पकाना, बनाना, तैयार करना। उ.—जेवन करन चली जब भीतर छींक परी तौं आजु सवारैं—५६५।

वि. [सं. करणीय] करने योग्य, जिसका संपादन करना संभव हो। उ.—दयानिधि तेरी गति लखि न परै। धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै—१-१०४।

संज्ञा पुं. [सं. करण] (१) करनेवाले, कर्त्ता। उ.—भजि मन नंद-नंदन चरन। परम पंकज अति

मनोहर सकल सुख के करन—१-३०८। (२) इन्द्रिय। उ.—छल-पल राउरे की आस। करन नाव सुपंच संज्ञा जान के सब नास—सा. उ. ४१।

संज्ञा पुं. [देश.] एक ओषधि।

करनख—संज्ञा पुं. [सं. कर + नख] हाथ की छोटी उँगली का नाखून।

मुहा.—कर-नख पर धारी—हाथ की छोटी उँगली पर उठाना, बहुत थोड़े परिश्रम से उठाना। उ.—राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं, कर-नख पर गोवर्धन धारी—१ २२।

करनधार—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] माँझी, मल्लाह, केवट।

करनपितु—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण + हिं. पिता] कर्ण का पिता सूर्य। उ.—माधो कीजिए बिस्राम। उदौ चाहत लेन बैरी करन-पितु हितु जाम—सा. ८८।

करनफूल—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण + हिं. फूल] कान में पहनने का सोने-चाँदी का एक गहना जो सादा और जड़ाऊ, दोनों तरह का होता है, तरौना, काँप। उ.—जिन स्रवनन ताटंक खुभी अरु करनफूल खुटिलाऊ। तिन स्रवनन कस्मीरी मुद्रा लै लै चित्र झुलाऊ —३२२१।

करनबेध—संज्ञा पुं. [सं. कर्णबेध] बच्चों का एक संस्कार जिसमें कान छेदे जाते हैं, कर्णछेदन संस्कार।

करनहार—संज्ञा पुं. [सं. करण + हिं. हार (प्रत्य.)] करने वाला, रचनेवाला। उ.—...। तब भीषम नृप सौं यौं कह्यौ। धर्मपुत्र तू देखि विचार कारन करनहार करतार—१-२६१।

करना—क्रि. स. [हिं. करना] (१) (काम को) चलाना या संपादित करना। उ.—(क) काहूँ कह्यौ मंत्र जप करना। काहूँ कछु, काहूँ कछु करना—१-३४१। (ख) तातैं संत-संग नित करना। संत-संग सेवौ हरि-चरना—५-२। (२) पकाना, रींधना, तैयार करना। (३) रखना। (४) पति या पत्नी बनाना। (५) व्यवसाय करना। (६) सवारी ठहराना। (७) बनाना, या नया रूप देना। (८) कोई पद देना।

संज्ञा पुं. [सं. कर्ण] एक पौधा जिसमें सफेद फूल लगते हैं, सुदर्शन। उ.—जाही जूही सेवती करना अनिआरी। बेलि चमेली मालती बूझति द्रुम-डारी—१८२२।

संज्ञा पुं. [सं. करुण] पहाड़ी नीबू।

संज्ञा पुं. [सं. करण] किया हुआ काम, करनी, करतूत।

करनाई—संज्ञा स्त्री. [अ. करनाय] तुरही।

करनाल—संज्ञा पुं. [अ. करनाय] (१) सिंघा, भोंपा, नरसिंहा। (२) बड़ा ढोल। (३) तोप।

करनावली—संज्ञा पुं. बहु. [हिं. करना + सं. अवली] सुदर्शन के पौधों का समूह जिनमें सफेद फूल लगते हैं। उ.—कमल बिकच करनावली मुद्रिका बलय पुट भुज बेलि शुकचारी—२३०६।

करनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. करनी] (१) कार्य, कर्म, करनी, करतूत। उ.—(क) बिनती करत डरत करुनानिधि, नाहिँन परत रह्यौ। सूर करनि तरु रच्यौ जु निज कर, सो कर नाहिं गह्यौ—१-१६२। (ख) सुनहु सूर वह करनि कहनि यह, ऐसे प्रभु के ख्याल—५६८। (ग) सुनहु सूर ऐसेउ जन-जग में करता करनि करे —पृ. ३३२। (२) मृतक-संस्कार।

करनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. करना] (१) सुकृत्य, कार्य, कर्म, महिमा। उ.—(क) करनी करुनासिंधु की मुख कहत न आवै—१-४। (ख) गनिका तरी आपनी करनी नाम भयौ तोरो—१-१२२। (ग) सूरदास प्रभु मुदित जसोदा पूरन भई पुरातन करनी—१०-४४। (घ) मुरली कौन सुकृत-फल पाये।...... लघुता अंग, नहीं कुछ करनी, निरखत नैन लगाये—६६१। (ङ) लिखी मेटै कौन, करै करता जौन, सोइ ह्वै है जु होनहारि करनी—६६८। (च) देखो करनी कमल की, कीनो जल सों हेत। प्रान तज्यौ प्रेम न तज्यौ, सूख्यौ सरहि समेत। (२) करतूत (हीनता या उपेक्षा सूचक प्रयोग)। (३) मृतक-क्रिया या संस्कार, अन्त्येष्ठि कर्म। (४) दीवार पर गारा लगाने की कन्नी। (५) करना, करने की क्रिया। उ.—मंदाकिनितट फटिक सिला पर, मुख-मुख जोरि तिलक की करनी। कहा कहौं, कछु कहत न आवै, सुमिरत प्रीति होइ उर अरनी—६-११०।

संज्ञा स्त्री [सं. करिणी] **हथिनी, हस्तिनी ।** उ.—मानो ब्रज ते करनी चली मदमाती हो। गिरधर गज पै जाइ ग्वारि मदमाती हो। कुल अंकुस मानै नहीं मदमाती हो। संका बढ़े तुराइ मदमाती हो —२४०१ ।

क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] **करना, संपादित करना ।** उ.—मेरी कैंती बिनती करनी। पहिले करि प्रनाम, पाइनि परि, मनि रघुनाय हाथ लै धरनी—९-१०१ ।

करनेता—संज्ञा पुं. [हिं. कर्नेता] **रंग के आधार पर किये गये घोड़ों के भेदों में एक ।**

करपर—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्पर] **खोपड़ी ।**

वि. [सं. कृपण] **कंजूस ।**

करपरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] **पीठी की पकौड़ी ।**

करपाल—संज्ञा पुं. [सं.] **खड्ग, तलवार ।**

करबर—संज्ञा स्त्री. [हिं. करवर] **अलप, घात, विपत्ति, आपत्ति ।** उ.—(क) ढोटा एक भयौ कैसैहुँ करि, कौन कौन करबर बिधि भानी—३६८ । (ख) कौन-कौन करबर हैं टारे। जसुमति बाँधि अजिर लै डारे—३६१ । (ग) आनँद बधावनो मुदित गोप गोपीगन आउपरी कुसल कठिन करबर तैं। (घ) बड़ी करबर टरी साँप सों ऊबरी, बात के कहत तोहि लागत जरनी। (ङ) जबतें जनम भयौ हरि तेरौ कितने करबर टरे कन्हाई ।

करबार—संज्ञा स्त्री. [सं. करबाल] **तलवार ।** उ०—कोपि करबार गहि कह्यौ लंकाधिपति, मूढ़ कहा राम कौं सीस नाऊँ—९-१२९ ।

करभा—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) हाथी का बच्चा । (२) हथेली के पीछे का भाग । (३) कटि, कमर ।**

करभ-कर—संज्ञा पुं. [सं.] **हाथी के बच्चे की सूँड़ ।**

करभा—संज्ञा पुं. [सं. करभ] **हाथी का बच्चा ।** उ०—(क) देखि सखी हरि अंग अनूप ।..................। कबहुँ लकुट तैं जानु फेरि लै, अपने सहज चलावत। सूरदास मानहुँ करभा कर बारंबार चलावत—६३२ । (ख) चरन की छबि देखि डरप्यो अरुन गगन छपाइ। जानु करभा की सबै छबि निदरि लई छड़ाइ—१०-२३४।

करभीर—संज्ञा पुं. [सं.] **सिंह ।**

करभूषन—संज्ञा पुं. [सं. कर + भूषण] **हाथ का भूषण, आरसी, आइना ।** उ०—कर भूषन तन हेरन लागी गयो देख मन चोरे—सा० १०० ।

करभोरु—संज्ञा स्त्री. [सं.] **हाथी की सूड़ की तरह चिकनी और सुडौल जाँघ ।** उ०—पृथु नितंब करभोरु कमल-पद-नख-मनि चंद्र अनूप। मानहु लुब्ध भयो बारिज दल इंदु किये दस रूप ।

वि.—**सुंदर या सुडौल जाँघवाली ।**

करम—संज्ञा पुं. [सं. कर्म] **(१) कर्म, करनी । (२) कर्म का फल, भाग्य ।**

मुहा०—करम का टेढ़ा या तिरछा होना—**भाग्य फूटना, किस्मत खोटी होना ।** उ०—पालागौं छाँड़ौ अब अंचल बार-बार बिनती करौं तेरी। तिरछो करम भयो पूरब को प्रीतम भयो पाँय की बेरी। करम के ओछे—**भाग्य हीन, अभागा ।** उ०—कौन जाति अरु पाँति बिदुर की ताहीं कैं पग धारत। भोजन करत माँगि घर उनकैं राज मान-मद टारत। ऐसे जन्म-करम के ओछे ओछनि हूँ ब्योहारत। यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल प्रन पारत—१-१२ । करम कौ मारौ—**भाग्यहीन, अभागा ।** उ०—जौ पै तुमहीं बिरद बिसारौ। तौ कहौ कहाँ जाइ करुनामय कृपिन करम कौ मारौ—१-१५७ ।

संज्ञा पुं. [देश०] **हरदू या हलदू नामक पेड़ ।**

करमचंद—संज्ञा पुं. [सं. कर्म] **कर्म, करनी, भाग्य ।**

करमठा—वि. [सं. कृपण] **सूम, कंजूस ।**

करमठ—वि. [सं. कर्मठ] **(१) कर्म करने में आनन्द लेने वाला । (२) कर्मकांडी ।**

करमात—संज्ञा पुं. [सं. कर्म] **कर्म, भाग्य, किस्मत ।** उ.—वह मूरति द्वै नयन हमारे लिखी नहीं करमात। सूर रोम प्रति लोचन देतो बिधिना पर तर मात—१४१८ ।

करमाली—संज्ञा पुं. [सं.] **सूर्य ।**

करमी—वि. [सं. कर्म] **कर्म में आनंद लेनेवाला, कर्मनिष्ठ ।**

करमुखा, करमुहाँ—वि. [हिं. काला + मुख] **(१) कलंकी, पापी । (२) काले मुँह वाला ।**

करर—संज्ञा पुं. [देश.] (१) **एक जहरीला कीड़ा। (२) एक पौधा जिसके बीजों से तेल निकलता है जिससे मोमजामा बनाया जा सकता है।**

कररना, करराना—क्रि. अ. [अनु.] (१) **चरमर या मरमर शब्द करके टूटना। (२) कड़ा शब्द करना।**

करगन—संज्ञा स्त्री. [अनु.] **धनुष की टंकार।**

करि, करी—संज्ञा पुं. [सं. कर्बुर] **वनतुलसी, ममरी।** उ.—ऊधो तनिक सुवस स्रौनन सुन। कंचन काँच कपूर कररि रस, सम दुख-सुख गुन-औगुन—३००१।

करल—संज्ञा पुं. [सं. कटाह] **कड़ाह, कड़ाही।**

करला—संज्ञा पुं. [हिं. कल्ला] **कोंपल, कोमल पत्ता।**

करली—संज्ञा स्त्री. [सं. करील] **कल्ला, कोंपल।**

करवट—संज्ञा स्त्री. [सं. करवर्त, प्रा. करवट्ट] **एक बगल होकर लेटना।**

संज्ञा पुं. [सं. करपत्र, प्रा' करवत्त] (१) **करवत, आरा। (२) प्रयाग, काशी आदि स्थानों में जो आरे या चक्र होते थे, वे करवट कहलाते थे। इनके नीचे लोग सुफल की आशा से प्राण देते थे। काशी-करवट लेना विशेष फलदायक समझा ज ाथा।**

करवत—संज्ञा पुं. [सं. करपत्र, प्रा. करवत्त] (१) **आरा नामक दाँतेदार औजार। (२) प्रयाग, काशी आदि स्थानों में करवत रहते थे जिनके नीचे प्राण देने से सुफल मिलने की आशा होती थी।** उ.—(क) कहा कहौं कोउ मानत नाहीं इक चंदन औ चंद करासी। सूरदास प्रभु ज्यों न मिलैंगे लेहौं करवत कासी। (ख) गोपी ग्वाल-बाल वृन्दाबन खग मृग फिरत उदासी। सबई प्रान तत्यौ चाहत हैं को करवत को कासी—३४८२।

करवर—संज्ञा स्त्री. [देश.] **अलप, विपत्ति, संकट, कठिनाई।** उ.—(क) त्राहि त्राहि कहि ब्रज-जन धाए, अब बालक क्यौं बचै कन्हाई।....... । करवर बड़ी हरी मेरे की, घर घर आनंद करत बधाई—१०-५१। (ख) मैं नहिं काहू को कछु घाल्यौ पुन्यनि करवर नाक्यौ—२३७३।

करवरना—क्रि. अ. [सं. कलरव, हिं. करवर, कलबल] **चहकना, कलरव करना।**

करवाई—क्रि. स. [हिं. करवाना] **करने को प्रवृत्त किया।** उ.—रिषि नृप सौं जग-बिधि करवाई। इला सुता ताकैं गृह जाई—६-२।

करवाये—क्रि. स. [हिं. करवाना] **करने को प्रेरित किया।** उ.—राजनीति मुनि बहुत पढ़ाई गुरु सेवा करवाये—सारा. ५३८।

करवायौ—क्रि. स. [हिं. करवाना] (१) **करने को प्रवृत्त किया।** उ.—दिन दस लौं जलकुम्भ साजि सुचि, दीप-दान करवायौ—९-५०। (२) **सिद्ध किया, संपादित किया।** उ.—करि दिग्विजय विजय को जग में भक्त पच्छ करवायौ—सारा. ८४१।

करवार, करवाल—संज्ञा स्त्री. [सं. करबाल] **तलवार।** उ.—दामिनि करवार करनि कंपत सब गात उरनि जलधर समेत सेन इन्द्र धनुष साजे—२८१६।

करवाली—संज्ञा स्त्री. [सं. करबाल] **करौली, छोटी तलवार।**

करवावति—क्रि. स. [हिं. करवाना] **संपादन कराती है, (कार्य आदि) कराती है, (कर्म आज्ञापालन आदि) करने को प्रवृत्त करती है।** उ.—कोमल तन आज्ञा करवावति, कटिटेढ़ी ह्वै आवति—६५५।

करवीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कनेर का पेड़। (२) तलवार। (३) चेदि देश का एक प्राचीन नगर जहाँ के राजा शिशुपाल ने कृष्ण-बलराम से यु किया था।**

करवील—संज्ञा पुं. [सं.] **करील, टेंटी का पेड़, कचरा।** उ.—कुमुद कदब कोविद कनक आदि सुकुंज। केतकी करवील बेलउ बिमल बहुबिधि मंत—२८२८।

करवैया—वि. [हिं. करना + वैया (प्रत्य.)] **करनेवाला।**

करबोटी—संज्ञा पुं. [देश.] **एक चिड़िया।**

करष—संज्ञा पुं. [सं. कर्ष] (१) **खिचाव। (२) मन-मोटाव, द्रोह। (३) क्रोध, ताव।**

करषक—संज्ञा पुं. [सं. कर्षक] **किसान, खेतिहर।**

करषत—क्रि. स. [हिं. करषना] **खीचता है, घसीटत समय।** उ.—करषत सभा द्रुपद-तनया कौ अंबर अछय कियौ। सूर स्याम सरवज्ञ कृपानिधि, करुना मृदुल हियौ—१-१२१।

करषति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. करषना] **खींचती है, तानती है, घसीटती है।** उ.—दिन थोरी, भोरी, अति गोरी, देखत ही जु स्याम भए चाढ़ी। करषति है दुहु करनि मथानी, सोभा-रासि भुजा सुभ काढ़ी—१०-३००।

करषन—क्रि. स. [हिं. करषना] **खींचना, खींचने का प्रयत्न करना।** उ.—हरष हरष करषन चित चाहत तेहितें दा प्रतिनीक—सा. ५८।

करषना—क्रि. स. [सं. कर्षण] (१) **खींचना, घसीटना।** (२) **सोख लेना, सुखाना।** (३) **बुलाना, निमंत्रित करना।** (४) **इकट्ठा करना, समेटना।**

करषहिं—क्रि. स. [हिं. करषना] **खींचते हैं, आकर्षित करते हैं।**

करषि—क्रि. स. [सं. कर्षण, हिं. करषना] (१) **आकर्षण करके, समेट या बटोर कर।** उ.—(क) छिन इक मैं भृगुपति प्रताप बल करषि हृदय धरि लीनौ—९-११५। (ख) सकुचासन कुल सील करषि करि जगत बंध करबंदन। मौनऽपवाद पवन आरोधन हित क्रम काम निकंदन—३०१४। (२) **खींचकर, तानकर।** उ.—(क) पिय बिनु बहत बैरिन बाय। मदनबान कमान ल्यायो करषि कोप चढ़ाय—सा. ३२। (ख) केस गहि करषि जमुना धार डारि दै सुन्यौ नृप नारि पति कृष्न मार्यौ—२६१८। (ग) इन औरन अमरन सुख दीनो करषि केस सिर कंस—३०१८।

करषे—क्रि. स. [सं. कर्षण, हिं. करषना] **आकर्षण किये, समेटे, इकट्ठा किये, बटोरे, खींचे।** उ.—अंकम भरि भरि लेत स्याम कौं ब्रज नर-नारि अतिहिं मन हरषे। सूर स्याम संतन सुखदायक दुष्टन के उर सालक करषे—६०७।

करषै—क्रि. स. [सं. कर्षण, हिं. करषना] (१) **खींचती है, आकर्षित करती है, घसीटती है, तानती है।** उ.—(क) मंजुल तारनि की चपलाई, चित चतुराई करषै री—१०-१३७। (ख) जसुमति रिस करि करि रजु करषै—१०-३४२। (२) **समेटती है, बटोरती है, इकट्ठा करती है।** उ.—सूरदास गोपी बड़भागिनि हरि-सुख क्रीड़ा करषै हो—२४००।

करष्यौ—क्रि. स. [सं. कर्षण, हिं. करषना] (१) **आकर्षित किया, समेट लिया, बटोर लिया।** उ.—जिहिं भुज परसुराम बल करष्यौ, ते भुज क्यौं न सँभारत फेरी?—९-९३। (२) **खींचा, एकाग्र किया, लगाया।** उ.—जब पूरी सुनि हरि हरष्यौ। तब भोजन पर मन करष्यौ—१०-१८३। (३) **ताना, घसीटा, दबाया।** उ.—अंकुस राखि कुंभ पर करष्यौ हलधर उठे हँकारी—२५९४।

करसना—क्रि. स. [सं. कर्षण] (१) **खींचना।** (२) **बुलाना।**

करसाइल—संज्ञा पुं. [हिं. करसायल] **काला मृग।**

करसायर—संज्ञा पुं. [सं. कृषाण] **किसान, खेतिहार।**

करसायल, करसाइल—संज्ञा पुं. [सं. कृष्णसार] **काला मृग।**

करसी—संज्ञा स्त्री [सं. करीष] (१) **उपला या कंडा।** (२) **उपले या कंडे का टुकड़ा।**

करह—संज्ञा पुं. [सं. करभ] **ऊँट।**

संज्ञा पुं. [सं. कलिः] **फूल की कली।**

करहाट, करहाटक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कमल की जड़।** (२) **कमल का छत्ता या छत्र।** (३) **मैनफल।**

करहु—क्रि. स. [हिं. करना] **करो।** उ.—पहिलेहिं रोहिनि सौं कहि राख्यौ, तुरत करहु ज्योनार—३९५।

करांकुल—संज्ञा पुं. [सं. कलांकुर] **एक बड़ी चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है।**

करा—संज्ञा स्त्री. [सं. कला] **अंश, भाग।**

कराइबो—क्रि. स. [सं. करना] **किया, संपादित कराया।** उ.—जुवा-जुवती खेलाइ कुल-व्यवहार सकल कराइबो। जननि मन भयौ सूर आनँद हरषि मंगल गाइबो—१० उ.—१२४।

कराई—क्रि. स. [हिं. कराना] (१) **कराते हैं, कराया।** उ.—(क) गावैं सखी परस्पर मंगल, रिषि अभिषेक कराई—९-१७। (ख) कर परनाम देवगुरु द्विज को जल सुस्नान कराई—सारा. २१४। (२) **कर दी, (देर) लगा दी।** उ.—धेनु नहिं देखियत कहुँ नियरैं, भोजन ही मैं साँझ कराई—४७१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कारा, काला] कालापन, श्यामता। उ.—मुख मुरली सिर पखौआ बन-बन धेनु चराई। जे जमुना-जल रंग रँगे हैं ते अजहूँ नहिं तजत कराई।

कराऊँगो—क्रि. स. [हिं. करना] कराऊँगा, कर लूँगा। उ.—तब तनु परसि काम दुख मेरो जीवन सफल कराऊँगो—१६४३।

कराएँ—क्रि. स. [हिं. 'करना' का प्रे. 'कराना'] कराने से, (किसी काम आदि में) लगाने से। उ.—कहा होत पय-पान कराएँ, विष नहिं तजत भुजंग—१-३३२।

कराना—क्रि. स. [हिं. 'करना' का प्रे.] करने को प्रवृत्त करना, करने में लगाना।

कराया, करायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. 'करना' का प्रे.] (१) कराने को प्रेरित किया। उ.—(क) असुर जोनि ता ऊपर दीन्ही, धर्म-उछेद करायौ—१-१०४। (ख) जानि एकादस बिप्र बुलाए, भोजन बहुत करायो—९-५०। (२) किये, बनाये, अंगीकार किये, माने। उ.—कही कथा दत्तात्रय मुनि की गुरु चौबीस करायो—सारा. ८४३।

करार—संज्ञा पुं. [सं. कराल—ऊँचा। हिं. कट = करना +सं. आर=किनारा] नदी का ऊँचा किनारा। उ.—मैं तौ स्याम-स्याम कै टेरति कालिंदी के करार—२७६६।

संज्ञा पुं. [अ. क़रार] (१) स्थिरता, ठहराव। (२) धीरज, संतोष। (३) आराम। (४) वादा, प्रतिज्ञा।

करारत—क्रि. अ. [हिं. करारना] कर्कश स्वर करता है, (कौआ) काँ काँ बोलता है। उ.—कुँवरि असित श्री खंड अहि भ्रम चरन सिलीमुख लाग। बानी मधुर जानि पिक बोलत कदम करारत काग—१८२६।

करारना—क्रि. अ. [अनु.] कर्कश शब्द करना, कौए का काँ काँ बोलना।

करारा—संज्ञा पुं. [हिं. करार=किनारा] (१) नदी का ऊँचा किनारा। (२) टीला।

संज्ञा पुं. [सं. करट] कौआ।

वि. [हिं. कड़ा, करी] (१) कठोर। (२) दृढ़चित्त। (३) कुर कुर शब्द करने वाला। (४) उग्र, तेज। (५) खरा, चोखा। (६) हृष्ट-पुष्ट।

करारी—वि. स्त्री. [हिं. पुं. कड़ा, करी, करारा] उग्र, तेज, तीक्ष्ण। उ.—चकित देखि यह कहैं नर-नारी। धरनि अकास बराबरि ज्वाला झपटति लपट करारी—५९८।

कराल—वि. [सं.] (१) डरावना, भयानक, भीषण। उ.—(क) सूर कुजस-रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल—१-१८६। (ख) उचटत अति अँगार फुटत झर, झपटत लपट कराल—६१५। (२) बड़े दाँत वाला। (३) ऊँचा।

करालिका, कराली—संज्ञा स्त्री. [सं.] अग्नि की एक जिह्वा।

वि.—डरावनी, भयावनी।

करावत—क्रि. स. [हिं. कराना] कराते हैं, करने में प्रवृत्त करते हैं। उ.—सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि सुरति करावत—१-१७।

करावति—क्रि. स. [हिं. कराना ('करना' का प्रे०)] कराती है। उ०—तुमसौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुद्धि भरमावै—१-४२।

करावते—क्रि. स. [हिं. कराना] कराते हैं। उ०—सूरदास स्वामी तिहिं अवसर पुनि-पुनि प्रगट करावते—२७३५।

करावन—क्रि. स. [हिं. कराना] कराने के लिए, संपादित करने के उद्देश्य से। उ०—पूतना पयपान करावन प्रेम-सहित चलि आई—सारा० ७४६।

करावहु—क्रि. स. [हिं. कराना] कराओ, करने को प्रवृत्त करो। उ०—तुव मुख-चंद्र, चकोर-दृग, मधु-पान करावहु—१०-२३२।

करावै—क्रि. स. [हिं. 'करना' का प्रे. रूप] कराता है, करवाये या करवावै। उ०—असरन-सरन सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै—१-१७।

करावौ—क्रि. स. [हिं. कराना] करो, करवाओ, करने को प्रवृत्त करो। उ०—अरी, मेरे लालन की आजु बरष-गाँठि, सबै सखिनि कौं बुलाइ मंगल-गान करावौ—१०-९५।

कराह, कराहा—संज्ञा पुं. [हिं. करना + आह] **पीड़ा या कसक सूचक दुखभरा शब्द ।**

संज्ञा पुं. [हिं. कराह] **कड़ाह, कड़ाही ।**

कराहना—क्रि. अ. [हिं. कराह] **पीड़ा या कसक सूचक शब्द करना, आह-आह या हाय-हाय करना ।**

कराहिं—क्रि. स. [हिं. कराना] **(इच्छा आदि) पूर्ण करें, करावें ।** उ०—यह लालसा अधिक मेरैं जिय, जो जगदीस कराहिं । मो देखत कान्हा यहि आँगन, पग द्वै धरनि धराहिं—**१०–७५** ।

कराहि—क्रि. अ. [हिं. कराहना] **हाय-हाय या आह-आह करके ।**

कराहीं—क्रि. स. [हिं. करना] **करते हैं ।** उ०—घरी इक सजन-कुटँब मिलि बैठैं, रुदन बिलाप कराहीं—**१–३१६** ।

करिंद—संज्ञा पुं. [सं. करींद्र] **(१) श्रेष्ठ हाथी । (२) ऐरावत हाथी ।**

करि—संज्ञा पुं. [सं. करी, करिन्] **सूड़वाला, अर्थात हाथी ।**

क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] **(१) करके ।** उ.—बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई—१-३ । **(२) बनाकर, रूप बदल कर ।** उ.—सुन्दर गऊ रूप हरि कीन्हौ । बछरा करि ब्रह्मा संग लीन्हौं—७-७ ।

अव्य.—**द्वारा, से, जरिये से ।** उ.—तैं कैकई कुमंत्र कियौ । अपने कर करि काल हँकारयौ, हठ करि नृप अपराध लियौ—९-४८ ।

प्रत्य. [हिं. की] **की ।** उ.—बाला बिरह दुसह सबहीं कौं जान्यौ राजकुमार । बान बृष्टि स्रोनित करि सरिता, ब्याहत लगी न बार—९—१२४ ।

करिखई, करिखा—संज्ञा स्त्री. [हिं.कालिख] **कालापन ।**

करिणी, करिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. करि] **हथिनी ।**

करिबदन—संज्ञा पुं. [सं.] **जिनका मुँह हाथी का सा है, गणेश ।**

करिबे—क्रि. स. [हिं. करना] **(१) करने में, करने (के लिए) ।** उ.—(क) अब यह बिथा दूरि करिबे कौं और न समरथ कोई—१-११८ । (ख) सूर सु भुजा समेत सुदरसन देखि बिरंचि भ्रम्यौ । मानौ आन सृष्टि करिबे कौ, अंबुज नाभि जम्यौ—**१–२७३ ।** (ग) थकित बिलोकि सारदा बर्नन करिबे बहुत प्रसंग—सारा. ६६६ । **(२) रचने (को), बनाने (के लिए)** उ.—दियो बरदान सृष्टि करिबे को अस्तुति करि प्रमान—सारा. ५२ ।

करिबो—क्रि. स. [हिं. करना] **करना, संपादन करना ।** उ.—सूर सुकमलन के बिछुरे झूठो सब जतननि को करिबो—२८६० ।

करियत—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] **करते हैं ।** उ.—सूधी निपट देखियत तुमकौं तातैं करियत साथ—६७४ ।

करिया—क्रि. अ. [हिं. करना] **(१) किये, कर दिये ।** उ.—उपमा काहि देऊँ, को लायक, मन्मथ कोटिं वारने करिया—६८८ ।

संज्ञा पुं. [सं. कर्ण] **(१) पतवार, कलवारी ।** उ.—सारंग स्यामहिं, सुरति कराइ । पौढ़े होंहि जहाँ नँदनंदन ऊँचे टेर सुनाइ । गए ग्रीषम पावस रितु आई सब काहू चित चाइ । तुम बिनु ब्रजबासी यौं जीवैं ज्यौं करिया बिनु नाइ—२८४४ । **(२) माँझी, केवट, मल्लाह । (३) पतवार या कलवारी थामने वाला ।**

वि.—**काला, श्याम ।**

करियाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. करिया+ई (प्रत्य.)] **(१) कालिमा, श्यामता । (२) कालिख ।**

करियारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलिकारी] **(१) विष । (२) लगाम, बाग ।**

करियै—क्रि.स.[सं.करण, हि.करना] **करिए (आदरसूचक) कीजिए ।** उ.—या देही कौ गरब न करियै, स्यार काग, गिद्ध खैहैं—१-८६ ।

करियौ—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] **करना ।** उ.—बंधू, करियौ राज सँभारे । राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-बिप्र प्रतिपारे—**९–५४** ।

करिल—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोंपल] **नया कल्ला, कोंपल ।**

वि.—काला ।

करिहाँ, करिहाउँ, करिहाँव, करिहैंयाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. कटिभाग] **कमर, कटि।**

करिहारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलिकारी] (१) **कलियारी, विष। (२) लगाम।**

करिहैं—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) **करेंगे, निबटाएँगे, संपादित करेंगे।** उ.—काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं, संकट रच्छा करिहैं ?—१-२६। (२) **ब्याहेंगे, अपनाएँगे।** उ.—(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हारे घर कौ पुत्र-जन्म सुनि आयौ। लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुम्हहिं सुनायौ।...। ऊँच-नीच जुवती बहु करिहैं, सतएँ राहु परे हैं—१०-८६।

करिहै—क्रि. स. [हिं. करना] (१) **करेगा, बिगाड़ सकेगा।** उ.—जो घट अंतर हरि सुमिरै। ताकौ काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरै—१-८२। (२) **संपादित करेगा।** उ.—तैं हूँ जो हरि-हित तप करिहै। सकल मनोरथ तेरौ पुरिहै—४-६। (३) **करेगा, घटित करेगा।** उ.—पुनि हरि चाहै, करिहै सोइ—७-२।

करिहौ—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) **करोगे, संपादित करोगे।** उ.—पतित-पावन-बिरद साँच कौन भाँति करिहौ—१-१२४। (२) **पैदा करोगे, अर्जन करोगे।** उ.—स्रुति पढ़िकै तुम नहिं उद्धरिहौ, बिद्या बेंचि जीविका करिहौ—४-५।

करी—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) **की।** उ.—(क) ऐसी को करी अरु भक्त काजैं। जैसी जगदीस जिय धरी लाजैं—१-५। (ख) अबलौं ऐसी नाहीं सुनी। जैसी करी नंद के नंदन अद्भुत बात गुनी—सा. १०४। उ.—पावक जठर जरन नहिं दीन्हौ, कंचन सी मम देह करी—१-११६। (२) **रची, बनायी।**

संज्ञा पु. [सं. करि, करिन्] **हाथी।** उ.—पाइ पियादे धाइ ग्राह सौं लीन्हौ राखि करी—१-१६।

संज्ञा स्त्री. [सं. कांड, हिं. कली] **अधखिला फूल, कली।**

करीजै—क्रि. स. [हिं. करना] **कीजिए।** उ.—(क) अब मोपै प्रभु कृपा करीजै। भक्ति अनन्य आपुनी दीजै—३-१३। (ख) साधु-संग प्रभु मोकौं दीजै। तिहि संगति निज भक्ति करीजै—७-२।

करीना—संज्ञा पुं. [हिं. केराना] **मसाला।**

करीब—क्रि. वि. [अ.] (१) **पास, समीप। (२) लगभग।**

करीम, करीमा—वि. [अ.] **कृपालु, दयालु।**

संज्ञा पुं.—**ईश्वर।**

करीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बाँस का नया कल्ला। (२) करील का झाड़ीदार पेड़। (३) घड़ा।**

करील—संज्ञा पुं. [सं. करीर] **एक तरह की झाड़ी जिसमें पत्तियाँ नहीं होतीं, केवल गहरे हरे रंग की पतली पतली डंठलें फूटती हैं। ब्रज में करील बहुत होते हैं। इसका फल कसैला होता है जिसे टेंटी कहते हैं।** उ.—जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै—१-१६८।

करीश, करीस—संज्ञा पुं. [सं. करि + ईश] **गजेंद्र।**

करीष—संज्ञा पुं. [सं.] **गोबर जो जंगलों में पड़े-पड़े सूख जाता है और जलाने के काम आता है।**

करु—क्रि. स. [सं. करण, हिं करना] **करो, अमल में लाओ।** उ.—सूर बुलाइ पूतना सौं कह्यौ, करु न बिलम्ब धरी—१०-४८।

करुआ—वि. पुं. [सं. कटुक] (१) **कड़ुआ, तीक्ष्ण। (२) अप्रिय।**

करुआई—संज्ञा स्त्री. [हिं. करुआ, कड़ुआ] **कड़ुआपन।**

करुआना—क्रि. अ. [हिं. करुआ] **दुखना।**

क्रि. स.—**कड़ुवा लगने पर मुँह बनाना।**

करुई—वि. स्त्री. [हिं. करुआ] **जिसका स्वाद कड़ुआपन लिए हुए हो, कड़ुई।** उ.—(क) सुनत जोग लागत हमैं ऐसौ ज्यौं करुई ककरी—३३६०। (ख) फलन माँझ ज्यों करुई तोमरि रहत घुरे पर डारी। अब तौ हाथ परी जंत्री के बाजत राग दुलारी—२६३५।

करुखिअनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनखी] **तिरछी चितवन, तिरछी नजर।** उ.—सूरदास प्रभु त्रिय मिली, नैन प्रान सुख भयौ चितए करुखिअनि अनकनि दिये—२०६६।

करुखी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कनखी] **तिरछी चितवन या नजर।**

करुण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दया। (२) शोक।

वि.—दया से युक्त।

करुणा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दया। (२) शोक। (३) करना का पेड़।

करुणाकर—वि. [सं.] दया करनेवाला।

करुणादृष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं.] कृपा।

करुणानिधान, करुणानिधि—वि. [सं.] करुणा से युक्त, दयालु।

करुणावान—वि. [सं. करुणा + हिं. वान] दयालु।

करुना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुखी का दुख दूर करने के लिए अंतःकरण की प्रेरणा, दया। उ.—कछुक करुना करि जसोदा करति निपट निहोर। सूर स्याम त्रिलोक की निधि, भलैंहि माखन-चोर—३६४। (२) दुख, शोक। उ.—करुना करति मँदोदरि रानी। चौदह सहस सुंदरी उमहीं, उठै न कंत महाअभिमानी —९-१६०।

संज्ञा स्त्री.—राधा की एक सखी का नाम। उ.—कहि राधा किन हार चोरायो। ब्रजजुवतिन सबहीं मैं जानति घर घर लै लै नाम बतायौ। ......। रत्ना कुमुदा मोहा करना ललना लोभा नूप—१५८०।

करुनाकर—वि. [सं. करुणा + आकर (निधि)] बहुत दयालु, करुणानिधि, करुणा की खानि।

संज्ञा पुं. [सं.] दयालु ईश्वर। उ.—नरहरि रूप धरयौ करुनाकर छिनक माहिं उर नखनि बिदारयौ—१-१४।

करुनानिधान—वि. [सं. करुणानिधान] जो बहुत दयालु हो।

करुनानिधि—वि. [सं. करुणानिधि] जिसका हृदय दया से युक्त हो, दयालु।

करुनामय—वि. [सं. करुणामय] जिसका हृदय दया से भरा हो, दयालु, करुणा से युक्त।

करुनामयी—वि. स्त्री. [सं. करुणामयी] जिसका हृदय करुणा से भरा हो, दयालु। उ.—ध्रुव बिमाता-बचन सुनि रिसायौ। दीन के दयाल गोपाल, करुनामयी मातु सौं सुनि, तुरत सरन आयौ—४-१०।

करुनामूल—संज्ञा पुं. [सं. करुणा + मूल] करुणाजनक, करुणामय। उ.—थक्यौ बीच बिहाल, बिहवल, सुनौ करुनामूल—१-९९।

करुना-सरिता—संज्ञा स्त्री. [सं. करुणा + सरिता] दया की नदी, जिसके हृदय में करुणा की धारा-सी प्रवाहित हो, अत्यंत दयालु। उ.—पारथ-तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नंगी। स्रवन सुनत करुना-सरिता भए, बढ़यौ बसन उमंगी—१-२१।

करुनासागर—वि. [सं. करुणा + सागर] दया के समुद्र, बड़े दयालु।

करुनासिंधु—वि. [सं. करुणासिंधु] करुणा का समुद्र, जिसकी करुणा का भाव समुद्र के समान अथाह हो, अत्यंत दयालु।

संज्ञा पुं.—दयालु भगवान।

करुर, करुवा—वि. [सं. कटुक, हिं. कड़ुवा] कड़ुवा, कटु।

करुवार, करुवारि—संज्ञा पुं. [हिं. कलवारी] नाव खेने का डाँड़।

करुवावत—क्रि. अ. [हिं. कड़ुआना] कड़ुआ लगने का-सा मुँह बनाते हैं। उ.—षट्रस के परकार जहाँ लगि लै लै अधर छुवावत। बिस्वंभर जगदीस जगत-गुरु, परसत मुख करुवावत—१०-८९।

करुवौ—वि. [हिं. कड़ुआ, करुवा] अप्रिय, चुभने वाले, जो भला न लगे। उ.—करुवौ बचन स्रवन सुनि मेरौ, अति रिस गही भुवाल—९-१०४।

करू—वि. [हिं. कटु] कड़ुआ, तीखा।

करे—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] (१) रचे, बनाये। उ.—सज्जा पृथ्वी करी बिस्तार। गृह गिरि-कंदर करे अपार—२-२०। (२) उपजाये, उत्पन्न किये। उ.—मैं तो जे हरे हैं ते तौ सोवत परे हैं, ये करे हैं कौनैं आन, अँगुरीनि दंत दै रह्यौ—४८४।

करेजा—संज्ञा पुं. [सं. यकृत] कलेजा, हृदय।

करेणु—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी।

करेणुका, करेनुका—संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. करेणु] हथिनी।

करेर, करेरा—वि. [हिं. कठोर] कड़ा, सख्त, कठिन।

करेरन—संज्ञा स्त्री. [हिं. करेर] कड़ी चोटें, थपेड़े, प्रहार। उ.—सूर रसिक बिन को जीवति है निगुन कठिन करेरन—३२७७।

करेरुआ—संज्ञा पुं. [देश.] एक कँटीली बेल जिससे

परवल के बराबर फल लगते हैं जो खाने में बहुत कड़ुए होते हैं।

करेला—संज्ञा पुं. [सं. कारवेल्ल] **एक बेल जिसमें गुल्ली की तरह लंबे हरे-हरे कड़ुए फल लगते हैं जो तरकारी के काम आते हैं।** उ.—बने बनाइ करेला कीने। लोन लगाइ तुरत तलि लीने—२३२१।

करेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. करेला] **छोटे-छोटे जंगली करेले जो बहुत कड़ुए होते हैं।**

करैं—क्रि.स. [हिं. करना] **करती हैं, लगाती हैं।** उ.—हरद अच्छत दूब दधि लै तिलक करैं ब्रजबाल—१०-२६।

करै—क्रि. स. [हिं. करना] **(१) करे, करता है।** उ.—सूरदास जसुदा कौ नंदन जो कछु करै सो थोरी—१०-२६३। **(२) पद देता है, बनाता है, पद पर प्रतिष्ठित करता है।** उ.—उग्रसेन की आपदा सुनि सुनि बिलखावै। कंस मारि, राजा करै, आपहु सिर नावै—१-४।

करैगौ—क्रि. स. [सं करण, हि. करना] **करेगा, काम चलाएगा, संपादित करेगा।** उ.—(क) जब जम जाल-पसार परैगौ, हरि बिनु कौन करैगौ धरहरि—१-३१२। (ख) बदन दुराइ बैठि मंदिर में बहुरि निसापति उदय करैगो—२८७०।

करैत—संज्ञा पुं. [हिं. काला] **काला साँप।**

करैया—वि. [हिं करना+ऐया (प्रत्य.)] **करने वाला।** उ.—(क) जब तें ब्रज अवतार धरयौ इन, कोउ नहिं घात करैया—४२८। (ख) तुमसौं टहल करावति निसिदिन, और न टहल करैया—५१३।

करोंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. करवट] **करवट।**

करोटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **खोपड़ी।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. करवट] **करवट।** उ.—एक दिना हरि लई करोटी सुनि हरषीं नँदरानी। बिप्र बुलाइ स्वस्तिवाचन करि रोहिनि नैन सिरानी—सारा. ४२१।

करोड़—वि. [सं. कोटि] **एक संख्या जो सौ लाख के बराबर होती है।**

करोती—संज्ञा स्त्री. [हिं. करौती] **काँच का छोटा पात्र।** उ.—वै अति चतुर प्रबीन कहा कहौं जिनि पठई तोको बहरावन। सूरदास प्रभु जिय की होनी की जानति काँच करोती में जल जैसे ऐसे तू लागी प्रगटावन—२२०४।

करोद, करोदना, करोना—क्रि. स. [सं. कर्त्तन] **खुरचना, खरोचना।**

करोनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. करोना] **(१) दूध-दही की खुरचन। (२) खुरचन नाम की मिठाई।**

करोर—वि. [हिं. करोड़] **करोड़।** उ.—अबकै जब हम दरस पावैं देहिं लाख करोर—३३८३।

करोरी—वि. [हिं. करोड़ी] **करोड़ों, बहुत, अनेक।** उ.—कंचन की पिचकारी छूटति छिरकति ज्यौं सचु पावै गोरी। अतिहि ग्वाल दधि गोरस माते गारी देत कहौ न करोरी—२४३६।

करोला—संज्ञा पुं. [हिं. करवा] **गड़ुआ।**

करोवत—क्रि. स. [हिं. करोना] **खुरचते या खरोचते हैं।** उ.—(क) लाल निठुर ह्वै बैठि रहे। प्यारी हा हा करति न मानत पुनि पुनि चरन गहे। नहिं बोलत नहिं चितवत मुख तन धरनी नखन करोवत—पृ० ३१२। (ख) मैं जानी पिय मन की बात। धरनी पग नख कहा करोवत अब सीखे ए घात—२०००।

करोवति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. करोना] **कुरेदती या खुरचती है।** उ.—नीची दृष्टि करी धरनी नखनि करोवति एहो पिया तब हौं एक एक घूँघट तन चितै रही आहि कहा हो करो अब सोऊ—२२४०।

करौं—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] **(१) संपादित करूँ, पूर्ण करूँ।** उ.—रसना एक अनेक स्याम-गुन कहँ लगि करौं बखानौं—१-११। **(२) रचूँ, बनाऊँ, निर्माण करूँ। (३) जन्माऊँ, पैदा करूँ।**

करौंछा—वि. [हिं. काला] **काला।**

करौंजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कलौंजी] **एक पौधा, मरगल, मँगरैला।**

करौंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. करवट] **करवट।**

करौंदा—संज्ञा पुं. [सं. करमर्द, पा. करमद्द, पु. हिं. करवँद] **एक छोटा सुंदर फल जो कुछ सफेद और कुछ लाल होता है। इसका स्वाद खट्टा होता है और यह अचार-चटनी के काम आता है।**

करौंदिया—वि. [हिं. करौंदा] हल्की स्याही लिये हुए लाल रंग का।

करौ—क्रि. स. [हिं. करना] (१) करो। (२) बनाओ, स्वीकार करो, प्रतिष्ठित करो। उ.—अब तुम बिस्व-रूप गुरु करौ। ता प्रसाद या दुख कौं तरौ—६-५। (३) बनाओ, रचाओ, जन्माओ, पैदा करो। उ.—माधौ मोहिं करौ बृंदाबन रेनु जिहिं चरननि डोलत नँदनंदन दिनप्रति बन-बन चारत धेनु—४८६।

करौगो—क्रि. स. [हिं. करना] करोगी, संपादित करोगी। उ.—सूर राधिका कहत सखिन सौं बहुरि आइ घर काज करौगी—१२८६।

करौत, करौता—संज्ञा पुं. [हिं. करवत] आरा।

करौती—संज्ञा स्त्री. [हिं. करौता = आरा] लकड़ी चीरने की आरी।

संज्ञा स्त्री. [हिं. करवा] (१) काँच का छोटा पात्र या बरतन, शीशी। उ.—(क) जाहीं सो लगत नैन, ताही खगत बैन, नख सिख लौं सब गात ग्रसति। जाके रँग राँचे हरि सोइ है अंतर संग, काँच की करौती के जल ज्यौं लसति। (ख) वे अति चतुर प्रवीन कहा कहौं जिन पठई तो को बहराबन। सूरदास प्रभुजी की होनी की जानति काँच करौती में जल जैसे ऐसे तू लागी प्रगटावन। (२) काँच की भट्ठी।

करौला—संज्ञा पुं. [हिं. रौला = शोर] हाँक या हकवा देनेवाला, शिकारी।

करौली—संज्ञा स्त्री. [सं. करवाली] छोटी छुरी।

कर्क, कर्कट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) केकड़ा। (२) बारह राशियों में से चौथी राशि। (३) अग्नि।

कर्कटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कछुई। (२) ककड़ी। (३) सेमल का फल। (४) साँप।

कर्कश—संज्ञा पुं. [सं.] खड्ग, तलवार।

वि.—(१) कठोर, कड़ा। (२) काँटेदार। (३) तेज, प्रचण्ड। (४) कठोर हृदय, क्रूर।

कर्कशा—वि. स्त्री. [हिं. कर्कश] झगड़ा करनेवाली, कटु या कठोर बोलनेवाली।

संज्ञा स्त्री.—झगड़ालू स्त्री।

कर्ज—संज्ञा पुं. [अ. कर्ज़, कर्ज़ा] ऋण, उधार।

कर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कान नाम की इंद्रिय। (२) कुंती का सबसे बड़ा पुत्र जो उसके कन्याकाल में सूर्य से उत्पन्न हुआ था। (३) नाव की पतवार।

कर्णकटु—वि. [सं.] जो (बात, शब्द या अक्षर) सुनने में कटु या अप्रिय लगे।

कर्णकुहर—संज्ञा पुं. [सं.] कान का छेद।

कर्णधार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) माँझी, मल्लाह। (२) पतवार, कलवारी।

कर्णपाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] कान की बाली या लौ।

कर्णफूल—संज्ञा पुं. [सं.] कान का एक आभूषण।

कर्णवेध—संज्ञा पुं. [सं.] बालकों के कान छेदने का संस्कार, कनछेदन।

कर्णाट—संज्ञा पुं. [सं.] एक राग जो मेघ राग का दूसरा पुत्र माना जाता है और जो रात के पहले पहर में गाया जाता है।

कर्णाटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी जो मालवा या दीपक राग की पत्नी मानी जाती है और रात में दूसरे पहर की दूसरी घड़ी में गायी जाती है। उ.—मुरली बजाऊँ रिझाऊँ गिरिधर गाऊँ न आज सुनाऊँ। तेइ तेइ तान तुम सी गीत गावत जेइ कर्णाटी गौरी मैं गाय सुनाऊँ—पृ. ३११।

कर्णाधार—संज्ञा पुं. [सं. कर्णधार] केवट, नाविक।

कर्णिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कान का एक गहना, कर्णफूल। (२) हाथ में बीच की उँगली। (३) हाथी के सूँड़ की नोक। (४) कमल का छत्ता।

कर्णिकार—संज्ञा पुं. [सं.] कनक चंपा।

कर्त्तन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कतरना, काटना। (२) सूत कातना।

कर्त्तनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] कैंची।

कर्तरि, कर्तरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्त्तरी] (१) कैंची, कतरनी। उ.—अद्भुत राम-नाम के अंक। जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि तीछन बहु बिख्यात—१-९०। (२) छुरी, कटारी। (३) एक बाजा।

कर्तव्य—वि. [सं.] करने के योग्य, करणीय।

संज्ञा पुं.—करने योग्य काम।

कर्तव्यमूढ़, कर्तव्यविमूढ़—वि. [सं.] घबड़ाहट के कारण जो कार्य को न समझ स ।

कर्त्ता—संज्ञा पुं. [सं. 'कर्तृ' की प्रथमा का एक.] (१) रचनेवाला, निर्माता । उ.—हर्त्ता-कर्त्ता आपै सोइ। घट-घट व्यापि रह्यौ है जोइ—७-२। (२) करनेवाला। (३) विधाता, ईश्वर। (४) व्याकरण में पहला कारक।

कर्त्तार—संज्ञा पुं. [सं. 'कर्तृ' की प्रथमा का बहु०] (१) करनेवाला। (२) विधाता, ईश्वर।

कर्दम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य का एक पुत्र, छाया से उत्पन्न होने के कारण जिनका 'कर्दम' नाम पड़ा। इसकी पत्नी का नाम देवहूति और पुत्र का कपिल-देव था। उ.—दच्छ प्रजापति कौं इक दई। इक रुचि, इक कर्दम-तिय भई। कर्दम कैं भयौ कपिल-ऽवतार—३-१२। (२) कीचड़, कीच। (३) मांस। (४) पाप। (५) छाया।

कर्नेता—संज्ञा पुं. [देश.] रंग के आधार पर किये गये घोड़े के भेदों में एक।

कर्पट—संज्ञा पुं. [सं.] फटा-पुराना कपड़ा।

कर्पटी—संज्ञा पुं. [सं. हिं. कर्पट=चिथड़ा=गुदड़ा] भिखारी, भिखमंगा जो गूदड़ पहने-ओढ़े।

कर्पर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खोपड़ी, कपाल। (२) खप्पर। (३) एक शस्त्र।

कर्पूर—संज्ञा पुं. [सं.] कपूर।

कर्बुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोना, स्वर्ण। (२) धतूरा। (३) जल। (४) पाप। (५) राक्षस।

वि.—रंग-विरंगा, चितकबरा।

कर्म—संज्ञा पुं. [सं. कर्मन् का प्रथमा रूप] (१) क्रिया, कार्य, काम। उ.—असी-इक कर्म बिप्र कौं लियौ। रिषभ ज्ञान सबही कौं दियौ—५-२। (२) विहित और निषिद्ध कार्य जिनका फल जाति, आयु और भोग माने जाते हैं। (३) वह कार्य या क्रिया जिसका करना कर्तव्य है। (४) कर्मफल, भाग्य। उ.-(क) पगपग परत कर्म-तम-कूपहिं, को करि कृपा बचावै—१-४८। (ख) जाकौं नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फंद सब काटै—३४६। (५) मृत-संस्कार, क्रिया-कर्म। उ—जब तनु तज्यौ गीध रघुपति तब कर्म बहुत बिधि कीनी। जान्यौ सखा राय दशरथ कौ तुरतहिं निज गति दीनी। (६) व्याकरण में दूसरा कारक।

कर्मकांड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) यज्ञ तथा अन्य धर्म के काम। (२) वह शास्त्र या ग्रंथ जिसमें धर्म-कर्म की चर्चा हो।

कर्मकांडी—संज्ञा पुं. [सं.] यज्ञ आदि करानेवाला व्यक्ति।

कर्मक्षेत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह स्थान जहाँ काम किया जाय। (२) संसार जहाँ कर्म करना पड़ता है। (३) भारतवर्ष।

कर्मचारी—संज्ञा पुं. [सं. कर्मचारिन्] (१) काम के लिए नियुक्त, काम करनेवाला। (२) किसी विभाग में काम करनेवाला।

कर्मज—वि. [सं.] (१) कर्म करने से उत्पन्न। (२) किये हुए पाप-पुण्य से उत्पन्न।

संज्ञा पुं.—कलियुग।

कर्मठ—वि. [सं.] (१) काम में चतुर। (२) धर्म-कर्म करनेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) वह मनुष्य जो नियमित रूप से धर्म-कर्म करे। (२) कर्मकांडी।

कर्मणा—क्रि. वि. [सं. कर्मन् का तृतीय एक.] कर्म से, कर्म द्वारा।

कर्मण्य—वि. [सं.] काम करने में आनंद लेनेवाला, उद्योगी, कर्मठ।

कर्मन—संज्ञा पुं. सवि. [सं. कर्म+न (प्रत्य.)] कर्मों का, भाग्य, प्रारब्ध। उ.—जैसोई बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे—१-६३।

कर्मना—क्रि. वि. [सं. कर्मणा] कर्म से, कर्म द्वारा। उ.—(क) मैं तौ राम-चरन चित दीन्हौं। मनसा, बाचा और कर्मना, बहुरि मिलन कौं आगम कीन्हौं—९-२। (ख) मनसा बाचा कहत कर्मना नृप कबहूँ न पतीजै—१०-९। (ग) मनसि बचन अरु कर्मना कछु कहति नाहिंन राखि—३४७५।

कर्मनि—संज्ञा पुं. [हिं. कर्म+नि (प्रत्य.)] कर्मों की।

मुहा.—कर्मनि की मोटी—अत्यंत भाग्य-शालिनी, अच्छे कर्मों का सुख लूटने की अधिका-रिणी। उ—दोउ भैया मैया पै माँगत, दै री मैया

माखन-रोटी।......।सूरदास मन मुदित जसोदा, भाग बड़े, कर्मनि की मोटी—१०-१६५।

कर्मनिष्ठ—वि. [सं.] धर्म-कर्म तथा संध्या, अग्निहोत्र आदि में निष्ठा रखनेवाला।

कर्मभोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्म का फल। (२) पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगना। उ.—जो कहौ कर्मभोग जब करिहैं, तब ये जीव सकल निस्तरिहैं —७-२।

कर्मयुग—संज्ञा पुं. [सं.] कलियुग।

कर्मयोग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चित्त की शुद्धि के लिए किए जानेवाले शास्त्र-सम्मत कर्म। उ.—(क) कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायौ। श्री बल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला भेद बतायौ—सारा० ११०२। (ख) तपसी तुमको तप करि पावै। सुनि भागवत गुही गुन गावै। कर्मयोग करि सेवत कोई। ज्यौं सेवै त्यौंही गति होई—१० उ-१२७। (२) सिद्धि-असिद्धि को समान समझ कर कर्म करना।

कर्मरेख—संज्ञा स्त्री. [सं.] भाग्य का लेखा, तकदीर का लिखा। उ.—वाको न्याउ दोष सब हमको कर्मरेख को जानै। गोरस देखि जो राख्यौ गाहक बिधिना की गति आनै—३४४१।

कर्मवाद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्म की प्रधानता मानना। (२) चित्त की शुद्धि के लिए किया जानेवाला शास्त्र-सम्मत कर्म। उ.—कर्मवाद थापन को प्रगटे पृश्नि-गर्भ अवतार। सुधापान दीन्हो सुरगन को भयौ जग जस विस्तार—३२१।

कर्मवादी—संज्ञा पुं. [सं. कर्मवादिन्] कर्म को प्रधान माननेवाला।

कर्मवान—वि. [सं.] शास्त्रसम्मत कर्म नियमित रूप से करनेवाला।

कर्मविपाक—संज्ञा पुं. [सं.] पूर्वजन्म के कर्मों का भला-बुरा फल।

कर्मशील—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिद्धि-असिद्धि को समान समझ कर कर्म करनेवाला। (२) परिश्रमी, प्रयत्न-शील।

कर्मसंन्यास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कर्म न करना। (२) कर्म के फल की इच्छा न करना।

कर्मसाक्षी—वि. [सं. कर्मसाक्षिन्] जिसके सामने कर्म किया गया हो।

संज्ञा पुं.—वे नौ देवता—सूर्य, चन्द्र, यम, काल, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—जो प्राणी को कर्म करते देखते रहते हैं।

कर्महीन—वि. [सं.] (१) जो शुभ कर्म करने में समर्थ न हो। (२) अभागा, भाग्यहीन।

कर्महीनी—वि. [हिं. कर्महीन] अभागा, भाग्यहीन। उ.—मंदमति हम कर्महीनी दोष काहि लगाइए। प्रानपति सौं नेह बाँध्यौ कर्म लिख्यौ सो पाइए।

कर्मा—संज्ञा पुं. [हिं. कर्म] कर्म करनेवाला। उ.—जब करत बैरोचन कौ सुत, बेद-विहित-विधि-कर्मा। सो छलि बाँधि पताल पठायौ, कौन कृपानिधि धर्मा—१-१०४।

कर्मिष्ठ—वि. [सं.] कर्म में आनंद लेनेवाला, कर्मण्य, कर्मनिष्ठ।

कर्मी—वि. [सं] (१) कर्म करनेवाला। (२) कर्म के फल की इच्छा करनेवाला।

कर्मेंद्रिय—संज्ञा स्त्री. [सं.] काम करनेवाली इंद्रियाँ। ये पाँच हैं—हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ।

करयौ—क्रि. स. भूत. [सं. करण, हिं. करना] किया। उ.—द्रुपद सुता की तुम पति राखी अंबर-दान करयौ —१-१३३।

कर्ष—संज्ञा पुं. [सं] (१) खिंचाव। (२) खरोचना। संज्ञा पुं.—ताव, बढ़ावा।

कर्षक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खींचनेवाला। (२) किसान, खेतिहर।

कर्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खींचना। (२)जोतना। (३) खेती का काम।

कर्षना—क्रि. स. [सं. कर्षण] खींचना।

कर्षमर्ष—संज्ञा पु. [सं. कर्षण] खींच तान, संघर्ष।

कलंक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लांछन, बदनामी। उ.—मो देखत मो दास दुखित भयौ, यह कलंक हौं कहाँ गँवैहौं—७-५। (२) चंद्रमा का काला दाग। (३) दोष। (४) धब्बा।

संज्ञा पुं. [सं.कल्कि, हिं. कलंकी] कल्कि अवतार। उ.—हरि करिहैं कलंक अवतार—१२-३।

कलंकि—संज्ञा पुं [सं. कल्कि] **कल्कि अवतार**। उ.—यों होइहै कलंकि अवतार—१२-३ ।

कलंकित—वि. [सं.] **जिसे कलंक लगा हो, दोषी**।

कलँकी, कलंकी—वि. [सं. कलंकिन्] **(१) जिसे कलंक लगा हो**। उ.—का पटतरयौ चंद्र कलंकी घटत बढ़त दिन लाज लजाई—२२२७।

संज्ञा पुं. [सं. कल्कि] **कल्कि अवतार**। उ.—कलि के आदि अंत कृतयुग के है कलँकी अवतार—सारा. ३२०।

कलंदर—संज्ञा पुं. [अ. क़लंदर] **(१) एक तरह के मुसलमान फकीर। (२) रीछ-बंदर नचाने वाला।**

कलंदरा—संज्ञा पुं. [हिं.] **(१) एक तरह का रेशमी कपड़ा। (२) खेमें का अँकुड़ा जिस पर रेशम या कपड़ा लिपटा रहता है।**

कल—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्य, प्रा. कल्ल] **(१) आराम, चैन, सुख**। उ.—(क) पलित केस, कफ कंठ बिरुध्यौ, कल न परति दिन-राती—१-११८। (ख) डेढ़ ल ल कल लेत नाही प्रान प्रीतम प्रान-सा.२१। (ग) जसुमति बिकल भई छिन कल ना। लेहु उठाई पूतना-उर तैं, मेरौ सुभग साँवरो ललना—१०-५४। (घ) एक बार कुलदेवी पूजत भयो दरस सखि मोहिं। ता दिन ते छिन कुल न परत है सत्य कहत हौं तोहिं। —सारा.२२१। **(२) स्वास्थ्य, आरोग्य। (३) संतोष।**

संज्ञा पुं. [सं.] **(१) मधुर ध्वनि**। उ.—अरुन अधर छबि दास बिराजत। जब गावत कल मंदन—४७६। **(२) वीर्य।**

वि.—**(१) सुन्दर, मनोहर। (२) कोमल, मधुर।**

क्रि. वि.—[सं. कल्य—प्रत्यूष, प्रभात] **(१) आने वाला दिन। (२) आगे किसी समय। (३) बीता हुआ दिन।**

संज्ञा स्त्री. [सं. कला—अंग, भाग] **(१) ओर, पहलू। (२) अंग, अवयव।**

संज्ञा स्त्री.—[सं. कला=विद्या] **(१) कला**। उ.—राधे आज मंदनमद माती। सोहत सुन्दर संग स्याम के खरचत कोट काम कल थाती—सा. ५०। **(२) युक्ति, ढंग। (३) यन्त्र। (४) पेंच, पुरजा।**

वि.—[हिं. काला] **'काला' का संक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दों के शुरू में जुड़ता है।**

कलई—संज्ञा स्त्री. [अ.] **(१) राँगा। (२) राँगे का लेप जिसके चढ़ाने से बरतन में रखी हुई चीजें कसाती नहीं, मुलम्मा। (३) वह लेप जो किसी वस्तु पर रंग चढ़ाने के लिए लगाया जाय। (४) चमक-दमक, तड़क-भड़क।**

मुहा०—कलई आई उघरि—**कलई खुल गयी, सच्चा रूप सामने आ गया, वास्तविकता ज्ञात हो गयी**। उ.—(क) कीन्ही प्रीति पुहुप शुंडा की अपने काज के कामी। तिनको कौन परेखो कीजै जे हैं गरुड़ के गामी। आई उघरि प्रीति कलई सी जैसी खाटी आमी—३०८०। (ख) देखो माधौ की मित्राई। आई उघरि कनक कलई सी दै निज गये दगाई—२७१८।

(५) चूना।

कलकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) कोयल। (२) कबूतर। (३) हंस।**

वि.—**जिसका स्वर मीठा, कोमल या सुंदर हो।**

कलक—संज्ञा स्त्री. [अ. क़लक़] **दुख, चिंता।**

कलकना—क्रि. अ. [हिं. कलकल=शब्द] **शब्द करना, चिल्लाना।**

कलकल—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) जल के गिरने या बहने का शब्द। (२) कोलाहल, शोर।**

संज्ञा स्त्री.—**झगड़ा, कलह।**

कलकान, कलकानि, कलकानी—संज्ञा स्त्री. [अ.—क़लक़=रंज] **हैरानी, दुख**। उ.—नारी गारी बिनु नहिं बोलै पूत करै कलकानी। घर में आदर कादर कोसौं सीझत रैनि बिहानी।

कलकूजिका—वि. स्त्री. [सं.] **मधुर या कोमल ध्वनि करनेवाली।**

कलत्र—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) स्त्री, पत्नी। (२) दुर्ग, गढ़।**

कलधूत—संज्ञा पुं. [सं.] **चाँदी।**

कलधौत—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) सोना। (२) चाँदी। (३) सुंदर, मधुर या कोमल ध्वनि।**

कलन—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) उत्पन्न करना। (२) धारण करना। (३) संबंध।**

कलना—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) ग्रहण करना।**

(२) विशेष ज्ञान प्राप्त करना। (३) गणना, विचार। (४) लेन-देन, व्यवहार।

कलप—संज्ञा पुं. [सं. कल्प] (१) ब्रह्मा का एक दिन। (२) विधान, रीति। (३) कल्प।

कलपत—क्रि. अ. [हिं. कल्पना] दुखी होना, सोचना, खिन्न होकर विचारना। उ.—ब्रह्मादिक सनकादि महामुनि, कलपत दोउ कर जोर। बृन्दाबन ए तृन न भये हम लगत चरन के छोर—४७७।

कलपतर, कलपतरु—संज्ञा पुं. [सं. कल्पतरु] एक वृक्ष जो समुद्र से निकले चौदह रत्नों में माना जाता है और जो सभी इच्छाएँ पूरी करता है। उ.— सूरदास यह सब हित हरि को रोप्यौ द्वार सुभगति कलपतर —१० उ.–७०।

कलपना—क्रि. अ. [सं. कल्पना = (दुख की) उद्भावना करना] (१) दुखी होना, बिलखना। (२) कल्पना करना।

संज्ञा स्त्री. = उद्भावना, अनुमान, कल्पना।

कलपाना—क्रि. स. [हिं. कलपना] दुखी करना, रुलाना।

कलपै—क्रि. अ. [हिं. कलपना] विलाप करता है, विलखता है, दुखी होता है। उ.—प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ। पोषन भरन बिसंभर साहब जो कलपै सो काँचौ—१–३२।

कलबल—वि. [अनु.] अस्पष्ट (स्वर)। उ.—(क) अलप दसन, कलबल करि बोलनि, बुधि नहिं परत बिचारी। बिकसित ज्योति अधर-बिच, मानौ बिधु मैं बिज्जु उज्यारी—१०–६१। (ख) स्याम करत माता सौं, झगरौ, अटपटात कलबल करि बोल—१०–६४। (ग) गहि मनि-खंभ डिंभ डग डोलैं। कलबल बचन तोतरे बोलैं—१०–११७।

संज्ञा पुं.—शोरगुल, हल्ला।

संज्ञा पुं. [सं. कला + बल] उपाय, युक्ति। उ.— लगे हुलसन मेघ मंगल भरे बिथक सजोर। करन चाहत राख रोके काम कलबल छोर—सा. ६१।

कलबूत—संज्ञा पुं. [फा. कालबुद] (१) साँचा। (२) ढाँचा।

कलभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का बच्चा। (२) ऊँट का बच्चा। (३) धतूरा।

कलम—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लिखने का उपकरण, लेखनी। (२) किसी पेड़-पौधे की वह मुलायम और नयी टहनी जो दूसरी जगह या पेड़ में लगाने के लिए काटी जाय। (३) वह पौधा जो कलम से तैयार हो। (४) चित्रकारों की कूची।

कलमख—संज्ञा पुं. [सं. कल्मष] (१) पाप, दोष। (२) कलंक। (३) धब्बा।

कलमना—क्रि. स. [हिं. कलम] काटना, टुकड़े करना।

कलमलना, कलमलाना—क्रि. अ. [अनु.] अंग या शरीर का इधर-उधर हिलना-डोलना।

कलमलात—क्रि. अ. [हिं. कलमलाना] शरीर के अंग इधर-उधर हिलते-डोलते हैं, कुलबुलाते हैं। उ.— कौन कौन की दसा कहौं सुन सब ब्रज तिनते पर। निसि दिन कलमलात सुन सजनी सिर पर गाजत मदन अर—२७६४।

कलमष, कलमस—संज्ञा पुं. [सं. कल्मष] पाप, अघ। उ.—जौ पै यहै बिचार परी। तौ कत कलि-कलमष लूटन कौं, मेरी देह धरी—१–२११।

कलमा—संज्ञा पुं. [अ. कल्मः] (१) वाक्य, बात। (२) इसलाम के मूलमंत्र का वाक्य।

कलमुहाँ—वि. [हिं. काला + मुँह] (१) जिसका मुँह काला हो। (२) कलंकित, लांछित।

कलरव—संज्ञा पुं. [सं. कल = सुंदर + रव = शब्द] (१) मधुर शब्द। उ.—नूपुर-कलरव मनु हंसनि सुत रचे नीड़, दै बाँह बसाए—१०–१०४। (२) कोयल। (३) कबूतर।

कलरौ—संज्ञा पुं. [सं. कलरव] मधुर ध्वनि।

कलवरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कलवार] शराब की दूकान।

कलवार—संज्ञा पुं. [सं. कल्यपाल, प्रा. कल्लवाल] शराब बनाने-बेचने वाला।

कलश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घड़ा, गगरा। उ.—कनक कलश कुच प्रगट देखियत आनँद कंचुकि भूली—२५६१। (२) मंदिर का शिखर। (३) चोटी, सिरा। (४) प्रधान व्यक्ति।

कलशी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलश] (१) गगरी। (२) मंदिर आदि का कँगूरा।

कलस—संज्ञा पुं. [सं. कलश] **मंदिर-महल आदि का शिखर या कँगूरा।** उ.—ऊँचे मंदिर कौन काम के, कनक-कलस जो चढ़ाए। भक्त-भवन मैं हौं जु बसत हौं, जद्यपि तृन करि छाए—१-२४३।

कलसा—संज्ञा पुं. [सं. कलश] **गगरा, घड़ा।** उ.—हरि पर सर सरवर पर कलसा कलसा पर ससि भान—२१६१।

कलसी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलश] **(१) गगरी, कलसिया। (२) छोटे कँगूरे। (३) मंदिर का छोटा शिखर या कँगूरा।**

कलहंस—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) राजहंस। (२) श्रेष्ठ राजा। (३) ईश्वर, ब्रह्म।**

कलह—संज्ञा पुं. [सं.] **विवाद, झगड़ा।** उ.—(क) काहे कौं कलह नाध्यौ, दारुन दाँवरि बाँध्यौ, कठिन लकुट लै तैं त्रास्यौ मेरैं भैया—३७२। (ख) सुनत स्याम कोकिल सम बानी निकसे अति अतुराई (हो)। माता सौं कछु करत कलह हे रिस डारी बिसराई (हो)—७००। **(२) युद्ध, संघर्ष।** उ.—निरखि नैन रसरीति रजनि रुचि काम कटक फिरि कलह मच्यौ—पृ० ३५० (६७)।

कलहकारी—वि. [सं. कलह + हिं. कारी (स्त्री.)] **कलह करनेवाली।**

कलहनीपतिपितापुत्री— संज्ञा स्त्री. [सं. कलहिनी = (शनि की स्त्री का नाम) + पति (कलहिनी का पति = शनि) + पिता (शनि का पिता = सूर्य) + पुत्री (सूर्य की पुत्री = यमुना)] **यमुना नदी।** उ०—कलहनी-पति-पिता-पुत्री तकत बनत न आज। कौन जानत रहे यह बिनु संभवन को काज —सा० ३८।

कलहांतरिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] **वह नायिका जो पहले तो नायक का तिरस्कार करे, फिर पछताने लगे।**

कलहा—वि. [सं. कलह] **झगड़ालू, कलहप्रिय।** उ.—कलहा, कुढ़ी, मूष रोगी अरु काहूँ नैंकु न भावै—१-१८६।

कलहास—संज्ञा पुं. [सं.] **वह हास जिसमें कोमल ध्वनि हो।**

कलहिनी—वि. स्त्री. [सं.] **झगड़ालू।**
संज्ञा स्त्री.—**शनि की स्त्री।**

कला—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) अंश, भाग। (२) चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग। (३) कार्य-कुशलता। (४) विभूति। (५) शोभा, छटा, प्रभा। (६) ज्योति, तेज। (७) विद्या, शास्त्र।** उ.—कोक-कला वितपन्न भई हौ कान्हरूप तनु आधा—१४३७। **(८) सूर्य का बारहवाँ भाग। (९) अग्निमंडल के दस भागों में एक। (१०) समय का एक छोटा भाग। (११) करतूत, करनी, कौतुक, लीला (व्यंगात्मक)।** उ.—माधौ, नेकु हटकौ गाइ। ...। छहौं रस जौ धरौं आगैं, तउ न गंध सुहाइ। और अहित अभच्छ भच्छति कला बरनि न जाइ—१-५६। **(१२) कौतुक, खेल, क्रीड़ा।** उ.—(क) अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल। ......। माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल। कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल—१-१५३। (ख) ना हरि भक्ति, न साधु समागम, रह्यौ बीच ही लटकैं। ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कैं—१-२९२। (ग) अज, अबिनासी अमर प्रभु जनमै मरै न सोइ। नट वत करत कला सकल बूझै बिरला कोइ—२-३६। **(१३) चतुरता, कुशलता।** उ.— रचि-प्रचि सोंचि सँवारि सकल अँग चतुर चतुराई ठानी। दृष्टि न दई रोम रोमनि प्रति इतनहिं कला नसानी—१३२१। **(१५) छल, कपट, धोखा। (१४) हीला, बहाना। (१६) उपाय, ढंग, युक्ति।** उ.—रहेउ दुष्ट पचिहार दुसासन कछू न कला चलाई—सारा. ७६६। **(१७) यन्त्र, पेंच।**

कलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कलाची] **हथेली से जुड़ा हुआ हाथ का भाग, मणिबंध, गट्टा, पहुँचा।**

कलाकर—संज्ञा पुं. [सं.] **चन्द्रमा।**

कलाकौशल—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) कला में कुशलता, कारीगरी। (२) शिल्प।**

कलात्मक—वि. [सं.] **(१) कलापूर्ण। (२) कला सम्बन्धी।**

कलाद—संज्ञा पुं. [सं.] **सोनार।**

कलादा—संज्ञा पुं. [सं. कलाप, हिं. कलावा] हाथी की गर्दन का वह भाग जहाँ महावत बैठता है, कलावा, किलावा।

कलाधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चन्द्रमा। (२) शिव। (३) कला का ज्ञाता।

कलानाथ, कलानिधि—संज्ञा पुं. [सं.] चन्द्रमा।

कलानिधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कला का आश्रय। (२) विविध कलाओं का स्वामी।

कलाप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह। (२) मोर की पूँछ। (३) तरकश। (४) चंद्रमा। (५) भूषण, गहना।

कलापति—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

कलापिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात्रि। (२) मोरनी।

कलापी—संज्ञा पुं. [सं. कलापिन्] (१) मोर (२) कोयल।

वि.—(१) तरकश बाँधे हुए। (२) समूह में रहने वाला।

कलार, कलाल—संज्ञा पुं. [सं. कल्यपाल] मद्य बेचने वाला।

कलावंत—संज्ञा पुं. [सं. कलावान] (१) संगीतज्ञ। (२) कलाकुशल, नट।

कलावती—वि. स्त्री. [सं.] (१) जो कला में कुशल हो। (२) सुन्दर, शोभायुक्त।

कलास—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाजा जिसपर चमड़ा चढ़ा रहता था। उ.—धनुष कलास सही सब सिखि कै भई सयानी गानति। सूर सुन्दरी आपुही कहा तू सर संधानति—२६५१।

कलाहक—संज्ञा पुं. [सं.] काहल नामक बाजा।

कलिंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पर्वत जिससे जमुना नदी निकलती है। उ.—उर कलिंद तें धँसि जल धारा उदर धरनि परवाह। जाति चली धारा ह्वै अध कौं, नाभी ह्रद अवगाह—६३७। (२) सूर्य।

कलिंदजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कलिंद+जा] कलिंद पर्वत से निकलने वाली जमुना नदी।

कलि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कलियुग, चार युगों में चौथा युग, इसमें ४३२००० वर्ष होते हैं। ईसा के ३१०२ वर्ष पूर्व से इसका आरम्भ माना जाता है। प्राच्य पौराणिक विचारानुसार अधर्म और पाप की इस युग में प्रधानता रहती है। (२) कलह, झगड़ा। (३) पाप। (४) वीर। (५) तरकश। (६) दुख। (७) युद्ध।

वि.—श्याम, काला।

कलिकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] युद्ध।

कलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कली। (२) एक प्राचीन बाजा। (३) मुहूर्त्त। (४) भाग।

कलिकान—वि. [सं. कलि+हिं. कान] हैरान, परेशान।

कलिकाल—संज्ञा पुं. [सं.] कलियुग।

कलित—वि. [सं.] (१) सुन्दर, मधुर। उ.—जानु जंघ त्रिभंग सुंदर कलित कंचन दंड—१-३०७। (२) प्रसिद्ध। (३) मिला हुआ, प्राप्त। (४) सजा हुआ, शोभायुक्त।

कलिनि—संज्ञा स्त्री. बहु. [सं. कली] कलियाँ, कलिकाएँ। उ.—अँकुरित तरु पात,उकठि रहे जे गात, बनबेलि प्रफुलित कलिनि कहर के—१०-३०।

कलिमल—संज्ञा पुं. [सं.] पाप, कलुष।

कलिमलहिं—संज्ञा पुं. सवि. [सं. कलिमल+हिं (प्रत्य.)] पाप या कलुष को। उ.—यह भव-जल कलिमलहिं गहे है, बोरत सहस प्रकारौ। सूरदास पतितनि के संगी, बिरदहिं नाथ सम्हारो—१-२०६।

कलियाना—क्रि. अ. [हिं. कली] कलियाँ निकलना, कलियों से युक्त होना।

कलियारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कलिहारी] एक विषैला पौधा।

कलियुग—त्रि. [सं.] चार युगों में चौथा।

कलियुगी—वि. [सं.] (१) कलियुग का। (२) बुरी आदतवाला।

कलिल—वि. [सं.] (१) मिला हुआ, मिश्रित। (२) घना, दुर्गम।

संज्ञा पुं.—समूह।

कली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बिना खिला फूल, बोंडी, कलिका। (२) कन्या।

कलुख, कलुष—संज्ञा पुं. [सं. कलुष] (१) मैल। (२) पाप, दोष।

कलुखो—वि. [सं. कलुष] **कलंकी, पापी।**
कलुषाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कलुष+आई (प्रत्य.)] (१) **बुद्धि या चित्त का विकार, दोष। (२) पाप, मलिनता।**

कलुषित—वि. [सं.] (१) **दोषयुक्त। (२) मलिन।**
कलुषी—वि.स्त्री. [सं.] (१) **पापिनी। (२) मैली, गंदी।**
वि. पुं. [सं. कलुषिन्] (१) **मैला, गंदा। (२) पापी, दोषी।** उ.—असरन-सरन नाम तुम्हारौ, हौं कामी, कुटिल निभाउँ। कलुषी अरु मन मलिन बहुत मैं सेंत-मेंत न बिकाउँ—१-१२८।

कलूटा—वि. [हिं. काला+टा (प्रत्य.)] **बहुत काला।**
कलेऊ—संज्ञा पुं. [हिं. कलेवा] **जलपान, कलेवा।** उ.—(क) करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपर्यौ अरु चोटी—१०-१६३। (ख) उठिए स्याम कलेऊ कीजै—१०-२११। (ग) तिनहिं कह्यो तुम स्नान करौ ह्याँ हमहिं कलेऊ देहु—२५५३। (घ) चारो भ्रात मिल करत कलेऊ मधु मेवा पकवान— सारा. १७१।

कलेजा—संज्ञा पुं. [सं. यकृत] (१) **हृदय, दिल। (२) छाती, वक्षस्थल। (३) साहस, जीवट।**
कलेवर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **शरीर, देह।** उ.— चरचित चंदन, नील कलेवर, बरषत बूँदनि सावन—८-१३। (२) **ढाँचा।**

कलेवा—संज्ञा पुं. [सं. कल्यवर्त्त, प्रा. कल्लवट्ट] (१) **प्रातःकाल का हल्का भोजन, जलपान।** उ.— कमल नैन हरि करौ कलेवा। माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दधि भाँति-भाँति के मेवा— १०-२१२। (२) **यात्रा के लिए साथ लिया हुआ भोजन, पाथेय, संबल। (३) विवाह के दूसरे दिन वर का सखाओं सहित ससुराल जाकर भोजन करने की प्रथा, खिचड़ी, बासी।**

कलेस—संज्ञा पुं. [सं. क्लेश] **दुख, कष्ट, व्यथा।** उ.—(क) प्रभु, मोहिं राखियै इहिं ठौर। केस गहत कलेस पाऊँ, करि दुसासन जोर—१-२५३। (ख) जलपति-भूषन उदित होत ही पारत कठिन कलेस—सा. २७। (ग) सूर स्याम सुजान संग ह्वै चली बिगत कलेस—सा. ५६।

कलै—संज्ञा स्त्री. [सं. कला] (१) **कला, चतुरता, कुशलता। (२) युक्ति, उपाय, रीति, ढंग।** उ.—अजहूँ कह्यौ मानि री मानिनि उठि चलि मिलि पिय को जिय लैहै। सूर मान गाढ़ो त्रिय कीन्हो, कहै बात कोउ कोटि कलै—२२१०।

कलोर—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्या] **वह गाय जो बरदाई या ब्याई न हो।**

कलोल—संज्ञा पुं. [सं. कल्लोल] **आमोद-प्रमोद, क्रीड़ा, आनन्द।** उ.—(क) विद्याधर-किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति—१०-६। (ख) मिलि नाचत, करत कलोल, छिरकत हरद दही। मनु बरषत भादौं मास, नदी घृत दूध दही—१० २४। (ग) दोउ कपोल गहि कै मुख चूमति, बरष-दिवस कहि करति किलोल—१०-६४।

कलोलना—क्रि. अ. [हिं. कलोल] **आनंद करना, मौज उड़ाना, क्रीड़ा या विहार करना।**

कलोलै—संज्ञा पुं. [हि. कलोल] **आनन्द, क्रीड़ा।** उ.—इन घोसनि रूसनो करति हौ करिहौ कबहिं कलोलै —२२७५।

कलौंस—वि. [हिं. काला + औंस (प्रत्य.)] **कालापन लिये हुए।**
संज्ञा पुं.—(१) **स्याही, कालिख। (२) कलंक।**

कल्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **दंभ, पाखंड। (२) मैल। (३) पाप।**

कल्कि—संज्ञा पुं. [सं.] **विष्णु का दसवाँ अवतार।**
कल्की—संज्ञा पुं. [सं. कल्कि] **विष्णु के दसवें अवतार का नाम जो संभल (मुरादाबाद) में एक कुमारी कन्या के गर्भ से होगा।** उ.—बासुदेव सोई भयौ, बुद्ध भयो पुनि सोइ। सोई कल्की होइहै, और न द्वितिया कोइ—२-३६।

कल्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **विधि, विधान। (२) प्रातःकाल। (३) एक प्रकार का नृत्य। (४) काल का एक विभाग जो ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष का होता है और ब्रह्मा का एक दिन कहलाता है।**
वि.—**तुल्य, समान।**

कल्पक—वि.-[सं.] (१) कल्पना करने वाला। (२) काटने वाला।

कल्पतरु—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष जो 'समुद्र से निकले चौदह रत्नों में गिना जाता है। प्राणी की इच्छा पूरी करने के लिए यह प्रसिद्ध है। उ.—तेरे चरन सरन त्रिभुवनपति मेटि कल्प तू होहि कल्पतरु—२२६६।

कल्पद्रुम—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष जो समुद्र से निकले चौदह रत्नों में माना जाता है।

कल्पन—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्पना] कल्पना, अनुमान। उ.-जौ मन कबहुँक हरि कौ जाँचै।......। निसि दिन स्याम सुमिरि जस गावै, कल्पन मेटि प्रेम रस माँचै —२-११।

कल्पना—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बनावट, रचनाक्रम। (२) अनुमान, उद्भावना। उ.—जैसी जाकैं कल्पना तैसहि दोउ आए। सूर नगर नर-नारि के मन चित्त चोराए—२५७६। (३) एक वस्तु में अन्य का आरोप। (४) मान लेना। (५) गढ़ी हुई बात।

कल्पलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वृक्ष जिसकी गिनती समुद्र से निकले चौदह रत्नों में है। यह प्राणियों की इच्छा पूरी करता है और इसका नाश कभी नहीं होता।

कल्पवृक्ष, कल्पवृच्छ—संज्ञा पुं. [सं. कल्पवृक्ष] देवलोक का एक वृक्ष।

कल्पशाखी—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पवृक्ष।

कल्पांत—संज्ञा पुं. [सं. कल्प + अंत] प्रलय।

कल्पित—वि. [सं. कल्पना] (१) रचा हुआ, निकला हुआ, उद्भूत। उ.—चर-अचर-गति बिपरीत। सुनि बेनु-कल्पित गीत—६२३। (२) मनमाना, मनगढ़ंत। (३) बनावटी, अयथार्थ, नकली।

कल्मष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाप। (२) मैल।

कल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सबेरा। (२) मधु, शराब।

कल्याण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुभ, भलाई। (२) सोना। (३) एक राग जो श्रीराग का सातवाँ पुत्र माना जाता है और जो रात के पहले पहर में गाया जाता है। उ.—सूरदास प्रभु मुरली धरे आवत राग कल्याण (कल्यान) बजावत—२३४७।

वि.—शुभ, कल्याणप्रद।

कल्याणी—वि. [सं.] कल्याण करनेवाली।

संज्ञा स्त्री.—(१) गाय। (२) प्रयाग की एक देवी।

कल्यान—संज्ञा पुं. [सं. कल्याण] (१) मंगल, शुभ, भलाई, कल्याण। उ.—आपुनौ कल्यान करि लै, मानुषी तन पाइ—१-३१५। (२) एक राग जो रात के पहले पहर में गाया जाता है। उ.—सूर स्याम अति सुजान गावत कल्यान तान सपत सुरन कल इते पर मुरलिका बरषी री—२३६२।

कल्योना—संज्ञा पुं. [हिं. कलेवा] कलेवा।

कल्ला—संज्ञा पुं. [सं. करीर = बाँस का करैल] अंकुर, गोंफा।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] गाल का भीतरी भाग, जबड़ा।

संज्ञा पुं. [हिं. कलह] झगड़ा, विवाद।

कल्लाना—क्रि. अ. [सं. कड् या कल् = संज्ञाहीन होना] (१) जलन होना। (२) दुखदायी होना।

कल्लोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लहर, तरंग। (२) उमंग, मौज।

कल्लोलिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वह नदी जिसमें तरंग या लहरें हों।

कल्हरना—क्रि. अ. [हिं. कड़ाह+ना (प्रत्य०)] भुनना, तला जाना।

कल्हारना—क्रि. स. [हिं. कल्हरना] भूनना, तलना।

क्रि. अ. [सं. कल्ल = शोर करना] कराहना, चिल्लाना।

कवच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) युद्ध में पहनने की लोहे की पोशाक, जिरहबकतर। उ.—बीरा हार चीर चोली छबि सैना सजि सृङ्गार। परन बचन सन्नाह कवच दै जोरौ सूर अपार—१५६६। (२) छाल, छिलका। (३) तंत्र-शास्त्र का एक अंग। (४) बड़ा नगाड़ा, डंका।

कवन—वि. [हिं. कौन] कैसी, किस प्रकार की। उ.—तोहिं कवन मति रावन आई—६-११७।

सर्व.—किसने। उ.—सुधाधर मुख पै रुखाई धौ कवन कह थाप—सा. ३६।

कवने—सर्व. [हिं. कवन, कौन] किसने। उ.—कंचन को मृग कवने देख्यौ किन बाँध्यौ गहि डोरी—३०२८।

कवर—संज्ञा पुं. [सं. कवल] **ग्रास, कौर**। उ.—कबहूँ कवर खात मिरचन की लागीं दसन टकोर। भाज चले तब गहे रोहिनी लाई बहुत निहोर—सारा.-६०८।

संज्ञा पुं. [सं.] **(१) बाल, केश। (२) गुच्छा। (३) लोनापन।**

वि.—**(१)गुथा हुआ। (२) मिला हुआ।**

कवरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **चोटी, जूड़ा, वेणी**। उ.—(क) गति मराल अरु बिंब अधर छबि, अहि अनूप कवरी —६-६३। (ख) अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित गूँथे सुमन रसालहिं। कवरी अति कमनीय सुभग सिर राजति गोरी बालहिं। (ग) सुंदर स्याम गही कवरी कर मुक्तामाल गही बलवीर—१०-१६१। (घ) अरुन नैनमुख सरद निसाकर कुसुम गलित कवरी—२१०६।

कवल—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) कौर, ग्रास, गस्सा। (२) कुल्ली का जल।**

संज्ञा पुं.—**किनारा, कोना।**

संज्ञा पुं. [देश.] **(१) एक पत्ती। (२) एक तरह का घोड़ा।**

कवलित—वि. [सं. कवल] **खाया हुआ, ग्रसित।**

कवष—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) ढाल। (२) एक प्राचीन ऋषि।**

कवाट—संज्ञा पुं. [सं.] **कपाट, किवाड़।**

कवि—संज्ञा पुं.—[सं.] **(१) कविता करनेवाला, काव्य रचनेवाला। (२) ऋषि। (३) ब्रह्मा। (४) शुक्राचार्य। (५) सूर्य।**

कविकुल—संज्ञा पुं. [सं.] **कवियों का समूह या वर्ग**। उ.—लाल गोपाल बाल-छबि बरनत कविकुल करिहै हास री—१०-१३६।

कविता, कविताई—संज्ञा स्त्री. [सं. कविता] **काव्य, कविता।**

कवित्त—संज्ञा पुं. [सं. कवित्व] **(१)कविता, काव्य। (२) एक प्रसिद्ध छन्द जिसमें ३१ अत्तर होते हैं।**

कवित्व—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) कविता रचने की शक्ति। (२) काव्य गुण।**

कविनासा—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्मनाशा] **कर्मनाशा।**

कविराज, कविराय—संज्ञा पुं. [सं. कविराज] **श्रेष्ठ कवि।**

कविलास—संज्ञा पुं. [सं. कैलास] **(१) कैलाश। (२) स्वर्ग।**

कशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) रस्सी (२) कोड़ा, चाबुक।**

कश्चित—वि. सर्व. [सं.] **कोई।**

कष—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) सान। (२) कसौटी। (३) परीक्षा।**

कषाय—वि. [सं.] **(१) कसैया, बकठा। (२) सुगंधित। (३) रँगा हुआ। (४) गेरू के रंग का।**

संज्ञा पुं.—**(१) कसैली वस्तु। (२) गोंद। (३) गाढ़ा रस। (४) कलियुग।**

कष्ट—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) पीड़ा, दुख, तकलीफ। (२) संकट, मुसीबत।**

कस—संज्ञा पुं. [सं. कष] **(१) परीक्षा, कसौटी, जाँच। (२) तलवार की लचक।**

संज्ञा. पुं. [हिं. कसना] **(१) बल, जोर। (२) दबाव, वश, अधिकार।**

संज्ञा पुं. [सं. कषाय, हिं. कसाव] **सार, तत्व।**

क्रि. वि.—**(१) कैसे, क्योंकर। (२) क्यों।**

कसक--संज्ञा स्त्री. [सं. कष=आघात, चोट] **(१)पीड़ा, दर्द, टीस। (२) पुराना बैर। (३) अरमान, अभिलाषा। (४) दूसरे को दुखी देखकर स्वयं दुखी होना, सहानुभूति।**

कसकत—क्रि. अ. [हिं.कसक, कसकना] **दर्द करता (है), सालता (है), टीसता (है)**। उ—नाहीं कसकत मन, निरखि कोमल तन, तनिक से दधि काज, भली री तू मैया—३७२।

कसकना—क्रि. अ. [हिं. कसक] **दर्द करना, टीसना।**

कसक्यौ—क्रि. अ. [हिं. कसक, कसकना] **कसका, दर्द हुआ, टीस हुई**। उ.—जसुदा तोहिं बाँधि क्यों आयौ। कसक्यौ नाहिं नैंकु मन तेरौ, यहै कोखि को जायौ—३७४।

कसत—क्रि. अ. [हिं. कसना] **परखते हैं, जाँचते हैं।** उ.—सूर प्रभु हँसत, अति प्रभु प्रीति उर में बसत इन्द्र को कसत हरि जग धाता।

कसन—संज्ञा स्त्री. [हिं. कसना] **(१) कसने की क्रिया**

या भाव। (२) कसने का ढंग। (३) कसने की रस्सी या डोरी।

कसना—क्रि. स. [सं. कर्षण, प्रा. कस्सण] (१) बंधन खींचना या तानना। (२) जकड़ना, बाँधना। (३) सवारी तैयार करना। (४) दबा दबाकर भरना।

क्रि. अ.—(१) बंधन खिंच जाना, जकड़ जाना। (२) बँधना। (३) सवारी तैयार होना। (४) खूब भर जाना।

क्रि. स.—(१) कसौटी पर घिसकर परखना। (२) परीक्षा लेना, जाँचना। (३) घी में तलना।

क्रि. स. [सं. कषण = कष्ट देना] दुख देना, कष्ट पहुँचाना।

संज्ञा पुं.—कसने या बाँधने की डोरी, रस्सी।

कसनि, कसनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कसना] (१) कसने की रस्सी, बेठन। (२) कंचुकी, अँगिया। (३) कसौटी। (४) परख, जाँच।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कसाव] कसैली वस्तु का पुट देने के लिए उसमें डुबोना।

कसब—संज्ञा पुं. [अ.] (१) काम, परिश्रम, मेहनत। उ.—आन देव की भक्ति-भाइ करि, कोटिक कसब करैगौ। सब वे दिवस चारि मनरंजन, अंत काल बिगरैगौ—१-७५। (२) व्यभिचार।

कसम—संज्ञा स्त्री. [अ. क़सम] शपथ, सौगंध।

कसमसाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) रगड़ खाना, कुलबुलाना। (२) ऊबना, उकताना। (३) घबराना, बेचैन होना। (४) हिचकना, टाल-मटोल करना।

कसर—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) कमी, त्रुटि। (२) बैर, मनमोटाव। (३) हानि, घाटा। (४) दोष, विकार।

कसरत—संज्ञा स्त्री. [अ.] व्यायाम, मेहनत।

कसरि—संज्ञा स्त्री. [अ. कसर] कमी, न्यूनता, त्रुटि। उ.—अब कछू हरि कसरि नाहीं, कत लगावत बार? सूर प्रभु यह जानि पदवी, चलत बैलहिं आर—१-१९९।

कसाई—संज्ञा पुं. [अ. कस्साब] बधिक, हत्यारा। उ.—श्रीधर बाँभन करम कसाई। कह्यौ कंस सौं बचन सुनाई। प्रभु, मैं तुम्हरौ आज्ञाकारी। नंद-सुवन कौं आवौं मारी—१०-५७।

कसाना—क्रि. अ. [हिं. काँसा] खट्टी चीज का कसैला हो जाना।

क्रि. स. [हिं. 'कसना' का प्रे.] कसवाना।

कसार—संज्ञा पुं. [सं. कृसर] भुना आटा जिसमें चीनी मिला दी गयी हो, पँजीरी।

कसाला—संज्ञा पुं. [सं. कष=पीड़ा, दुख] (१) दुख, कष्ट। (२) परिश्रम, मेहनत।

कसाव—संज्ञा पुं. [सं. कषाय] कसैलापन।

संज्ञा पुं.—खिंचाव, तनाव।

कसावर—संज्ञा पुं. [देश०] एक देहाती बाजा।

कसि—क्रि. स. [हिं. कसना] अच्छी तरह बाँधकर, जकड़कर। उ.—(क) तजौ बिरद कै मोहिं उधारौ, सूर कहै कसि फेंट—१-१४५। (ख) कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये—१०-२४।

कसी—संज्ञा स्त्री. [सं. कशक] एक पौधा।

वि. [हिं. कसना] तनी, तनी हुई। उ.—किरनि कटाच्छ बान बर साँधे भौंह कलंक समान कसी री—१८६८।

कसीटना—क्रि. स. [हिं. कसना] कसना, रोकना।

कसीस—संज्ञा पुं. [सं. कासीस] एक खनिज पदार्थ।

संज्ञा स्त्री.—(१) निर्दयता। (२) कोशिश।

कसीसना—क्रि. अ. [हिं. कसना = खींचना] खींचना।

कसूँभी—वि. [हिं. कुसुम] (१) कुसुम के रंग का। (२) कुसुम के फूलों के रंग में रँगा हुआ।

कसूर—संज्ञा पुं. [अ. क़सूर] अपराध, दोष।

कसे—क्रि. स. [हिं. कसना] बाँधे हुए, जकड़कर बाँधे हुए। उ.—अलख-अनंत-अपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तूनीर—९-२६।

कसेरा—संज्ञा पुं. [हिं. काँसा + एरा (प्रत्य०)] फूल-काँसे आदि के बरतन ढालने-बेचनेवाला।

कसैया—संज्ञा पुं. [हिं कसना] (१) कसकर बाँधनेवाला (२) परखने, जाँचनेवाला, पारखी।

कसैला—वि. [हिं. कसाव+ऐला (प्रत्य.)] जिसके स्वाद में कसैलापन हो।

कसौंजा, कसौंदा—संज्ञा पुं. [सं. कासमर्द, पा. कासमद्द] एक पौधा या उसका फूल।

कसौटिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कषपट्टी, हिं. कसौटी] **कसौटी, सोना परखने का पत्थर।** उ.—तनिक कटि पर कनक-करधनि, छीन छबि चमकाति। मनौ कनक कसौटिया पर, लीक-सी लपटाति—१०-१८४।

कसौटी—संज्ञा स्त्री. [सं. कषपट्टी] (१) **एक काला पत्थर जिसपर रगड़ कर सोने की परख की जाती है। शालग्राम इसी पत्थर के होते हैं।** (२) **परख, परीक्षा।** उ.—गोरस मथत नाद इक उपजत, किंकिनि धुनि सुनि स्रवन रमापति। सूर स्याम अँचरा धरि ठाढ़े, काम कसौटी कसि दिखरावति—१०-१४६। (ख) प्रीति पुरातन मोरी उनसों नेह कसौटी तोलै—३०६१।

कस्तूरि, कस्तूरिका, कस्तूरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कस्तूरी] **मृग विशेष की नाभि से निकलनेवाला एक सुगंधित द्रव्य।** उ.—उज्ज्वल पान कपूर कस्तूरी। आरोगत मुख की छबि रूरी—३९६।

कस्यप—संज्ञा पुं. [सं. कश्यप] **एक प्रजापति जो सुरों और असुरों के पिता थे।**

कस्यौ—क्रि. स. [सं. कर्षण, प्रा. कस्सण, हिं. कसना] **जकड़कर बाँधा।** उ.—(क) सुचि करि सकल बान सुधे करि, कटि-तट कस्यौ निषंग—६-१५८। (ख) सूर प्रभु देखि नृप क्रोध पुरी धरी कस्यौ कटि पीतपट देव राजै—२६१२।

कहँ—प्रत्य. [सं. कक्ष, प्रा. कच्छ] **के लिए। (अवधी में यह द्वितीया और चतुर्थी का चिन्ह है)।**

क्रि. वि. [हिं. कहाँ] **कहाँ, किस जगह।**

यौ.—कहँ लगि—**कहाँ तक।** उ.—रसना एक, अनेक स्याम-गुन कहँ लगि करौं बखानी—१-११।

कहंत—क्रि. स. [सं. कथन, प्रा. कहना] **कहता है, बोलता है।** उ.—जिय अति डरयौ, मोहि मति सापै व्याकुल बचन कहंत। मोहिं बर दियौ सकल देवनि मिलि, नाम धरयौ हनुमंत—६-८३।

कह—वि.—[सं. कः] **क्या।** उ.—जाँचक पैं जाँचक कह जाँचै, जौ जाँचै तौ रसनाहारी—१-३४।

कहत—क्रि. स. [सं. कथन, प्रा. कहन, हिं. कहना] (१) **कहने में, वर्णन करने में।** उ.—अबिगत गति कछु कहत न आवै। ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ रस अंतर-गत हीं भावै—१-२। (२) **कहता है, वर्णन करता है** उ.—जग जानत जदुनाथ जिते जन निज भुज स्रम सुख पायौ। ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर-उतरायौ—१-१५।

कहति—क्रि. स. [हिं. कहना] **वर्णन करती है।** उ—बकी जु गई घोष मैं छल करि, जसुदा की गति कीनी। और कहति स्रुति वृषभ व्याध की जैसी गति तुम कीनी—१-१२२।

कहती—क्रि. स. स्त्री. [हिं. कहना] **वर्णन करती, शब्दों में अभिप्राय बताती।** उ.—जो मेरी अखियनि रसना होती कहती रूप बनाइ री—१०-१३६।

कहन—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहने या बताने के लिए।** उ.—बिहवल मति कहन गए, जोरे सब हाथा—६-६६।

मुहा.—कहन सुनन को—**केवल कहने भर को, नाम मात्र को।** उ.—सतजुग लाख बरस की आइ। त्रेता दस सहस्र कहि गाइ। द्वापर सहस एक की भई। कलिजुग सत संबत रह गयी। सोऊ कहन सुनन कौं रही। कलि मरजाद जाइ नहिं कही—१-२३०।

कहना—क्रि. स. [सं. कथन, प्रा. कहन] (१) **बोलना, अभिप्राय प्रकट करना।** (२) **प्रकट करना, रहस्य खोलना।** (३) **सूचना या खबर देना।** (४) **पुकारना, नाम रखना।** (५) **समझाना-बुझाना।** (६) **बनावटी बातें करके भुलावे में डालना।** (७) **भला-बुरा कहना।** (८) **कविता रचना।**

संज्ञा पुं.—**कथन, बात, अनुरोध।**

कहनि—संज्ञा स्त्री. [सं. कथन, हिं. कहन] (१) **वचन, बात, कथन।** (२) **करनी, करतूत।** उ.—तृन की आग बरत ही बुझि गई हँसि हँसि कहत गोपाल। सुनहु सूर वह करनि, कहनि यह, ऐसे प्रभु के ख्याल—५९८।

कहनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कथनी, प्रा. कहनी] (१) **कथा, कहानी।** (२) **बात, कथन।**

कहनाउत, कहनावत, कहनावति—संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना + आवत (प्रत्य.)] (१) **बात, कथन।** उ.—सुनहु सखी राधा कहनावति। हम देखे सोई इन देखे ऐसेहि

ताते कहि मन भावति—१६२९। (२) **चर्चा, प्रसंग।** उ.—कहाँ स्याम मिलि बैठी कबहूँ कहनावति ब्रज ऐसी। लूटहिं यह उपहास हमारौ यह तौ बात अनैसी —पृ. ३२४।

कहनूत—संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना + उत (प्रत्य)] **कहावत, कहनावत।**

कहर—संज्ञा पुं. [अ.] **विपत्ति, संकट।**

वि.—[अ. कह्हार] (१) **घोर, भयकर।** (२) **अपार, अथाह।**

कहरति—क्रि. अ. [हिं. कहरना] **पीड़ित है, कराहती है।** उ.—मोह विपिन में पड़ी कराहति हौं नेह जीव नहिं जात। सूरस्याम गुन सुमिरि सुमिरि वै अंतरगति पछितात—पृ. ३२६।

कहरना—क्रि. अ. [हिं. कराहना] **पीड़ा से 'आह' करना, कराहना।**

कहरी—वि. [हिं. कहर] **विपत्ति लानेवाला।**

कहल—संज्ञा पुं. [देश.] (१) **हवा के बंद हो जाने पर बढ़नेवाली गर्मी, उमस।** (२) **कष्ट।**

कहलना—क्रि. अ. [हिं. कहल] **अकुलाना, व्याकुल होना।**

कहलवाना, कहलाना—क्रि. स. [हिं. 'कहना' का प्रे.] (१) **कहने की क्रिया दूसरे से कराना।** (२) **संदेश भेजना।**

कहवनि—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहना है।** उ.—अब मोकौं उनसौं कहवनि है कछु मैं गई बुलावन। आपुहिं काल्हि कृपा यह कीन्ही अजिर गये करि पावन—२१६४।

कहवाँ—कि. वि. [हिं. कहाँ] **कहाँ।**

कहवाए—क्रि. स. [हिं. कहवाना] **कहलाये, प्रसिद्ध हुए।** उ.—(क) सूरजबंसी सो कहवाए। रामचंद्र ताही कुल आए—६-२। (ख) राजा उग्रसेन कहवाए —२६४३।

कहवाना—क्रि. स. [हिं. 'कहना' का प्रे.] (१) **कहलाना।** (२) **संदेश भेजना।**

कहवायौ—क्रि. स. [हिं. कहलाना] **कहा जाता है, समझा जाता है, माना जाता है।** उ.—बीरा लै आयौ सन्मुख तैं, आदर करि नृप कंस पठायो, जारि करौं परलय छिन भीतर, ब्रज बपुरौ केतिक कहवायौ—५६१।

कहवावत—क्रि. स. [हिं. कहवाना] **कहलाते हैं।** उ.—(क) सुंदर कमलन की सोभा चरन कमल कहवावत—१६७५। (ख) ऐसेहि जगतपिता कहवावत ऐसे घात करै सो दाता—१४२७। (ग) मधुकर अब भयौ नेह बिरानी। बाहर हेत हतो कहवावत भीतर काज सयानी—३३७५।

कहवावै—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहलाता है।** उ.—(क) सिव सनकादि अंत नहिं पावैं, भक्त-बछल कहवावै—४८२। (ख) वे हैं बड़े महर की बेटी तौ ऐसी कहवावै—१५६६।

कहवैयौ—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहलाना, प्रसिद्ध कराना।** उ.—राधा-कान्ह कथा ब्रज घर घर ऐसे जनि कहवैयौ—१४६८।

कहाँ—क्रि. वि. [सं. कुहः] **किस जगह, किस स्थान पर।**

संज्ञा पुं. [अनु.] **पैदा होने वाले बच्चे का शब्द।**

कहा—संज्ञा पुं. [सं. कथन, प्रा. कहन, हिं कहना] **कथन, बात, आज्ञा, उपदेश, कहना।**

क्रि. वि. [सं. कथम्] **कैसे, किस प्रकार के।** उ.—रूप देखि तुम कहा भुलाने मीत भए वनयाते—२५२८।

सर्व. [सं. कः] **क्या (ब्रज)।** उ.—कलानिधान सकल गुन सागर, गुरु धौं कहा पढ़ाये (हो)—१-७।

मुहा.—कहा हो—**क्या है, तुलना में कुछ नहीं है, तुच्छ है।** उ.—तुम जो प्यारी मोही लागत चंद्र चकोर कहा री हो। सूरदास स्वामी इन बातन नागरि रिझई भारी हो—१५६६।

वि.—**क्या।**

कहाइ—क्रि. स. [हिं. कहाना] **कहाकर, कहलाकर, प्रसिद्ध होकर।** उ.—(क) बेष धरि-धरि हरयौ परधन साधु-साधु कहाइ—१-४५। (ख) हौं कहाइ तेरौ, अब कौन कौ कहाऊँ—१-१६५।

कहाउति—संज्ञा स्त्री [हिं. कहावत] **कहावत** ।

कहाऊँ—क्रि. स. [हिं. कहाना] **कहलाऊँ** । उ.—(क) हौं कहाइ तेरौ, अब कौन कौ कहाऊँ— १–१६६ । (ख) जो तुम्हरे कर सर न गहाऊँ गंगासुत न कहाऊँ —सारा. ७८० ।

कहाऊँगो—क्रि. स. [हिं. कहाना] **कहलाऊँगा** ।

कहाए—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहलाये, प्रसिद्ध हुए** । उ.—तुम मोसे अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पठाए (हो) । सूरदास-प्रभु भक्त-बछल तुम, पावन-नाम कहाए (हो)—१–७ ।

कहाकही—संज्ञा स्त्री [हिं. कहना] **वादविवाद** ।

कहानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना] **(१) कथा, आख्यायिका । (२) झूठी या गढ़ी बात, अद्भुत बात** । उ.—(क)—कुटिल कुचाल जन्म की टेढ़ी सुंदरि करि घर आनी । अब वह नवन बधू ह्वै बैठी ब्रज की कहत कहानी— ३०८६ । (ख)—सिंह रहै जंबुक सरनागति देखी सुनी न अकथ कहानी—पृ. ३४३ (२०) ।

कहार—संज्ञा पुं. [सं. कं.=जल+हार अथवा सं. स्कंधभार] **एक शूद्र जाति जो पानी भरने और डोली उठाने का काम करती है** ।

कहाल—संज्ञा पुं. [देश.] **एक बाजा** ।

कहावत—क्रि. स. [हिं. कहाना] **कहलाते हैं, प्रसिद्ध हैं** । उ०—(क) कहावत ऐसे त्यागी दानि । चारि पदारथ दिए सुदामहिं अरु गुरु के सुत आनि— १–१३५ । (ख) इन्द्रीजित हौं कहावत हुतो, आरकौं समुझि मन माहिं ह्वै रह्यौ खीनौ—८–१० । (ग) रूप-रसिक लालची कहावत सो करनी कछु वैन भई—२५३७ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना] **(१) अनुभव की बात जो सुंदर ढंग से कही जाने के कारण प्रसिद्ध हो जाय । (२) कही हुई बात, उक्ति । (३) मृत्यु का संदेश या सूचना** ।

कहावै—क्रि. स. [हिं. कहाना] **कहलाता है, प्रसिद्ध है** । उ०—(क) साँचौ सो लिखहार कहावै । काया-ग्राम मसाहत करि कै, जमा बाँधि ठहरावै— १-१४२ । (ख) कामिनी धीरज धरै को सो कहावै री—६२६ ।

कहाहिं—क्रि. स. [हिं. कहाना] **कहलाते हैं** । उ०—(क) ऐसे लच्छन हैं जिन माहिं । माता, तिनसौं साधु कहाहिं—३–१३ । (ख) स्याम हलधर सुत तुम्हारे और कौन कहाहिं—२६२८ ।

कहि—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहना, कहने में समर्थ होना** ।

मुहा०—कहि परति—कह सकना, वर्णन कर सकना । उ०—काहू के कुल तन न बिचारत । अबिगत की गति कहि न परति है, ब्याध अजामिल तारत— १–१२ । कहि आयौ—**कह सका, मुँह से निकल गया** । उ०—करत बिबस्त्र द्रुपद-तनया कौं, सरन सब्द कहि आयौ । पूजि अनंत कोटि बसननि हरि अरि कौ गर्व गँवायौ—१–१६० । कहि न जाइ—**कहा नहीं जा सकता, वर्णन नहीं किया जा सकता** । उ— हरष अक्रूर हृदय न भाइ । नेम भूल्यौ ध्यान स्याम बलराम कौ हृदय आनन्द सुख कहि न जाय–२५५६ ।

कहिअहु—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहना, जाकर बताना, कह देना** । उ.—बिजै अधोमुख लेन सूर प्रभु कहिअहु बिपति हमारी—सा. उ. ३५ ।

कहिए, कहिए—क्रि. स. [हिं. कहना] **वर्णन कीजिए, बताइए** । उ.—सखा भीर लै पैठत घर मैं आपु खाइ तौ सहिऐ । मैं जब चली सामुहैं पकरन, तब के गुन कहा कहिऐ—१०–३२२ ।

कहिबे—संज्ञा स्त्री. [हिं. कहना] **कथन, वचन** । उ.— धिक तुम धिक या कहिबे ऊपर—१–२८४ ।

मुहा०—कहिबे के अनुमानैं—**केवल कहने के लिए, कहकर अपना मन बहला लेने के लिए** । उ.—कहियै जो कुछ होइ सखी री, कहिबे के अनुमानैं । सुंदर स्याम निकाई कौ सुख, नैना ही पै जानैं—७३० ।

क्रि. स.—**कहना, समाचार देना, बताना** । उ.— ऊधौ और कछू कहिबे कौ । मनमानै सोऊ कहि डारौ पालागौं हम सुनि सहिबे कौ—३००४ ।

कहिबो—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहना, बताना, वर्णन करना** । उ.—(क) तुम सौं प्रेम कथा कौ कहिबौ मनहु काटिबो घास—३३३६ । (ख) हम पर हेतु किये रहिबो । या ब्रज कौ व्यवहार सखा तुम हरि सौं सब कहिबो—३४१४ ।

कहियत—क्रि. स. [हिं. कहना] **(१) कहलाते हैं, प्रसिद्ध हैं।** उ.—(क) वै रघुनाथ चतुर कहियत हैं, अंतरजामी सोइ। या भयभीत देखि लंका मैं, सीय जरी मति होइ—६-६६। (ख) सूरदास गोपिन हित-कारन कहियत माखन-चोर—४७७। **(२) कहते हैं, वर्णन करते हैं।** उ.—राम-कृष्ण अवतार मनोहर भक्तन के हित काज। सोई सार जगत में कहियत सुनो देव द्विजराज—सारा० ११३।

कहियाँ—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहते हैं, बताते हैं।**

क्रि. वि. [हिं. कहँ] **को, के लिए।** उ.—रघु-कुल-कुमुद-चंद चिंतामनि प्रगटे भूतल महिमाँ। आए ओप देन रघुकुल कौं, आनंदनिधि सब कहियाँ—६-१६।

कहिया—क्रि. वि. [सं. कुह] **कब, किस दिन।**

कहियै—क्रि. स. [हिं. कहना] **बोलिए, वर्णन कीजिए।** उ.—मोसौं बात सकुच तजि कहियै—१-१३५।

कहियौ—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहना, बोलना, बताना।** उ—कह्यौ मयत्रेय सौं समुझाइ। यह तुम बिदुरहिं कहियौ जाइ—३-४।

मुहा०—तब कहियौ नाम (बलराम)—**जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह पूरा न हो तो मेरा नाम नहीं, मेरा कहा ठीक न हो तो मेरा नाम नहीं।** उ.—मोहिं दुहाई नंद की, अबहीं आवत स्याम। नाग नाथि लै आइहैं, तब कहियौ बलराम—५८६।

कहिहैं—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहेंगे, बतायेंगे।** उ.—ऊधव कह्यौ, हरि कह्यौ जो ज्ञान। कहिहैं तुम्हैं मयत्रेय आन—३-४।

कहिहौं—क्रि. स. [हिं कहना] **(१) कहूँगा, सूचना दूँगा। (२) शिकायत करूँगा।** उ.—रोवत चले श्रीदामा घर कौं, जसुमति आगैं कहिहौं जाइ—५३६।

कहीं—क्रि. वि. [हिं. कहाँ] **(१) किसी ऐसी जगह जिसका पता न हो। (२) नहीं, कभी नहीं। (३) अगर, यदि, कदाचित। (४) बहुत बढ़कर।**

कही—क्रि. स. स्त्री. [हिं. कहना] **वर्णन की, बतायी।** उ.—मैं तो अपनी कही बड़ाई—१-२०७।

संज्ञा स्त्री.—**कही हुई बात, उक्ति, कथन।** उ—यह सुनि ग्वाल गये तहँ धाई। नंद महर की कही सुनायी—१००४।

कहीन्यौ—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहा है, वर्णन किया है।** उ.—जो जस करै सो पावै तैसौ, बेद-पुरान कहीन्यौ—८-१५।

कहुँ—क्रि. वि. [हिं. कहूँ] **कहीं, किसी स्थान पर।** उ.—अब तुम मोकौं करौ अजाची, जौ कहुँ कर न पसारौं—१०-३७।

कहु—क्रि. वि. [हिं. कहो] **कहो।** उ.—बग-बगुली अरु गीध-गीधनी, आइ जनम लियौ तैसौ। उनहूँ कैं ग्रह, सुत, दारा हैं उन्हैं भेद कहु कैसौ—२-१४।

कहूँ—क्रि. वि. [सं. कुह, हिं. कहीं] **कहीं, किसी स्थान पर।** उ.—(क) हरि चरनारबिंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति काँची—१-१८। (ख) मेरे लाड़िले हो तुम जाउ न कहूँ—१०-२६५।

मुहा०—कहूँ की कहूँ—**कहीं की कहीं, एक सीधे प्रसंग से हटाकर किसी अन्य दूर के संबंध में जोड़ लेना, दूर का अर्थ निकालना।** उ.—कहा करौं तुम बात कहूँ की कहूँ लगावति। तरुनिन इहै सोहात मोहिं यह कैसे भावति—१०७१।

कहे—संज्ञा पुं. [हिं. कहना] **कहना, कथन।** उ.—मेरे कहे में कोऊ नाहीं—११६५।

क्रि. स.—**बोले, वर्णित किये।** उ.—नव स्कंध नृप सौं कहे श्रीसुकदेव सुजान—१०-१।

कहैं—संज्ञा पुं. [हिं. कहना] **कहने से, बात मानकर।** उ.—कहैं तात के पंचवटी बन छाँड़ि चले रजधानी—१०-१६६।

क्रि. स.—**कहते हैं, बताते हैं।** उ.—(क) चलत पंथ कोउ थाक्यौ होइ। कहैं दूरि, डरि मरिहै सोइ—३-१३। (ख) तनक सी बात कहै तनक तनकि रहे—१०-१५०। (ग) जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौ राजा-राय कहै—१-५३।

कहैंगे—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहेंगे, बतायँगे।** उ.—नंद सुनि मोहिं कहा कहैंगे देखि तरु दोउ आइ—३८७।

कहैगौ—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहेगा, बोलेगा, अभिप्राय प्रकट करेगा**। उ.—कब हँसि बात कहैगौ मोसौं जा छबि तैं दुख दूरि हरै—१०-७६।

कहैहैं—क्रि स. [हिं. कहाना] **कहलायँगे, प्रसिद्ध होंगे**। उ.—नंदहु तैं ये बड़े कहैहैं फेरि बसैहैं यह ब्रजनगरी—१०-३१६।

कहैहौं—क्रि. स. [हिं. कहाना] **कहलाऊँगा**। उ.—(क) हृदय कठोर कुलिस तैं मेरौ, अब नहिं दीनदयाल कहैहौं—७-५। (ख) काटि दसौ सिर बीस भुजा तब दसरथ-सुत जु कहैहौं—६-११३।

कहौं—क्रि. स. [हिं कहना] **कहूँ, वर्णन करूँ**। उ.—कहा कहौं हरि केतिक तारे पावन-पद परतंगी। सूरदास, यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी—१-२१।

कहौंगो—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहूँगा, बताऊँगा**। उ.—जब मोहिं अंगद कुसल पूछिहै, कहा कहौंगो वाहि—६-७५।

कहौ—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहो, बताओ, समझाओ**। उ.—सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए—१-५२।

कहौगे—क्रि. स. [हिं. कहना] **बहकाओगे, बातों में भुलाओगे, बनावटी बातें करोगे**। उ.—लरिकनि कौं तुम सब दिन झुठवत, मोसौं कहा कहौगे। मैया मैं माटी नहिं खाई, मुख देखैं निबहौगे—१०-२५३।

कह्यउ—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहा**। उ.—नृपति कह्यउ मेरे गृह चलिये करो कृतारथ मोय—सारा. ८००।

कह्यौ—क्रि. स. [हिं. कहना] **'कहना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'कहा' का ब्रजभाषा का रूप, कहा, कहे**। उ.—(क) का न कियौ जन-हित जदुराई। प्रथम कह्यौ जो बचन दयारत तिहिं बस गोकुल गाय चराई—१-६। (ख) हरि कह्यौ-जज्ञ करत तहँ बाम्हन—८००। (ग) सूरदास प्रभु अतुलित महिमा जो कछु कह्यौ सो थोड़ा—१० उ.-५१।

संज्ञा पुं.—**कहा, कथन, बात**। उ.—(क) अजहूँ चेति, कह्यौ करि मेरौ, कहत पसारे बाहीं—१-२६६। (ख) बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि-करि जतन उड़ात—२-२४। (ग) तिन तौ कह्यौ न कीन्हौ कानी। तब तजि चली बिरह अकुलानी—८००।

काँइयाँ—वि. [अनु० काँव-काँव] **जो बहुत चालाकी दिखाये, धूर्त्त**।

काँई—अव्य० [सं० किम्] **क्यों**।

सर्व [हिं. काहि] **किसे, किसको**।

काँकर—संज्ञा पुं. [सं. कर्कर] **कंकड़**।

काँकरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँकर] **कंकड़ी**।

काँ काँ—संज्ञा. पुं. [अनु.] **कौए की बोली**। उ.—घरी इक सजन-कुटुँब मिलि बैठैं, रुदन बिलाप कराहीं। जैसैं काग काग के मूएँ काँ काँ करि उड़ि जाहीं—१-३१६।

कांक्षा—संज्ञा. स्त्री. [सं.] **इच्छा, चाह**।

कांक्षी—वि. [सं. कांक्षिन] **इच्छा या चाह रखनेवाला, अभिलाषी**।

काँख—संज्ञा स्त्री. [सं. कक्ष] **बगल**।

काँखना—क्रि. अ. [अनु.] **कराहना**।

काँखासोती—संज्ञा स्त्री. [हि. काँख+सं. श्रोत्र, प्रा. सोत] **जनेऊ की तरह दुपट्टा डालने का ढंग**।

काँखी—संज्ञा पुं. [सं. कांक्षी] **चाहनेवाला, इच्छा रखनेवाला**। उ.—सुक भागवत प्रगट करि गायौ कछू न दुविधा राखी। सूरदास ब्रजनारि संग हरि माँगी करहिं नहीं कोऊ काँखी—१८५६।

काँगनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कँगनी] **छोटा कंकण**।

काँगही—संज्ञा स्त्री. [हिं. कंघो] **कंघी, छोटा कंघा**।

काँगुरा—संज्ञा पुं. [हिं. कँगूरा] (१) **शिखर, चोटी**। (२) **बुर्ज**।

काँच—संज्ञा पुं. (सं. काँच) **एक प्रकार का शीशा, पारदर्शक शीशा**। उ.—(क) कंचन-मनि खोलि डारि, काँच गर बँधाऊँ—१-१६६। (ख) सूरदास कंचन अरु काँचहिं एकहिं धगा पिरोयौ—१-४३।

संज्ञा स्त्री. [सं. कक्ष] **धोती का पीछे खोंसा जानेवाला भाग**।

काँचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सोना**। (२) **चंपा**। (३) **धतूरा**।

काँचरी, काँचली—संज्ञा स्त्री० [सं. कंचुलिका] **(१) साँप की केंचुली। (२) चोली, कंचुकी।**

काँचा— वि. [हिं. कच्चा] **(१) जो पका न हो, कच्चा। (२) दुर्बल, अस्थिर।**

काँची—वि. स्त्री. [हिं. पुं. कच्चा] **कच्ची, अपक्व।** उ.—मृदु पद धरत धरनि ठहरात न, इत-उत भुज जुग लै लै भरि भरि। पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस ज्यौं जल मैं काँची गागरि गरि **—१०-१२०।**

मुहा०—काँची मति—**खोटी समझ, कच्ची बुद्धि।** उ.—हरिचरनारबिंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति काँची —१-१८।

संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) करधनी। (२) गुंजा, घुँघची।**

काँचुरी, काँचुली—संज्ञा. स्त्री. [सं. कंचुलिका, हिं. काँचली] **साँप की केंचुल (केंचुली)।** उ.—को है सुनत कहत कासौं हौ कौन कथा अनुसारी। सूर स्याम सँग जात भयौ मन अहि काँचुली उतारी—३२६१।

काँचे—वि. [हिं. कच्चा] **कच्चा, दुर्बल, जो किसी विषय में दृढ़ न हो, अस्थिर।** उ.—ऊधौ स्याम सखा तुम साँचे। फिर करि लियौ स्वाँग बीचहिं ते वैसेहि लागत काँचे।

मुहा.—काँचे मन—**मन में दृढ़ता न होना।**

संज्ञा पुं. [सं. कांच] **काँच, शीशा।** उ.— प्रेम-योग रस कथा कहो कंचन की काँचे—३४४३।

काँचै—संज्ञा पुं. [सं. काँच] **काँच, शीशा।** उ.—यह ब्रत धरे लोक मैं बिचरै, सम करि गनै महामनि काँचै —२-११।

काँचौ—वि. [हिं. कच्चा, काँचा] **(१) कच्चा, अपक्व। (२) अदृढ़, दुर्बल, अस्थिर।** उ.—प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ। पोषन भरन बिसंभर साहब, जो कलपै सो काँचौ—१-३२। (३) **जो मजबूत या पक्का न हो।** उ.—जब तैं आँगन खेलत देख्यौ मैं जसुदा कौ पूत री। तब तैं गृह सौं नातौ टूट्यौ जैसै काँचौ सूत री—१०-१३६। (४) **जो औटाया या पकाया न गया हो, ताजा दुहा हुआ।** उ.—काँचौ दूध पियावति पचि पचि देत न माखन रोटी—१०-१७५।

काँछना—क्रि. स. [हिं. काछना] **सँवारना, पहनना।**

काँछा—संज्ञा स्त्री. [सं. कांक्षा] **इच्छा, चाह।**

काँजी—संज्ञा स्त्री. [सं. कांजिक] **(१) पानी में पिसी राई का घोल जो दो तीन दिन रखने से खट्टा हो गया हो। (२) मट्ठा, छाँछ।**

काँट—संज्ञा पुं. [हिं. काँटा] **काँटा।**

वि. स्त्री.—**कटीली, प्रभावित करनेवाली, मुग्ध करनेवाली।** उ.—भौहैं काँट कटीलियाँ सखि बस कीन्ही बिन मोल—१४६३।

काँटा—संज्ञा पुं. [सं. कंटक] **(१) पेड़-पौधों के नुकीले अंकुर, कंटक। (२) नुकीली वस्तु। (३) तराजू की सुई। (४) नाक में पहनने की कील, लौंग। (५) खटकनेवाली बात।**

काँटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँटा का अल्प.] **(१) कटिया, कील। (२) छोटी तराजू। (३) झुकी हुई कील, अँकुड़ी।**

काँठा—संज्ञा पुं. [सं. कंठ] **(१) गला। (२) तोते के गले की गोल रेखा। (३) किनारा, तट। (४) बगल।**

कांड—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) बाँस, ईख आदि का पोर। (२) वृक्ष का तना। (३) शाखा, डंठल। (४) गुच्छा। (५) धनुष के बीच का मोटा भाग। (६) कार्य का भाग। (७) ग्रंथ का वह भाग जिसमें एक विषय पूरा हो। (८) समूह। (९) झूठी प्रशंसा। (१०) निर्जन स्थान। (११) घटना।**

वि.—**बुरा।**

काँड़ना—क्रि स. [सं. कंडन (कडि=भूसी अलग करना)] **(१) रौंदना, कुचलना। (२) कूट कर चावल की भूसी अलग करना। (३) मारना पीटना।**

काँड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कांड] **(१) धान कूटने का गड्ढा। (२) छड़, लट्ठा, डंठल।**

कांत—संज्ञा पुं० [सं०] **(१) पति। (२) श्री कृष्ण का एक नाम। (३) चंद्रमा। (४) विष्णु। (५) शिव। (६) वसंत ऋतु।**

कांतलौह—संज्ञा पुं० [सं०] **चुंबक।**

कांता—संज्ञा पुं० [सं०] **(१) सुन्दर स्त्री। (२ विवाहित स्त्री, पत्नी।**

कांतार—संज्ञा पुं० [सं०] **(१) भयानक स्थान। (२) गहन वन। (३) खेद। (४) दरार। (५) बाँस।**

काँति, कांति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) **प्रकाश, आभा, तेज।** उ०—बदन काँति बिलोकि सोभा सकै सूर न बरनि—३५१। (२) **शोभा, छवि।** उ०—गोरे भाल बिंदु बंदन मनु इन्दु प्रात-रवि कांति—७०४।

कांतिमान्—वि० [सं० कांतिमत्] (१) **कांति या चमक वाला।** (२) **सुन्दर।**

कांतिसार—संज्ञा पुं० [सं० कांत] **एक प्रकार का बढ़िया लोहा।**

काँती—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्री, प्रा० कत्ती, हिं. काती] (१) **बिच्छू का डंक।** (२) **कैंची, कतरनी।** (३) **छोटी तलवार।** (४) **छुरी।** उ०—कोउ ब्रज बाँचत नाहिन पाती। कत लिखि लिखि पठवत नँदनंदन कठिन बिरह की काँती—२९८०।

काँथरि—संज्ञा स्त्री० [सं० कंथा] **गुदड़ी, कथरी।**

काँदना—क्रि०स० [सं० क्रंदन=चिल्लाना] **रोना, चिल्लाना।**

काँदव, काँदो—संज्ञा पुं० [सं० कर्दम, प्रा० कद्दम] **कीच, कीचड़।**

काँध—संज्ञा पुं. [हिं. कंधा] **कंधा।** उ.—(क) काँध कमरिया हाथ लकुटिया, बिहरत बछरनि साथ—४८७। (ख)—बहत न बनै काँध कामरि छबि बन गैयन को घेरन—३२७७। (ग) बन बन गाय चरावत डोलत काँध कमरिया राजे—७४१ सारा.।

काँधना—क्रि. स. [हिं. काँध] (१) **उठाना, सम्हालना।** (२) **ठानना, मचना।** (३) **सहन करना** (४) **स्वीकार करना।**

काँधर—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, प्रा. कण्ह] **कृष्ण।**

कांधा—क्रि. स. [हिं. काँधना] (१) **उठाया, सम्हाला।** (२) **स्वीकार किया।**

संज्ञा पुं. [हिं. कंधा] **कंधा।**

काँधियतु—क्रि. स. [हिं. काँधना] **(युद्ध) ठानते या मचाते हैं।**

काँधी—क्रि. स. [हिं. काँधन] **मानी, स्वीकार की।** उ.—जाकी बात कही तुम हम सौं सोधौं कहौ को काँधी। तेरो कहो सो पवन भूस भयौ बहो जात ज्यौं आँधी—३०२१।

काँधे, काँधैं—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध, प्रा. खंभ] **कंधा, कंधे पर।** उ.—(क) तिहिं सौं भरत कछू नहिं कह्यौ। सुख-आसन काँधे पर गह्यौ—५-३। (ख) ग्वाल के काँधे चढ़े तब लिए छींके उतारि—१०-२८९। (ग) और बहुत काँवरि दधि-माखन अहिरनि काँधे जोरि—५८३। (घ) ग्वाल-रूप इक खेलत हो सँग लै गयौ काँधै डारि—६०४।

क्रि. स. [हिं. काँधना] (१) **उठाये, सम्हाले।** (२) **स्वीकार करे।**

काँधो—क्रि. स. [हिं. काँधना] (१) **(युद्ध) ठानना, संग्राम करना।** (२) **स्वीकार करना, अंगीकार करना।**

काँन—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण, हिं. कान्ह] **कृष्ण।**

काँप—संज्ञा पुं. [सं. कंपा] (१) **बाँस की लचीली तीली।** (२) **कान में पहनने का एक गहना, करनफूल।**

काँपत—क्रि. स. [हिं. काँपना] **डर से काँपते हैं, थर्राते हैं।** उ.—(क) उछरत सिंधु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ। सेष सहसकन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ—१०-६४। (ख) मंदर डरत सिंधु पुनि काँपत फिरि जनि मथन करै—१०-१४३।

काँपि—क्रि. स. [हिं. काँपना] **थरथरा कर, काँपकर।** उ.—पूँछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि देखि सब साँपि अवसान भूले—५५२।

काँपन—क्रि. स. [हिं. काँपना] **हिलने या थरथराने (लगी)।** उ.—काँपन लागी धरा पाप तैं ताड़ित लखि जदुराई। आपुन भए उधारन जग के, मैं सुधि नीकैं पाई—१०-२०७।

काँपना—क्रि. सं. [सं. कंपन] (१) **हिलना, थरथराना।** (२) **डर से थर्राना।** (३) **डरना।**

काँपा—क्रि. स. [हिं. काँपना] **हिला डुला, थरथराया।**

काँपी—क्रि. स. स्त्री. [हिं. काँपना] (१) **हिलने डुलने लगी।** (२) **थर्राने लगी, डर से काँपने लगी।** उ.—काँपी भूमि कहा अब ह्वै है, सुमिरत नाम मुरारि—९-१५८।

काँपै—क्रि. स. [हिं. काँपना] (१) **हिलता-डुलता है, थर्राता है।** उ.—(क) चितवनि ललित लकुटलासा लट काँपै अलक तरंग—पृ. ३२५। (ख) ग्वालनि देखि मनहिं रिस काँपैं—५८५।

काँपौं— क्रि. स. [सं. कंपन, हिं. काँपना] **डर से काँपता था, थर्राता था।** उ.—हौं डरपौं, काँपौं अरु रोवौं, कोउ नहिं धीर धराऊ। थरसि गयौ नहिं भागि सकौं, वै भागे जात अगाऊ—४८१।

काँप्यौ—क्रि. स. [सं. कंपन, हिं. काँपना] (१) **काँपा, डरा, भयभीत हुआ, थर्राया।** उ.—(क) काल बली तैं सब जग काँप्यौ, ब्रह्मादिक हूँ रोए—१-५२। (ख) उर काँप्यौ तन पुलकि पसीज्यौ बिसरि गये मुख-बैन—७४६।

काँय काँय, काँव काँव—संज्ञा. पुं. [अनु.] **कौए का शब्द।**

काँवर—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँध + आव (प्रत्य.)] **बहँगी जिसके दोनों सिरों पर लंबे छींके होते हैं।** उ.—धेनु चरावन चले स्यामघन ग्वाल मंडली जोर। हलधर संग छाक भरि काँवर करत कुलाहल सोर—४७१ सारा.।

काँवरा—वि. [पं. कमला = पागल] **घबराया हुआ, हक्का-बक्का।**

काँवरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. काँवर] **बहँगी, जिसके सिरे पर सामान ले जाने के लिए लंबे छींके होते हैं।** उ.—(क) सहस सकट भरि कमल चलाये। ..। और बहुत काँवरि दधि माखन, अहिरनि काँधे जोरि। नृप कैं हाथ पत्र यह दीजौ बिनती कीजौ मोरि ५८३। (ख) ओदन भोजन दै दधि काँवरि भूख लगे तैं खैहौं-४१२।

काँवरिया—संज्ञा पुं. [हिं. काँवरि] **बहँगी ले जानेवाला।**

काँवाँरथी—संज्ञा पुं. [सं. कामार्थी] **किसी कामना से तीर्थ-यात्रा करनेवाला।**

काँस—संज्ञा [सं. काश] **एक प्रकार की घास।** उ.-(क) लटकि जात जरि-जरि द्रुम-बेली, पटकत बाँस, काँस, कुस ताल-५९४। (ख) डासन काँस कामरी ओढ़न बैठन गोप सभा ही—२२७५।

काँसा, काँस्य—संज्ञा पुं. [सं. कांस्य] **ताँबे और जस्ते के मिश्रण से बनी एक धातु।**

का—प्रत्य. [सं. प्रत्य. क] **संबंध या षष्ठी का चिन्ह या विभक्ति।**

सर्व. [सं. कः] (१) **क्या, कैसा।** उ.—(क) का न कियौ जन-हित जदुराई—१-६। (ख) देखौ धौं का रस चरननि मैं मुख मेलत करि आरति—१०-६४। (२) **व्रजभाषा में 'किस' या 'कौन' का विभक्ति लगने से पूर्व रूप। जैसे काको, कासौं।**

काइफल—संज्ञा पुं. [सं. कट्फल, हिं. कायफल] **एक वृक्ष जिसकी छाल दवा के काम आती है।** उ.—कूट काइफल सोंठ चिरैता कटजीरा कहुँ देखत—११०८।

काई—संज्ञा स्त्री. [सं. कावार] (१) **जल पर जमनेवाली एक प्रकार की महीन घास जो हलके हरे रंग की होती है।** (२) **मैल।**

काऊ — क्रि. वि. [सं. कदा] **कभी।**

सर्व [सं. कः] (१) **कोई।** (२) **कुछ।**

काक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कौआ।** (२) **लँगड़ा।**

काकगोलक—संज्ञा पुं. [सं.] **कौए की आँख की पुतली जो केवल एक होती है और दोनों आँखों में आती-जाती रहती है।**

काकतालीय—वि. [सं] **संयोगवश घटित होनेवाला।**

काकदंत—संज्ञा पुं. [सं.] **कौए के दाँत की तरह अविश्वसनीय बात।**

काकपक्ष, काकपच्छ—संज्ञा पुं. [सं. काकपक्ष] **बालों के पट्टे जो दोनों ओर कानों और कनपटियों के ऊपर रहते हैं, जुल्फ, कुल्ला।** उ. – (क) कटि तट पीत पिछौरी बाँधे, काकपच्छ धरे सीस—६–२०। (ख) कर धनु, काकपच्छ सिर सोभित, अंग-अंग दोउ बीर—६–२६।

काकपद, काकपाद– संज्ञा पुं. [सं.] **एक चिन्ह जो छूटे हुए अंश का स्थान बताने के लिए लगाया जाता है।**

काकपाली संज्ञा स्त्री. [सं.] **कोयल।**

काकबंध्या— संज्ञा स्त्री. [सं.] **वह स्त्री जो केवल एक संतान उत्पन्न करे।**

काकभुशुंडि— संज्ञा पुं. [सं.] **राम का भक्त एक ब्राह्मण जो लोमश ऋषि के शाप से कौआ हो गया था।**

काकरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्कटी] **ककड़ी।**

काकली—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **कोमल या मधुर ध्वनि।** (२) **गुंजा।**

काका—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) घुँघची, (२) मकोय।**

संज्ञा पुं. [फ़ा.काका=बड़ा भाई] **बाप का भाई, चाचा।**

काकिणी, काकिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) गुंजा, घुँघची। (२) कौड़ी।**

काकी—सर्व. स्त्री. [हिं. का+की (प्रत्य.)] **किसकी।** (क) काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहिं भय दुरजन डरिहै —१-२६। उ.—(ख) तिन पूछ्यौ तू काकी धी है—४-१२ (ग) बूझत स्याम कौन तू गोरी। कहाँ रहत काकी है बेटी देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी—६७३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. काका] **चाचा की पत्नी, चाची।**

काकु—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) व्यंग्य, ताना, चुटीली बात। (२) एक अलंकार जिसमें शब्दों की ध्वनि से ही अर्थ समझा जाय।**

काकुल—संज्ञा पुं. [फा.] **कनपटी पर लटकते हुए लंबे बाल, जुल्फें।**

काके—सर्व. [हिं. का + के (प्रत्य०)] **किसके।** उ.—काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं, संकट रच्छा करिहैं ? —१-२९।

काकैं—सर्व. [सं. कः, हिं. का (कौन)+कैं (विभक्ति)] **किसके, किसके यहाँ।** उ.—काकैं सत्रु जन्म लीन्यौ है, बूझौ मतौ बुलाई—१०-४।

काकोदर—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) कौए का पेट। (२) साँप।**

काकौ—सर्व. [हिं. का+कौ (प्रत्य.)] **किसका, किसको।** उ.—काकौ बदन निहारि द्रौपदी दीन दुखी संभरिहै—१-२६।

काख—संज्ञा स्त्री. [सं. कक्ष, हि. काँख] **काँख, बगल।** उ.—आतम ब्रह्म लखावत डोलत घर घर ब्यापक जोई। चापे काँख फिरत निर्गुन गुन इहाँ गाहक नहिं कोई—३०२२।

काखी—संज्ञा पुं. [सं. काँक्षी, हिं. काँखी] **चाहनेवाला, इच्छुक।** उ.—सुक भागवत प्रगट करि गायौ कछू न दुबिधा राखी। सूरदास ब्रजनारि संग हरि बाकी रह्यो न कोऊ काखी —१८५६।

काख्यौ—संज्ञा स्त्री. [सं. कांक्षा] **इच्छा, चाह।** उ.—फागु रंग करि हरि रस राख्यौ। रह्यौ न मन जुवतिन के काख्यौ—२४५६।

काग—संज्ञा पुं. [सं. काक] **कौआ, वायस।**

कागज—संज्ञा पुं. [अ. काग़ज़] **(१)सन, रुई आदि से बना हुआ लिखने का पत्र।** उ.—तनु जोबन ऐसे चलि जैहै जनु फागुन की होरी। भीजि बिनसि जाई छन भीतर ज्यौं कागज की चोली री—२०४०। **(२) समाचार पत्र। (३) लेख। (४) प्रमाणपत्र।**

कागद—संज्ञा पुं. [हिं. कागज] कागज।—उ.—(क) चित्रगुप्त जमद्वार लिखत हैं, मेरे पातक झारि। तिनहुँ चाहि करी सुनि औगुन, कागद दीन्हे डारि —१-१६७। (ख) बिचारत ही लागे दिन जान। सजल देह, कागद तैं कोमल, किहिं बिधि राखै प्रान—१-३०४।

कागभुसुंड, कागभुसुंडी—संज्ञा पुं. [सं. काकभुशुंडि] **एक ब्राह्मण जो शाप से कौआ हो गया था।**

कागर—संज्ञा पुं० [अ० काग़ज़] **(१) कागज।** उ.—(क) तुम्हरे देस कागर-मसि खूटी। प्यास अरु नींद गई सब हरि कै बिना बिरह तन टूटी। (ख) रति के समाचार लिखि पठए सुभग कलेवर कागर—२१२८।

मुहा.—चढ़ावै कागर—**कागज पर लिख ले, टाँक ले।** उ.—अब तुम नाम गहौ मन नागर। जातैं काल अगिनि तैं बाँचौ, सदा रहौ सुख-सागर। मारि न सकै, बिघन नहिं ग्रासै, जम न चढ़ावै कागर—१-६१। नाव कागर की—**शीघ्र डूब जाने या नष्ट हो जानेवाली चीज, अधिक समय तक न टिकनेवाली चीज।** उ.—जैइ निर्गुन गुनहीन गनैगौ सुनि सुंदरि अलसात। दीरघु नदी नाउ कागर की को देखो चढ़ि जात—३२८२।

(२) पक्षियों के पर, पंख। (३) प्रमाणपत्र। (४)दस्तावेज, बहीखाता। उ.—ब्याध, गीध, गनिका जिहिं कागर, हौं तिहिं चिठि न चढ़ायौ—१-१६३।

कागरी—वि० [हिं० कागर = कागज] **तुच्छ, हीन।**

कागा—संज्ञा पुं० [हिं० काग] **कौआ।**

कागरबासी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कागा+बासी] **सबेरे के समय छानी जानेवाली भाँग।**

कागा-रोल—संज्ञा पुं० [हिं० काग = कौआ + रौल = रोर = शोर] **कौओं की काँव-काँव की तरह होने वाला शोर।**

कागासुर—संज्ञा पुं० [सं. काक + असुर] **कंस के एक दैत्य का नाम जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।** उ०—तृनावर्त-से दूत पठाये। ता पाछे कागासुर धाये—५२१।

कागौर—संज्ञा पुं० [सं० काकबलि] **श्राद्ध में भोजन का वह भाग जो कौए के लिए निकाला जाता है।**

काच—संज्ञा पुं० [हिं० काँच] **शीशा।** उ०—काच पोत गिरि जाइ नंदघर गथौ न पूजै —११२७।

वि० [हिं० कचा] **(१) जो पका न हो, कच्चा। (२) जिसका मन पक्का न हो, कायर।**

काचरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कचा, कचरी] **(१) कच्चे फल। पिसे हुए चावल या साबूदाने के सुखाये हुए टुकड़े जो घी में तलकर खाये जाते हैं।** उ०—पापर बरी मिथौरि फुलौरी। कूर बरी काचरी पिठौरी—३९६।

संज्ञा स्त्री० [सं० कंचुलिका, हिं० काँचली] **साँप की केंचुल।** उ०—ज्यौं भुयंग काचरी बिसरात फिरि नहिं ताहि निहारत। तैसेहिं जाइ मिले इकटक ह्वै डरत लाज निरवारत—पृ० ३२१।

काचा—वि० [हिं० कचा] **(१) कच्चा। (२) अस्थिर, चंचल। (३) जो झूठा हो, जो नष्ट हो जाय, मिथ्या, अनित्य।**

काची—वि० स्त्री० [हिं० पुं० कचा] **(१) कची, जो पकी न हो। (२ जिसका व्रत या निश्चय दृढ़ न हो, भक्ति या प्रीति में जो कची हो।** उ०—(क) दीन बानी स्रवन सुनि सुनि द्रए परम कृपाल। सूर एकहु अंग न काँची धन्य धनि ब्रजबाल—पृ० ३४२-१७। (ख) सूर एकहु अंग न काँची मैं देखी टकटोरी—३४६८। **(३) झूठी, बनावटी, टालमटोल की, हँसने योग्य।** उ०—कहे बनै छाँड़ौ चतुराई बात नहीं यह काची। सूरदास राधिका सयानी रूपरासि-रसखानी—१४३८।

काचे—वि० [हिं० कचा] **(१) कच्चे, अकुशल, नौसिखिया, अदृढ।** उ.—भले ही जु जाने लाल अरगजे भीने माल केसरि तिलक भाल मैन मंत्र काचे—२००३। **(२) कच्चे, शीघ्र टूट जानेवाले।** उ०— प्रेम न रुकत हमारे बूते। किहि गयंद बाँध्यौ सुन मधुकर पद्मनाल के काचे सूते—३३०५।

काछ—संज्ञा पु० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] **(१) धोती का भाग जो पेडू से जाँघ के कुछ नीचे तक रहता है।** उ०—(क) सोई हरि काँधे कामरि, काछ किए नाँगे पाइनि, गाइनि टहल करैं—४१३। (ख) कटि तट काछ बिराजई पीताबंर छबि देत—२३५०। **(२) पेडू से जाँघ के कुछ नीचे तक का भाग।**

काछत—क्रि० स० [हिं० काछना] **स्वाँग बनाते हैं, वेष धरते हैं, रूप धरते हैं, चाल चलते हैं।** उ०—स्याम बनी अब जोरी नीकी सुनहु सखी मानत तोऊ हैं। सूर स्याम जितने रंग काछत जुवती-जन-मन के गोऊ हैं—११५९।

काछना—क्रि० स० [कक्ष, प्रा० कच्छ] **(१) धोती, काँछनी आदि पहनना। (२) बनाना, सँवारना। (३) वेश धरना, स्वाँग बनाना।**

काछनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काछना] **(१) ऊँची कसी धोती, कछनी।** उ०—काछनी कटि पीत पट दुति, कमल केसर खंड—१-३०७। **(२) मूर्तियों का चुन्नटदार पहनावा जो प्रायः जाँघिए के ऊपर पहना जाता है।**

काछा—संज्ञा पुं० [हिं० काछना] **धोती जो कसकर पहनी जाय और जिसकी दोनों लाँगों को ऊपर खोंसा जाय, कछनी।**

काछि—क्रि० स० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ, हिं० कच्छ] **बन-ठनकर, साज-सँवार कर।** उ०— क) माया को कटि फेटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल। कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल-सुधि नहिं काल—१-१५३। (ख) कीन्हें स्वाँग जिते जाने मैं, एक तौ न बच्यो। सोधि सकल गुन काछि दिखायौ, अंतर हो जो सच्यौ —१-१७४।

काछी—संज्ञा पुं० [सं० कच्छ = जलप्राय भूमि] **तरकारी बोने-बेचने वाली एक जाति।**

काछू—संज्ञा पुं० [हिं० कछुआ] **कछुआ।**

काछे—क्रि० स० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ, हिं० काछना] **बनाये हुये, सँवारे हुए, पहने हुये।** उ०—तीन्यौ पन

मैं ओर निबाहे इहै स्वाँग कौं काछे। सूरदास कौं यहै बड़ो दुख, परति सबनि के पाछे—१-१३६।

क्रि० वि० [सं० कक्ष, प्रा० कच्छ] **पास, निकट, समीप**। उ०—ताहि कह्यौ सुख दे चलि हरि कौं मैं आवति हौं पाछे। वैसहिं फिरी सूर के प्रभु पै जहाँ कुंज गृह काछे।

काछ्यौ—क्रि. स. [हिं. काछना] **(रूप) धारण किया, बनाया**। उ.—तब केसी ह्वै बर बपु काछ्यो लै गयौ पीठि चढ़ाइ। उतरि परे हरि ता ऊपर तैं कीन्हौं युद्ध अघाइ—२३७७।

काज—संज्ञा. पुं. [सं. कार्य, प्रा. कज्ज]। (१) **कार्य, काम, कृत्य, सेवा-कार्य**। उ.—पाइँ धोइ मंदिर पग धारे काज देव के कीन्हे—१०-२६०।

मुहा०—काज बिगारत—**काम बिगड़ता है, नष्ट करता है**। उ.—ज्ञानी लोभ करत नहिं कबहूँ, लोभ बिगारत काज। काज बिगारयौ—**काम या मामला बिगाड़ दिया; सब चौपट कर दिया**। उ.—रसना हूँ कौ कारज सारयो। मैं यौं अपनौं काम बिगारयौ—४-१२। काज सँवारे—**काम बना दिया**। उ.—(क) कहा गुन बरनौ स्याम तिहारे। कुबिजा, बिदुर, दीन द्विज, गनिका सब के काज सँवारे—१-२५। (ख) जो पद-पदुम रमत पांडव-दल दूत भये सब काज सँवारे—१-६४।

(२) **व्यवसाय, धंधा**। (३) **अर्थ, उद्देश्य, प्रयोजन**। उ.—(क) नृप कह्यौ सुरनि कैं हेतु मैं जग्य कियौ इंद्र मम अस्व किहिं काज लीन्हौ—४-११। (ख) गोपालहिं राखौ मधुबन जात। लाज गये कछु काज न सरिहै बिछुरत नँद के तात—२५३११।

मुहा०—काज सरत—**उद्देश्य पूरा हो, अर्थ सिद्ध हो**। उ.—अबिहित बाद-बिबाद सकल मत इन लगि भेष धरत। इहिं बिधि भ्रमत सकल निसि-दिन गत, कछू न काज सरत—१-५५। (इनहीं, तुमहीं) काज—**(इनके, तुम्हारे) लिए, हेतु, निमित्त**। उ.—(क) गाउँ तजौं कहुँ जाउँ निकसि लै, इनहीं काज पराउँ—५२८। (ख) पूछौ जाइ तात सौं बात। मैं बलि जाउँ मुखारबिंद की, तुमहीं काज कंस अकुलात—५३०। काज परयौ—**काम पड़ा, मतलब अटका, प्रयोजन पड़ा, आवश्यकता हुई**। उ.—बोलि-बोलि सुत-स्वजन-मित्रजन, लीन्हौ सुजस सुहायौ। परयौ जु काज अंत की बिरियाँ तिनहु न आनि छुड़ायौ—२-३०।

काजर—संज्ञा. पुं. [सं. कज्जल, हिं. काजल] **काजल जो आँख में लगाया जाता है, कालौंछ**। उ.—कुमकुम कौ लेप मेटि, काजर मुख ल्याऊँ—१-१६६।

वि.—**काला**। उ.—अघासुर मुख पैठि निकसे बाल-बच्छ छुड़ाई। लिख्यौ काजर नाग द्वारैं स्याम देखि डराई—४६८।

काजरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कज्जली] **वह गाय जिसकी आँखों पर काले रंग का घेरा हो**।

काजल—संज्ञा पुं. [सं. कज्जल] **दीपक के धुएँ की कालिख**। उ.—वह मथुरा काजल की कोठरि जे आवहिं ते कारे।

काजा—संज्ञा पुं. [हिं. काज] **काम, कृत्य**।

मुहा.—(उन) काजा—**(उनके) लिए (उनके) हेतु या निमित्त**। उ.—तातैं सकुचत हौं उन काजा। बालक सुनत होति जिय लाजा—२४५१।

काजी—संज्ञा पुं. [अ. क़ाज़ी] **मुसलमानी न्यायाधीश**। उ.—सूर मिलै मन जाहि जाहि सौं ताको कहा करै काजी—२६७८।

काजू-भोजू—वि. [हिं काज + भोग] **जो अधिक समय तक काम न आ सके**।

काजे—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. काज] **(काम) के लिए, (काम) के हेतु या निमित्त**। उ.—इन लोभी नैनन के काजे परबस भई जो रहौं—२७७४।

काजै—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. काज] **(काज) के लिए, (काम) के हेतु**। उ.—(क) ऐसी को करी अरु भक्त काजैं। जैसी जगदीस जिय धरी लाजैं—१-५। (ख) नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै—१०-१४६। (ग) तेरे ही काजैं गोपाल, सुनहु लाड़िले लाल, राखे हैं भाजन भरि सुरस छहूँ—१०-२६५।

काट—क्रि. स. [सं. कर्त्तन, प्रा. कट्टन, हिं. काटना] **काटना**। उ.—हाथ-पाइँ बहुतनि के काट। आइ नवायौ सिवहिं ललाट—४-५।

संज्ञा स्त्री. [हिं. काटना] (१) काटने की क्रिया। (२) काटने का ढंग, तराश। (२) घाव। (४) छल-कपट, चालबाजी।

वि.—[हिं. काटा] तिरछी, टेढ़ी, कटीली, तेज, काट करनेवाली। उ.—भौंहैं काट कटीलियाँ मोहिं मोल लई बिन मोल—८६३।

काट-कपट—संज्ञा स्त्री. [हिं काटना + कपटना] छल-कपट।

काटत—क्रि. स. [हिं. काटना] दूर करते (हो), नष्ट करते (हो), मिटाते (हो)। उ.—जन के उपजत दुख किन काटत—१-१०७।

काटन—क्रि. स. [सं. कर्त्तन, प्रा. कट्टन, हिं. काटना] (१) काटने के लिए टुकड़े करना। उ.—काटन दै दस सीस बीस भुज अपनौ कृत येऊ जो जानहि—९-९१। (२) दूर करने या मिटाने के लिए। उ.—जिहिं जिहिं जोनि जन्म धारयौ, बहु जोरयौ अघ कौ भार। तिहिं काटन कौं समरथ हर कौ तीछन नाम कुठार—६८।

संज्ञा पुं.— कतरन।

काटना—क्रि. स. [सं. कर्त्तन, प्रा. कट्टन] (१) टुकड़े करना, अलग करना। (२) चूरा करना। (३) घाव करना। (४) भाग निकालना। (५) मार डालना। (६) कतरना। (७) नष्ट करना, दूर करना, मिटाना। (८) समय बिताना। (९) रास्ता तय करना। (१०) अनुचित या असत्य ढंग से ले लेना। (११) मिटाना। (१२) डसना। (१३) किसी जीव का सामने से निकल जाना। (१४) (किसी की बात या राय का) खंडन करना। (१५) बुरा लगना, कष्ट पहुँचाना।

काटर—वि. [सं. कठोर] (१) कड़ा, कठिन। (२) कट्टर। (३) काटनेवाला।

काटि—क्रि. स. [हिं. काटना] (१) काट कर, खंड करके। उ.—आनँद-मगन राम-गुन गावै, दुख-संताप की काटि तनी—१-३९। (२) किसी जीव का सामने से निकल जाना। उ.—मंजारी गई काटि बाट, निकसत तब बाइन—५८९।

काटिबो—क्रि. स. [हिं. काटना] काटना, छीलना। उ.—तुमसौं प्रेम-कथा को कहिबो मनहु काटिबो घास—३३३६।

काटी—क्रि. स. भूत. [हिं. काटना] (१) काट ली। उ.—सूरदास-प्रभु इक पतिनी व्रत, काटी नाक गई खिसियाई—९-५६। (२) टुकड़े-टुकड़े कर दिया, चूर-चूर कर दिया। उ.—जोजन-बिस्तार सिला पवन-सुत उपाटी। किंकर करि बान लच्छ अंतरिच्छ काटी—९-९६।

काटू—वि. [हिं. काटना] (१) काटनेवाला। (२) डरावना, भयानक।

काटे—क्रि० स० [हिं. काटना] धड़ से अलग कर दिये, टुकड़े किये। उ०—जिहिं बल रावन के सिर काटे कियौ बिभीषन नृपति निदान—१०-१२७।

काटै—क्रि० स० [हिं० काटना] (१) काटता है। उ०—जद्यपि मलय वृक्ष जड़ काटै, कर कुठार पकरै। तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै, रिपु-तन-ताप हरै—१ ११७। (२) नष्ट करता है, मिटाता है। उ०—जाकौ नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फंद सब काटै—३४६।

काटौ—क्रि० स० [हिं० काटना] मुक्त करो, छुड़ाओ, छाँटो। उ०—कर जोरि सूर बिनती करै, सुनहु न हो रुकुमिनि-रवन। काटौ न फंद मो अंध के, अब बिलंब कारन कवन—१-१८०।

काट्यौ—क्रि० स० भूत० [हिं० काटना] (१) काटा, मुक्ति दी, (बंधन से) छुड़ाया। उ०—हा करुनामय कुंजर टेरयौ, रह्यौ नहीं बल थाकौ। लागि पुकार तुरत छुटकायौ, काट्यौ बंधन ताकौ—१-११३। (२) दूर किया, नष्ट किया। उ०—बिछुरन कौ संताप हमारौ, तुम दरसन दै काट्यौ—९-८७।

काठ—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ, प्रा० कट्ठ] (१) लकड़ी। (२) लकड़ी की बेड़ी। उ०—मांडव ऋषि जब सूली दयौ। तब सो काठ हरौ ह्वै गयौ—३-५। (३) जलाने की लकड़ी, इंधन। उ०—ताको जननी की गति दीन्हीं परम कृपालु गुपाल। दीन्हो फूँक काठ तन वाको मिलिके सकल गुवाल—४१८ सारा.। (४) काठ की पुतली।

काठिन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ापन।

काठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ] (१) घोड़ा, ऊँट आदि

की पीठ पर कसी जानेवाली जीन या गद्दी जिसमें काठ लगा रहता है। (२) शरीर की गठन।

काढ़त—क्रि. स. [हिं. काढ़ना] (१) खींचा जाता (है), खोला जाता है, आवरण रहित किया जाता (है), निकालता है। उ.—(क) भीषम, द्रोन, करन दुरजोधन, बैठे सभा बिराज। तिन देखत मेरौ पट काढ़त, लीक लगै तुम लाज—१-२५५। (ख) फाटे बसन सकुच अति लागत काढ़त नाहिंन हाथ —८१८ सारा.। (२७) बाल बनाता है, कंघे से बाल सवाँरता है। उ.—तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं ह्वैहै लाँबी-मोटी। काढ़त-गुहत न्हवाहत जैहै नागिन सी भुईं लोटी—१०-१७५। (३) किसी पदार्थ में पड़े हुए कीड़े-पतंगे निकालता है। उ.—मैं अपने मंदिर के कोनै राख्यौ माखन छानि। ....। सूर स्याम यह उतर बनायौ चींटी काढ़त पानि —१०-२८०।

काढ़ति—क्रि. स. [हिं. काढ़ना] (रेख आदि) खींचती है, चित्रित करती है। उ.—अपनी अपनी ठकुराइनि की काढ़ति है भुव रेख—पृ. ३४७ (५६)।

काढ़न—क्रि. स. [हिं. काढ़ना] निकालने के लिए, (भीतर की चीज को) बाहर करने के लिए। उ. —देखत हौं गोरस मैं चींटी, काढ़न कौं कर नायौ—१०-२७९।

काढ़ना—क्रि० स० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण] (१) किसी वस्तु को भीतर से बाहर निकालना। (२) खोलना या आवरण हटाना। (३) अलग करना। (४) बेल-बूटे बनाना। (५) उधार लेना। (६) पकाना।

काढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं० काढ़ना] पानी में उबाल कर निकाला हुआ ओषधियों का रस।

काढ़ि—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] (१) किसी वस्तु के भीतर से बाहर करना, निकालना। उ०—(क) परयौ भव-जलधि मैं हाथ धारि काढ़ि, मम दोष जनि धारि चित काम—१-२१४। (ख) स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल —१-९९। (२) निकाल देना, आश्रय न देना, शरण में न लेना, ठुकरा देना। उ०—बड़ी है राम-नाम की ओट। सरन गऐं प्रभु काढ़ि देत हैं, करत कृपा कैं कोट।

काढ़ी—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] (१) तैयार की है, प्रस्तुत की है, बनायी है। उ०—(क) चकित भई देखैं ढिग ठाढ़ी। मनौ चितेरैं लिखि लिखि काढ़ी—३९१। (ख) रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी। हरि के चलत देखियत ऐसी मनहुँ चित्रि लिखि काढ़ी—२५३५। (२) कोई वस्तु दूसरी से अलग की। उ०—सब हेरि धरी है साढ़ी। लई ऊपर ऊपर काढ़ी—१०-१८३।

काढ़ो—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] निकालो, (भाव या विचार) दूर करो। उ०—ग्रह नछत्र अरु बेद अरध करि खात हरष मन बाढ़ो। तातैं चहत अमरपन तन को समुझ समुझ चित काढ़ो—सा० ६५।

काढ़ौ—क्रि० स० [सं० कर्षण, प्रा० कड्ढण, हिं० काढ़ना] (१) किसी वस्तु को बाहर करो, निकालो। उ०—जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं। घर के कहत सबारे काढ़ौ, भूत होइ धरि खैहैं—१-८६। (२) तान लिये, खड़े किये, निकाल कर ताने। उ.—बिषधर झटकीं पूछ फटकि सहसौ फन काढ़ौ। देख्यौ नैन उघारि, तहाँ बालक इक ठाढ़ो—५८९।

काढ़्यौ—क्रि० स० [हिं० काढ़ना] (१) निकाल दिया, बाहर किया। उ०—(क) कंचन कलस बिचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायौ। तामैं तैं ततछन ही काढ़्यौ, पल भर रहन न पायौ—१-३०। (ख) अघ बक बच्छ अरिष्ट केसी मथि जल तैं काढ़्यौ काली—२५६७। (२) खींचा, निकाला, प्राप्त किया। उ०—यह भुवमंडल कौ रस काढ़्यौ भाँति भाँति निज हाथ—८४ सारा०।

कातना—क्रि० स० [सं० कर्त्तन, प्रा० कत्तन] रूई से सूत कातना।

कातर—वि० [सं०] (१) अधीर, व्याकुल। उ०—भक्त-बिरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे। सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे—१-८। (२) डरा हुआ, भयभीत। (३) कायर। (४) आर्त्त, दुखित।

कातरता—संज्ञा०स्त्री० [सं०] (१) अधीरता। (२) दुख। (३) कायरता।

काता—संज्ञा पुं० [हिं० कातना] **सूत, तागा।**

संज्ञा पुं० [सं० कर्तृ, कर्त्ता; प्रा० कत्ता] **बाँस काटने की छुरी, छुरी।**

कातिक—संज्ञा पुं० [सं० कार्तिक] **क्वार के बाद का महीना।**

कातिब—संज्ञा पुं० [अ० क़ातिब] **लिखनेवाला।**

कातिल—वि० [अ० क़ातिल] **(१) प्राण हरनेवाला। (२) हत्यारा।**

काती—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्त्री, प्रा० कत्ती] **(१) कैंची, कतरनी। (२) छुरी, छोटी तलवार।** उ— ऊधौ कुलिस भई यह छाती। मेरे मन रसिक नंदलालहिं झपत रहत दिन राती। तजि व्रज लोग पिता अरु जननी कंठ लाइ गए काती—३११६।

कातैं—सर्व. सवि. [सं. कः= हिं. का+तैं (प्रत्य०)] **किससे।** उ.—(क) जुग जुग बिरद यहै चलि आयो टेरि कहत हौं यातैं। मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, हौं अब कहौ घटि कातैं-१-१३७। (ख) हम तुम सब बैस एक कातैं को अगरो—१०-३३६।

कात्यायनी—संज्ञा स्त्री. [सं०] **(१) दुर्गा देवी। (२) भगवा वस्त्र पहननेवाली विधवा।**

काथ—संज्ञा पुं. [हिं. क्वाथ] **कत्था।**

संज्ञा स्त्री [हिं. कंथा] **गुदड़ी।**

काथरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कथरी] **गुदड़ी।**

कादंब—वि. [सं.] **समूह-संबंधी।**

संज्ञा पुं.-**(१) कदंब का पेड़ या फूल। (२) कलहंस। (३) कदंब की शराब।**

कादंबरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) कोयल। (२) सरस्वती देवी। (३) शराब**

कादंबिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) मेघ, घटा। (२) एक रागिनी।**

कादर—वि. [सं. कातर, हिं. कायर **(१) डरपोक, भीरु, कायर। (२) व्याकुल, अधीर।** उ.-(क) भगत बिरह कौ अतिहीं कादर, असुर-गर्ब-बल नासत—१-३१, (ख) देखि देखि डरपत व्रजबासी अतिहिं भये मन कादर—९४६।

कादिरी—संज्ञा स्त्री [अ.] **एक तरह की चोली।**

कान—संज्ञा पुं. [सं. कर्ण, प्रा. कण्ण] **श्रवणेंद्रिय, श्रवण, श्रुति।**

मुहा०-कान कटाई-जगहँसाई होना, अपमान होना, उ.—(क) कीजै कृष्ण दृष्टि की बरषा, जन की जाति लुनाई। सूरदास के प्रभु सो करियै, होइ न कान कटाई—१-१८५ (ख) सूर स्याम अपने या व्रज की इहिं बिधि कान कटाई—३०७७। करी न कान-**ध्यान नहीं दिया।** उ.—जब तोसौं समुझाइ कही नृप तब तैं करी न कान—१-२६६। कान दै-**ध्यान देकर, एकाग्र चित्त होकर, एक ही ओर ध्यान लगाकर।** उ.—(क) तू जानति हरि कछू न जानत, सुनत मनोहर कान दै। सूर स्याम ग्वालिनि बस कीन्हौं, राखति तन-मन-प्रान दै-१०-२७४। (ख) तब गदगद बानी प्रभु प्रगटी सुन सजनी दै कान—११८४। (ग) सुनौ धौं दै कान अपनी लोक लोकान क्रांत—३४७६। कान लगि कह्यौ-**चुपके से कहना, धीरे से सलाह देना।** उ.—कान लगि कह्यो जननि जसोदा वा घर में बलराम। बलदाऊ कौं आवन देहौं श्रीदामा सौं काम-१०-२४०। **(२) सुनने की शक्ति। (३) कान में पहनने का एक गहना।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. कानि] **(१) मर्यादा, लोकलाज।** उ.-(क) तोहि अपनो लाल प्यारो हमैं कुल की कान—सा. ११४। (ख) मोरि प्रतिज्ञा तुम राखी है मेटि बेद की कान—७८५ सारा.। **(२) लिहाज, संकोच।**

संज्ञा पुं. [सं कृष्ण, हिं. कान्ह] **कृष्ण।** उ.-(क) हौं चाहे तासों सब सीखब रसबस रिझबो कान—सा. ६८। (ख) कूदो कालीदह में कान—सा. ७३। (ग) रथ को देखि बहुत भ्रम कीन्हों धों आये फिर कान—५६१ सारा.।

कानन—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) जंगल, वन। (२) घर।**

काना—वि. [सं. काण] **जिसके एक ही आँख हो।**

वि. [सं. कर्ण] **कोनेदार, तिरछा, टेढ़ा।**

वि. [सं. कर्णक] **जिस फल में कीड़े हों।**

कानि—संज्ञा स्त्री. [?] **(१) लोक-लाज, मर्यादा, मर्यादा का ध्यान।** उ.—जिन गोपाल मेरौ प्रन राख्यौ, मेटि बेद की कानि—१-२७९। **(२) लिहाज, दबाव, संकोच, संबंध का विचार।** उ.—

(क) ब्रह्मबान कानि करी बल करि नहिं बाँध्यौ—६-९७। (ख) जसुदा कहँ लौं कीजै कानि। दिन प्रति कैसैं सही परति है, दूध-दही की हानि—१०-२८०। (ग) लागे लैन नैन जल भरि भरि, तब मैं कानि न तोरी—१०-२८६। (घ) लखा परस्पर मारि करैं, कोउ कानि न मानैं—५८६।

कानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कानि] **लोकलाज, मर्यादा का ध्यान**। उ.—(क) कान्हहिं बरजति किन नँदरानी। एक गाउँ कैं बसत कहाँ लौं, करैं नंद की कानी—१०-३११। (ख) लोक-बेद कुल-धर्म केतकी नेक न मानत कानी हो—२४००। (२) **दबाव, संकोच, लिहाज**। उ.—कंस करत तुम्हरी अति कानी—१००३।

वि. स्त्री. [हिं. काना] **जिसकी एक आँख फूटी हो, एक आँखवाली**। उ.—बकुची खुमी आँधरि काजर कानी नकटी पहिरै बेसरि। मुँडली पटिया पारि सँवारे कोढ़ी लावै केसरि—३०२६।

संज्ञा पुं. [हिं. कान] **कान**।

मुहा०—न कीन्हौ कानी—**कान न किया, सुना नहीं, सुनकर ध्यान नहीं दिया**। उ.—तिन तौ कह्यौ न कीन्हौ कानो। तन तजि चली बिरह अकुलानी—८००।

वि. स्त्री—[सं. कनीनी] **सबसे छोटी (उँगली)**।

कानीन—वि. [सं.] **क्वारी कन्या से उत्पन्न**।

संज्ञा पुं.—**वह पुत्र जो क्वारी कन्या से उत्पन्न हुआ हो**।

क़ानून—संज्ञा [यू० केनान] (१) **राजनियम, विधि**। (२) **नियम-संग्रह, विधान**।

कानै—संज्ञा पुं० [हिं० कान] **कान**।

मुहा०—न कीन्हौ कानै—**कान नहीं किया, नहीं सुना, सुनकर ध्यान नहीं दिया**। उ०—तिन तो कह्यौ न कीन्हों कानै—८६६

कानै—संज्ञा पुं० [हिं० कान] **कान**। उ०—निर्गुन बचन कहहु जनि हमसौं ऐसी करहिं न कानै—३३६६।

कानौ—वि० [सं० काना] (१) **एक आँख का, काना**। उ०—स्वान कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्रवन-पुच्छ-बिहीन। भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी आधीन—१-३२१। (२) **कमी, दोष**। उ०—अपनैं ही अज्ञान—तिमिर मैं बिसर्‍यौ परम ठिकानौं। सूरदास की एक आँखि है, ताहू मैं कछु कानौ—१-४७।

कान्यकुब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) **एक प्राचीन प्रांत जो वर्तमान कन्नौज के आसपास था**। (२) **इस देश का निवासी**।

कान्ह, कान्हर—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] **श्री कृष्ण**। उ०—मो देखत कान्हर इहिं आँगन पग है धरनि धराहिं—१०-७५।

कान्हरो—संज्ञा पुं० [सं० कर्णाट, हिं० कान्हड़ा] **एक राग जो रात को गाया जाता है**। उ०-सुर सौंवत भूपाली ईमन करत कान्हरो गान—१०१३ सारा.।

कान्हा—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] **श्रीकृष्ण**। उ०—ऐसी रिस करौ न कान्हा। अब खाहु कुँवर कछु नान्हा—१०-१८३।

कान्हैं—संज्ञा पुं० सवि० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह, हि० कान्ह] **श्रीकृष्ण को**। उ०—कान्हैं लै जसुमति कोरा तैं रुचि करि कंठ लगाए—१०-५३।

कान्है—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण, प्रा० कण्ह] **श्रीकृष्ण**। उ०—सुनु री सखी कहति डोलति है या कन्या सौं कान्है—१०-३१५।

कापर, कापरा—संज्ञा पुं० [सं० कर्पट=वस्त्र, प्रा० कप्पड़] **कपड़ा, वस्त्र**। उ०—काढ़ौ कोरे कापरा (अरु) काढ़ौ घी क भौन। जाति पाँति पहिराइ कै (सब) समदि छतीसौ पौन—१०-४०।

कपाल—संज्ञा पुं० [सं०] **एक प्राचीन संधि**।

कापालिक—संज्ञा पुं० [सं०] **शैव मत के साधु जो कपाल या खोपड़ी में मांसादि खाते हैं**।

कापालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] **एक बाजा जो मुँह से बजता था**।

कापा—संज्ञा पुं० [हिं० कंपा] **बाँस की पतली तीलियाँ जिनमें लासा लगाकर चिड़ियाँ फँसायी या पकड़ी जाती हैं**। उ०—मुरली अधर चंप कर कापा मोर मुकुट लट वारि—२७८७।

कापाली—संज्ञा पुं० [सं० कापालिन्] **शिव**।

कापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] कायर।

कापै—सर्व० सवि० [सं० कः=का, केन] किससे, किसके द्वारा। उ०—बृन्दाबन ब्रज कौ महत कापै बरन्यौ जाइ —४६२।

काफिया—संज्ञा पुं० [अ०] अंत्यानुप्रास, तुक।

काफिर—वि० [अ०] (१) जो इस्लाम धर्म न माने। (२) जो ईश्वर को न माने। (३) निर्दयी।

काफिला—संज्ञा पुं० [अ०] यात्रियों का दल।

काफी—वि० [अ०] जितना चाहिए हो उतना ; पर्याप्त।

काबर—वि. [सं. कर्बुर, प्रा. कब्बुर] चितकबरा।

संज्ञा पु. रेत मिली भूमि, दोमट, खाभर।

काबा—संज्ञा पुं. [अ.] अरब में मक्के का वह स्थान जहाँ मुहम्मद साहब रहते थे। यह मुसलमानों का तीर्थ है।

काबिल—वि. [अ.] (१) योग्य। (२) विद्वान।

काबिस—संज्ञा पुं. [स. कपिश] एक रंग जिससे मिट्टी के कच्चे बर्तन रँगे जाते हैं।

काबू—संज्ञा पुं [तु.] वश, अधिकार।

काम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इच्छा, मनोरथ। उ.—(क) सूरदास प्रभु अंतरजामी कीन्हौ पूरन काम—६७६। (ख) चिरजीवौ जसुदानन्द पूरन काम करी—१-२४। (ग) किये सनाथ बहुत मुनि कुल को बहु विधि पूरे काम—२४७ सारा. (२) महादेव। (३) कामदेव। उ.—(क) सूरदास प्रभु अंग अंग नागरि मनो काम किय रूप बियोरी—सा. उ. १८। (ख) सूर हरि की निरखि सोभा कोटि काम लजाइ—३५२। (४) इंद्रियों की विलास की प्रवृत्ति। (५) भोग-विलास की इच्छा। उ.—(क) मुख देखत हरि कौ चकित भई तन की सुधि बिसराई। सूरदास प्रभु कैं रसबस भई काम करी कठिनाई—७२६। (ख) भ्रम-मद-मत्त काम-तृष्ना-रस-बेग न क्रमै गह्यौ—१-४६। चार पदार्थों में एक। उ.—अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष फल चारि पदारथ देइ गनी—१-३६।

संज्ञा पुं. [सं. कर्म, प्रा. कम्म] (१) क्रिया, व्यापार, कार्य। (२) कठिन कार्य, कौशलयुक्त क्रिया। (३) प्रयोजन, अर्थ, मतलब। उ.—(क) अन्त के दिन कौं हैं घनस्याम। माता पिता बन्धु सुत तौ लगि जौ लगि जिहिं कौ काम—१-७६। (ख) कान लागि कह्यौ जननि जसोदा वा घर में बलराम। बलदाऊ कौं आवन दैहौं श्रीदामा सौं काम—१०-२४०।

मुहा.—काम परयौ—आवश्यकता हुई, प्रयोजन हुआ, दरकार हुई। काम बनावै-मतलब निकालता है, स्वार्थ पूरा करता है। उ.—मूक,निंद, निगोड़ा, भोंड़ा कायर काम बनावै—१-१८६। काम सरै—काम बनता है, उद्देश्य की सिद्धि होती है, मतलब निकलता है। उ.—सब तजि भजिए नंदकुमार। और भजे तैं काम सरै नहिं, मिटे न भव जंजार—१-६८।

(४) वास्ता, सरोकार, सम्बन्ध।

मुहा.—काम परयौ—पाला पड़ना, वास्ता होना, व्यवहार या सम्बन्ध होना। उ.—परयौ काम सारँग बासी सौं राखि लियौ बलबीर—१-३३। (ख) नरहरि ह्वै हिरनाकुस मारयौ काम परयौ हो बाँकौ। गोपीनाथ सूर के प्रभु कैं बिरद न लाग्यौ टाँकौ—१-१२३। (ग) अब तौ आनि परयौ है गाढ़ौ सूर पतित सौं काम—१-१७६।

(५) उपयोग, व्यवहार।

मुहा.—काम आवैं—(१) साथ दें, सहारा दें, सहायक हों, आड़े आवें। उ.—(क) धन-सुत-दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ—१-८०। (ख) आवत गाढ़ै काम हरि, देख्यौ सूर बिचारि—२-२६। (ग) हार बिन कोऊ काम न आयौ—२-३०। (२) उपयोगी हुई, व्यवहार में आयी। उ.—काया हरि कैं काम न आई। भावभक्ति जहँ हरि-जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई—१-२६५।

(६) कारबार, रोजगार। (७) कारीगरी, दस्तकारी। (८) बेल बूटे।

कामकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कामदेव की स्त्री, रति। (२) मैथुन।

कामकाज—संज्ञा पुं. [हिं. काम] कारबार।

कामकेलि—संज्ञा स्त्री. [स.] कामक्रीड़ा, रति।

कामग—वि. [सं.] (१) मनमानी करनेवाला। (२) काम से।

काम-ग्रंथ-अरि-गुन-रिपु-सुत—संज्ञा पुं. [सं. कामग्रंथ (कोक=चक्रवाक) + अरि (चक्रवाक का शत्रु=रात;

क्योंकि रात को चकवा-चकवी को अलग होने से दुख मिलता है) + गुन (रात का गुण = अन्धकार) + रिपु (अंधकार का शत्रु=दीपक) + सुत (दीपक का सुत = अंजन = दिग्गज = गज=हाथी)] हाथी। उ.—काम ग्रन्थ-अरि गुन रिपु-सुत-सम गति अति नीक बिचारी—सा. १०३।

कामजित्—वि. [सं.] काम या वासना को जीतनेवाला।
संज्ञा पुं.—(१) महादेव। (२) कार्तिकेय।

कामतरु—संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष।

कामद—वि० [सं० (द = देनेवाला)] इच्छा पूरी करने वाला।

कामदगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकूट का एक पर्वत जहाँ श्रीराम ने वास किया था।

कामदहन—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव को भस्म करनेवाले शिवजी।

कामदा—स्त्री० [सं० कामद] (१) कामधेनु। (२) एक देवी।

कामदुघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

कामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-पुरुष-संयोग का प्रेरक एक देवता जो बहुत सुन्दर माना गया है। रति इसकी स्त्री, सखा वसंत, वाहन कोकिल, अस्त्र फूलों का धनुष-बाण है।

कामधाम—संज्ञा पुं० [हिं० काम + धाम (अनु०)] काम-धंधा। उ०—ब्रजधर गयीं गोप कुमारि। नेकहूँ कहुँ मन न लागत काम धाम बिसारि।

कामधुक—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।

कामधुज—संज्ञा स्त्री० [सं० कामध्वज] मछली जो कामदेव की ध्वजा पर अंकित है। उ०—लाभ थान पंचमी कामधुज गृहनिध गृह में आई। मान लेहु मन अपने भू सब हरो भार इन भाई-सा० ८१।

कामधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र से निकली गाय जो चौदह रत्नों में एक है और जो सभी अभिलाषाएँ पूरी करती है।

कामध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो कामदेव की ध्वजा पर अंकित है, मछली।

कामना—संज्ञा स्त्री० [सं.] इच्छा, अभिलाषा।

कामनाधेनु—संज्ञा स्त्री. [सं.] कामधेनु जो समुद्र के रत्नों के साथ निकली थी। उ.—कामनाधेनु पुनि सप्तरिषि कौं दई, लई उन बहुत मन हर्ष कीन्हे—८-८।

कामबन—संज्ञा पुं. [स. काम + वन] ब्रजमंडल के अंतर्गत एक वन।

कामबाण—संज्ञा पु. [सं.] कामदेव के पाँच बाण—मोहन, उन्मादन, संतपन, शोषण और निश्चेष्ट-करण। कामदेव के बाण फूलों के भी कहे जाते हैं, वे फूल ये हैं—लाल कमल, अशोक, आम, चमेली और नील कमल।

कामभूरुह—संज्ञा. पुं. [सं. (भूरुह=वृक्ष)] कल्पवृक्ष।

कामरि—संज्ञा स्त्र. [सं. कंबल] कमली, कंबल। उ. —(क) सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग—१-३३२। (ख) सोइ हार काँधे कामरि, काछ किए, नाँगे पाइनि, गाइनि टहल करैं—४१३।

कामरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कंबल, हि. कमली] कमली, कंबल। उ.—कान्ह काँधे कामरिया कारी, लकुट लिए कर धरै हो—४५२।

कामरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कंबल] कमली, कंबल। उ.—एक दूध, फल, एक झगरि करि बेना लेत निज निज कामरी के आसननि कीने—४६७।

कामली—संज्ञा स्त्री० [सं० कंबल] कमली, कंबल।

कामशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या जिसमें स्त्री-पुरुष-प्रसंग का सविस्तार वर्णन हो।

कामसखा—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत।

कामांध—वि० [सं०] जो कामवासना की प्रबलता के कारण उचित-अनुचित का ज्ञान न रख सके।

कामा—क्रि० वि० [हि० काम] हेतु, लिए। उ०—फैंट छाँड़ि मेरी देहु श्रीदामा। काहे कौं तुम रारि बढ़ावत, तनक बात कैं कामा—५३६।

संज्ञा स्त्री—कामवती स्त्री।

संज्ञा पुं०—इच्छा, अभिलाषा। उ०—तबहिं असीस दई परसन ह्वै सफल होहु तुम कामा—१०उ०-६६।

संज्ञा स्त्री०—राधा की एक सखी का नाम। उ०—(क) इंदा विंदा राधिका स्यामा कामा नारि—११०१। (ख) स्यामा कामा चतुरा नवला प्रमुदा सुमदा नारि—१५८०। (ग) स्याम गये उठि भोर

हीं बृन्दा के धाम। कामा के गृह निसि बसे पुरयौ मन काम—२१२६।

कामातुर—वि० [सं० काम + आतुर] **काम या संभोग की इच्छा से व्याकुल।** उ०— भज्यौ मोहिं कामातुरनारी—७६६।

कामानुज—संज्ञा पुं० [स० काम + अनुज] **क्रोध गुस्सा।**

कामायनी— संज्ञा स्त्री० [सं०] **वैवस्त मनु की पत्नी श्रद्धा का एक नाम।**

कामारि—संज्ञा पुं. [सं. काम + अरि] **कामदेव के शत्रु, शिव।**

कामि—वि. [स. कामिन्, हिं. कामी] **भोग-विलास में लिप्त रहनेवाला, कामुक।** उ.—पुहुप पराग परस मधुकरगन मत्त करत गुंजार। मानो कामि जन देख जुवति जन बिषयासक्ति अपार—१०४४ सार.।

कामिनी, कामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कामिनी] **(१) कामवती स्त्री। (२) सुन्दर नारी।** उ०—अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगौ पचिबौ—१-५६। **(३) मदिरा। (४) एक पुष्प।**

कामी- वि. [सं. कामिन्] **(१) कामना रखनेवाला, इच्छुक। (२) विषयी, कामुक।** उ०—यहै जिय जानि कै अंध भव-त्रास तैं, सूर कामी कुटिल सरन आयौ —१-५। **(३) मतलबी, स्वार्थी।** उ.—कीन्हीं प्रीति पहुँप गुंडा की अपने काज के कामी—३०८०।

कामुक—वि. [सं.] **(१) इच्छा रखनेवाला। (२) कामी, विलासी।**

कामोद्दीपन—संज्ञा पुं. [सं. काम + उद्दीपन] **काम की इच्छा या उत्तेजन।**

काम्य—वि. [सं.] **(१) जिसकी इच्छा हो। (२) जिससे इच्छा पूरी हो। (३) चाहने योग्य। (४) वासना-संबंधी।**

काय, कायक—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) काया, शरीर।** उ.—बंदन दासपनौ सो करै। भक्तनि सख्य-भाव अनुसरै। काय-निवेदन सदा बिचारै। प्रेम-सहित नवधा विस्तारै—५८६-५। **(२) मूल धन (३) स्वभाव, लक्षण।**

कायफर, कायफल—संज्ञा पुं. [सं. कट्फल] **वृक्ष जिसकी छाल दवा के काम आती है।**

कायर—वि. [सं. कातर] **भीरु, असाहसी, डरपोक।** उ.—मूकु, निंद, निगोड़ा, भोंड़ा, कायर, काम बनावै—१-१८६।

कायरता—संज्ञा स्त्री. [सं० कातरता] **डरपोकपन।**

कायल—वि. [अ.] **जिसने दूसरे का तर्क स्वीकार कर लिया हो।**

कायली—संज्ञा स्त्री. [सं. क्वेलिका] **मथानी।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. कायर] **ग्लानि लज्जा।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. कायल] **कायल होने की भावना।**

काया—संज्ञा स्त्री. [सं. काय] **शरीर, तन, देह।** उ.—जनम साहिबी करत गयौ। काया नगर बड़ी गुंजाइस, नाहिंन कछु बढ़यौ—१-६४।

कायाकल्प—संज्ञा पुं. [सं.] **औषधों के प्रयोग और नियम-संयम से वृद्ध और रोगी शरीर सशक्त और स्वस्थ करने की क्रिया।**

कायापलट—संज्ञा पुं. [हिं. काया + पलटना] **(१) शरीर या रूप बदल डालने की क्रिया। (२) महान परिवर्तन।**

कायिक— वि. [सं०] **(१) शरीर संबंधी। (२) शरीर से उत्पन्न।**

कारंड, कारंडव—संज्ञा पुं. [सं.] **हंस की जाति का एक पक्षी।**

कारधमी—संज्ञा पुं. [सं.] **लोहे जैसी धातुओं से सोना बनानेवाला, कीमियागर।**

कार—संज्ञा पुं० [सं०] **(१) कार्य, क्रिया। (२) करने या बनानेवाला। (३) पूजा की बलि। (४) पति।**

कारक—वि० [सं०] **करनेवाला।**

संज्ञा पुं० [सं०] **वाक्य में संज्ञा सर्वनाम की अवस्था जो क्रिया के साथ संबंध प्रकट करती है।**

कारकदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] **एक काव्यालंकार।**

कारकुन—संज्ञा पुं० [फा०] **प्रबंधक।**

कारखाना—संज्ञा पुं० [फा०] **व्यापारिक वस्तु-निर्माण का स्थान।**

कारगर—वि० [फा०] **लाभदायक, प्रभावकारी।**

कारगुजार—वि० [फा०] अच्छी तरह काम करनेवाला, मुस्तैद।

कारगुजारी—संज्ञा स्त्री [फा०] कार्य-कुशलता, मुस्तैदी।

कारज—संज्ञा पुं० [सं० कार्य] काम, उद्देश्य, मतलब। उ०—मम आयसु तुम माथैं धरौ। छल-बल करि मम कारज करौ—१०-५८।

मुहा०— कारज सरी—काम बन जायगा, उद्देश्य की सिद्धि होगी, इच्छा पूरी होगी। उ०—सूर प्रभु के संत बिलसत सकल कारज सरी—१० ३०२। कारज सरै—उद्देश्य सिद्ध हो, मतलब निकले, काम बने। उ०— किए नर की स्तुती कौन कारज सरै, करै सो आपनौ जन्म हारै—४-११। कारज सार्यौ--काम बनाया, इच्छा पूरी की। उ०—रसना हूँ कौ कारज सार्यौ, मैं यौं अपनौ काज बिगार्यौ—४-१२।

कारजी—वि० [हिं० कारज] काम करनेवाला, सेवक। उ०—ऐसे हैं ये स्वामि-कारजी तिनकौ मानत स्याम—पृ० ३२०।

कारटा—संज्ञा पुं० [सं० करट] कौआ, काग।

कारण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सबब, हेतु। (२) हेतु, निमित्त। (३) आदि, मूल। (४) साधन। (५) कर्म। (६) प्रमाण।

कारणमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कारणों की श्रेणी, अनेक संबंधित कारण। (२) एक अर्थालंकार जिसमें किसी कारण के फलस्वरूप कार्य से संबंधित पुनः किसी कार्य के होने का वर्णन हो।

कारणिक—वि० [सं०] कर्मचारी से संबंध रखने वाला।

कारन—संज्ञा पुं० [सं० कारण] (१) हेतु,सबब। उ०—सूरदास सारँग किहि कारन सारँगकुलहिं लजावत—सा० उ० ३६। (२) निमित्त। उ०—(क) बलि बल देखि, अदिति सुत-कारन त्रिपद-ब्याज तिहुँ पुर फिरि आई—१-६। (ख) अधर अरुन, अनूप नासा निरखि जन-सुखदाइ। मनौ सुक फल बिंब कारन लेन बैठ्यौ आइ—१०-२३४। (ग) मो कारन कछु आन्यौ है बलि, बन- फल तोरि कन्हैया—४१८।

वि०—करनेवाले। उ०—सब हित कारन देव, अभयपद नाम प्रताप बढ़ायौ—१-१८८।

संज्ञा स्त्री० [सं० कारुण्य] रोने की करुण ध्वनि।

कारन-अंत—संज्ञा पुं० [सं० कारण+अंत] कारण का अंत, काज, कार्य। उ०—कारन अंत-अंत ते घटकर आदि घटत पै जोई। मद्ध घटे पर नास कियौ है नीतन में मन मोई—सा० ५।

कारनकरन—संज्ञा पुं. [सं. करण-कारण] उपादान कारण और सृष्टि का करनेवाला निमित्त कारण, सृष्टि का मूल तत्व, ईश्वर। उ.—(क) कारन-करन, दयालु दयानिधि, निज भय दीन डरै। इहिं कलिकाल-ब्याल मुख-ग्रासित सूर सरन उबरै—१-११७। (ख) माया प्रगति सकल जग मोहै। कारन करन करै सो सोहै—१०३।

संज्ञा स्त्री. [सं. करुणा] रोने की करुण ध्वनि।

कारनमाला—संज्ञा स्त्री. [सं. कारणमाला] एक अर्थालंकार जिसमें किसी कारण से होनेवाले कार्य से फिर किसी कार्य के होने का वर्णन हो। उ.—सोतन हान होन चाहत है बिना प्रानपति पाये। कर संका कारन की माला तेहि पहिराउ सुभाये—सा. ४८।

कारनी—संज्ञा पुं. [सं. कारण] प्रेरणा करनेवाला, प्रेरक।

संज्ञा पुं.[सं. कारीनि] (१) परस्पर भेद करनेवाला। (२) बुद्धि या विचार पलटनेवाला।

कारने—संज्ञा पुं. सवि. [सं. कारण] के लिए, हेतु। उ.—(क) सखियन सुख देखन कारने रंग हो हो होरी—१४१०। (ख) दह्यौ बह्यौ के कारने कहहि बढ़ावति रारि—११०८। (ग) तुम सौं अब दधि कारने कौन बढ़ावै रारि—११२३।

कारबार—संज्ञा पुं. [फा.] (१) कामकाज। (२) पेशा।

कारबारी—वि. [हिं. कारबार] कामकाजी।

कारा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बन्धन, कैद। (२) कारागृह, बन्दीगृह। (३) पीड़ा, दुख।

वि. [हिं. काला] काले रंग का, काला।

कारागार, कारागृह—संज्ञा पुं. [सं.] बन्दीगृह, जेल।

कारावास—संज्ञा पुं. [सं.] जेल में रहना, कैद।

कारिंदा—संज्ञा पुं. [फा.] जो दूसरे की ओर से काम करे, गुमाश्ता।

कारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] श्लोक-रूप में की गयी किसी सूत्र की व्याख्या ।

कारिख—संज्ञा स्त्री. [सं. कलुष] (१) स्याही, कालिमा । (२) काजल । (३) कलंक, दोष । उ.—जो कारिख तन मेटो चाहत तौ कमलबदन तनु चाहि—३३६० ।

कारिणी—वि. स्त्री. [सं.] करनेवाली ।

कारित—वि. [सं.] कराया हुआ ।

कारी—वि० स्त्री० [हिं० पुं० काला] (१) काले रंग की । उ०—(क) अनत सुत गोरस कौं कह जात । घर सुरभी कारी धौरी कौ माखन माँगि न खात-१०-३२६ । (ख) गगनै घहराइ जुरी घटा कारी—६८४ । (ग) स्याम सुखरासि रसरासि भारी।······ । सील की रासि जस रासि आनंदरासि, नव जलद छबि बरन कारी—१३४० ।

मुहा—होतपीरी कारी-काली-पीली होना, गुस्सा दिखाना, झुँझलाना । उ०—ज्यों ज्यों मैं निहोरे करौं त्यौं त्यौं यौं बोलत है री अनोखी रूसनहारी । बहियाँ गहत कौन पर मगधरी उँगरी कौन पै होत पीरी कारी—२०४७ ।

वि० [सं० कारिन्] करनेवाला (प्रत्य० रूप में) ।

वि० [फा०] मर्मभेदी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कारिता] करने का काम ।

कारीगर—संज्ञा पुं० [फा०] शिल्पकार ।

वि०—हाथ के काम में चतुर ।

कारु—संज्ञा पुं० [सं०] कारीगर, शिल्पी ।

कारुणिक—वि० [सं०] दयालु, कृपालु ।

कारुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] दया, कृपा ।

कारे—वि० [सं० काल, हिं० काला] काला, श्याम । उ०—(क) गरजत कारे भारे जूथ जलधर के—१०-३४ । (ख) डसी स्याम भुअंगम कारे—७४७ । (२) बड़ा, भारी ।

मुहा०—कारे कोसनि—बहुत दूर । उ०—तातैं अब मरियत अपसोसनि । मथुरा हू ते गये सखी री अब हरि कारे कोसनि—१० उ०-८८ ।

संज्ञा पुं० [कारिन, कारी] करनेवाला (प्रत्य० रूप) । उ०—मोरन के सुर सरस सम्हारत पय सुरतिया बीच रुचकारे—सं० ६१ ।

कार—संज्ञा पुं० सवि० [सं० काल, हिं० काला] काले साँप । उ०—(क) ताकी माता खाई कारैं । सो मरि गयी साँप के मारे—७-८ । (ख) एक बिटिनियाँ सँग मेरे ही, कारैं खाई ताहि तहाँ री—६६-७ । (ग) क्यौंरी कुँवरि गिरी मुरझाई ? यह बानी कही सखियन आगैं, मोकौं कारैं खाई—७४१ ।

कारो—वि० [हिं० काला ।] काला । उ०—सूरस्याम सुजान पाइन परो कारो काम—सा० २१ ।

कारौ—वि० [सं० काल, हिं० काला] (१) काला, कृष्ण, श्याम । उ०—कारौ अपनौ रंग न छाँड़ै, अनरँग कबहुँ न होई—१-६३ । (२) बुरा, कलुषित । उ०—तीनौं पन मैं भक्ति न कीन्हीं, काजर हूँ तैं कारो—१-१७८ ।

कार्त्तवीर्य—संज्ञा पुं. [सं.] सहस्रार्जुन जिसके हजार हाथ थे । यह कृतवीर्य का पुत्र था । इसे परशुराम ने मारा था ।

कार्त्तिक—संज्ञा पुं. [सं.] क्वार के बाद का महीना ।

कार्त्तिकेय—संज्ञा पुं. [सं.] कृतिका नक्षत्र में जन्में स्कंद जी जिनके ६ मुख माने जाते हैं ।

कार्दम—वि. [सं.] (१) कीचड़ से भरा हुआ । (२) कर्दम से संबंधित ।

कार्पण्य—संज्ञा. पुं. [सं.] कंजूसी, कृपणता ।

कार्मण, कार्मना—संज्ञा. पुं. [सं.] तंत्र-मंत्र का प्रयोग ।

कार्मुक—संज्ञा पुं [सं.] (१) धनुष । (२) इंद्रधनुष ।

कार्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काम-धंधा । (२) कारण का फल । (३) परिणाम, फल ।

कार्यकर्त्ता—संज्ञा पुं. [सं.] काम करनेवाला, कर्मचारी ।

कार्यक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] काम की व्यवस्था या प्रबंध ।

काल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समय, अवसर । उ०—हरि सौं मीत न देख्यौ कोई । बिपति-काल सुमिरत, तिहिं औसर आनि तिरीछौ होई—१-१० । (२) मृत्यु । उ०—काल अवधि जब पहुँची आइ । तब जम दीन्हें दूत पठाइ—६-४ । (३) यमराज, यमदूत । उ०—(क) ग्रस्यो गज ग्राह लै चल्यौ पाताल कौं, काल कैं त्रास मुख नाम आयौ । छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरो पवन के गवन तैं अधिक धायौ—१-५ । (ख) कहत हे, आगैं जपिहैं

राम। बीचहिं भई और की औरै परयौ काल सौं काम—१-५७। (४) नियत समय या ऋतु। (५) अकाल, महँगी। (६) काला साँप। (७) शनि। (८) शिव का एक नाम।

वि०—काले रंग का, काला।

क्रि० वि० [हिं. काल] बीता हुआ दिन, आनेवाला दिन।

कालअगिन—संज्ञा स्त्री० [सं० काल + अग्नि] प्रलय काल की आग।

कालकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) मोर। (३) नीलकंठ पक्षी।

कालकूट—संज्ञा पुं० [सं०] भयंकर विष।

कालकेतु—संज्ञा पुं० [सं.] एक राक्षस का नाम।

कालक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] समय बिताना।

कालचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] समय का हेर-फेर या परिवर्तन।

कालधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु, नाश।

कालनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) कालभैरव।

कालनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दिवाली की रात। (२) भयंकर काली रात।

कालबूत—संज्ञा पुं० [फा० कालबुद] कच्चा भराव जो मेहराब बनाने के लिए किया जाता है, छैना।

कालनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दानव जो देवताओं को पराजित करके स्वर्ग का अधिकारी बन बैठा था। अपने शरीर को चार भागों में बाँट कर यह सारा शासन-कार्य करता था। अंत में विष्णु द्वारा यह मारा गया और यही दूसरे जन्म में कंस हुआ। उ०—कालिंदी के कूल बसत इक मधुपुरी नगर रसाला। कालनेमि अरु उग्रसेन कुल उपज्यौ कंस भुआला—१०-४। (२) एक राक्षस जो रावण का मामा था।

कालयवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक यवन राजा जो जरासंध के साथ मथुरा पर चढ़ाई करने गया था। श्रीकृष्ण ने चालाकी से मुचकुंद की कोपदृष्टि से इसे भस्म करा दिया था। उ०—तब खिसियाइ कै (जरासंध) कालयवन अपने सँग ल्यायौ—१० उ०-३।

कालपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर का विराट रूप। (२) काल।

कालयापन—संज्ञा पुं० [सं०] दिन बिताना।

कालराति, कालरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भयानक अँधेरी रात। (२) प्रलय की रात। (३) मृत्यु की राति। (४) दिवाली की रात।

कालवाचक, कालवाची—वि० [सं०] समय बतानेवाला।

कालविपाक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समय की समाप्ति। (२) काम पूरा होने की अवधि।

काल-सर्प—संज्ञा पुं. [सं.] वह साँप जिसका डसा हुआ बचता नहीं।

काला—वि. [सं. काल] (१) कोयले के रंग का। (२) बुरा, कलुषित, कलंकित। (३) भारी, बड़ा।

संज्ञा पुं.—काला साँप।

संज्ञा पुं.—समय, अवसर। उ.—घन तन स्याम सुदेस पीत पट सीस मुकुट उर माला। जनु दामिनि घन रवि तारागन प्रगट एक ही काला—२५६६ और १० उ.-४।

कालाकलूटा—[हिं. काला + कलूटा] बहुत काला, गहरा काला।

कालाक्षरी—वि. [सं.] भारी विद्वान।

कालाग्नि—संज्ञा पुं. [सं.] प्रलय काल की आग।

काला भुजंग—वि. [हिं. काला + भुजंग] बहुत काला।

कालानल—संज्ञा पुं. [सं.] प्रलयकाल की आग।

काला नाग—संज्ञा पुं. [हिं. काला + नाग] (१) काला साँप जो बड़ा विषैला होता है। (२) बहुत बुरा आदमी।

कालिंदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कलिंद पर्वत से निकली हुई नदी यमुना। (२) श्रीकृष्ण की एक स्त्री। उ.—(क) हरि सुमिरन कालिंदी कीन्हौ। हरि तब जाइ दरस तेहि दीन्हौं। पानिग्रहन पुनि ताकौं कीन्हौं—१० उ.-२८। (ख) तहँ कालिंदी बन में ब्याही अति सुन्दर सुकुमार—६५४ सारा.।

कालिंदीभेदन—संज्ञा पुं. [सं.] बलराम जो हल से यमुना नदी को वृंदावन खींच लाये थे।

कालि—क्रि. वि. [सं. कल्य] (१) आगामी दिवस, आने वाला दिन। उ.—बल-मोहन तेरे दुहुँनि कौं, पकरि

मँगाऊ कालि। पुहुप बेगि पठऍं बनै, जौ रे बसौ व्रजपालि-५८६। (२) बीता दिन। (३) शीघ्र ही।

कालिक—वि. [सं.] (१) समय सम्बन्धी। (२) समय के अनुसार। (३) जिसका समय निश्चित हो।

कालिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] कालापन, कलौंछ, कालिख। उ.—आजु दीपति दिव्य दीपमालिका। मनहु कोटि रवि-चंद्र कोटि छबि, मिटि जु गई निसि कालिका—८०६। (२) चंडिका देवी, काली। (३) स्याही। (४) आँखकी काली पुतली। (५) रणचंडी।

कालिख—संज्ञा स्त्री. [सं. कालिका] कलौंछ, स्याही।

कालिनाग—संज्ञा पुं. [सं. कालिय + नाग] काली नाम का सर्प जो यमुना में व्रज के समीप रहता था और जिसे श्रीकृष्ण ने वश में किया था।

कालिमा—संज्ञा स्त्री. [सं. कालिमन्] (१) कलंक, दोष, पाप, लांछन। उ.—कलिमल-हरन, कालिमा टारन, रसना स्याम न गायौ-१-५८। (२) कालापन, कलंक। उ.—बिधु बैरी सिर पर बसै निसि नींद न परई""। घटै बढ़ै यहि पाप ते कालिमा न टरई—२८६१। (३) कालिख। (४) अँधेरा।

कालिय—संज्ञा पुं. [सं.] एक सर्प जिसे श्री कृष्ण ने नाथा था।

कालियादह—संज्ञा पुं. [सं. कालिय + दह=कुंड] एक कुंड जो वृन्दावन में जमुना में था और जहाँ काली नामक नाग रहता था। उ.—ग्वाल-सँग मिलि गेंद खेलत आयो जमुना तीर। काहु लै मोहिं डारि दीन्हौ, कालियादह-नीर—५८०।

काली—संज्ञा पुं. [सं. कालिय] एक नाग का नाम जो वृन्दावन में जमुना के एक कुंड या दह में रहता था और जिसे श्रीकृष्ण ने नाथा था। उ—(क) अघ अरिष्ट, केसी, काली मथि दावानलहिं पियौ-१-१२१। (ख) अघ बक बच्छ अरिष्ट केसी मथि जल तैं काढ़यौ काली—२५६७।

संज्ञा, स्त्री. [सं.] (१) चंडी, देवी, दुर्गा। उ.—जब राजा तिहिं मारन लग्यौ। देवी काली मन-डगमग्यौ—५-३। (२) पार्वती। (३) एक नदी। (४) एक महाविद्या। (५) अग्नि की सात जिह्वा में पहली।

कालीदह—संज्ञा. पुं. [सं. कालीय + हिं. दह=कुंड] वृंदावन में जमुना का एक कुंड जिसमें काली नामक नाग रहा करता था। उ.—तृषावंत सुरभी बालकगन, कालीदह, अँचयौ जल जाइ। निकसि आइ सब तट ठाढ़े भए, बैठि गए जहँ तहँ अकुलाइ—५०१।

कालौंछ, कालौंछ—संज्ञा स्त्री. [हिं. काला + औंछ (प्रत्य.)] (१) कालापन, स्याही। (२) कालिख, काजल।

काल्पनिक—संज्ञा पुं. [सं.] कल्पना करनेवाला।

वि.—कल्पना किया हुआ, कल्पित।

काल्ह, काल्हि—क्रि. वि. [सं. कल्य=प्रत्यूष, प्रभात; हिं. कल] कल, दूसरे दिन। उ.—काल्हि जाइ अस उद्यम करौं। तेरे सब भंडारनि भरौं—४-१२।

काव्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सरस, सुरुचिपूर्ण और आनंददायक वाक्य-रचना, कविता। (२) कविता का ग्रंथ।

काव्यलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] एक काव्यालंकार।

काव्यार्थपति—सज्ञा पुं. [सं.] एक अर्थालंकार।

काशिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] काशी पुरी।

काशी—संज्ञा स्त्री. [सं.] उत्तरप्रदेश का एक प्रसिद्ध तीर्थ, बनारस, वाराणसी।

काशी करवट—संज्ञा पुं. [सं. काशी + करपत्र, प्रा. करवत] काशी के अंतर्गत एक स्थान जहाँ पूर्व समय में आरे से कटकर मरना या प्राण त्याग करना बड़े पुण्य का कार्य समझा जाता था।

काश्त—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) खेती, कृषि। (२) खेती करने का अधिकार।

काश्तकार—संज्ञा पुं. [फा.] खेतिहर, किसान।

काश्तकारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) खेती, कृषि। (२) खेती करने का अधिकार। (३) वह भूमि जिस पर खेती करने का अधिकार हो।

काषाय—वि० [सं०] (१) कसैली वस्तुओं में रँगा हुआ। (२) गेरुआ।

संज्ञा पु०—(१) कसैली वस्तुओं में रँगा हुआ वस्त्र। (२) गेरुआ वस्त्र।

काष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) काठ। (२) इंधन।

काष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अवधि, सीमा।

(२) अधिक से अधिक ऊँचाई या उन्नति।(३) ओर, तरफ। (४) स्थिति।

कास—संज्ञा पुं० [सं० काश] एक प्रकार की घास, काँस। उ०—(क) दिसिअति कालिंदी अति कारी। ·· ···। बिगलित कच कुच कास कुलिन पर पंक जु काजल सारी—२७२८। (ख) अमल अकास कास कुसुमिन छिति लच्छन स्वाति जनाए—२८५४।

कासनी—संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) एक पौधा जिसमें नीले रंग के फूल होते हैं। (२) एक प्रकार का नीला रंग।

कासा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) प्याला, कटोरा। (२) भोजन।

कासार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तालाब, पोखर। (२) एक तरह का छंद। (३) एक पकवान जो प्रायः कथा के अवसर पर बाँटा जाता है।

कासी—संज्ञा स्त्री० [सं० काशी] काशी नामक प्रसिद्ध नगर जिसकी गणना श्रेष्ठ तीर्थ स्थानों में है। उ०—ऊधौ यह राधा सौं कहियौ। ·········। मोपर रिस पावत बेकारन मैं हौं तुम्हरी दासी। तुमहीं मन मैं गुनि धौं देखौ बिन तप पायौ कासी—२६३७।

कासी करवत—संज्ञा पुं० [सं० काशीकरवट] काशी के अंतर्गत काशी-करवट नामक तीर्थस्थान में जाकर आरे से गला कटाना या अन्य किसी तरह से प्राण देना बड़ा पुण्य समझा जाता था। उ०—सूरदास प्रभु जौ न मिलैंगे लेहौं करवत कासी—२८४३।

कासे—सर्व० [हिं० का + से (प्रत्य०)] किससे। उ०—(क) कासे कहों समूचे भूषन सुमिरन करत बखानी—सा० ५५। (ख) सूरदास पुकार कासे करै बिन घन मोर—सा० ११०।

कासो, कासौं—सर्व० [हिं० का + सौं (प्रत्य०)] किससे। उ०—तेरो कासों कीजै ब्याह ? तिन कह्यौ मेरौ पति सिव आह—५-७।

काह—क्रि० वि० [सं० कः, को] क्या, कौन बात या वस्तु। उ०—कह्यौ प्रिया अब कीजै सोइ ? देखौं नृपति, काह धौं होइ—४-२२।

काहल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ढोल। (२) मुर्गा। (३) अव्यक्त शब्द।

वि० [अ० काहिल] गंदा, मैला।

काहली—वि० [अ० काहिल] आलसी, सुस्त।
संज्ञा स्त्री.—आलस्य।

काहिं—सर्व० [सं० कः, हिं० का + हिं (प्रत्य०)] (१) किसे, किसको। उ०—यह बिपदा कब मेटहिं श्रीपति अरु हौं काहिं पुकारौं—१०-४। (२) किससे।

काहि—सर्व [सं० कः, हि० का + हिं० (प्रत्य.)] किसको, किसे। उ०—तुमहिं समान और नहिं दूजौ काहि भजौं हौं दीन—१-१११।

काहिल—वि० [अ०] आलसी, सुस्त।

काहिली—संज्ञा स्त्री० [अ०] आलस्य।

काहीं—अव्य० [हिं० को, कहँ] को, पास, द्वारा।

काहु—सर्व० [सं. कः, हिं० का+हू (प्रत्य०)=काहू] किसी, किसी ने। उ०—कह्यौ तुम एक पुरुष जो ध्यायौ। ताकौ दरसन काहु न पायौ—४-३।

काहूँ, काहू—सर्व० [सं० कः, हिं० का+हूँ (प्रत्य०)] किसी, कीसी को, किसी के। उ०—(क) माधौ, नैंकु हटकौ गाइ।......। ढीठ, निठुर, न डरति काहूँ, त्रिगुन ह्वै समुहाइ—१-५६। (ख) वा घट मैं काहूँ कैं लरका मेरौ माखन खायौ—१०-१५६।

काहे—क्रि० वि० [सं० कथं, प्रा० कहँ] क्यों, किसलिए उ०—तुम कब मोसौं पतित उधारयौ। काहे कौं हरि बिरद बुलावत, बिन मसकत को तारयौ—१-१३२।

काहैं—क्रि० वि० [सं० कथं, प्रा० कहं, हिं० काहे] किससे, किस साधन से, क्यों। उ०—हौं कुटुंब काहैं प्रतिपारौं, वैसी मति ह्वै जाई—६-४०।

किं—क्रि. वि. [सं. किम्] कैसे ?

किंकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१)दास, सेवक, परिचारक। (२) एक जाति के राक्षस जो हनुमान जी द्वारा मारे गये थे।

किंकर्तव्यविमूढ़—वि. [सं.] जिसे कर्तव्य न सूझ पड़े, भौचक्का।

किंकिणि, किंकिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] करधनी, क्षुद्रघंटिका।

उ.—किंकिणि सब्द चलत ध्वनि रुनझुन ठुमक-ठुमक गृह आवै—२५४६ ।

किंकिनि, किंकिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. किंकिणी] क्षुद्र घंटिका, करधनी। उ.—मनौ मधुर मराल-छौना किंकिनी-कल-राव—१०-३०७ ।

किंकिरिनि—संज्ञा स्त्री. सवि. [सं. किंकरी] दासियों की, सेविकाओं की। उ.—किंकिरिनि की लाज धरि ब्रज सुबस करहु निटोल—३४७५ ।

किंगरी, किंगिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. किन्नरी] छोटी सारंगी।

किंचन—संज्ञा पुं. [सं.] थोड़ी वस्तु ।

किंचित—वि. [सं.] कुछ, थोड़ा ।

क्रि. वि.—कुछ ।

किंजल्क—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल के फूल का पराग। उ.—भृंगी री, भजि स्याम-कमल-पद, जहाँ न निसि कौ त्रास ।···। जहँ किंजल्क भक्ति नव-लच्छन, काम-ज्ञान-रस एक—१-३३६ । (२) कमल। (३) नागकेसर।

वि.—केसर के रङ्ग का, पीला।

किंतु—अव्य. [सं.[पर, परंतु, लेकिन ।

किंपुरुख, किंपुरुष—संज्ञा पुं. [सं.] किन्नर ।

किंभूत—वि. [सं.] (१) कैसा, किस प्रकार का। (२) अद्भुत। (३) भद्दा, कुरूप।

किंवदंति, किंवदंती—संज्ञा स्त्री. [सं.] उड़ती खबर, जन-रव।

किंवा—अव्य. [सं.] या, अथवा, या तो।

किंशुक—संज्ञा पुं. [सं.] पलाश, टेसू।

कि—प्रत्य. [हिं. का] हिं 'विभक्ति 'का' का स्त्री० 'की'। उ.—सूर पतित, तुम पतित उधारन, बिरद कि लाज धरे—१-१९८ ।

क्रि. वि. [सं. किम्] कैसे, किस प्रकार ।

अव्य.—एक संयोजक अव्यय ।

किए—क्रि. स. [सं. करण, हिं. करना] 'करना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'किये या किया' का बहुवचन, बनाये, लगाये। उ.—चंदन की खौरि किए नटवर कछि काछनी बनाइ री—८८२ ।

किकियाना—क्रि. अ. [हिं. कीकना.] रोना, चिल्लाना।

किचकिच—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) व्यर्थ की बकवाद। (२) झगड़ा।

किचकिचाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) पूरा जोर लगाने के लिए दाँत पर दाँत जमाना। (२) क्रोध से दाँत पीसना।

किचड़ाना—क्रि. अ. [हिं. कीचड़ + आना] आँख में कीचड़ भर आना।

किचपिच, किचर पिचर—वि. [अनु.] (१) क्रमरहित, अस्पष्ट। (२) छोटी छोटी बहुत सी संतान।

किछु—वि. [हिं. कुछ] कुछ।

किटकिट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) व्यर्थ की बकवाद। (२) झगड़ा।

किटकिटाना—क्रि. अ. [अनु.] क्रोध से दाँत पीसना।

किट्ट—संज्ञा पुं. [हिं. कीट] धातु पर जमा हुआ मैल।

कित—क्रि. वि. [सं. कुत्र] कहाँ, किस ओर, किधर। उ.—रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै—१-२ ।

कितक—वि. [सं. कियदेक, हिं. कितेक] (१) कितने, बहुत, अधिक। उ.—(क) ऐसौ नीप-बृच्छ बिस्तारा। चीर हार धौं कितक हजारा—७९९ । (ख) हरि मुख बिधु मेरी अँखियाँ चकोरी। राखे रहति ओट पट जतननि तऊ न मानत कितक निहोरी—पृ. ३२८। (२) कितना, बहुत थोड़ा, बिलकुल साधारण। उ.—(क) कितक बात यह धनुष रुद्र कौ सकल विश्व कर लैहौं। आज्ञा पाय देव रघुपति की छिनक माँझ हठ जैहौं—२२४ सारा.। (ख) अमित एक उपमा अव-लोकत जिय में परत बिचार। नहिं प्रवेस अज सिव, गनेस पुनि कितक बात संसार—९९६ सारा.।

कितना—वि. [सं. कियत्] किस परिमाण, मात्रा या संख्या का; बहुत अधिक।

क्रि. वि.—(१) किस मात्रा या परिमाण में? कहाँ तक।

कितनौ—क्रि. वि. [हिं. कितना] कितना, कहाँ तक। उ.—नैंकु नहिं घर रहति, तोहिं कितनौ कहति, रिसन मोहिं दहति, बन भई हरनी—६९८।

कितव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जुआरी। (२) छली-कपटी। उ.—रे रे मधुप कितव के बंधू चरन परस जिन करिहौं। प्रिया अंक कुंकुम कर राते ताही को

अनुसरिहौं — ५६६ सारा। (३) पागल। (४) दुष्ट। (५) धतूरा।

किता—संज्ञा पुं. [अ. कितऽ] (१) कपड़े की काट-छाँट या कतर-ब्योंत। (२) चाल-ढाल। (३) संख्या।

किताब—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) पुस्तक, ग्रंथ। (२) बही।

किताबी—वि. [अ. किताब] (१) किताब का। (२) किताब के आकार का। (३) लंबोतरा।

कितिक—वि. [हिं. कितना] (१) कितनी, बहुत साधारण। उ.—(क) रावौ जू, कितिक बात, तजि चिंत। —६-१०७। (ख) कर गहि धनुष जगत कौं जीतैं, कितिक निसाचर जूथ—६-१४७। (ग) सतभामा सौं इती बात जबतें न कही री। कितिक कठिन सुरतरु प्रसून की या कारन तू रूठि रही री—१० उ.-२८। (२) अधिक, बहुत ज्यादा। उ.—काल-बितीत कितिक जब भयौ। गाइ चरावन कौं सो गयौ—६-१७३।

किती—वि. [सं. कियत] (१) कितनी, बहुत।। उ.—मन, तोसौं किती कही समुझाइ—१-३१७। (२) कितनी (संख्यावाचक)। उ.—मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी। किती बार मोहिं दूध पियति भई यह अजहूँ है छोटी—१०-१७५।

किते—वि. [सं. कियत्, हिं. कित्ता या कित्ते] कितने। (संख्यावाचक)। उ.—किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए—१-५२।

कितेक—वि. [सं. कियदेक] (१) कितना। (२) बहुत, असंख्य।

कितेब—संज्ञा स्त्री. [हिं. किताब] (१) ग्रन्थ, पुस्तक। (२) धर्मग्रन्थ। (३) क़ुरान।

कितै—क्रि. वि. [सं. कुत्र, हिं. कित] किस ओर, कहाँ, किधर। उ.—पावँ अबार सु धारि रमापति, अजस करत जस पायौ। सूर कूर कहै मेरी बिरियाँ बिरद कितै बिसरायौ—१-१८८।

कितो—वि. [सं. कियत, हिं. कितो] कितना, बहुत। उ.—(क) सूर कितौ सुख पावत लोचन, निरखत घुटुरुनि चाल—१०-१४८। (ख) मानैं नहीं कितौ समुझाई—३६१।

कितोक—वि. [हिं. कितना, कितो] कितना, कितना अधिक। उ.—कितोक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं—३०७४।

कित्ति—संज्ञा स्त्री. [सं. कीर्ति, प्रा. कित्ति] कीर्ति, यश।

कित्तो, कित्तौ—वि. [हिं. कितना] कितना, कितना अधिक।

किधर—क्रि. वि. [सं. कुत्र] किस ओर।

किधों, किधौं—अव्य. [सं. किम्] अथवा, या तो, न जाने। उ.—(क) ह्वै अंतरधान हरि, मोहिनी रूप धरि, जाइ बन माहिं दीन्हे दिखाई। सूर-ससि किधौं चपला परम सुन्दरी, अंग भूषननि छबि कहि न जाई —८-१०। (ख) किधौं यह प्रतिबिंब जल में देखत किधौं निज रूप दोऊ है सुहाए—२१७०।

किन—क्रि. वि. [सं. किम्+न] किसने, क्यों न। उ.—(क) पुनि पाछैं अघ-सिंधु बढ़त है, सूर खाल किन पाटत—१-१०७। (क) बिनु हरि भक्ति मुक्ति नहिं होई। कोटि उपाय करो किन कोई। (ख) तौ लगि बेगि हरौ किन पीर। जौ लगि आन न आनि पहूँचै, फेरि परैगी भीर—१-१९१।

सर्व०—किस का बहुवचन।

संज्ञा पुं. [सं. किण] चिह्न, दाग, निशान।

किनका—संज्ञा पुं. [सं. कणिक] (१) छोटा दाना, कण। (२) छोटी बूँद।

किनारा—संज्ञा पुं. [फा.] (१) किसी वस्तु की लंबाई-चौड़ाई का सिरा। (२) जलाशय या नदी का तट, तीर। (३) हाशिया, बार्डर। (४) बगल, पार्श्व।

किनि—सर्व. [हिं. 'किस'] किसने, किनने। उ.—किनि बहकाइ दई है तुमकौं, ताहि पकरि लै जौंहि—७५३।

किनिका, किनुका—संज्ञा पुं. [हिं. किनका] छोटा दाना, कण।

किन्नर—संज्ञा पुं. [सं.] देवताओं का एक वर्ग जो पुलस्त्य ऋषि का वंशज माना जाता है। किन्नरों का मुख घोड़े के समान होता है और ये संगीत में निपुण होते हैं।

संज्ञा स्त्री. [सं. किन्नरीवीणा] तँबूरा या सारंगी। उ.—एक बीना, एक किन्नर, एक मुरली, एक उपंग

एक तुंमर एक रबाब भाँति सौ दुरावै—५२४२।

किन्नरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **किन्नर जाति की स्त्रियाँ**

संज्ञ स्त्री. [सं. किन्नरी वीणा] **तँबूरा या सारंगी।** उ.—(क) झँझ झालरी किन्नरी रँग भीजी ग्वालिनि—२४०५। (ख) ताल मुरज रबाब बीना किन्नरी रस सार—पृ. ३४६ (४५)। (ग) बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृत कुंडली यंत्र—१०७२ सारा.।

किफायती—संज्ञा स्त्री. [अ.] **कमखर्ची, मितव्यय।**

किफायती—वि. [अ. किफायत] (१) **कम खर्च करनेवाला, मितव्ययी।** (२) **कम दाम का।**

किमपि—सर्व. सवि. [सं. किम्] **कोई भी, कुछ भी।** उ.—कोक कोटि करम सरसि कहरि सूरज विविध कल माधुरी किमपि नाहिंन बची—२२६८।

किमि—क्रि. वि. [सं. किम्] **कैसे, किस प्रकार, किस तरह।** उ.—बिदुखि सिंधु सकुचत, सिव सोचत, गरलादिक किमि जात पियौ—१०-१४३।

किम्—वि., सर्व. [सं.] (१) **क्या,** (२) **कौन सा।**

किय—क्रि. स. [हिं. करना, किया] **किया।** उ.—निर्भय किय लंकेस बिभीषन राम लखन नृप दोय—२६५ सारा.

कियत्—वि. [सं.] **कितना।**

कियारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. क्यारी] (१) **सिंचाई के लिए बनाये गये खेतों के छोटे छोटे भाग।** (२) **बाग-बगीचों की नाली की तरह या गोल-तिकोनी खुदी पंक्तियाँ जिन में अलग अलग पेड़ लगाये जाते हैं, क्यारी।**

किये, कियौ—क्रि. स. [सं. करण, हिं करना] '**करना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'किया' का ब्रजभाषा रूप, किया।** उ.—(क) रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ, चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ौ—१-५। (ख) का न कियौ जन-हित जदुराई—१-६। (ग) चरित अनेक किये रघुनायक अवधपुरी सुख दीन्हो—३०८ सारा.।

किरका, किरकी—संज्ञा पुं. [सं. कर्कट = कंकड़ी] **कंकड़, किरकिरी।** उ.—गर्व करत गोवर्द्धन गिरि कौ। पर्वत माँह आह वह किरका—१०४३।

किरकिटी—संज्ञा स्त्री. [सं. ककट] **कण या धूल जो आँखों में पड़ कर दुख देती है।**

किरकिरा—वि. [सं. कर्कट] **जिसमें महीन गर्द मिली हो।**

किरकिराना—क्रि. अ. [हिं. किरकिरा] **हलकी हलकी पीड़ा होना।**

किरकिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्कट] (१) **धूल या तिनके का कण, किनका।** (२) **शान में बट्टा लगाना, अप्रतिष्ठा।**

किरकिल—संज्ञा स्त्री. [सं. कृकर या कृकल] **शरीर की वह वायु जिससे छींक आती है।**

किरकिला—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकिला] **मछली खानेवाला एक पक्षी।**

संज्ञा पुं.—**एक समुद्र।**

किरकी—संज्ञा स्त्री [सं. किंकिणी] **एक गहना।**

किरच, किरचक—संज्ञा स्त्री. [सं. कृति = कैंची (अस्त्र)] **(काँच आदि का) छोटा नुकीला टुकड़ा।** उ.—छाँड़ि कनक-मनि रतन अमोलक, काँच की किरच गही—१-३२४।

किरण—संज्ञा पुं. [सं.] **प्रकाश या ज्योति की रेखाएँ, रश्मि, मयूख।**

किरणमाली—संज्ञा पुं. [सं.] **सू**[illegible]।

किरतम—संज्ञा पुं. [सं. कृत्रिम] **माया, प्रपंच।**

किरन—संज्ञा पुं. [सं. किरण] **ज्योति या प्रकाश की रेखाएँ, किरण।**

किरनि—संज्ञा पुं. [सं. किरण] **ज्योति-रेखाएँ, मयूख, रश्मि, मरीचि।** उ.—तरनि किरन महलनि पर झाँई इहै मधुपुरी नाम—२५५६।

किरपा—संज्ञा स्त्री. [सं. कृपा] **दया, कृपा, अनुग्रह।** उ......। कर जोरे बिनती करी दुरबल-सुखदाई। पाँच गाउँ पाँचौ जननि किरपा करि दीजै। ये तुमरे कुल वंस हैं, हमरी सुनि लीजै—१-२३८।

किरपान—संज्ञा पुं. [सं. कृपाण] **तलवार।**

किरम—संज्ञा पुं. [सं. कृमि] **कीड़ा।**

किरमाल—संज्ञा पुं. [सं. करवाल] **तलवार, खड्ग।**

किरराना—क्रि. अ. [अनु०] (१) **क्रोध से दाँत पीसना।** (२) **किर्र किर्र शब्द करना।**

किरवान, किरवार—संज्ञा पुं. [हिं. करवाल] **तलवार, खड्ग।**

किरवारा—संज्ञा पुं. [सं. कृतमाल] **अमलतास का पेड़।**

किरषि—संज्ञा स्त्री. [सं. कृषि] **खेती, किसानी।** उ.—धर बिधसि नर करत किरषि हल,बारि, बीज बिथरै। सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं, सोई सुफल करै—१-११७।

किराँची, किराचिन—संज्ञा स्त्री. [अँ. केरोच] **(१) माल ढोने की गाड़ी। (२) बैलगाड़ी।**

किरात—संज्ञा पुं. [सं.] **एक जंगली जाति।**

किरान—क्रि. वि. [अ. क़िरान] **पास, निकट।**

किराना—संज्ञा पुं. [सं. क्रयण] मसाले और सूखा मेवा।

किराया—संज्ञा पुं. [अ.] **भाड़ा।**

किरार—संज्ञा पुं. [देश.] **एक नीच जाति।**

किरावल—संज्ञा पुं. [तु. करावल] **लड़ाई का मैदान ठीक करनेवाली सेना जो सब से आगे जाती है।**

किरिच, किरिचक—संज्ञा स्त्री. [हिं. किरच] **काँच आदि का नुकीला टुकड़ा।** उ.—लोक लज्जा काँच किरिचक स्याम कंचन खानि।

किरिन—संज्ञा पुं. [सं. किरण] **किरणें।** उ.—(क) सुंदर तन, सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात—६-४३। (ख) अनतहि बसत अनत ही डोलत आवत किरिन प्रकास—२०१८।

किरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रिया] **(१) सौगंध, कसम। (२) क्रिया-कर्म।**

किरीट—संज्ञा पुं. [सं.] **माथे पर बाँधने का एक भूषण जिसके ऊपर कभी कभी मुकुट भी पहना जाता था।**

किरीटी—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) इंद्र। (२) अर्जुन। (३) राजा।**

किरीरा—संज्ञा. स्त्री. [हिं. क्रीड़ा] **खेल, क्रीड़ा।**

किरोध—संज्ञा. पुं. [सं. क्रोध] **गुस्सा, क्रोध।**

किर्च—संज्ञा स्त्री. [हिं. किरच] **एक तरह की तलवार।**

किर्तनिया—संज्ञा पुं. [सं. कीर्त्तन] **कीर्त्तन करनेवाला।**

किल—अव्य. [सं.] **(१) अवश्य, निश्चय ही। (२) सचमुच।**

किलक—संज्ञा स्त्री. [हिं.किलकना]। **किलकने या हर्ष ध्वनि करने की क्रिया।** उ.—गरज किलक आघात उठत, मनु दामिनि पावक झार—६-१२४।

किलकत—क्रि. अ. [हिं. किलकना] **हँसते हैं, हर्षध्वनि करते हैं, किलकारी मारते हैं।** उ.—(क) निरखि जननी-बदन किलकत त्रिदसपति दै तारि—१०-७१। (ख) हरि किलकत जसुदा की कनियाँ—१०-८१।

किलकन—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकना] **किलकने की क्रिया, किलक।**

किलकना—क्रि. अ. [सं. किलकिला] **किलकारी मारना, हर्षध्वनि करना।**

किलकनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकना] **किलकारी, हर्षध्वनि।** उ.—पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद-घरनि। सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि—१०-१०६।

किलकात—क्रि. अ. [हिं. किलकारना] **किलकते हैं, हर्षध्वनि करते हैं।** उ.—बिहरत बिबिध बालक सँग।…। चलत मग, पग बजति पैजनि, परस्पर किलकात। मनौ मधुर मराल-छौना बोलि बैन सिहात—१०-१८४।

किलकार—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलक] **हर्षध्वनि, किलकारी।** उ.—चकित सकल परस्पर बानर बीच परी किलकार। तहँ इक अद्भुत देखि निसिचरी सुरसा-मुख-बिस्तार—६-७४।

क्रि. अ.—**किलकते हैं, ध्वनि करते हैं।** उ.—गर्जत गगन गयंद गुंजरत अरु दादुर किलकार—२८२०।

किलकारत—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकारना] **किलकारी भरते हैं, हर्षध्वनि करते हैं।** उ.—गावत, हाँक देत, किलकारत, दुरि देखत नंदरानी। अति पुलकति गदगद मुख बानी,मन-मन महरि सिहानी—१०-२५३।

किलकारना—क्रि. अ. [सं. किलकना] **उत्साह दिखाना, हर्षध्वनि करना।**

किलकारि, किलकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. किलकना] **हर्षध्वनि, किलकार।** उ.—(क) द्रुम गहि उपाटि लिए, दै दै किलकारी। दानव बिन प्रान भए, देखि चरित भारी—६-६६। (ख) रीछ लंगूर किलकारि लागे करन, आन रघुनाथ की जाइ फेरी—६-१३८।

किलकिंचित—संज्ञा पुं. [सं.] संयोग श्रृंगार का एक हाव जिसमें एक साथ कई भाव नायिका प्रकट करती है।

किलकि—क्रि. अ. [हिं. किलकना] किलकारी मारकर, हर्षध्वनि करके, आनंद प्रकट करके। उ.—(क) आपु गयौ तहाँ जहँ प्रभु परे पालनैं, कर गहे चरन अँगुठा चचोरैं। किलकि किलकत हँसत, बाल सोभा लसत, जानि यह कपट, रिपु आयौ भोरैं—१०-६२। (ख) हँसे तात मुख हेरिकै, करि पग-चतुराई। किलकि झटकि उलटे परे, देवन-मुनि राई—१०-६६।

किलकिल—संज्ञा स्त्री. [अनु.] लड़ाई-झगड़ा।

किलकिला—संज्ञा स्त्री. [सं. कूकल] मछली-खानेवाली एक छोटी चिड़िया जो पानी से आठ दस हाथ ऊपर उड़ती हुई बड़ी सतर्कता से मछली को देखती है। उ.—जैसैं मीन किलकला दरसत, ऐसैं रहौ प्रभु डाटत—१-१०७।

संज्ञा स्त्री. [सं.] हर्षध्वनि।

किलकिलात—क्रि. अ. [हिं. किलकिलाना] चिल्लाता हुआ, भयंकर शब्द करता हुआ। उ.—रावन, उठि निरखि देखि, आजु लंक घेरी।...... गहगरात किलकिलात अंधकार आयौ। रवि कौ रथ सूझत नहिं, धरनि गगन छायौ—६.१३६।

किलकिलाना—क्रि. अ. [हिं. किलकिला] (१) हर्षध्वनि करना। (२) चिल्लाना। (३) झगड़ा करना।

किलकिहि—क्रि. अ. [हिं. किलकना] किलकारी मारेगा, हर्षध्वनि करेगा। उ.—काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहिं भय दुरजन डरिहैं—१-२६।

किलकी—क्रि. अ. [हिं. किलकना] किलकारी भरी, हर्षध्वनि की। उ.—सुपने हरि आये हौं किलकी—२७८६।

किलकै—क्रि. अ. [हिं. किलकना] किलकता है, किलकारी भरता है, हर्षध्वनि करता है। उ.—आँनंद प्रेम उमंगि जसोदा खरी गोपाल खिलावै। कबहुँक हिलकै-किलकै जननी-मन-सुख-सिंधु बढ़ावै—१०-१३०।

किलकैया—संज्ञा पुं. [हिं. किलकना] किलकारी भरनेवाला।

किलना—क्रि. अ. [हिं. कील] (१) मंत्रों से कीला जाना। (२) बश में किया जाना। (३) गति का रोका जाना।

किलनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कीट, हिं. कीड़ा] एक छोटा कीड़ा, किल्ली।

किलबिलाना—क्रि. अ. [हिं. कुलबुलाना] बहुत से कीड़ों या छोटे छोटे जंतुओं का थोड़ी जगह में हिलना-डोलना, चंचल होना।

किलबाँक—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का घोड़ा।

किलवाना—क्रि. स. [हिं. कीलन] (१) कील जड़ाना। [२] टोना-टुटका कराना। (३) तंत्र-मंत्र से भूत-प्रेत की बाधा रुकाना।

किलविष—संज्ञा पुं. [सं. किल्विष] (१) पाप। (२) दोष। (३) रोग।

किला—संज्ञा पुं. [अ. क़िला] गढ़, दुर्ग।

किलोल—संज्ञा पुं. [सं. कल्लोल, हिं. कलोल] क्रीड़ा,

किल्लत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) कमी, तंगी। (२) कठिनता।

किल्ली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कीला] (१) खूँटी, मेख। (२) सिटकिनी। (३) कल चलाने की मुठिया।

किल्विष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाप। (२) दोष। रोग।

किवाड़, किवार—संज्ञा पुं. [हिं. किवाड़] पट, कपाट, किवाड़।

मुहा०—दीन्हे रहत किवार—द्वार बंद रखता है। उ.—गढ़वै भयौ नरकपति मोसौ, दीन्हे रहत किवार। सेना साथ भाँति भाँतिन की, कीन्हें पाप अपार—१-१४१। लाइ किवार—किवाड़ लगाकर, द्वार बंद करके। उ.—सूर पाप कौ गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किवार—१-१४४।

किवारा—संज्ञा पुं. [हिं. किवार, किवाड़] पट, कपाट, किवाड़। उ.—लंक गढ़ माहिं आकास मारग गयौ, चहूँ दिसि बज्र लागे किवारा—६-७६।

किशमिश—संज्ञा पुं. [फ़ा] सुखायी हुई छोटी दाख।

किशमिशी—वि.—किशमिश के रंग का।

किशलय—संज्ञा पुं. [सं.] नया पत्ता, कल्ला।

किशोर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ११ से १२ वर्ष की अवस्था का बालक । (२) पुत्र ।

किशोरक—संज्ञा पुं. [सं.] छोटा बालक ।

किष्किंध—संज्ञा पुं. [सं.] मैसूर प्रदेश का प्राचीन नाम ।

किष्किंधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] किष्किंध देश की एक पर्वत श्रेणी ।

किस—सर्व. [सं. कस्य] 'कौन' का विभक्तिरहित रूप ।

किसनई—संज्ञा स्त्री. [हिं. किसान] किसानी ।

किसब—संज्ञा पुं. [अ. कसबी] कारीगरी, व्यवसाय ।

किसमिस—संज्ञा पुं. [फा. किशमिश] सुखाया हुआ छोटा अंगूर, किशमिश ।

किसबी—संज्ञा पुं. [अ. कसबी] मजदूर, श्रमजीवी ।

किसलय—संज्ञा पुं. [सं. किशलय] कोमल पत्ता, कल्ला ।

किसान—संज्ञा पुं. [सं. कृषक] खेती करनेवाला ।

किसानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. किसान] खेती बारी ।

किसी—सर्व., वि. [हिं. किस+ही] (कोई) का वह रूप जो विभक्ति लगने पर प्राप्त होता है ।

किसू—सर्व. [हिं. किसी] किसी ।

किसोर—वि. [सं. किशोर] ११ वर्ष से १५ वर्ष तक की अवस्था का ।

संज्ञा पुं. (१) ११ वर्ष से १२ वर्ष तक की अवस्था का बालक । (२) पुत्र, बेटा ।

किसोरी—संज्ञा पुं. [सं. किशोरी] (१) पुत्री, बेटी । (२) छोटी अवस्था की लड़की । उ.—नयौ नेह, नयौ गेह, नयौ रस, नवल कुँवरि वृषभानु किसोरी—६८५ ।

किस्म—संज्ञा पुं. [अ.] भेद, प्रकार, जाति, चाल ।

किस्सा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) कहानी, गल्प । (२) बात, हाल, समाचार । (३) झगड़ा-बखेड़ा ।

किहिं—सर्व. [हिं. केहि] किस, किसके । उ.—किहिं भय दुरजन डरिहै—१-२९ ।

किहि—सर्व [हिं. केहि] किस । उ.—महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग, तुम किहि के तात—९-६६ ।

की—प्रत्य. [हिं. का] हिं. विभक्ति 'का' का स्त्री. । उ.—बासुदेव की बड़ी बड़ाई । जगतपिता जगदीस जगतगुरु, निज भक्तनि की सहत ढिठाई—१-३ ।

क्रि. स. [सं. कृत, प्रा. कि] हिं. 'करना' के भूत कालिक रूप 'किया' का स्त्री. । उ.—अब भ्रम-भँवर परयौ ब्रजनायक निकसन की बस विधि की—९-२१३ ।

अव्य. ['कि' का विकृत रूप] (१) क्या ? (२) या तो ।

कीक—संज्ञा पुं. [अनु.] चीख, चिल्लाहट, चीत्कार ।

कीकट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मगध-प्रदेश का प्राचीन नाम । (२) घोड़ा ।

कीकना—क्रि. अ. [अनु.] हर्ष-भय में 'की की' शब्द करना ।

कीका—संज्ञा पुं. [सं. कीकट] घोड़ा ।

कीकै—संज्ञा पुं. [अनु. हिं. कीक] कूक, कीक, चिल्लाहट, चीत्कार । उ.—सूरदास प्रभु भलैं परे फँद. देउँ न जान भावते जी कैं । भरि गंडूक, छिरक दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकै—१०-२८७ ।

कीच—संज्ञा पुं [सं. कच्छ] कीचड़, पंक, कर्दम । उ.—(क) सुनि सुनि साधु-बचन ऐसौ सठ, हठि औगुननि हिरानौ । धोयौ चाहत कीच भरौ पट, जल सौं रुचि नहिं मानौ—१-१६४ । (ख) भाजन फोरि दही सब डारयौ माखन कीच मचायौ—१०-३४२ । (ग) कुम-कुम कज्जल कीच बहै जनु कुच जुग पारि परी—२८१४ ।

कीचक—संज्ञा पुं. [सं.] राजा विराट का साला जो उसका सेनापति भी था । पांडवों के अज्ञातवास काल में इसने द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली थी । इसलिए भीम ने इसे मार डाला था ।

कीचड़, कीचर—संज्ञा पुं. [हिं. कीच + ड़ (प्रत्य.)] (१) गंदी गीली मिट्टी, पंक । (२) आँख का मैल ।

कीजत—क्रि. स. [हिं. करना] करते हैं, (कार्य) संपादन करते हैं । उ.—(क) जो कछु करन कहत सोई सोइ कीजत अति अकुलाए—१-१६३ । (ख) मोहन तेरे आधीन भये री । इति रिस कबते कीजत री गुनआगरी नागरी—२२५० ।

कीजिए—क्रि. स. [हिं. करना] किसी काम के संपादन के लिए निवेदन करना, करिए । उ.—अब मोहिं कृपा कीजिए सोइ । फिर ऐसी दुरबुद्धि न होइ—४-५ ।

कीजै—क्रि. अ. [हिं. करना] कीजिए, करिए । उ.—(क) मैं-मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहायौ—

१-३०२। (ख) दीन-बचन संतनि-सँग दरस-परस कीजै—१-७२। (ग) हरि को दोष कहा करि दीजै जो कीजै सो इनको थोर—पृ. ३३५।

कीजैगी—क्रि. स. [हिं. करना] **करेगी, किया जायगा।** उ.—अवसर गएँ बहुरि सुनि सूरज कह कीजैगी देह। बिछुरत हंस बिरह कैं सूलनि, झूठे सबै सनेह—८०१।

कीजौ—क्रि. स. [हिं. करना] **करना।** उ.—नृप कैं हाथ पत्र यह दीजौ, बिनती कीजौ मोरि—५८३।

कीट—संज्ञा पुं. [सं.] **कीड़ा मकोड़ा।**

संज्ञा पुं. [सं. किट्ट] **मैल।**

कीड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कीट, प्रा. कीड़] **(१) उड़ने या रेंगनेवाले छोटे-छोटे जंतु। (२) थोड़े दिन का बच्चा।**

कीड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कीड़ा] **(१) छोटा कीड़ा। (२) चींटी।**

मुहा०—कीड़ी तनु ज्यों पाँख उपाई—**चिउँटी के पंख निकलना। इस तरह इतराना, क्रोध या गर्व करना कि अंत में मरना ही पड़े।** उ.—गिरिवर सहितै ब्रजै बहाई। सूरदास सुरपति रिस पाई। कीड़ी तनु ज्यौं पाँख उपाई—१०४१।

कीदहु—अव्य. [हिं. किधौं] **(१) या, अथवा। (२) या तो, न जाने।**

कीधौं—क्रि. वि. [सं. किम्, हिं. किधौं] **अथवा, किधौं, कैधौं, या, या तो।** उ.—(क) निसि के उनींदे नैन, तैसे रहे ढरि ढरि। कीधौं कहूँ प्यारी कौ लागी टटकी नजरि—७५२। (ख) हँसत कहत कीधौं सतभाव—१२४०। (ग) कीधौं कौन कार्य को आये सो पूँछत हौं तोहिं—८१३ सारा.।

कीन—क्रि. स. [हिं. करना] **(१) किया, संपादित किया।** उ.—(क) दुष्टनि दुख, सुख संतनि दीन्हौ, नृप-व्रत पूरन कीन—९-२६। (ख) मुकुट कुंडल किरनि रवि छबि परम बिगसित कीन—२३५८। (ग) सूरदास प्रभु बिन गोपालहिं कत बिधनै एई कीन—२७६८। **(२) रची, लिखी, बनायी, संपादित की।** उ.—नंदनंदनदास हित साहित्यलहरी कीन—सा. १०९।

कीनना—क्रि. स. [सं. क्रीणन] **खरीदना, मोल लेना।**

कीना—संज्ञा पुं. [फा.] **द्वेष, बैर।**

कीनी—क्रि. अ. [हिं. करना] **(१) की, किया।** उ.—(क) बरज्यौ आवत तुम्हैं असुर-बुद्धि इन यह कीनी—३-११। (ख) एक मीन ने भक्ष कियो तब हरि रखवारी कीनी—९९३ सारा.। **(२) पत्नी बनाया।** उ.—बाम बाम जिन सजनी कीनी। तिनकौ ऊधौ कहाँ बात बढ़ हम हित जोग जुगुत चित चीनी—सा. ५९। **(३) कर दी, नाप ली।** उ.—अहुँठ पैग बसुधा सब कीनी—१०-१२५।

कीने—क्रि. स. [हिं. करना] **किये, कर दिया, किये है।** उ.—थकित भए कछु मंत्र न फुरई, कीने मोह अचेत—१-२९।

कीनौ—क्रि. स. [हिं. करना] **भूत. 'किया' का ब्रज. प्रयोग, किया, संपादित किया।** उ.—नर तैं जनम पाइ कह कीनौ—१-६५।

संज्ञा पुं.—**करनी का फल।** उ.—जो मेरैं लाल खिझावै। सो अपनो कीनौ पावै—१०-१८३।

कीन्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. करना] **किया।** उ.—बाँधन गए, बँधाए आपुन, कौन सयानप कीन्यौ—८-१५।

कीन्ही—क्रि. स. [हिं. करना] **'करना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'किया' का ब्रजभाषिक स्त्रीलिंग, की।** उ.—भक्तनि हित तुम कहा न कियौ? गर्भ परिच्छित इच्छा कीन्ही अम्बरीष-ब्रत राखि लियौ—१-२९।

कीन्हें—क्रि. स. [हिं. करना] **(१) 'करना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'किये' का ब्रजभाषा बहुवचन अथवा आदर-सूचक रूप, कार्य संपादित किये।** उ.—(क) मागध हत्यौ, मुक्त नृप कीन्हें, मृतक बिप्र-सुत दीन्हौ—१-१७। (ख) कीन्हें केलि बिबिध गोपिन सों सबहिन कौं सुख दीन्हें—८६७ सारा.। **(२) बनाये, स्वीकार किये।** उ.—कीन्हें गुरु चौबीस सीख लै जदु को दीन्हो ज्ञान—६२ सारा.।

कीन्हौं—क्रि. स. [हिं. करना] **'करना' क्रिया के भूतकालिक रूप 'किया' का ब्रजभाषा रूप, किया।** उ.—(क) रघुकुल राघव कृष्न सदा ही गोकुल कीन्हौं थानौ—१-११। (ख) कौरौ-दल नासि नासि कीन्हौं जन-भायौ—१-२३।

कीन्ह्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. करना] किया। उ.—बहुत जन्म इहिं बहु भ्रम कीन्ह्यौ—४·११।

कीमत—संज्ञा पुं. [अ. क़ीमत] मूल्य, दाम।

कीमती—वि. [अ.] अधिक मूल्य का।

कीमिया—संज्ञा स्त्री. [फा.] रसायन, रासायनिक क्रिया।

कीये—क्रि. स. [हिं. करना] (१) किये। (२) बनाये, चुने, स्थापित या नियुक्त किये। उ.—आठों लोकपाल तब कीये अपन अपन अधिकार २० सारा.।

कीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तोता। (२) बहेलिया।
संज्ञा पुं. [सं. कीट] कीड़ा।

कीरत, कीरति—संज्ञा स्त्री. [सं. कीर्त्ति] (१) पुण्य। (२) ख्याति, बड़ाई। उ.—नंदनंदन की कीरत सूरज संभावन गावै—सा. ६३। (३) राधा की माता कीर्ति।

कीरतन—संज्ञा पुं० [सं० कीर्त्तन] (१) कथन, यश-गुण-वर्णन। उ०—जाके गृह मैं हरि-जन जाइ। नाम-कीरतन करै सो गाइ—६·४। (२) राम कृष्ण-लीला संबंधी भजन या गीत।

कीरति-सुता—संज्ञा स्त्री० [सं० कीर्त्ति + सुता = पुत्री] कीर्ति की पुत्री, राधा।

कीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कीट] (१) चींटी, कीड़ा। (२) बहुत छोटे छोटे कीड़े।

कीर्ण—वि० [सं.] (१) बिखरा या फैला हुआ। (२) छाया हुआ, ढका हुआ।

कीर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) यश-गुण-वर्णन। (२) राम-कृष्ण लीला के भजन, गीत या कथा। (३) भक्ति का एक अंग। उ०—स्रवन, कीर्तन, स्मरनपाद, रत अरचन बंदन दास—११६ सारा०।

कीर्त्तनिया—संज्ञा पुं० [सं० कीर्त्तन + इया (प्रत्य०)] राम-कृष्ण की लीला का गानेवाला, कीर्त्तन करनेवाला।

कीर्ति, कीर्त्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुण्य। (२) यश, बड़ाई। उ०—तेरो तनु धनरूप महागुन सुन्दर स्याम सुनी यह कीर्ति—२२२३। (३) सीता की एक सखी। (४) राधा की माता का नाम।

कीर्त्तिमान—वि० [सं०] यशस्वी।

कीर्त्तिस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी की किर्त्ति की स्मृति-रक्षा में निर्मित स्तंभ। (२) वह कार्य या वस्तु जिससे किसी की कीर्त्ति की स्मृति-रक्षा की जाय।

कील—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेख, काँटा, खूँटी। (२) नाक में पहनने का एक छोटा आभूषण, लौंग।

कीलन—संज्ञा पुं [सं०] (१) रोक, रुकावट। (२) मंत्र कीलने की क्रिया।

कीलना—क्रि० स० [सं० कीलन] (१) कील लगाना। (२) मंत्र का प्रभाव नष्ट करना। (३) वश में करना।

कीलित—वि० [हिं० कीलना] (१) जड़ित। (२) निश्चेष्ट।

कीली—संज्ञा स्त्री० [सं० कील] (१) चक्र के बीच की कील या धुरी जिस पर वह घूमता है। (२) धुरी या कील।

कीश, कीस—संज्ञा पुं० [सं० कीश] (१) बंदर, बानर, लंगूर। उ०—रीछ कीस बस्य करौं, रामहिं गहि ल्याऊँ—९·११८। (२) सूर्य।

कीसा—संज्ञा पुं० [फा०] (१) थैली (२) जेब।

कुँअर—संज्ञा पुं. [सं. कुमार, हिं. कुँवर] (१) लड़का। (२) राजकुमार। (३) धनी का पुत्र।

कुँअरविलास—संज्ञा पुं [हिं. कुँअर + विलास] एक तरह का चावल।

कुँअरेटा—संज्ञा पुं. [हिं. कुँअर + एटा (प्रत्य.)] लड़का, बालक।

कुँअरि—संज्ञा स्त्री. [सं. पुं. कुमार]। (१) पुत्री, बालिका। (२) राजपुत्री, राजकुमारी। (३) प्रतिष्ठित पदाधिकारी या धनी की पुत्री। उ.—ठाढ़ी कुँअरि राधिका लोचन मोचत तहँ हरि आए ६७५।

कुँआँ—संज्ञा पुं. [हिं. कूँआ] कूप, कूँआ।

कुँआरा—वि. [सं. कुमार] जिसका ब्याह न हुआ हो।

कुँई—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमुदिनी, प्रा. कुउई] कुमुदिनी।

कुंकुम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) केसर। (२) रोली। (३) लाख का पोला गोला, कुंकुमा।

कुंकुमा—संज्ञा पुं. [सं. कुंकुम] लाख का पोला गोला जिसमें गुलाल भर कर मारते हैं।

कुंचन—संज्ञा पुं. [सं.] सिकुड़ने या सिमटने की क्रिया।

कुंचिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) घुँघची, गुंजा। (२) ताली, कुंजी।

कुंचित—वि. [सं.] (१) घूँघरवाले, छल्लेदार। उ.—कुंचित अलक, तिलक, गोरोचन, ससि पर हरि के ऐन—१०-१०३। (२) टेढ़ा, घूमा हुआ।

कुँची, कुंचो—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंचिका] ताली, कुंजी, चाभी। उ.—धर्मवीर कुलकानि कुंची कर तेहि तारौ दै दूरि धरयौ री—१४४८।

कुंज—संज्ञा पुं. [सं.] स्थान जो लतादि से मंडप की तरह ढका हो। उ.—जहँ वृन्दावन आदि अजिर जहँ कुंजलता विस्तार। तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार।

यौ.—कुंजकी खोरी—कुंजगली, पतली गली। उ.—सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख भजे कुंज की खोरी—१०-२६७।

कुंजक—संज्ञा पुं० [सं.] अन्तःपुर में आने-जाने का अधिकारी द्वारपाल या चोबदार, कंचुकी।

कुंजकुटीर—संज्ञा स्त्री. [सं.] लताओं से घिरा हुआ घर।

कुंजगली—संज्ञा स्त्री. [हिं.] (१) लताओं बेलों से छायी हुई पगडंडी। (२) गली।

कुंजविहारी—संज्ञा पुं. [सं. कुंजविहारी] (१) कुंजों में विहार करनेवाला। (२) श्रीकृष्ण। उ.—(क) अगम अगोचर, लीलाधारी। सो राधा-बस कुंजबिहारी—१०-३। (ख) जबते बिछुरे कुंजबिहारी। नींद न परै घटै नहिं रजनी ब्यथा बिरह ज्वर भारी—२९८२।

कुँजड़ा—संज्ञा. पुं. [सं. कुंज+ड़ा (प्रत्य.)] तरकारी बोने-बेचनेवाली एक जाति।

कुंजबिलासी—संज्ञा पुं० [सं.] कुंजों में विलास करनेवाले। (२) श्रीकृष्ण। उ.—इहि घट प्रान रहत क्यों ऊधौ बिछुरे कुंजबिलासी—३३०५।

कुंजर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी। (२) बाल।

वि०—उत्तम, श्रेष्ठ।

कुंजरारि—संज्ञा. पुं. [सं. कुंजर+अरि] हाथी का शत्रु, सिंह।

कुंजल—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी, गज। उ.—ज्यों सिवछुति दरसन रवि पायौ जेहि गरनि गरयौ। सूरदास प्रभु रूप थक्यौ मन कुंजल पंक परयौ—१४८९।

कुंजविहारी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुंज में विहार करनेवाला पुरुष। (२) श्रीकृष्ण।

कुंजित—वि. [सं.] कुंजों से युक्त।

कुंजी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुञ्जिका] (१) चाभी, ताली। (२) (ग्रंथ की) टीका।

कुंठ—[सं.] (१) जो तेज न हो, गुठला, कुंद। (२) जिसकी बुद्धि तेज न हो, मूर्ख।

कुंठन—संज्ञा स्त्री. [सं.] हिचक, कुंठित होने की क्रिया।

कुंठित—वि. [सं.] (१) जिसकी धार तेज न हो। (२) मन्द, निकम्मा।

कुंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अग्निहोत्र आदि करने का गढ़ा अथवा मिट्टी या धातु का पात्र जिसमें आग जलायी जाती है। उ.—(क) जज्ञ पुरुष प्रसन्न तब भए। निकसि कुंड तें दरसन दए—४-५। (ख) आहुति जज्ञकुंड में डारि। कह्यौ पुरुष उपजै बल भारि। (२) चौड़े मुँह का बरतन। (३) छोटा तालाब। (४) चूल्हा, गड्ढा। (५) लोहे का टोप (६) हाथी का हौदा।

कुँड़रा—संज्ञा. पुं. [सं. कुंडल] (१) गोल रेखा। (२) लपेटी हुई रस्सी या कपड़ा, इँडुवा, गेंडुरी।

कुँडरा—संज्ञा. पुं. [सं. कुंड] कुंडा, मटका।

कुँडरी—संज्ञा. स्त्री. [सं.] (१) जन्म के ग्रहों की स्थिति बतानेवाला चक्र। (२) खँजरी, डफली। उ.—एक पटह एक गोमुख एक आवझ एक झालरी एक अमृत एक कुंडरी एक एक डफ कर धारे—२४२५।

कुंडल—संज्ञा पुं. [सं०] (१) कानों में पहनने का सोने-चाँदी का एक आभूषण। उ.—परम रुचिर मनि-कंठ किरनिगन, कुंडल-मुकुट-प्रभा न्यारी—१-६९। (२) गोरखनाथ के अनुयायियों का कान में पहनने का गोल आभूषण। (३) वह मंडल जो बदली में चंद्रमा या सूर्य के किनारे दिखायी देता है। (४) (साँप की) गोल फेरों में सिमटकर बैठने की स्थिति।

कुंडलिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] शरीर का एक कल्पित अंग जो मूलाधार में सुषुम्ना नाड़ी के नीचे साढ़े तीन कुंडली में घूमा माना गया है।

कुंडलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० कुंडलिका] दोहे और रोला के योग से बननेवाला एक छंद।

कुंडली—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) कुंडलिनी। (२) ज्योतिष के अनुसार वह चक्र जो जन्मकाल में ग्रहों की स्थिति सूचित करने के लिए बनाया जाता है। (३) गेंडुरी। (४) साँप के गोलाकार बैठने का ढंग।

कुंडा—संज्ञा पुं० [सं. कुंड] बड़ा मटका।

संज्ञा पुं० [सं. कुंडल] दरवाजे की बड़ी कुंडी, साँकल।

कुंडिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमंडल। (२) पथरी, कूँडी, प्याली। (३) ताँबे का हवन-कुंड।

कुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं. कुंड] तसले या कंडलदार थाली की तरह का बड़ा गहरा बर्तन। उ.—पूँगी फल-जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुंडी जो कनक की। खेलत सूर सकल जुवतिनि मैं, हारे रघुपति, जिती जनक की—६-२५।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कुंडा (१) जंजीर की कड़ी। (२) साँकल।

कुंडोदर—संज्ञा पुं० [सं. कुंड+उदर] शिव जी का एक गण।

कुंत—संज्ञा पुं० [सं.] (१) भाला, बरछी। उ.—ठौर-ठौर अभ्यास महाबल करत कुंत-असि-बान—९-७५। (२) क्रूर भाव, अनख।

कुंतल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिर के बाल, केश। उ.—(क) कुंतल कुटिल, मकर कुंडल, भ्रुव नैन बिलोकनि बंक-१०-१५४। (ख) स्रवन मनि ताटंक मंजुल कुटिल कुंतल छोर। (२) प्याला। (३) सूत्रधार। (४)वेश बदलनेवाला पुरुष, बहुरूपिया। (५) जौ। (६) घास।

कुंता, कुंति, कुंती—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंती] राजा पांडु की स्त्री। यह शूरसेन यादव की कन्या और वसुदेव की बहन थी। इस नाते श्रीकृष्ण की यह बुआ थी। भोज देश के राजा कुंतिभोज इसके चाचा थे और उन्होंने इसे गोद लिया था। दुर्वासा ऋषि की सेवा करके इसने पाँच मंत्र प्राप्त किये थे जिनके द्वारा यह देवताओं का आह्वान कर पुत्र उत्पन्न करा सकती थी। मंत्रों की सत्यता जाँचने के लिए इसने कुमारी अवस्था में ही सूर्य से 'कर्ण' को उत्पन्न किया था। विवाह के बाद धर्म, पवन और इंद्र द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन इसके उत्पन्न हुए थे।

संज्ञा स्त्री. [सं० कुंत] बरछी, भाला।

कुंद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पौधा जिसमें मीठी सुगंध वाले सफेद फूल लगते हैं। इसकी कलियों से दाँतों की उपमा दी जाती है। उ.-(क) अति ब्याकुल भईं गोपिका ढूँढ़ति गिरिधारी। बूझति हैं बन बेलि सौं देखे बनवारी...। सूझा मरुवा कुंद सौं कहैं गोद पसारी। बकुल बहुलि बट कदम पै ठाढ़ी ब्रजनारी—१८२२। (ख) चिबुक मध्य मेचक रुचि उपजत राजति बिंब कुंद रदनी—पृ० ३१६। (२) कनेर का पेड़। (३) कमल। (४) विष्णु। (५) खराद।

कुंदन—संज्ञा पुं. [सं. कुंद=श्वेत पुष्प] स्वच्छ स्वर्ण, बढ़िया सोना। उ —आसन एक हुतासन बैठी, ज्यों कुंदन-अरुनाई। जैसैं रवि इक पल घन भीतर बिनु मारुत दुरि जाई—९-१६२।

(१) शुद्ध, बढ़िया। (२) सुंदर, नीरोग।

कुंदनपुर—संज्ञा पुं. [सं. कुंडिनपुर] विदर्भ देश का एक नगर जिसके राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी को श्रीकृष्ण हर लाये थे। उ.—कुंदनपुर को भीषम राई—१० उ.-७।

कुंदर—संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु।

कुंदा—संज्ञा पुं [फ़ा.] (१) लकड़ी का लट्ठा। (२) लकड़ी का वह छोटा टुकड़ा जिस पर रखकर लकड़ी गढ़ी जाती है। (३) बन्दूक का पिछला भाग। (४) दस्ता, मूठ। (५) बड़ी मुगरी।

कुंदी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुंदा] (१) कपड़ों को मुगरी से कूटना। (२) खूब मारना पीटना।

कुंदुर—संज्ञा पुं. [सं.] पीला गोंद।

कुँदेरना—संज्ञा पुं. [सं. कुंदलन=खोदना] खुरचना, छीलना।

कुँदेरा—संज्ञा पुं. [हिं. कुँदेरना+एरा (प्रत्य.)] खरादने का काम करनेवाला।

कुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घड़ा, घट। उ.—स्रम-स्वेद

सीकर गुंड मंडित रूप अंबुज कोर। उमँगि ईषद यौं स्रम तज्यौ पीयूष कुंभ हिलोर—पृ. ३१०। (२) हाथी के सिर के दोनों ओर का उभड़ा हुआ भाग। उ.—(क) बाज सौं टूटि गजराज हाँकत परयौ मनौ गिरि चरन धरि लपकि लीन्हे। बारि बाँधे बीर चहुँधा देखत ही बज्र सम थाप बल कुंभ दीन्हे—२५६०। (ख) तब रिस कियौ महावत भारी……। अंकुस राखि कुंभ पर करष्यौ हलधर उठे हँकारी—२५६४। (३) दसवीं राशि। (४) प्राणायाम के तीन भागों में एक। (५) एक पर्व जो प्रति बारहवें वर्ष होता है। (६) एक राग।

कुंभक—संज्ञा पुं. [सं.] प्राणायाम के तीन भागों में से एक जिसमें साँस लेकर वायु को शरीर के भीतर रोका जाता है। उ.—जोग विधि मधुबन सिखि आई जाइ……। सब आसन रेचक अरु पूरक कुंभक सीखे पाइ—३१३४।

कुंभकरन—संज्ञा पुं. [सं. कुंभकर्ण] एक राक्षस का नाम जो रावण का भाई और बड़ा बली था। प्रसिद्धि है कि यह छह महीने सोता था।

कुंभकर्ण—संज्ञा पुं. [सं.] रावण का भाई जो छः महीने तक सोता था।

कुंभकार—संज्ञा पुं. [सं.] कुम्हार।

कुंभज, कुंभजात, कुंभयोनि, कुंभसंभव—संज्ञा पुं. [सं.] अगस्त्य ऋषि जिनकी उत्पत्ति घड़े से हुई थी।

कुंभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] वेश्या।

कुंभार—संज्ञा पुं. [सं. कुंभकार] कुम्हार।

कुंभिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) जलकुंभी। (२) वेश्या। (३) कायफल।

कुँभिलाना—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] (१) ताजा न रहना, मुरझा जाना। (२) सूखने लगना। (३) कांति मलीन होना, सुस्त हो जाना, उदासी छाना।

कुँभिलानी—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] (१) कुम्हला गयी, मुरझा गयी। उ.—(क) हरबराइ उठि धाइ प्रात ते बिथुरीं अलक अरु बसन मरगजे तैसीये कुँभिलानी मात—११८३। (ख) प्रफुलित कमल गुंजार करत अलि पहु फाटी कुमुदिनि कुँभिलानी—२२४८। (२) उदास हो गयी, सुस्त हो गयी। उ.—(ख) निठुर बचन सुनि स्याम के जुवती बिकलानी। ……। मनो तुषार कमलन परयौ ऐसे कुँभिलानी—पृ. ३४१। (ग) ऊधौ जिय जानी मन कुभिलानी कृष्न संदेस पठाये—३४४१।

कुँभिलानो, कुँभिलानौ—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] कुम्हला गया, उदास हो गया, प्रभाहीन हो गया। उ.—अति रिसि कृस ह्वै रही किसोरी करि मनुहारि मनाइए। ……। छूटे चिहुर बदन कुँभिलानौ सुहथ सँवारि बनाइए—१६८८।

कुँभिलाहि—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] सूख जाती है, मुरझा जाती है। उ.—जल में रहहि जलहि ते उपजहि जल ही बिन कुँभिलाहि—२७५७।

कुंभी—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी।

संज्ञा स्त्री.—(१) बंसी। (२) एक नरक का नाम, कुंभीपाक।

कुंभीनस—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साँप। (२) रावण।

कुंभीपाक—संज्ञा पुं. [सं.] एक नरक जिसमें मांसाहारी व्यक्ति खौलते हुए तेल में डाला जाता है।

कुंभीपुर—संज्ञा पुं. [सं.] हस्तिनापुर का एक नाम, पुरानी दिल्ली।

कुंभीर—संज्ञा पुं. [सं.] नाक नामक जलजंतु।

कुंवर—संज्ञा पुं. [सं. कुमार] राजपुत्र, राजकुमार। उ.—इक दिन नृपति सुरुचि-गृह आयौ। उत्तम कुँवर गोद बैठायौ—४-६।

कुँवरि—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. कुँवर] (१) कुमारी। (२) राजकन्या, प्रतिष्ठित व्यक्ति की कन्या। उ.—(क) गुप्त प्रीति न प्रगट कीन्ही, हृदय दुहुनि छिपाइ। सूर प्रभु के बचन सुनि-सुनि रही कुँवरि लजाइ—६७६। (ख) नयौ नेह, नयौ गेह, नयौ रस, नवल कुँवरि बृषभानु-किसोरी—६८५।

कुँवरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुँवरि] बेटी, पुत्री। उ.—सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुँवर बृषभानु-कुँवरिया—६८८।

कुँवरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुँवरि] कुमारी, कुँवरि। उ.—कुँवरी अहि जसु हेमखंभ लगि ग्रीव कपोत बिसारी—२३०४।

कुँवरेटा—संज्ञा पुं. [हिं. कुँवर+एटा (प्रत्य.)] छोटा लड़का, बच्चा।

कुँवाँ—संज्ञा पुं. [हिं. कुआँ] कूप, कुआँ।

कुँवार, कुँवारा—वि. [सं. कुमार, प्रा. कुँवार] जिसका ब्याह न हुआ हो।

कुँहकुँह—संज्ञा पुं. [सं. कुंकुम] केशर, जाफरान।

कु—उप. [सं.] एक उपसर्ग जो शब्द के आदि में जुड़कर 'नीच', 'बुरा' आदि का अर्थ देता है, जैसे कुपुत्र, कुसंग।

संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

कुअंक—संज्ञा पुं. [सं. कु+अंक] (१) बुरे अंक। (२) बुरा भाग्य, दुर्भाग्य।

कुआँ—संज्ञा पुं. [स. कूप, प्रा. कूव] कूप।

कुआँर, कुआर—संज्ञा पुं. [प्रा. कुँमार, हिं. क्वार] भादों के बाद का महीना।

कुइँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुइयाँ] छोटा कुआँ।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुव] कुमुदिनी।

कुइयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुआँ] छोटा कुआँ।

कुकड़ना—क्रि. अ. [हिं. सिकुड़ना] सिकुड़ जाना, संकुचित होना।

कुकड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्कुटी] कच्चे सूत की अण्टी।

कुकनू—संज्ञा पुं. [यू.] एक पक्षी।

कुकरना—क्रि. अ. [हिं. सिकुड़ना] सिकुड़ जाना।

कुकरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्कुट, पु. हिं. कुकड़ा] मुरगी।

कुकपि—संज्ञा पुं. [सं. कु=बुरा] दुष्ट कपि। उ.—संभु की सपथ, सुनि कुकपि कायर कृपन, स्वास आकास बनचर उड़ाऊँ – ९-१२९।

कुकर्म—संज्ञा पुं० [सं० कु=बुरा+कर्म] बुरा या खोटा काम, दुष्कर्म।

कुकर्मी—वि० [हिं० कुकर्म] बुरा काम करनेवाला, पापी।

कुकवि—संज्ञा पुं० [सं० कु=बुरा+कवि] बुरा कवि, पापी कवि, ऐसा कवि जिसने कोई पुण्य कार्य न किया हो। उ०—सूरदास बहुरौ बियोग गति कुकवि निलज ह्वै गावत—३३६२।

कुकुर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक क्षत्रिय जाति। (२) कुत्ता। (३) एक साँप का नाम।

कुकुरमुत्ता—संज्ञा पुं० [हिं० कुक्कुर=कुत्ता+मूत] एक बदबूदार बनस्पति।

कुकुही—संज्ञा स्त्री० [सं० कुक्कुभ, प्रा० कुक्कुह] बनमुर्गी।

कुक्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुर्गा। (२) चिनगारी। (३) जटाधारी।

कुक्कुर—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

कुक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पेट, उदर।

कुक्षि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पेट। (२) कोख। (३) गोद।

कुखेत—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षेत्र, प्रा० कुखेत] बुरा स्थान, कुठाँव। उ०—चारों ओर ब्यास खगपति के झुंड झुंड बहु आये। ते कुखेत बोलत सुनि सुनि के सकल अंग कुम्हिलाये।

कुख्यात—वि. [सं. कु+ख्यात] बदनाम, निंदित।

कुख्याति—संज्ञा स्त्री. [सं.] बदनामी, निंदा।

कुगंधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] बुरी गंध, दुर्गंध। उ०—हंस काग को भयौ संग।...। जैसे कंचन काँच संग ज्यौं चंदन संग कुगंध। जैसे खरी कपूर दोउ यक मय यह भइ ऐसी संधि—२९१२।

कुगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] बुरी दशा, दुर्गति।

कुगहनि—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+ग्रहण] वह हठ या आग्रह जो उचित न हो।

कुघा—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्षि] ओर, तरफ, दिशा।

कुघात—संज्ञा पुं० [सं. कु+हिं. घात] (१) बुरा अवसर या समय। (२) बुरी चाल, छल-कपट।

कुच—संज्ञा पुं. [सं.] स्तन, छाती।

वि.—(१) सिमटा हुआ, संकुचित। (२) कंजूस।

कुचकुचा—वि. [अनु. कुचकुच] कोंचा या मसला हुआ।

कुचकुचाना—क्रि. स. [अनु. कुचकुच] बारबार कोंचना या चुभाना।

कुचक्र—संज्ञा पुं. [सं.] षड्यंत्र, छलकपट।

कुचक्री—संज्ञा पुं. [सं. कुचक्र] छली, षड्यंत्रकारी।

कुचना—क्रि. अ. [सं. कुंचन] सिकुड़ना, सिमिटना, संकुचित होना।

क्रि. अ. [हिं. कूँचना] दब जाना, कुचल जाना।

कुचर—संज्ञा पुं० [सं.] (१) आवारा। (२) कुकर्मी। (३) दूसरे की निंदा करनेवाला।

कुचलना—क्रि. स. [हिं. कूँचना] (१) दबाना, मसल देना। (२) पैरों से रौंदना।

कुचाल—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+हिं. चाल] (१) बुरा चाल-चलन। (२) खोटापन, दुष्टता।

कुचालिया, कुचाली—वि. [हिं. कुचाल] (१) **जिसका आचरण अच्छा न हो। (२) जिसकी नीति ठीक न हो, दुष्ट, अन्यायी, अत्याचारी।** उ.—जिनि हति सकट, प्रलंब, तृनावृत, इंद्र-प्रतिज्ञा टाली। एते पर नहिं तजत अघोड़ी कपटी कंस कुचाली—२५६७।

कुचाह—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + हिं. चाह] **बुरी या अशुभ बात, असंगलसूचक समाचार।**

कुचिल—वि. [हिं. कुचैला] **मैला, गंदा।** उ.—कहो कैसे मिले स्याम संघाती। कैसे गए सुकंत कौन बिधि परसे हुते बस्तर कुचिल कुजाती—१० उ.-७२।

कुचिलगे—क्रि. स. [हिं. कुचलना] **दब गया, मसल गया।**

कुची—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुंजी] (१) **कुंजी, ताली।** (२) **कूबा, ब्रुश।**

कुचील—वि. [सं. कुचेल] **मैले वस्त्रवाला, मैला-कुचैला, मलिन।** उ.—(क) हौं कुचील, मतिहीन सकल बिधि, तुम कृपालु जगजान—१-१००। (ख) कज्जल कीच कुचील किये तट अंचर, अधर कपोल। थकि रहे पथिक सुयश हित ही के हरत चरन मुख बोल—३४५४। (ग) कुटिल कुचील जन्म की टेढ़ी सुंदरि करि घर आनी—३०८६। (घ) दुर्बल बिप्र कुचील सुदामा ताको कंठ लगाये—८१८ सारा.।

कुचीलनि—वि. बहु. [सं. कुचेल, हिं. कुचील + नि (प्रत्य.)] **मैले-कुचैलों से, मलिन लोगों से।** उ.—साधु-सील, सद्रूप पुरुष कौं, अपजस बहु उचरतौ। औघड़-असत-कुचीलनि सौं मिलि, मायाजल मैं तरतौ—१ २०३।

कुचीला—वि. [हिं. कुचील] (१) **मैला, गंदा।** (२) **मैले या गंदे वस्त्रवाला।**

कुचेल—संज्ञा पुं. [सं.] **मैला कपड़ा।**

वि.—(१) **मैला, गंदा।** (२) **मैले कपड़ेवाला।**

कुचेष्ट—वि. [सं.] (१) **बुरी आकृतिवाला।** (२) **बुरी चालबाजी।**

कुचेष्टा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **बुरी चाल या चेष्टा।** (२) **बुरी आकृति-प्रकृति।**

कुचैन—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + हिं. चैन] **व्याकुलता, अशांति।**

कुचैल, कुचैला—वि. [हिं. कुचैला] (१) **जिसका कपड़ा मैला हो।** (२) **मैला, गंदा।** उ.—पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल खाये (हो)। संपति दै वाकी पतिनी कौं, मन-अभिलाष पुराए (हो)—१-७।

कुच्छि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्षि] (१) **पेट।** (२) **कोख।**

कुच्छित—वि. [सं. कुत्सित] **बुरा, नीच।**

कुछ—वि. [सं. किंचित, पा. किंची, पू. हिं. किछु] **थोड़ा, जरा।**

सर्व. [सं. कश्चित, पा. कोचि] (१) **कोई (वस्तु), थोड़ी (वस्तु)।** उ.—जब वह बिप्र पढ़ावै कुछ कुछ सुनके चित धरि राखै—११० सारा.। (२) **कोई (विशेषता या बड़ी बात)।**

मुहा०—जो कुछ करै सो थोरा—**सब कुछ करने की सामर्थ्य है, शक्ति या सामर्थ्य इतनी अधिक है कि बड़े से बड़ा काम करना भी उनके लिए साधारण बात होगी।** उ—इतनी सुनत घोष की नारी रहसि चली मुख मोरी। सूरदास जसुदा कौ नंदन, जो कछु करै सो थोरी—१०-२६३।

कुजंत्र—संज्ञा पुं. [सं. कुयंत्र] **टोना, टोटका।**

कुज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मंगल ग्रह।** उ.—भाल बिसाल ललित लटकन मनि, बालदसा के चिकुर सुहाए। मानौ गुरु सनि-कुज आगैं करि, ससिहिं मिलन तम के गन आए—१०-१०४। (१) **पेड़।** (१) (कु = पृथ्वी) **पृथ्वी का पुत्र नरकासुर।**

वि.—**लाल रंग का।**

कुजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कु = पृथ्वी + जा] **पृथ्वी की पुत्री सीता।**

कुजात, कुजाति, कुजाती—संज्ञा स्त्री. [सं. कुजाति] **बुरी या नीच जाति।**

वि.—(१) **बुरी जाति का।** (२) **पतित या नीच, दीन-दुखी या अनाथ।** उ.—कहौ कैसे मिले स्याम संघाती। कैसे गये सु कंत कौन बिधि परसे हुए बस्तर कुचिल कुजाती—१० उ.-८७।

कुजोग—संज्ञा पुं. [सं. कुयोग] **बुरा मेल या संबंध, कुसंग।** (२) **बुरा संयोग या अवसर।**

कुजोगी—वि. [सं. कुयोगी] **जो संयमी न हो।**

कुज्जा—संज्ञा पुं. [फा. कूजा=प्याला] (१) **पुराना मिट्टी का प्याला।** (२) **मिट्टी के कुज्जे में जमाई हुई मिश्री।**

कुटंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूटना + त (प्रत्य.)] (१) कुटाई, पिटाई । (२) मार, चोट ।

कुट—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर (२) किला, गढ़ । (३) कलश ।
संज्ञा स्त्री. [सं. कुष्ठ] एक झाड़ी ।
संज्ञा पुं. [सं. कूट=कूटना] कुटा हुआ अंश ।

कुटका—संज्ञा पुं. [हिं. काटना] कटा हुआ छोटा टुकड़ा ।

कुटज—संज्ञा पुं. [सं.] एक जंगली वृक्ष, कुरैया, कर्ची । उ.—कुटज कुमुद कदंब कोविद कनक आरि सुकंज । केतकी करवील बेलउ बिमल बहु बिधि मंत—२८२८।

कुटना—संज्ञा पुं. [हिं. कुटनी] (१) नायक का दूत । (२) परस्पर झगड़ा करनेवाला ।
संज्ञा पुं. [हिं. कुटना] कूटने का हथियार ।
क्रि. अ.—कूटा जाना ।

कुटनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुट्टनी] (१) नायक की दूती । झगड़ा करनेवाली ।

कुटिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कुटी] झोपड़ी ।

कुटिल—वि. [सं.] (१) कपटी, छली, शठ, खल । उ.—(क) साँचे सूर कुटिल ये लोचन व्यथा मीन छबि छानि लयी—२५३३ । (ख) मल्लयुद्ध प्रति कंस कुटिल मति छल करि इहाँ हँकारे—२५६६ । (ग) रिपु भ्राता जान्यो जु बिभीषन निसिचर कुटिल सरीर—२६० सारा. । (२) वक्र, टेढ़ा । उ.—कुटिल भ्रू पर तिलक रेखा सीस सिखिनि सिखंड—१-३०७ । (३) घूमा या बल खाया हुआ । (४) छल्लेदार, घुँघराला । उ.—लला हौं वारी तेरैं मुख पर । कुटिल अलक मोहन मन बिहसनि, भृकुटी बिकट ललित नैननि पर—१०-६३ । (ख) कुटिल कुंतल मधुप मिलि मनु कियौ चाहत लरनि—३५१ ।

कुटिलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) टेढ़ापन । (२) छल, कपट ।

कुटिलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटिल] कुटिलता ।

कुटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पर्णशाला, कुटिया, झोपड़ी । (२) घास-फूस का घेरा । उ.—तुम लछिमन या कुंज-कुटी मैं देखौ जाइ निहारि । कोउ इक जीव नाम मम लै लै उठत पुकारि-पुकारि—६-६५ ।

कुटीर—संज्ञा पुं. [सं. कुटी] कुटी । उ.—सूरदास स्वामी अरु प्यारी बिहरत कुंज कुटीर—१५६१ ।

कुटुँब, कुटुम्ब—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार, कुनबा ।

कुटुम्बी—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार या कुटुम्ब के अन्य प्राणी ।

कुटुम—संज्ञा पुं. [सं. कुटुम्ब] परिवार, कुटुम्ब । उ.—उग्रसेन सब कुटुम लै ता ठौर सिधायौ—१० उ.-२ ।

कुटेक—संज्ञा स्त्री. [सं. कु=बुरा + हिं. टेक] अनुचित बात पर अड़ना ।

कुटेव—संज्ञा स्त्री. [सं. कु=बुरा + हिं. टेव = आदत] खराब या बुरी आदत । उ.—नैनन यह कुटेव पकरी । लूटत स्याम रूप आपुन ही निसि दिन पहर घरी —पृ. ३३० ।

कुटौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूटना+औनी] (१) धान कूटने का काम । (२) धान कूटने की मजूरी ।

कुट्टनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटनी] दूती, कुटनी ।

कुट्टमित—संज्ञा पुं. [सं.] सुख-विलास के समय स्त्रियों का दुख या कष्ट का बनावटी भाव जो विशेष प्रिय लगता है ।

कुठाँउ, कुठाँय, कुठाँव—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+हिं. ठाँव] (१) बुरी ठौर या जगह । उ०—यह सब कलियुग कौ परभाव, जो नृप कौ मन गयौ कुठाँव । (२) संकट में, विपत्ति के स्थान में । उ०—जौ हरि ब्रत निज उर न धरैंगौ । तौ को अस त्राता जु अपन करि, कर कुठावँ पकरैंगौ—१-७५ ।

कुठाट—संज्ञा पुं. [सं. कु=बुरा+हिं. ठाट] (१) बुरा साज-सामान । (२) बुरा विचार, प्रबंध या आयोजन ।

कुठाय—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुठाँव] बुरा ठौर ।

कुठार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लकड़ी काटने की कुल्हाड़ी । उ०—जद्यपि मलय-बृच्छ जड़ काटै, करकुठार पकरै । तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै, रिपु-तन-ताप हरै—१-११० । (२) परशु, फरसा । (३) नाश करनेवाला व्यक्ति ।

कुठारपाणि, कुठारपानि—संज्ञा पुं. [सं. कुठार+पाणि] वह जिसके हाथ में परशु या फरसा हो, परशुराम ।

कुठाराघात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुल्हाड़ी की चोट । (२) गहरी चोट ।

कुठारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कुल्हाड़ी । (२) नाश करने वाली स्त्री ।

कुठाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] सोना-चाँदी गलाने की घरिया ।

कुठाहर—संज्ञा पुं. [सं. कु = बुरा + हिं. ठाहर = जगह] (१) बुरी जगह । (२) बेमौका ।

कुठिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कोष्ठ, प्रा. कोट्ठ] मिट्टी का बड़ा बरतन जिसमें अनाज रखा जाता है ।

कुठौर—संज्ञा पुं [सं. कु + हिं. ठौर] (१) बुरा स्थान । (२) बेमौका ।

कुड़कुड़ाना—क्रि.अ. [अनु.] मन ही मन कुढ़ना या क्षुब्ध होना ।

कुड़बुड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] मन में कुढ़ना ।

कुडमल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फूल की कली । (२) एक नरक का नाम ।

कुडरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) गेंडुरा, इँडुरी । (२) नदी के घुमाव के बीच की जमीन ।

कुडौल—वि. [सं. कु + हिं. डौल] भद्दा, भोंड़ा ।

कुढंग—संज्ञा पुं. [सं. कु + हिं. ढंग] बुरी रीति या चाल ।

वि. (१) बुरा, बेढंगा । (२) बुरी तरह का ।

कुढंगा—वि. [हिं. कुढंग] (१) जो काम का ढङ्ग न जाने, उजड्ड । (२) भद्दा ।

कुढंगी—वि. [हिं. कुढंग] बुरी चाल का, जिसका आचरण ठीक न हो ।

कुढ़, कुढ़न—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रुद्ध, प्रा. कुड्ढ] भीतरी क्रोध या दुख ।

कुढ़ना—क्रि. अ. [हिं. कुढ़न] (१) मनही मन खीझना या चिढ़ना । (२) ईर्ष्या या डाह करना । (३) दुखी होना, मन मसोसकर रह जाना ।

कुढब—वि. [सं. कु + हिं. ढब] (१) बुरे ढंग का । (२) कठिन ।

संज्ञा पुं.—बुरा स्वभाव, बुरी प्रकृति ।

कुढर—वि. [सं. कु + हिं. ढर] (१) जो ठीक ढला न हो । (२) भद्दा ।

कुढ़ाना—क्रि. स. [हिं. कुढ़ना] दूसरे का जी दुखाना ।

कुणप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मैल । (२) बच्चा ।

कुतका—संज्ञा पुं. [हिं. गतका] (१) डंडा, सोंटा । (२) वह डंडा, जिससे भाँग घोटी जाय ।

कुतना—क्रि. अ. [हिं. कूतना] कूता जाना ।

कुतरना—क्रि. स. [सं. कर्तन=कतरना] (१) (कुछ भाग) दाँत से काटना । (२) (कुछ भाग) निकाल लेना ।

कुतरा—संज्ञा. पुं. [हिं. कुत्ता] कुत्ता ।

कुतर्क—संज्ञा. पुं. [सं.] व्यर्थ का तर्क, बकवाद ।

कुतर्की—संज्ञा पुं. [सं.] व्यर्थ की बात करनेवाला । (२) बकवादी ।

कुतवार—संज्ञा पुं [हिं. कोतवाल] कोतवाल ।

कुतवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोतवाल] (१) कोतवाल का काम । उ.—सेस न पायौ अंत जाकी फनवारी । पवन बुहारत द्वार सदा संकर कुतवारी—११२८ । (२) कोतवाली ।

कुतवाल—संज्ञा पुं. [सं. कोटपाल, हिं. कोतवाल] पुलिस का एक बड़ा कर्मचारी जिनके अधीन कई थाने और थानेदार रहते हैं, कोतवाल । उ.—दगाबाज कुतवाल काम रिपु, सरबस लूटि लयो—१-६४ ।

कुताही—संज्ञा स्त्री. [फा. कोताही] कमी, कसर ।

कुतुक—संज्ञा पुं. [हिं. कौतुक] इच्छा ।

कुतूहल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्रीड़ा, आनंद, आमोद-प्रमोद । उ.—(क) उर मेले नंदराई कै गोप-सखनि मिलि हार । मागध-बंदी-सूत अति करत कुतूहल बार —१०-२७ । (ख) साँझ कुतूहल होत है जहँ तहँ दुहियत गाय—४६२ । (२) प्रबल इच्छा, उत्कंठा । (३) कौतुक । (४) अचरज, अचंभा । (५) एक आभूषण ।

कुतुहली—वि. [सं. कुतूहलिन्] (१) तमाशा देखनेवाला । (२) कौतुकी ।

कुत्ता—संज्ञा पुं. [देश.] (१) श्वान, कूकुर । (२) नीच मनुष्य ।

कुत्स—संज्ञा पुं. [सं.] एक ऋषि ।

कुत्सन—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) निंदा । (२) नीच या बुरा काम ।

कुत्सा—संज्ञा स्त्री [सं.] निंदा ।

कुत्सित—वि. [सं.] निंदित, नीच, बुरा ।

कुथ - संज्ञा पुं. [सं.] (१) कथरी, कंथा । (२) हाथी की झूल । (३) रथ या पालकी का ओहार । (४) एक कीड़ा ।

कुदकना—क्रि. अ. [हिं. कूदना] कूदना-फाँदना।

कुदरत—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) शक्ति, सामर्थ्य। (२) प्रकृति, माया। (३) रचना, कारीगरी।

कुदरा—संज्ञा पुं. [हिं. कुदाल] कुदार।

कुदरसन—वि. [सं. कुदर्शन] कुरूप, भद्दा। उ.—(क) कामी, कृपिन, कुचील, कुदरसन, को न कृपा करि तारयौ। तातैं कहत दयाल देवमनि, काहैं सूर बिसारयौ।—१ १०१। (ख) कामी, कुटिल, कुचील कुदरसन, अपराधी, मतिहीन—१-१११।

कुदर्शन—वि. [सं.] जो देखने में अच्छा न लगे।

कुदलाना—क्रि. अ. [हिं. कूदना] उछलना-कूदना।

कुदाँव—संज्ञा पुं. [सं. कु = बुरा + हिं. दाँव] (१) बुरा दाँव-घात, धोखा। (२) कष्ट की स्थिति। (३) बुरा स्थान।

कुदाई—वि. [हिं. कुदाँव] दाँवघात करनेवाला, छली-कपटी।

कुदाउँ, कुदाउ—संज्ञा पुं. [हिं. कुदाँव] कुघात, कुदाँव।

कुदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बुरा या अनुचित (धन का) दान। (२) बुरे पात्र को दान।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कूदना] (१) कूदने की क्रिया। (२) कूदने की दूरी।

कुदाना—क्रि. स. [हिं. कूदना] कूदने को प्रेरित करना।

कुदाम—संज्ञा पुं. [सं. कु = बुरा + हिं. दाम] खोटा सिक्का या रुपया।

कुदाय—संज्ञा पुं. [हिं. कुदाँव] दाँव-घात, छल-कपट।

कुदार, कुदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुदाल] जमीन खोदने का एक औजार। उ.—तनु गिरि जानि आनि अवनी इहि उडि भीत रहे। गमन कान्ह छन छन तु काम ससि किरनि कुदार गहे—२८६८।

कुदाल, कुदाली—संज्ञा स्त्री. [सं. कुद्दाल] जमीन खोदने या गोड़ने का औजार।

कुदिन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कष्ट-संकट के दिन। (२) वह दिन जब कष्टदायक घटना हो।

कुदिष्टि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुदृष्टि] पाप या वासना की दृष्टि।

कुदृष्टि—संज्ञा. स्त्री. [सं.] बुरी या पाप की दृष्टि।

कुदेव—संज्ञा. पुं. [सं. कु = भूमि + देव] ब्राह्मण।

संज्ञा. पुं. [सं. कु = बुरा + देव] राक्षस।

कुद्रव—संज्ञा पुं. [देश.] तलवार चलाने का एक ढंग।

कुधर—संज्ञा. पुं. [सं. कुध्र] (१) पहाड़। (२) शेषनाग।

कुधातु—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बुरी धातु। (२) लोहा।

कुनकुना—वि. [सं. कदुष्ण] थोड़ा गरम, गुनगुना।

कुनना—क्रि. स. [सं. क्षणन] (१) खरादना। (२) खरोचना।

कुनबा—संज्ञा पुं. [कुटुंब, प्रा. कुडुंब] परिवार।

कुनह—संज्ञा स्त्री. [फा. कीनः] (१) द्वेष, मनमुटाव। (२) पुराना बैर।

कुनाई—संज्ञा स्त्री. [हिं० कुनना] (१) खरादने या खुरचने पर निकलनेवाला चूरा। (२) खरादने या खुरचने की क्रिया।

कुनाम—संज्ञा स्त्री. [सं०] बदनामी, बुराई। उ०—वृन्दा बन हरि बैठे धाम। काहे को गथ हरयौ सब्रन को काहे अपनो कियो कुनाम—१८८१।

कुनारी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कु = बुरा] दुष्टा स्त्री। उ.—हरि, हौं महा अधम संसारी। आन समुझ मैं बरिया ब्याही, आसा कुमति कुनारी—१-१७३।

कुनित—[सं० क्वणित] बजता हुआ, झनकारता हुआ, शब्द करता हुआ। उ०—(क) कनक-रतन-मनि-रचित कटि-किंकिनि कुनित पीतपट तनियाँ—१०-१०६। (ख) किंकिनी कटि कुनित कंकन, कांचुरी झनकार। हृदय चौकी चमक बैठी सुभग मोतिनहार। (ग) सखि हरषि झूलें बृषभानुनंदिनी सोभि सँग नँद-लालनो। मनिमय नूपुर कुनित कंकन किंकिनी झनकारनो—२२८०।

कुपंगु—संज्ञा पुं० [सं.] बुरी तरह अपाहिज। उ०—स्वान कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्रवन-पुच्छ-विहीन। भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिना आधीन—१-३२१।

कुपंथ—संज्ञा पुं० [सं० कुपथ] (१) बुरा मार्ग। (२) बुरी रीति-नीति।

कुपढ़—वि० [सं० कु + हिं० पढ़ना] अनपढ़।

कुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा मार्ग (२) बुरी चाल।

संज्ञा पुं० [सं० कुपथ्य] हानिकारी भोजन।

कुपथी—वि० [सं.] बुरे मार्ग पर चलनेवाला।

वि० [सं० कुपथ्य, कुपथ्यी] हानिकारी भोजन करनेवाला।

संज्ञा स्त्री०—(१) हानिकारी भोजन करने की क्रिया। (२) बदपरहेजी । उ०—जो हुती निकट मिलन की आसा सो तो दूर गयी। जथा योग ज्यों होत रोगिया कुपथी करत नयी—२६०१।

कुपथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह आहार-विहार जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारी हो ।

कुपना—क्रि. अ. [हिं. कोपना] अप्रसन्न होना।

कुपाठ संज्ञा पुं० [सं.] बुरी सलाह।

कुपात्र—वि०—[सं०] (१) अयोग्य। (२) जो दान का अधिकारी न हो।

कुपार—संज्ञा पुं० [अकूपार] समुद्र।

कुपित—वि०—[सं०] (१) क्रोध में भरा हुआ । (२) अप्रसन्न ।

कुपीन—संज्ञा ० [सं० कौपीन] लँगोटी, कफनी, कच्छी। उ.—जीरन पट कुपीन तन धारि । चल्यौ सुरसरी, सीस उघारि—१-३४१।

कुपुटना—क्रि. स. [हिं. कपटना] काटकपट करना, छिपा कर निकाल लेना।

कुपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा पुत्र, कपूत।

कुपेंड़े—संज्ञा पुं. [सं. कु + पैंड़] बुरा मार्ग। उ.—छाँड़ि राजमारग यह लीला कैसे चलहिं कुपैंड़े—३०६६।

कुपैंड़ो—संज्ञा पुं. [सं कु+पैंड़] बुरा पथ या मार्ग। उ.—राजपंथ तैं टारि बतावत उज्ज्वल कुचल कुपैंड़ो —३३१३।

कुप्रबन्ध—संज्ञा. पुं. [सं. कु + प्रबंध] बुरा इंतजाम।

कुप्रयोग—संज्ञा पुं. [स. कु + प्रयोग] वस्तु, पद या अधिकार का अनुचित प्रयोग।

कुफुर, कुफ्र—संज्ञा पुं. [अ.] (१) इसलाम से भिन्न धर्म। (२) इसलाम धर्म के विरुद्ध बात।

कुबंड—संज्ञा पुं. [सं. कोदंड] धनुष।

वि. [सं. कु + बंठ = खंड] जिसके शरीर का कोई अंग खंडित हो।

कुब—संज्ञा पुं. [हिं. कूबड़] कूबड़।

कुबजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कुब्जा] कंस की एक दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी।

कुबड़ा—वि. [सं. कुब्ज] जिसकी पीठ झुक गयी हो।

वि.—झुका हुआ।

कुबड़ी—वि. स्त्री. [हिं. कुबढ़ा] (१) जिसकी पीठ झुक गयी हो। (२) सोटी छड़ी जिसका सर झुका हो।

कुबत—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + हिं. बात] (१) बुराई, निंदा। (२) बुरी चाल।

कुबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं कुबड़ा] (१) कंस की कुबड़ी दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी। (२) जिसकी पीठ झुकी हुई हो।

कुबलय—संज्ञा पुं. [सं. कुवलय] नीला कमल। उ.—कुवलयदल कुसमय सैय्या रचि पंथ निहारत तोर—६२६ सारा.।

कुबल्या—संज्ञा पुं. [सं. कुवलया] कुबलयापीड़ नामक कंस का हाथी जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

कुबाक—संज्ञा.पुं. [सं.कुवाक्य] (१) कड़ी या कठोर बात। (२) गाली।

कुबानि—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + हिं. बानि] बुरी आदत, कुटेव।

कुबानी—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+बानी (वाणिज्य)] बुरा व्यवसाय।

संज्ञा स्त्री. [सं. कु + वाणी] बुरी या अशुभ बात।

संज्ञा स्त्री. [सं. कु+हिं. आनि] बुरी आदत।

कुबिज—संज्ञा पुं. [सं. कुब्ज] पीठ का टेढ़ापन, कूबड़ । उ.—हरि करि कृपा करी पटरानी कुबिज मिटायौ डारि—२६४०।

कुबिजा—संज्ञा स्त्री. [सं. कुब्जा] कुब्जा नामक कंस की दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी।

कुबुद्धि—वि. [सं.] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो, दुर्बुद्धि, मूर्ख।

संज्ञा स्त्री. [सं. कु=बुरा] (१) मूर्खता। (२) बुरी सलाह, कुमन्त्रणा।

कुबुधि—वि. [सं. कुबुद्धि] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो, मूर्ख।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मूर्खता। उ.—तजो हरि-बिमुखन कौ संग। जिनकैं संग कुबुधि (कुमति) उप-जति है, परत भजन मैं भंग — १-३३। (२) बुरी सलाह, कुमन्त्रणा।

कुबेर—संज्ञा पुं. [सं. कुबेर] एक देवता।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुवेला, हिं.कुबेला] बुरा समय।

कुबेरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कुवेला, हिं. कुबेला] अनुपयुक्त समय, बुरा काल। उ.—आवहु कान्ह, साँझ की

बेरिया। गाइनि माँझ भए हौ ठाढ़े, कहति जननि यह बड़ी कुबेरिया—१०-२४६।

कुबेला—संज्ञा स्त्री. [सं. कुवेला] बुरा समय।

कुबोल—संज्ञा पुं० [सं.कु+हिं० बोल] बुरी या अशुभ बात।

कुबोलना—वि० पुं० [हिं० कु+बोलना] बुरी या अशुभ बात कहनेवाला।

कुबोलिनी, कुबोली—वि. स्त्री. [हिं. कुबोल] अप्रिय या कटु बात कहनेवाली।

कुब्ज—वि. [सं.] जिसकी पीठ टेढ़ी हो, कुबड़ा। उ.—स्वान कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्रवन-पुच्छ-विहीन। भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी आधीन—१-३२१।

कुब्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंस की एक कुबड़ी दासी जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी और प्रसिद्धि है कि जिसे उन्होंने अपना लिया था। (२) कैकेयी की मन्थरा नामक दासी जो कुबड़ी थी।

कुब्बा—संज्ञा पुं० [हिं० कुबड़ा] कूबड़, कोहान, डिल्ला।

कुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी की छाया। (२) काबुल नदी।

कुभाउ—संज्ञा पुं० [सं० कुभाव] बुरा या अनुचित विचार। उ०—यह सब कलिजुग कौ परभाउ। जो नृप कैं मन भयउ कुभाउ—१-२९०।

कुभाव—संज्ञा पुं. [सं. कु+भाव] बुरा, अनुचित या अशुभ विचार।

कुमंठी,कुमंडी—संज्ञा स्त्री [सं. कमठ=बाँस] पेड़ की पतली और लचीली टहनी।

कुमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० कु+मंत्र] बुरी सलाह. बुरी सलाह के अनुसार अनुचित कार्य। उ.—तैं कैकई कुमंत्र कियौ। अपने कर करि काल हँकारयौ, हठ-करि नृप-अपराध लियौ—९-४८।

कुमंत्रणा—संज्ञा. स्त्री. [सं०] बुरी सलाह।

कुमक—संज्ञा स्त्री. [तु.] (१) सहायता, मदद। (२) पक्षपात, तरफदारी।

कुमकुम-संज्ञा पुं० [सं० कुंकुम] (१) गुलाल। (२) केशर। उ.—(क) कुमकुम कौ लेप मेटि, काजर मुख लाऊँ—१-१६६। (ख) तहाँ स्याम घन रास उपायौ। कुमकुम जल सुख वृष्टि रमायौ (ग) उनै उनै घन बरसत चख उर सरिता सलिल भरी। कुम-कुम कज्जल कीच बहै जनु कुचयुग पारि परी—२८१४। (३) कुमकुमा।

कुमकुमा—संज्ञा पुं० [तु. कुमकुमा] (१) लाख के बने पोले गोले जो अबीर गुलाल भरकर एक दूसरे को होली के दिनों में मारते हैं। (२) काँच के बने छोटे-बड़े गोले।

संज्ञा पुं. [सं. कुंकुम] केशर। उ.—(क) मलयज पंक कुमकुमा मिलिकै जल जमुना इक रंग—१८६२। (ख) मृगमद मलय कपूर कुमकुमा सींचति आनि अली—२७३८।

कुमग—संज्ञा पुं. [सं. कुमार्ग] कुमार्ग, बुरा मार्ग। उ.—अदभुत राम नाम के अंक। अंधकार-अज्ञान हरन कौं रवि-ससि जुगल-प्रकास। बासर-निसि दोऊ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास—१-९०।

कुमत—संज्ञा स्त्री. [सं कुमति] (१) दुर्बुद्धि। उ.—बाजि मनोरथ, गर्ब मत्त गज, असत-कुमत रथ-सूत—१ १४१। (२) दुर्बुद्ध नायिका। उ.—मेरी कही न मानत राधै। ए अपनी मत समुझत नाहीं कुमत कहाँ पन नाधे—सा. ६५।

कुमति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुर्बुद्धि। (२) कुमंत्रणा। उ—मंत्री काम कुमति दीबे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी—१-१४४(३) पुरंजन नामक एक प्राचीन राजा की रानी का नाम। उ.—तन पुर, जीव पुरंजन राव। कुमति तासु रानी कौ नाँव—४-१२।

कुमया—संज्ञा स्त्री. [सं. कु+माया] निष्ठुरता, कठोरता, निर्दयता, अनुचित व्यवहार। उ.—यह कुमया जौ तब ही करते। तौ कत इन ये जिवत आजु लौं या गोकुल के लोग उबरते—२७३८।

कुमाच—संज्ञा पुं. [अ. कुमाश] (१) रेशमी वस्त्र। (२) कौंच नामक लता।

कुमार—संज्ञा पुं० [सं] (१) पाँच वर्ष की आयु का बालक। (२) पुत्र, बेटा। उ.—सब तज भजिए नंद-कुमार—१-६८। (३) किशोर, वह जो किशोरावस्था का हो। उ.—बालमीकि मुनि बसत निरंतर राम मंत्र उच्चार। ताकौ फल मोहिं आजु भयौ, मोहि दरसन दियौ कुमार। (४) वह मार (कामदेव)

जो शत्रु का सा कठोर व्यवहार करे। उ.—ब्रज में आजु एक कुमार। तपनरिपु चल तासु पति हित अंत हीन बिचार—सा. ३०।

वि०—जिसका विवाह न हुआ हो, कुआँरा।

कुमारग—संज्ञा पुं. [सं. कुमार्ग] बुरा या अनुचित मार्ग।

कुमारि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमारी] राजकुमारी। उ.—श्री रघुनाथ-रमनि, जग-जननी, जनक-नरेस कुमारी—६-६५।

कुमारिका—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमारी] बारह वर्ष तक की अवस्था की कन्या। उ.—रिषि कह्यौ ताहि, दान रति देहि। मैं बर देहुँ, तोहिं सौ लेहि। तू कुमारिका बहुरौ होइ। तोकौं नाम धरै नहिं कोइ—१-२२९।

कुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं.] (१) वह कन्या जिसकी अवस्था बारह वर्ष से अधिक न हो। (२) सीता जी का एक नाम। (३) पार्वती (४)। दुर्गा।

वि०—जिस कन्या का विवाह न हुआ हो।

कुमारी-पूजन—संज्ञा पुं० [सं.] वह देवी-पूजा जिसमें कुमारियों का पूजन किया जाता है।

कुमारिल—संज्ञा पुं. [सं.] प्रसिद्ध मीमांसक जो जाति के भट्ट थे।

कुमार्ग—संज्ञा पुं० [सं.] (१) बुरी राह। (२) पाप की रीति या चाल, अधर्म।

कुमार्गी—वि. [हिं. कुमार्ग] (१) बुरे मार्ग पर चलने वाला। (२) पापी, अधर्मी।

कुमीच—संज्ञा पुं० [सं. कु + मीच=मृत्यु] (१) कुत्सित मृत्यु पानेवाला व्यक्ति। (२) अधम मृत्यु। उ.—कहा जानै कैवाँ मुवौ, (रे) ऐसैं कुमति कुमीच। हरि सौं हेत बिसारि कै, (रे) सुख चाहत है नीच—१-३२५।

कुमुख—संज्ञा पुं० [सं.] (१) रावण पक्ष का एक वीर जिसका नाम दुर्मुख था। (२) सुअर।

वि.—(१) भद्दे मुँहवाला। (२) बुरे या अनुचित शब्द कहनेवाला।

कुमुद—संज्ञा पुं० [सं.] (१) कुईं, कोईं। (२) एक लाल कमल जो चंद्रमा को देखकर (या रात्रि में) खिलता है। उ.—आँगन खेलैं नंद के नंदा। जदुकुल-कुमुद-सुखद-चारु चंदा—१०-११७। (३) चाँदी। (४) राम-पक्ष के एक बन्दर का नाम। (५) कपूर। (६) विष्णु का एक दरबारी।

वि.—(१) कंजूस। (२) लोभी।

कुमुदकर—संज्ञा पुं० [सं.] चंद्रमा की किरण।

कुमुदकला—संज्ञा स्त्री० [सं.] चंद्रकला।

कुमुदकिरण—संज्ञा स्त्री० [सं.] चंद्र किरण।

कुमुदनी—संज्ञा स्त्री० [सं. कुमुदिनी] (१) कुँईं, कोईं। (२) वह स्त्री जो अनुचित बातों में आनन्द ले। उ.—कत मो सुमन सो लपटात।.......कुमुदनी संग जाहु करके केसरी कौ गात—सा.७१।

कुमुदबन—संज्ञा पुं० [सं. कुमुद + वन] बृंदावन के समीप एक गाँव। (क) उ.—आजु चरावन गाइ चलौ जू, कान्ह, कुमुदबन जैऐ। सीतल कुंज कदम की छहियाँ, छाक छहूँ रस खैहै—४४५। (ख) मधुबन और कुमुदवन सुंदर बहुलाबन अभिराम—१०८८ सारा.।

कुमुदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] राधा की एक सखी का नाम जो श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी। उ.—कहि राधा किन हार चोरायौ .....। रत्ना कुमुदा मोहा करुना ललना लोभा नूप। इतनिन में कहि कौने लीन्हौ ताको नाउ बताउ—१५८०। (ख) रहे हरि रैनि कुमुदा गेह—२१६०।

कुमुदिनि, कुमुदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं. कुमुदिनी] कुईं, कोईं जो रात में खिलती है और दिन में मुँद जाती है। उ.—कुमुदिनि सकुची बारिज फूले-१०-२३३।

कुमुदिनीनाथ—संज्ञा. पुं. [सं.] चंद्रमा।

कुमेरु—संज्ञा पुं. [सं.] दक्षिणी ध्रुव।

कुमैत—संज्ञा पुं. [तु० कुमेत] स्याही लिये लाल रंग का मजबूत और तेज घोड़ा। उ.—निकसे सबै कुँअर असवारी उच्चैःश्रवा के पोर। लीले सुरंग कुमैत स्याम तेहि पर दे सब मन रंग—१० उ०—६।

कुमोद—संज्ञा पुं० [सं. कुमुद] (१) कुईं। (२) लाल कमल।

कुमोदनी, कुमोदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमुदिनी] कुईं, कोईं, कुमुदिनी।

कुम्मैत, कुम्मैद—संज्ञा पुं. [तु० कुमेत] (१) **घोड़े का स्याही लिये लाल रंग। (२) वह घोड़ा जिसका रंग स्याही लिये लाल हो।**

वि.—**स्याही लिये लाल रंग का।**

कुम्हड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कूष्मांड, पा. कुम्हंड, प्रा. कुमंड] (१) **एक बेल जिसमें बड़े बड़े गोल फल लगते हैं। (२) कुम्हड़े का फल।**

कुम्हड़ौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुम्हड़ा + बरी] **पीठी में कुम्हड़े के टुकड़े मिला कर बनायी हुई बरी।**

कुम्हलाना—क्रि. अ. [सं. कु + म्लान] (१) **मुरझाना। (२) सूखने लगना। (३) कांति या शोभा फीकी पड़ना।**

कुम्हार—संज्ञा पुं. [सं. कुंभकार, प्रा. कुंभार] **मिट्टी के बरतन बनानेवाला।**

कुम्ही—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंभी] **पानी पर फैलने, फूलने और फलनेवाला एक पौधा।** उ.—लोचन सपने के भ्रम भूले।……। निदरे रहत मोहिं नहिं मानत कहत कौन हम तूले। मोते गये कुम्ही के जर ज्यौं ऐसे वे निरमूले। सूर स्याम जल रासि परे अब रूप-रंग अनुकूले।

कुम्हिलाइ, कुम्हिलाई—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] (१) **प्रफुल्लतारहित हुई, कांतिहीन हो गयी।** उ.—सुता लई उर लाइ, तनु निरखि पछिताइ, डरनि गइ कुम्हिलाइ, सूर बरनी—पृ०-६६८। (२) **मुरझाने लगी, सूख चली।** उ.—ससि उर चढ़त प्रेम पावक परि बंक कुसुम्भ रहे कुम्हिलाई—सा. उ. १६।

कुम्हलाए—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] **कुम्हला गये, कांति या शोभाहीन हो गये।** उ.—(क) काहैं आजु अबार लगायी कमल बदन कुम्हिलाए—५११। (ख) चारो ओर ब्यास खगपति के झुंड झुंड बहु आए। ते कुखेत बोलत सुनि सुनि के सकल अंग कुम्हिलाए—सा. १०२।

कुम्हिलात—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] **कांतिहीन होता है, प्रफुल्लतारहित हो जाता है।** उ.—सुंदर तन सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात—९-४३।

कुम्हिलाना—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] **मुरझाना, उदास होना।**

कुम्हिलानि—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] **मुरझा गये, सूखने लगे।** उ.—बाटिका बहु बिपिन जिनकै एक वै कुम्हिलानि—३३५५।

कुम्हिलानौ—क्रि. अ. [हिं. कुम्हिलाना] **कुम्हला गया, मलिन हुआ, प्रफुल्लतारहित हो गया।** उ.—(क) है निरदई, दया कछु नाहीं, लागि रही गृह काम। देखि छुधा तैं मुख कुम्हिलानौ, अति कोमल तन स्याम—३६१। (ख) देखियत कमल बदन कुम्हिलानौ, तू निरमोही बाम—३६७।

वि.—**कुम्हलाया हुआ, मलिन।** उ.—प्रातकाल तैं बाँधे मोहन, तरनि चढ्यौ मधि आनि। कुम्हिलानौ मुख चंद दिखावति, देखौ धौं नँदरानि—३६५।

कुम्हिलैहै—क्रि. अ. [हिं. कुम्हलाना] **कांतिहीन होगा, प्रफुल्लरहित हो जायगा।** उ.—(क) तजि वह जनक-राज-भोजन-सुख, कत तृन-तलप, बिपिन-फल खाहु। ग्रीषम कमल बदन कुम्हिलैहै, तजि सर निकट दूरि कित न्हाहु—९-३४। (ख) तुम्हरौ कमल-बदन कुम्हिलैहै, रेंगत घामहिं माँझ—४११।

कुयश—संज्ञा पुं. [सं. कु + यश] **बुराई, बदनामी।**

कुयोनि—संज्ञा स्त्री. [सं.] **नीच योनि।**

कुरंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मृग, हिरन।** (२) **बादामी रंग का हिरन।**

संज्ञा पुं. [सं. कु = बुरा + हिं. रंग] (१) **बुरा रंग-ढङ्ग।** (२) **स्याही लिये लाल रंग।** (३) **स्याही लिये लाल रंग का घोड़ा।**

वि.—**बुरे रँग का।**

कुरंगक—संज्ञा पुं. [सं. कुरंग] **हिरन, मृग।**

कुरंगलांछन—संज्ञा पुं. [सं.] **चंद्रमा।**

कुरंगसार—संज्ञा पुं. [सं.] **कस्तूरी जो हिरन (कुरंग) की नाभि से निकलती है, मुश्क।**

कुरंगिना—संज्ञा स्त्री. [सं. कुरंग] **हिरनी।**

कुरंड—संज्ञा पुं. [सं. कुरुविंद = माणिक] **एक खनिज पदार्थ।**

संज्ञा पुं. [सं.] **एक पौधा जिसके फूल सफेद होते हैं।**

कुरकुट—संज्ञा पुं. [हिं. कुक्कुट] **मुर्गा।**

कुरकुटा—संज्ञा पुं. [सं कुट = कूटन] (१) **किसी चीज का छोटा टुकड़ा। (२) रोटी का टुकड़ा।**

कुरकुर—संज्ञा पुं. [अनु.] खरी चीजों के टूटने का शब्द।

कुरकुरा—वि. पुं. [हिं. कुरकुर] जिसे तोड़ने पर कुरकुर शब्द हो।

कुरकुरी—संज्ञा स्त्री. [अनु.] पतली मुलायम हड्डी।
वि. स्त्री. [हिं. कुरकुरा] जिसे तोड़ने में कुरकुर शब्द हो।

कुरच—संज्ञा पुं. [सं. क्रौंच] पानी के पास रहनेवाला करॉंकुल नामक जल-पक्षी।

कुरता—संज्ञा पुं. [तु.] एक पहनावा।

कुरना—क्रि. अ. [हिं. कूरा = ढेर] (१) ढेर लगाना। (२) पक्षियों का कलरव करना।

कुरबान—वि. [अ.] निछावर।

कुरबानी—संज्ञा स्त्री. [अ.] बलिदान।

कुरमा—संज्ञा पुं. [हिं. कुनबा] परिवार।

कुररा—संज्ञा पुं [सं. कुरर] (१) करॉंकुल नामक जल पक्षी। (२) टिटिहर।

कुरल—संज्ञा पुं. [सं.] कुंडली।

कुरलना—क्रि. अ. [सं. कलरव या कुरव] पक्षियों का कलरव करना।

कुरला—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लाल फूलवाला एक वृक्ष। (२) सफेद मदार का वृक्ष।
वि. [सं. कुरव] जिसका स्वर कटु या कठोर हो।

कुरव—संज्ञा पुं. [सं. कु + हिं. रव] बुरा या अशुभ स्वर।
वि.— बुरी बोली बोलनेवाला।

कुरवना—क्रि. स. [हिं. कुराना] एक जगह बहुत सा ढेर लगा देना।

कुरवाना—क्रि. स. [सं. कर्तन] (१) खोदना, खरोचना। (२) नोचना।

कुरवारति—क्रि. स. [हिं. कुरवारना] खोदती है, खरोचती है। उ.—राधा हरि की गरब गहीली।......। धरनी नख चरनन कुरवारति सौतिन भाग सुहाग डहीली —१३०६।

कुरवारही—क्रि. स. [हिं. कुरवारना] खोलती है, करोदती है। उ.—अपने कर नखनि अलक कुरवारही कबहुँ बाँधे अतिहिं लगत लोभा—१५६३।

कुरविंद—संज्ञा पुं. [सं. कुरुविंद] दर्पण, शीशा।

कुरा—संज्ञा पुं० [सं. कुरव] कटसरैया का पौधा।

कुराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुराह] ऊँचा-नीचा गड्ढा और तंग रास्ता।

कुरान—संज्ञा पुं. [अ.] इस्लामी धर्मग्रंथ।

कुराय—संज्ञा स्त्री. [हिं. + कुराह] (१) ऊँचा नीचा और तंग रास्ता। (२) गड्ढा।

कुराह—संज्ञा स्त्री. [सं. कु + फ़ा. राह] (१) ऊँचा-नीचा रास्ता। (२) बुरी रीति नीति या चाल।

कुराहर—संज्ञा पुं. [सं. कोलाहल] शोर-गुल।

कुराही—वि. [हिं. कुराह + ई (प्रत्य.)] कुमार्ग पर चलनेवाला।

कुरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटिया] (१) झोपड़ी। (२) महल।

कुरियार, कुरियाल—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्लोल] चिड़ियों का पंख खुजलाकर सुखी होना।

कुरिहार—संज्ञा पुं. [हिं. कोलाहल] शोरगुल।

कुरी—संज्ञा पुं. [सं.] अरहर की फलियाँ।
संज्ञा स्त्री. [सं. कुल] वंश, खानदान।
संज्ञा स्त्री. [हिं. कूरा = ढेर] भाग, टुकड़ा।

कुरीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] बुरी रीति, अनीति, कुचाल। उ.—अब राधे नाहिंन व्रजनीति। नृप भयौ कान्ह काम अधिकारी उपजी है ज्यौं कठिन कुरीति—२२२३।

कुरु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक चंद्रवंशी राजा जिनके वंश में पांडु और धृतराष्ट्र हुए थे। (२) कुरु के वंश में जन्मा व्यक्ति।

कुरुई—संज्ञा स्त्री. [सं. कुडव] बाँस या मूँज की छोटी डलिया।

कुरुक्षेत्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन तीर्थ जो सरस्वती नदी के किनारे था। यह अंबाले और दिल्ली के बीच में स्थित है। महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध के अतिरिक्त कई बड़े युद्ध यहाँ हुए थे। ग्रहण और कुम्भ के अवसर पर यहाँ बड़ा मेला लगता है।

कुरुख—वि. [सं. कु + फ़ा. रुख] जो मुँह बनाये हो, कुपित, क्रुद्ध। उ.—थकित सुमन दृग अरुन उनींदे कुरुख कटाक्ष, करत मुख थोरी। खंजन मृग अकुलात घात उर स्याम ब्याध बाँधे रति डोरी।

कुरुखि—संज्ञा पुं. [हिं. कुरुख] कटाक्ष, तिरछी चितवन।

कुरुखेत—संज्ञा पुं. [सं. कुरुक्षेत्र] कुरुक्षेत्र। उ.—या रथ बैठि बंधु की गर्जहिं पुरवै को कुरुखेत—१-२६।

कुरुच्छेत्र—संज्ञा पुं. [सं. कुरुक्षेत्र] अम्बाले और दिल्ली के बीच में स्थित एक प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ जहाँ महाभारत का युद्ध हुआ था।

कुरुपति—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्योधन।

कुरुम—संज्ञा पुं. [सं. कूर्म्म] कछुआ।

कुरुरना—क्रि. अ. [हिं. कलरवना] बोलना, कलरव करना।

कुरुराज—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्योधन।

कुरुविंद—संज्ञा पुं. [सं.] दर्पण, शीशा।

कुरूप—वि. [सं.] असुंदर, बेडौल, बेढंगा, बदसूरत।

कुरूपता—संज्ञा स्त्री. [सं.] असुंदरता, बदसूरती।

कुरेदना—क्रि. स. [सं. कर्तन] खुरचना, खरोचना।

कुरेर—संज्ञा पुं. [सं० कल्लोल] आमोद-प्रमोद, मन-बहलाव।

कुरेलना—क्रि. स. [हिं. कुरेदना] खुरचना या खोदना।

कुरैया—संज्ञा स्त्री. [सं. कुठज] एक पेड़ जिसके फूल सुंदर होते हैं।

कुरौना—क्रि. स० [हिं० कुराना] ढेर लगाना।

कुलङ्ग—संज्ञा पुं० [फा.] पानी के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसका सिर लाल होता है और शरीर मटमैला।

कुलंग, कुलंजन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा।

कुल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंश। उ.—(क) राम भक्त बत्सल निज बानौं। जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहिं, रंक होइ कै रानौं—१-११। (ख) भुव पर नहिं राखौ उनकौ कुल—१०४३। (२) जाति। (३) समूह। उ.—जरासंध बन्दी करैं नृप-कुल जस गावै—१-४।

वि. [अ.] समस्त, सब।

कुलकंटक—संज्ञा पुं० [सं०] परिवारियों को कष्ट देने वाला।

कुलकना—क्रि. अ. [हिं० किलकना] हर्ष से उछलने लगना।

कुलकलंक—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो अपने कुल में दाग लगाये।

कुल-कानि—संज्ञा स्त्री. [सं० कुल + हि० कानि = मर्यादा] वंश की मर्यादा, कुल की लज्जा। उ०—जन की और कौन पति राखै। जाति-पाँति कुल-कानि न मानत, बेद पुराननि साखै—१-१५।

कुलकुल—संज्ञा पुं० [अनु०] पानी बहने का शब्द।

कुलकुलाना—क्रि० अ० [अनु०] कुलकुल शब्द करना।

मु०—आँतें कुलकुलाना—भूख लगना।

कुलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा चिन्ह या लक्षण। (२) बुरा आचरण या व्यवहार।

कुलक्षणी—वि० [सं०] बुरे चिन्हवाली। (२) बुरे आचरणवाली।

कुलचन्द—संज्ञा पुं० [सं०] वंश को चन्द्रमा के समान स्वकीर्ति से प्रकाशित करनेवाले। उ.—सोई दसरथ-कुलचन्द अमित बल, आए सारँगपानी—९-११५।

कुलच्छन—संज्ञा पुं० [सं० कुलक्षण] (१) बुरा चिन्ह। (२) बुरा आचरण।

कुलच्छनि, कुलच्छनी—संज्ञा स्त्री. [सं० कुलक्षणी] (१) बुरे लक्षणवाली। उ०—कै हौं कुटिल, कुचील, कुलच्छनि, तजी कंत तबहीं—९-६१। (२) बुरे आचरणवाली।

कुलज—वि० [सं० कुल + ज = उत्पन्न] (१) कुल में उत्पन्न, वंश का। (२) अच्छे कुल में उत्पन्न।

वि०—[सं. कुल + हि० लाज = लजानेवाला] कुल को लजानेवाला।

वि०—[सं० कु + लज्जा] निर्लज्ज। उ०—निर्घिन, नीच, कुलज, दुर्बुद्धी भोंदू, नित कौ रोऊ। तृष्ना हाथ पसारे निसि दिन, पेट भरे पर सोऊ—१-१८६।

कुलजा, कुलजात—वि० [सं०] (१) कुल या वंश में उत्पन्न। (२) अच्छे कुल में जन्मा।

कुलटा—वि० पुं० [सं०] अनेक स्त्रियों से गुप्त प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करनेवाला, व्यभिचारी। उ०—तब चित चोर भोर व्रजबासिनि प्रेम नेक व्रत टारे। लै सरबस नहिं मिले सूर-प्रभु कहिये कुलट बिचारे।

कुलटा—वि० स्त्री० [सं०] अनेक पुरुषों से गुप्त प्रेम-सम्बन्ध रखनेवाली, व्यभिचारिणी।

कुलटी—वि० स्त्री० [सं० कुलटा] अनेक पुरुषों से गुप्त प्रेम करनेवाली। उ०—(क) अहो सखी तुम ऐसी

हो। अब लौं कुलटी करि जानति मोकौं री सब तैसी हो —१५३६। (ख) उत हेरी पढ़त ग्वार इत गारी गावति ए नंद नाहिं जाये तुम महरि गुनन भारी। कुलटी उनतै को है नंदादिक मन मोहै बाबा बृषभानु की वै सूर सुनहु प्यारी —२४२६।

कुलतारक, कुलतारन—वि० [सं० कुल + हिं० तारक या तारन] वंश को अपने आचरण से पवित्र करने या तारनेवाला।

कुलदेव—संज्ञा पुं० [सं०] परंपरा से जिस देवता की पूजा कुल में सभी शुभ अवसरों पर की जाती हो, कुलदेवता। विश्वास है कि सभी संकटों से कुल-परिवार की ये रक्षा करते हैं। उ०—साँझहिं तैं अतिहीं बिरुझानौ, चंदहिं देखि करी अति आरति। बार-बार कुलदेव मनावति, दोउ कर जोरि सिरहिं लै धारति—१०-२००।

कुलदेवता—संज्ञा० पुं० [सं०] कुल का इष्टदेव, कुलदेव।

कुलदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह देवी जिसकी पूजा कुल में बहुत समय से होती आयी हो।

कुलधर, कुलधारक—संज्ञा पुं० [सं०] बेटा, पुत्र।

कुलधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] परिवार की रीति या परंपरा।

कुलपति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर का बड़ा। (२) अध्यापक जो शिक्षा देने के साथ साथ विद्यार्थियों का भरण-पोषण भी करे। (३) महंत। (४) विश्वविद्यालय का प्रधान।

कुलपूज्य—वि० [सं०] जिस (व्यक्ति) का मान कुल के स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, सभी करते हों।

कुलफ—संज्ञा पुं० [अ० कुलुफ] ताला। उ०—लोचन लालची भये री। सारँगरिपु के हरत न रोके हरि सरूप गिधए री। काजर कुलुफ मेलि में राखे पलक कपाट दये री—पृ० ३३५ और सा० उ० ७।

कुलफा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खुर्फः] (१) एक साग। (२) जमी हुई बड़ी कुलफी।

कुलफी—संज्ञा स्त्री० [हिं० कुलुफ] (१) पेंच। (२) टीन का पात्र जिसमें दूध की बरफ जमाते हैं। (३) जमी हुई दूध की बरफ।

कुलवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० कुलवधू] (१) कुलीन वंश की वधू। (२) मान-मर्यादा से रहनेवाली स्त्री।

कुलबुलाना—क्रि० अ० [अनु० कुलबुल] (१) धीरे-धीरे हिलना-डुलना। (२) चंचल होना।

कुलबोरन—वि० [हिं० कुल + बोरन = डुबाना] (१) अपने आचरण से वंश की मान-मर्यादा मिटाने वाला। (२) अयोग्य।

कुललज्या—संज्ञा स्त्री० [सं० कुल+लज्जा] वंश की मान-मर्यादा, कुल की लाज। उ०—लोचन लालची भये री।…… । ह्वै आधीन पंच तै न्यारे कुललज्या न नये री—पृ० ३३५ और सा० उ० ७।

कुलवंत—वि० [सं०] अच्छे वंश का, कुलीन।

कुलवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अच्छे कुल की वधू। (२) मान-मर्यादा से रहनेवाली वधू।

कुलवान्—वि० [सं० कुल + हिं० वान्] अच्छे कुल का।

कुलसै—संज्ञा पुं० सवि० [सं० कुलिश] वज्र को भी। उ०—हमारे हिरदै कुलसै (कुलिसै) जीत्यौ—२८८४।

कुलह, कुलहा—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कुलाह] (१) टोपी। (२) शिकारी चिड़ियों की आँख पर पहनाया जाने वाला टोपी की तरह का ढक्कन।

कुलहि, कुलहिया, कुलही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा. कुलाह, हिं० कुलही] बच्चों की टोपी, कनटोप। उ०—(क) स्याम बरन पर पीत झगुलिया, सीस कुलहिया चौतनियाँ—१०-१३२। (ख) कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहु बिधि सुरंग बनाई—१०-१४८।

कुलांगार—वि० [सं०] वंश का नाश करनेवाला।

कुलाँच, कुलाँट—संज्ञा स्त्री. [तु. कुलाच] चौकड़ी, छलाँग।

कुलाँचना—क्रि० अ० [तु. कुलाच] चौकड़ी भरना, छलाँग मारना।

कुलाचार—संज्ञा पुं. [सं० कुल+आचार] वह रीति-नीति जो किसी वंश में प्रचलित रही हो।

कुलाधि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुल = समूह + आधि = रोग, दोष] पाप।

कुलाबा—संज्ञा पुं. [अ.] लोहे का छल्ला जो दरवाजे को चौखटों से जकड़े रहता है।

कुलाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगली मुर्गा। उ.—जैसैं स्वान कुलाल के पाछैं लगि धावै—२-६। (२) कुम्हार। उ.—ऊधो भली भई अब आये। विधि कुलाल कीन्हें काचे घट ते तुम आनि पकाये—१९६१।

कुलाह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा॰] ऊँची टोपी।

कुलाहर, कुलाहल—संज्ञा पुं. [सं. कोलाहल] चिल्लाहट, शोर, हल्ला। उ.—अस्व देखि कह्यौ, धावहु-धावहु। भागि जाहि मति, बिलँब न लावहु। कपिल कुलाहल सुनि अकुलायौ। कोपि-दृष्टि करि तिन्हैं जरायौ—६-६। (ख) जा जल सुद्ध निरखि सन्मुख ह्वै, सुन्दरि सरसिज-नैनी। सूर परस्पर करत कुलाहल, गर सृग पहिरावैनी—६-११। (ग) आपुस में रुच करत कुलाहर धौरी धूमरि धेनु बुलाये—४६७। (घ) हलधर संग छाक भरि काँवर करत कुलाहल सोर—४७१, सारा.।

कुलिंग—संज्ञा पुं. [सं.] चिड़िया।

कुलिक—संज्ञा पुं॰ [सं.] (१) कारीगर, शिल्पकार। (२) कुलीन वंश में उत्पन्न व्यक्ति।

कुलिश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हीरा। (२) वज्र। (३) ईश्वरावतारों (राम, कृष्ण आदि) के चरणों का वज्र-आकार का एक चिन्ह। (४) कुठार।

कुलिस—संज्ञा पुं. [सं. कुलिश] वज्र। उ.—हृदय कठोर कुलिस तैं मेरौ—७४।

कुलीन—वि. [सं.] (१) उत्तम कुल में उत्पन्न, अच्छे वंश का। (२) पवित्र, शुद्ध, निर्मल।

कुलुफ—संज्ञा पुं. [अ. कुफ़ल] ताला। उ.—नैना न रहैं री मेरे हटकै। कछु पढ़ि दिये सखी यहि ढोटा घूँघर वारे लटकै। कज्जल कुलुफ मेलि मंदिर में पलक सँदूक पट अटकै।

कुलेल—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्लोल] खेल, क्रीड़ा, आनंद।

कुलेलना—क्रि. अ. [हिं. कुलेल] खेलना, आनन्द मनाना।

कुल्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नहर। (२) छोटी नदी। (३) कुलीन स्त्री।

कुल्ल—वि. [अ. कुल] सब, समस्त, पूरा, तमाम। उ.—मुलजिम जोरे ध्यान कुल्ल कौ, हरिसौं तहँ लै राखै। निर्भय रूपै लोभ छाँड़िकै, सोई बारिज राखै—१-१४।

कुल्ला—संज्ञा पुं. [फ़ा. काकुल। सं. कुंतल] बाल, पट्टा।

कुल्ली—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. काकुल। (सं. कुंतल)] बाल, पट्टा, जुल्फ।

कुल्हड़—संज्ञा पुं. [सं. कुल्हर] मिट्टी का पुरवा, चुक्कड़।

कुल्हरा, कुल्हाड़ा—संज्ञा पुं॰ [सं. कुठार] लकड़ी काटने या चीरने का एक औजार।

कुल्हरी, कुल्हाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुल्हड़] छोटा कुल्हाड़ा।

कुल्हारा, कुल्हारौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुल्हाड़ा] पेड़ काटने या लकड़ी चीरने का एक औजार, कुल्हाड़ा।

मुहा.—पाउँ कुल्हारौ मारौ—अपने आप अपनी हानि करना। उ.—इद्री स्वाद-बिबस निसि बासर, आपु अपुनपौ हारौ। जल औंड़े मैं चहुँ दिसि पैर्‌यौ, पाउँ कुल्हारौ मारौ—१-१५२।

कुव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कमल। (२) फूल।

कुवज—संज्ञा पुं. [सं. कुव+ज] कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।

कुवलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नीली कोईं। (२) नील कमल।

कुवलयापीड़, कुवलिया—संज्ञा पुं. [सं॰] कंस का एक हाथी जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ.—कुवलिया मल्ल मुष्टिक चानूर से कियौ मैं कर्म यह अति उदास—२५५१।

कुवाँ—संज्ञा पुं. [सं॰ कूप, हिं. कुआँ] कुआँ।

कुवाँर—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ कुवार] आश्विन मास।

कुवाच्य—वि॰ [सं॰] जो बात कहने योग्य न हो, गंदी।

संज्ञा पुं॰—गाली, दुर्बचन।

कुवाट—संज्ञा पुं. [सं. कपाट] किवाड़, दरवाजा।

कुवाण—संज्ञा पुं॰ [सं॰ कृपाण] धनुष।

कुवार—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अश्विनी=कुमार] आश्विन का महीना।

कुविचार—संज्ञा पुं. [सं.] बुरा विचार।

कुवेर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक देवता जो विश्रवस् ऋषि के पुत्र और रावण के सौतेले भाई थे। इलविला इनकी माता थी। विश्वकर्मा से कहकर सोने की लंका इन्होंने ही बनवायी थी। जब शिव के वर से

शक्तिशाली होकर रावण ने इनसे लंका छीन ली तो इन्होंने तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा जी ने इन्हें इंद्र का भंडारी और समस्त संसार के धन का स्वामी बना दिया। इनके एक आँख, तीन पैर और आठ दाँत हैं। इनका पूजन नहीं होता।

कुबेराचल—संज्ञा पुं. [सं.कुबेर+अचल] कैलास पर्वत।

कुवेष—संज्ञा पुं० [सं० कु+वेश] (१) बुरी वेश-भूषा, मैले-कुचैले वस्त्र। (२) असगुन। उ०—बातैं बूझति यौं बहरावति। सुनहु स्याम वै सखी सयानी पावस रितु राधहिं न सुनावति।...। कबहुँक प्रगट पपीहा बोलत कहि कुवेष करतारि बजावत—३४८५।

कुव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा या अनुचित व्यवहार।

कुश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक घास जो पवित्र मानी जाती है और जिसका प्रयोग प्रायः कर्मकांड तथा तर्पण में होता है, दाभ, डाभ। (२) जल। (३) रामचन्द्र का एक पुत्र। (४) सात द्वीपों में से एक जो चारो ओर घृत-समुद्र से घिरा है। उ.—सातौं द्वीप कहे सुक मुनि ने सोइ कहत अब सूर। जंबु, प्लक्ष, कौंच, शाक, शाल्मलि, कुश, पुष्कर भरपूर—३४ सारा०।

कुशध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] जनक के छोटे भाई का नाम।

कुशमुद्रिका—संज्ञा स्त्री. [सं०] कुश का बना हुआ छल्ला जो कर्मकांड आदि के अवसर पर पहना जाता है।

कुशल—वि. [सं.] (१) चतुर, प्रवीण। (२) भला, अच्छा, श्रेष्ठ। (३) पुण्यात्मा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजी-खुशी, क्षेम, मंगल। उ०—न्हात बार न खसै इनको कुशल पहुँचैं धाम—२५६५। (२) वह जिसके हाथ में कुश हो। (३) शिव का एक नाम।

कुशलक्षेम—संज्ञा पुं. [सं०] राजी खुशी।

कुशलता—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) चतुराई। (२) योग्यता।

संज्ञा स्त्री. [हिं० कुशल] कल्याण, क्षेम।

कुशलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं० कुशल] कल्याण, कुशल, क्षेम। उ.—मेरौ कह्यौ सत्य कै जानौ। जौ चाहौ व्रज की कुशलाई तौ गोबर्धन मानौ—६१५।

कुशलात, कुशलाता—संज्ञा स्त्री. [सं० कुशलता] कुशल-क्षेम-समाचार, मंगल-सूचना। उ.—(क) मधुकर ल्याये जोग सँदेसो। भली स्याम कुशलात (कुसलात) सुनाई सुनतहिं भयो अँदेसो—३२६३। (ख) दुहूँ की कुशलात कहियो तुमहिं भूलत नाहिं—२६१८। (ग) ऊधो जननी मेरी को मिलिहौ अरु कुशलात कहोगे—२६३२।

कुशलातैं—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं० कुशलता] क्षेम या कुशल सूचक समाचार। उ.—कहि कहि उधौ हरि कुशलातैं।...। कहि कुशलातैं साँची बातैं आवन कह्यौ हरि नाथै—३४४१।

कुशली—वि० [सं. कुशलिन्] (१) सकुशल (२) स्वस्थ।

कुशवन—संज्ञा पुं० [सं.] एक वन जो गोकुल के पास है।

कुशा—संज्ञा स्त्री. [सं.] कुश।

कुशाग्र—वि० [सं.] कुश की नोक-सा तेज, तीव्र।

कुशासन—संज्ञा पुं. [सं. कुश+आसन] कुश का बना आसन या चटाई।

कुशिक—संज्ञा पुं०. [सं.] एक राजा जिनके पुत्र गाधि थे और पौत्र विश्वामित्र।

कुशीलव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कवि। (२) नट।

कुशेश, कुशेशय—संज्ञा पुं. [सं०] कमल।

कुश्ता—संज्ञा पुं. [फ़ा० कुश्तः] धातुओं को फूँककर बनाया हुआ चूर्ण।

कुश्ती—संज्ञा स्त्री० [फ़ा.] लड़ाई, मल्लयुद्ध।

कुष्ट, कुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं.] कोढ़ नाम का रोग।

कुष्मांड—संज्ञा पुं [सं.] कुम्हड़ा।

कुसंग—संज्ञा पुं. [सं. कु+संग] बुरे लोगों का साथ।

कुसंगति—संज्ञा स्त्री. [सं० कु=संगति] बुरे लोगों का साथ।

कुसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी वासना, वातावरण का बुरा प्रभाव।

कुस—संज्ञा पुं०[सं० कुश] एक प्रकार की घास जिसका प्रयोग यज्ञों में होता था और जो अब भी पवित्र समझी जाती है। उ०—दुरवासा दुरजोधन पठयौ पांडव अहित बिचारी। साक पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी १-१२२।

कुसआसन—संज्ञा पुं. [सं. कुश=आसन=कुशासन] कुश की बनी चटाई।

कुसगुन—संज्ञा पुं. [सं. कु=बुरा (उप.)=हिं. सगुन] असगुन, कुलक्षण, बुरा सगुन। उ०—फटकत स्रवन

स्थान द्वारे पर, गररी करत लराई। माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाई—५४१।

कुसमय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) **बुरा या अनुपयुक्त समय।** (२) **बुरे या दुख के दिन।**

कुसमित—वि० [सं. कुसुमित] **फूलों से युक्त।** उ.—मधुर मल्लिका कुसमित कुंजन दंपति लगत सोहाये—१००३ सारा.।

कुसरात—संज्ञा पुं० [हिं० कुशलात] **कुशलता।**

कुसल—संज्ञा पुं० [सं० कुशल] (१) **क्षेम, मंगल, राजी-खुशी।** उ०—(क) सुनि राजा दुर्जोधना, हम तुम पैं आए। पांडव-सुत जीवत मिले, दै कुसल पठाए। छेम-कुसल अरु दीनता दंडवत सुनाई—१-२३८। (ख) प्रभु जागे, अर्जुन-तन चितयौ, कब आए तुम, कुसल खरी—१-२६८। (२) **चतुर।** उ०—परम कुसल कोबिद लीला नट मुसुकनि मन हरि लेत—१०-१५४।

कुसलई—संज्ञा स्त्री० [सं० कुशल + हिं. ई (प्रत्य.)] **चतुरता।**

कुसलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कुशल+हिं. आई (प्रत्य.)] (१) **चतुरता, कुशलता।** (२) **कुशल-क्षेम, खैरियत।**

कुसलात—संज्ञा स्त्री. [सं. कुशल, हिं. कुशलता] **कुशल, क्षेम, आनन्द-मंगल।** उ.—(क) स्वै दिन एकै से नहिं जात। सुमिरन-भजन कियौ करि हरि कौ, जब लौं तन कुसलात—२-२२। (ख) कहौ कपि, जनक-सुता-कुसलात—६-१०४। (ग) सूर सुनत सुग्रीव चले उठि, चरन गहे, पूछी कुसलात—६-६६। (घ) सूरज आजस जथासंख कर बूझी सखी कुसलात—सा.५२।

कुसली—संज्ञा पुं. [हिं. कवैली] (१) **गोझा या पिराक नामक पकवान।** (२) **आम की गुठली।**।

कुसाइत—संज्ञा स्त्री० [सं. कु. + अ. साअत] (१) **बुरा समय।** (२) **बुरा मुहूर्त्त।**

कुसाखी—संज्ञा पुं. [सं० कु + साखिन=वृक्ष] **बुरा पेड़।**

कुसासन—संज्ञा पुं० [सं० कुशासन=कुश+आसन। **कुश की बनी चटाई।**

संज्ञा पुं. [सं. कु + शासन] **बुरा राजप्रबन्ध।**

कुसी—संज्ञा पुं० [सं. कुशी] **हल की फाल।**

कुसुंब—संज्ञा पुं० [सं. कुसुंभ या कुसुंबक] **एक वृक्ष।**

कुसुंभ—संज्ञा पुं० [सं.] (१) **कुसुम।** (२) **केसर, कुमकुम।** (३) **लाल रंग।** उ.—ऐसो माई एक कोद को हेतु। जैसे बसन कुसुम रँग मिलिकै नेक चटक पुनि स्वेत—३३०६।

कुसुंभा—संज्ञा पुं. [सं. कुसुंभ] **कुसुंभ का लाल रंग।**

कुसुंभी—वि. [सं. कुसुंभ] **कुसुंभ के रंग का, लाल।** उ.—(क) दीजै कान्ह काँधे हूँ को अंमर। नान्ही नान्ही बूँदन बरषन लागौ भीजत कुसुंभी अंबर—१५६६। (ख) स्याम अङ्ग कुसुंभी सारी फल गुंजा का भाँति। इत नागरी नीलांबर पहिरे जनु दामिनि घन काँति—पृ० ३१३।

कुसुंम—संज्ञा पुं. [सं. कुसुम्भ, कुसुंबक] **कुमकुम, केसर, चंपक।** उ.—ससि उर चढ़त प्रेम पावक परि बंक कुसुंम रहे कुम्हिलाई—सा. उ. १६।

कुसुम—संज्ञा पु. [सं.] **फूल, पुष्प, सुमन**। उ.—सुनि सीता सपने की बात।··· कुसुम बिमान बैठी बैदेही देखी राघव-पास—६-८३।

संज्ञा पुं. [सं. कुसुंभ, कुसुंबक] (१) **एक वृक्ष।** (२) **लाल रंग।** (३) **एक राग।**

कुसुमनि—संज्ञा पुं. बहु. सवि. [सं. कुसुम+हिं० नि (प्रत्य.)] **फूलों से।** उ.—सब कुसुमनि मिलि रस करै, (पै) कमल बँधावै आप। सुनि परिमिति पिय प्रेम की, (रे) चातक चितवन पारि—१-३२५।

कुसुमपुर—संज्ञा पुं. [सं.] **पटना का पुराना नाम।**

कुसुमरेणु—संज्ञा पुं. [सं.] **पराग।**

कुसुमबाण—संज्ञा पुं. [सं.] **कामदेव।**

कुसुमशर, कुसुमसर—संज्ञा पुं. [सं.] **कामदेव।** उ.—कुसुमसर रिपुनन्द बाहन हरषि हरषित गाउ—२७१५।

कुसुमांजलि, कुसुमांजली—संज्ञा स्त्री. [सं. कुसुम + अंजलि] **फूलों से भरी हुई अंजली।** उ.—कुसुमांजलि बरषत सुर ऊपर, सूरदास बलि जाई—६२६।

कुसुमाकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **बसंत।** उ.—ठौर ठौर झिल्ली ध्वनि सुनियत मधुर मेघ गुंजार। मानो मन्मथ मिलि कुसुमाकर फूले करत बिहार—१०४१ सारा.। (२) **वाटिका।**

कुसुमागम—संज्ञा पुं. [कुसुम + आगम] **बसंत।**

कुसुमायुध—संज्ञा पुं. [सं. कुसुम + आयुध] कामदेव ।

कुसुमावलि, कुसुमावली—संज्ञा स्त्री. [सं. कुसुम + अवलि] फूलों का गुच्छा ।

कुसुमासव—संज्ञा पुं० [सं. कुसुम + आसव = मदिरा] पुष्परस, पुष्पमधु ।

कुसुमित—वि. [सं.] (१) फूलों से युक्त, पुष्पित । उ.—मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजन दंपति लसत सोहाये —१००३ सारा. । (२) फूलों की कोमलता से युक्त, फूलों के समान सुखदायी सरल और सीधा-सादा । उ.—कुसुमित धर्म कर्म कौ मारग जउ कोउ करत बनाई । तदपि बिमुख पाँनी सो गनियत, भक्ति हृदय नहिं आई—१-६३ ।

कुसूत—संज्ञा पुं. [सं. कु + सूत्र, प्रा. सुत्त] (१) बुरा सूत । (२) बुरा प्रबन्ध ।

कुसेस, कुसेसय, कुसेसै—संज्ञा पुं. [सं. कुशेशय] कमल । उ.—राजिव दल इंदीवर सतदल कमल कुसेसय (कुसेसै) जाति । निसि मुदित प्रातहिं ए बिगसत ए बिगसत दिन राति—१३४६ ।

कुस्टी—संज्ञा पुं. [सं. कुष्ट] कोढ़ी ।

कुस्तुभ—संज्ञा पुं. [सं०] विष्णु ।

कुहँकुहँ—संज्ञा पुं. [हिं. कुहकुह] कुमकुम, केसर ।

कुहक—संज्ञा पुं. [सं.] धोखा, माया ।

वि.—(१) धूर्त, ठग । (२) जादू जाननेवाला ।

कुहकना—क्रि. अ. [सं. कुहुक या कुहू] पक्षियों का मीठे स्वर में बोलना, पीकना, कलरव करना ।

कुहकिनि, कुहकिनी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुहुक या कुहू] (१) कोयल । (२) जादूगरनी ।

कहकुह—संज्ञा पुं. [सं. कुमकुम] केसर, जाफरान ।

कुहकुहाना—क्रि. अ. [हिं. कुहकुह] कोयल का कूकना ।

कुहन, कुहना—क्रि. स. [सं. कु + हनन = मारना] बहुत मारना-पीटना ।

संज्ञा पुं० [अनु. कुहू=कोयल की बोली] गाना ।

कुहप—संज्ञा पुं. [सं. कुहू=अमावस्या + प] रजनीचर, राक्षस ।

कुहबर—संज्ञा पुं. [हिं. कोहबर] वह स्थान जहाँ विवाह के अवसर पर कुलदेवता स्थापित किये जाते हैं ।

कुहर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छेद, सूराख । (२) गले का छेद । (३) खाली या शेष भाग । उ.—कहा कहौं छबि आज की मुख-मंडित खुर-धूरि । मानौ पूरन चंद्रमा कुहर रह्यौ आपूरि—४३७ ।

संज्ञा पुं. [हिं. कुहरा, कोहरा] जमी हुई भाप के कण जो वायु में मिले रहते हैं, कोहरा । उ.—बिछुरन कौ संताप हमारौ तुम दरसन दै काट्यौ। ज्यों रबि तेज पाइ दसहूँ दिसि दोष कुहर कौ फाट्यौ —६-२७ ।

कुहरा—संज्ञा पुं. [हिं. कोहरा] कोहरा ।

कुहराम—संज्ञा [अ. कहर+आम] (१) रोना-पीटना । (२) हलचल ।

कुहरित—वि. [हिं. कोहराम] शब्दायमान ।

कुहाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं. कुल्हाड़ा] कुल्हाड़ा ।

कुहाना—क्रि. अ. [सं. क्रोधन्, पा. कोहन] रूठना, रिसाना ।

कुहारा, कुहारो—संज्ञा पुं. [सं. कुठार, हिं. कुल्हाड़ा] कुल्हाड़ा, टाँगी । उ.—इंद्री स्वाद बिबस निसि बासर आपु अपुनपौ हारौ । जल औंड़े मैं चहुँ दिसि पैर्यौ, पाउँ कुहारो (कुल्हारौ) मारौ—१-१५२ ।

कुहासा—संज्ञा पुं. [सं. कुहेड़ी] कुहरा ।

कुही—संज्ञा स्त्री. [सं. कुधि] एक शिकारी चिड़िया ।

संज्ञा पुं. [फ़ा. कोही=पहाड़ी] घोड़े की एक जाति ।

वि. [हिं. कोह=क्रोध, कोही, क्रोधी] क्रोध करने वाला, क्रोधी । उ.—मूकु, निंद निगोड़ा, भोड़ा, कायर काम बनावै । कलहा, कुही, मूषक रोगी अरु काहूँ नैंकु न भावै—१-१८६ ।

कुहु—संज्ञा स्त्री. [सं. कुहू] अमावस्या ।

कुहुकंठ—संज्ञा पुं. [सं.] कोमल ।

कुहुक—संज्ञा पुं. [अनु.] पक्षियों, विशेषतः कोयल और मोर का मधुर स्वर ।

कुहुकना—क्रि. अ. [हिं. कुहुक+ना (प्रत्य.)] पक्षियों, विशेषतः कोयल और मोर का मधुर स्वर में बोलना ।

कुहकबान—संज्ञा पुं. [हिं. कुहुकना + बाण] एक तरह का बाण जिसे चलाते समय कुछ शब्द निकलता है ।

कुहुकिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुहुक] कोयल ।

कुहुकुहाना—क्रि. अ. [हिं. कुहुकना] पक्षियों का मधुर स्वर में बोलना ।

कुहुकुहानि—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुहुक] पक्षियों की मीठी बोली। उ.–ज्यों कोइ लखत काग जिवाए भक्ष अभक्ष कहाइ। कुहुकुहानि सुनि रितु बसंत की अन्त मिले कुल अपने जाइ–३०१३।

कुहुराति—संज्ञा स्त्री. [सं. कुहू + रात्रि] अमावस्या की काली रात। उ.—दामिनी थिर घनघटा बर कबहुँ ह्वै एहि भाँति। कबहुँ दिन उद्योत कबहूँ होत अति कुहुराति—सा. उ. ५।

कुहू—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अमावस्या की रात। उ.—(क) सूरदास रसरासि बरषि कै चली जनौ हरतिलक कुहू उग्यौ री–६६१। (ख) सदा सरद ऋतु सकल कला लै सनमुख रहै जन्हाइ। सो सित पच्छ कुहू सम बीतत कबहुँ न देत दिखाइ–३४८६। (ग) नँद नंदन बृन्दाबन चंद।…। जठर कुहू ते बहिर बारि-निधि दिसि मधुपुरी सुछंद–१३११। (२) अमावस्या की अधिष्ठात्री देवी। (३) मोर या कोयल की मीठी बोली।

यौ.—कुहूकुहू– 'कुहू' 'कुहू' का शब्द।

कुहेलिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] कुहरा, कोहरा।

कुहौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूक] बोली, ध्वनि। (२) मोर, कोयल आदि की कूक।

कूँख—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्षि] कोख, पेट।

कूँखना—क्रि. अ. [हिं. काँखना] काँखना।

कूँचना—क्रि. स. [अनु. कुचकुच] कुचलना, कूटना।

कूँचा—संज्ञा पुं. [सं. कूर्च] झाड़ू, बढ़नी।

कूँची—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूँचा=झाड़ू] (१) छोटी झाड़ू। (२) चूना पोतने की मूँज की कूँची। (३) चित्रकार की तूलिका।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुंचिका] कुंजी या कुंडी जो दरवाजे में उसे बंद करने के लिए लगी रहती है। उ.–सहज कपाट उघरि गए ताला कूँची टूटि–२६९५।

कूँज—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रौंच] क्रौंच पक्षी।

कूँजत—क्रि. अ. [हिं. कूजना, कूँजना] (१) मधुर स्वर से बोलता है। उ.-(क) ऊधव कोकिल कूँजत कानन। तुम हमकौ उपदेस करत हौ भसम लगावन आनन। (ख) पपिहा गुंज, कोकिल बन कूँजत, अरु मोरनि कियौ गाजन–६२२। (२) चिल्लाता या दहाड़ता है। उ.—बातैं बूझत यौं बहरावति। सुनहु स्याम वै सखी सयानी पावस-रितु राधहिं न सुनावति। घन गर्जत मनु कहत कुसलमति कूँजत गुहा सिंह समुझावति—३४८५।

कूँजना—क्रि. अ. [हिं. कूजना] (१) बोलना, चिल्लाना। (२) मधुर स्वर से बोलना।

कूँड़, कूँड—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंड] (१) लोहे की टोपी जो लड़ाई के समय पहनी जाती है। (२) कुएँ से पानी निकालने का टोपीनुमा बरतन।

कूँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कुंड] (१) बड़ा बरतन। (२) गमला। (३) शीशे की बड़ी हाँडी जिसमें रोशनी जलायी जाती है।

कूँड़ी, कूँडी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूँड़ा] (१) पत्थर की प्याली। (२) छोटी नाँद।

कूँथना—संज्ञा पुं. [सं. कुंथन=दुख सहना] (१) दुख से कराहना। (२) कबूतरों का 'गुटुरगूँ' करना।

कूँदना—क्रि. स. [हिं. कुनना] खरादना।

कूँआँ—संज्ञा पुं. [सं. कूप] कुआँ, कूप।

कूँई—संज्ञा स्त्री. [सं. कुव+ई (प्रत्य.)] कमल की तरह का एक पौधा जो जल में होता है और चाँदनी रात में खिलता है, कोकाबेली, कुमुदिनी।

कूक—संज्ञा स्त्री. [सं. कूजन] (१) लंबी मधुर ध्वनि। उ०—सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं हँसत चलै दै कूक–१०-३१७। (२) कर्कश स्वर। उ०—यह सुनत रिस भरयौ दौरिबे को परयौ सूँड़ि झटकत पटकि कूक पारयौ –२५६२। (३) मोर या कोयल की सुरीली बोली। (४) रोने का महीन स्वर।

संज्ञा स्त्री. [हिं. हूक] हूक, कसक, वेदना। उ०—ऊधौ, कहा हमारी चूक। वै गुन-अवगुन सुनि सुनि हरि के हृदय उठत है कूक।

कूकना—क्रि. अ. [सं. कूजन] (१) लंबी सुरीली ध्वनि निकालना। (२) कर्कश स्वर से बोलना। (३) कोयल या मोर का बोलना।

कूकर—संज्ञा पुं० [सं. कुक्कुर] कुत्ता, श्वान। उ०—उदर भरयौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौं नाम न लीनौ—१-६५।

कूकरकौर—संज्ञा पुं. [हिं. कूकुर+कौर] (१) बचा-खुचा भोजन, टुकड़ा। (२) तुच्छ वस्तु।

कूच—संज्ञा पुं० [तु०] यात्रा करना, जाना, प्रस्थान।

मुहा०—देवता कूच कर जाना—बहुत भयभीत होना।

कूचा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] गली।

संज्ञा पुं. [सं. क्रौंच] क्रौंच पक्षी, करांकुल।

कूचिका, कूची—संज्ञा स्त्री० [सं. तूलिका] ब्रश, तूलिका।

कूज—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूजना] (१) ध्वनि, शब्द। (२) शब्द करने की क्रिया।

कूजत—क्रि. अ. [सं० कूजन] मधुर स्वर से बोलते हैं। उ०—(क) कनक किंकनी, नूपुर कलरव, कूजत बाल मराल। (ख) उपजत छबिकर अधर संख मिलि सुनियत सब्द प्रसंसा। मानहु अरुन कमल-मंडल में कूजत हैं कल हंसा—२५६६।

कूजन—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मधुर ध्वनि। (२) शब्द करने की क्रिया।

कूजना—क्रि. अ. [सं. कूजन] कोमल शब्द या ध्वनि करना, बोलना, कलरव करना।

कूजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. कूजः] (१) मिट्टी का पुरवा या कुल्हड़। (२) मिट्टी के पुरवे में जमायी हुई मिश्री।

संज्ञा. पुं. [सं. कुब्जक] मोतिया या बेले का फूल। उ०—कूजा, मरुओ, मोगरो मिलि झूमक हो।

कूजित—वि. [सं. कूजन] (१) बोला हुआ, ध्वनित। (२) गूँजा हुआ स्थान। (३) पक्षियों के कलरव से युक्त।

कूजै—क्रि. अ. [हिं. कूजना] मधुर शब्द करती है; कोमल स्वर से बजती है। उ.—(क) पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै—१०-१३४। (ख) चरन रुनित नूपुर कटि किंकिनि कल कूजै—६६२।

कूट—संज्ञा पुं. [सं०] (१) पहाड़ की चोटी। (२) अन्न का ढेर। (३) छल, धोखा। (४) झूठ। (५) गुप्त भेद या रहस्य। (६) वह रचना जिसका अर्थ सरलता से न स्पष्ट हो। (७) गूढ़ हास्य या व्यंग्य।

वि.—(१) झूठा। (२) छलिया। (३) बनावटी। (४) अच्छा, प्रधान। (५) धर्म-भ्रष्ट।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कुट] एक औषधि। उ०—कूट काइफल सोंठि चिरैता कटजीरा कहुँ देखत—११०८।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कूटना] कूटने-पीटने की क्रिया।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कुटी] झोपड़ी।

कूटता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कठिनाई। (२) झूठ। (३) छल-कपट।

कूटन—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूटना] (१) कूटने की क्रिया या भाव। (२) मारना-पीटना।

कूटना—क्रि. स. [सं. कुट्टन] मारना, पीटना, ठोंकना।

कूटनीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] दाँव-पेंच की चाल जिसका भेद दूसरे न पा सकें।

कूटयोजना—संज्ञा पुं. [सं.] षड्यंत्र।

कूटस्थ—वि. [सं.] (१) अचल। (२) अविनाशी। (३) छिपा हुआ।

कूटि—संज्ञा स्त्री. [हिं० कूटना] कुटी, मारना, पीटना। उ.—कूटि करैंगे बलभैया अब हमहीं छोड़ि किनि देहु—२४०८।

कूटै—क्रि० स० [सं. कुट्टन, हिं. कूटना] कूटे, कूटकर। उ.—बिनु कन तुस कौं कूटै—२-२०।

कूड़ा—संज्ञ. पुं. [सं० कूट, प्रा० कूड=ढेर] बेकार या बेकाम चीज।

कूढ़—वि० [सं. कूढ़, पा० कूध] नासमझ, मूढ़।

कूत—संज्ञा पुं० [सं. आकूत=आशय] (१) अनुमान। (२) संख्या, परिमाण आदि का अनुमान।

कूतना—क्रि. स. [हिं. कूत] (१) अनुमान या अंदाज करना। (२) संख्या, परिमाण आदि का अनुमान या अंदाज करना।

कूते—क्रि० स० [हिं. कूतना] अनुमान करे।

कूथना—क्रि. स. [सं. कुंथन] मारना-पीटना।

कूद—संज्ञा स्त्री. [हिं० कूदना] उछलने-कूदने की क्रिया या भाव।

यौ०—कूद-फाँद—(१) उछलना-कूदना। (२) व्यर्थ का प्रयत्न।

कूदत—क्रि. अ. [हिं० कूदना] कूदते ही, उछलता-फाँदता है। उ.—सुनि कै सिंह-मयान अवाज। मारि फलाँग चली सो भाज। कूदत ताकौ तन छुटि गयौ—५-३।

कूदन—क्रि. अ. [हिं. कूदना] कूदना, फाँदना। उ.—नाचन-कूदन मृगिनी लागी, चरन-कमल पर वारी—१-२२१।

कूदना—क्रि. अ. [सं. स्कुंदन,] (१) उछलना, फाँदना। (२) जानकर गिरना। (३) किसी के बीच में दखल देना। (४) बहुत खुश होना। (५) शेखी मारना।
क्रि. स.—लाँघना, नाँघ जाना।

कूदि—क्रि. अ. [हिं. कूदना] कूदकर, उछलकर, फाँद कर। उ.—जैसैं केहरि उझकि कूप-जल, देखत अपनी प्रति। कूदि पर्यौ, कछु मरम न जान्यौ, भई आइ सोइ गति—१-३००।

कूदो—क्रि. अ. [हिं. कूदना] कूदा, कूद पड़ा। उ.—कूदो, कालीदह में धान—सा. ७३।

कूनना—क्रि. स. [हिं. कुनना] खरादना, खरोचना।

कूप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुआँ। उ.—(क) सँदेसनि मधुबन कूप भरे। (ख) परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार—सा. ११८। (२) छेद। (३) गढ़ा।

कूपनि—संज्ञा पुं. [सं. कूप+हिं. नि. (प्रत्य.)] कुओं में। उ.—नरक-कूपनि जाइ जमपुर पर्यौ बार अनेक—१-१०६।

कूपमंडूक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुएँ में ही रहनेवाला, मेढक। (२) संसार की बहुत कम जानकारी रखने वाला, अनुभवहीन व्यक्ति।

कूपहिं—संज्ञा पुं. [सं. कूप + हिं (प्रत्य.)] कूप में, कुएँ में। उ.—पग पग परत कर्म-तम-कूपहिं को करि कृपा बचावै—१-४८।

कूब,कूबड़—संज्ञा पुं. [सं. कूबर] (१) पीठ का उभाड़ या टेढ़ापन। (२) किसी चीज का उभाड़ या टेढ़ापन।

कूबरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुबड़ी, कुबरी] कुब्जा नामक कंस की एक दासी जिसकी पीठ पर कूबड़ था। श्रीकृष्ण से इसको बड़ा प्रेम था और भक्तों का विश्वास है कि उन्होंने भी इसे अपना लिया था।

कूबा—संज्ञा पुं. [हिं. कूबड़] कूबड़।

कूर—[सं. क्रूर] (१) जिसमें दया न हो, निर्दयी, कठोर। (२) डरावना। (३) दुष्ट, कुमार्गी, बुरा। उ.—(क) तौ जानौं जौ मोहिं तारिहौ, सूर कूर कवि ढोट-१-१३२। (ख) साँचे कूर कुटिल ए लोचन वृथा मीन छबि छीन लई—२५१७। (ग) सूरवरी लै जाहु तहाँ जहँ कुबजा कूर रई—सा. ३१। (४) बेकार, निकम्मा।

कूरता—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूर] (१) निर्दयता, कठोरता। (२) मूर्खता। (३) अरसिकता। (४) कायरता।

कूरपन—संज्ञा पुं. [हिं. कूर (१) कठोरपन। (२) कायरपन।

कूरम—संज्ञा पुं. [सं. कूर्म] विष्णु का दूसरा अवतार कछुआ। उ.—हरि जू अपनौ बिरद सँभार्यौ। सूरज प्रभु कूरम तनु धार्यौ—८-७।

कूरा—संज्ञा पुं. [सं. कूट, प्रा. कूड़=ढेर] (१) ढेर, राशि। (२) भाग, हिस्सा।

कूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूरा] (१) टीला, धुस। (२) छोटी राशि।

कूरे, कूरै—वि. [सं. क्रूर, हिं. कूर] निर्दयी, कठोर। उ.—(क) पूरनता ए नैनन पूरे,......। ए अलि चपल मे दरस लंपट कटु संदेस कथत कत कूरे—२०४२। (ख) सूर नृप क्रूर अक्रूर कूरै (कूरे) भयो धनुष देखन कहत कपटी महा है—२५०३।

कूर्च—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भौहों के बीच का स्थान। (२) कूठ। (३) दंभ। (४) सिर।

कूर्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कछुआ, कच्छप। (२) विष्णु का दूसरा अवतार जो पौष शुक्ल द्वादशी को कछुए के रूप में हुआ था। उ.—कूर्म कौ रूप धरि, धर्यौ गिरि पीठि पर—८-८। (३) एक ऋषि।

कूर्मिका,कूर्मी—संज्ञा स्त्री. [सं. कूर्मिका] एक प्राचीन बाजा।

कूल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किनारा, तट। (२) नहर। (३) तालाब।
क्रि. वि.—पास, निकट, समीप।

कूलिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नदी।

कूल्हा—संज्ञा पुं. [सं. क्रोड=क्रोड, कोल] कमर में पेडू के दोनों तरफ निकली हुई हड्डियाँ।

कूवत—संज्ञा स्त्री. [अ.] बल, शक्ति।

कूबर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रथ का एक भाग जिस पर जुआ बाँधा जाता है। (२) रथिक के बैठने का स्थान। (३) कुबड़ा।

वि.—सुन्दर ।

कूष्मांड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुम्हड़ा । (२) पेठा । (३) एक ऋषि ।

कूह—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूक] (१) हाथी की चिंघाड़ । (२) चिल्लाहट ।

कूही—संज्ञा स्त्री. [हिं. कूही] एक शिकारी चिड़िया ।

कृकाटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] कंधे और गले का जोड़, घाँटी ।

कृच्छ्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कष्ट,दुख । (२) पाप । (३) एक व्रत जिसमें पंचगव्य (गाय से प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य—दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र) खा कर दूसरे दिन उपवास किया जाता है ।

वि.—कठिन, कष्टसाध्य ।

कृत—वि. [सं.] (१) किया हुआ, संपादित । उ०—(क) मन-कृत-दोष अथाह तरंगिनि, तरि नहिं सक्यौ, समायौ—१-६७ । (ख) और कहाँ लौं कहौं एक मुख या मन के कृत काज—१-१०२ । (२) बनाया हुआ, रचित । उ.—तू कृत मम जस जो गावैगो सदा रहै मम साथ—११०४ सारा० । (३) संबंध रखने वाला, तत्संबंधी ।

संज्ञा पु० [सं.] (१) सतयुग । (२) चार की संख्या ।

संज्ञा पुं. [सं. कृत्य] काम-काज । उ.—(क) बड़ी बेर भइ अजहुँ न आए गृह-कृत कछु न सुहाइ—५८७ । (ख) अपने कृत तैं हौं नहिं बिलमत सुनि कृपाल बृजराई—१-२०७ ।

कृतक—वि. [सं.] अनित्य, कृत्रिम ।

कृतकर्मा—वि. [सं.] (१) जिसने अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त कर ली हो । (२) चतुर ।

संज्ञा पुं०—(१) संन्यासी । (२) परमेश्वर ।

कृतकाम—वि. [सं.] जिसकी इच्छा पूरी हो चुकी हो ।

कृतकारज—वि. [सं. कृतकार्य] जिसको अपने कार्य में सफलता मिल चुकी हो ।

कृतकार्य—वि. [सं.] जिसका काम पूरा हो चुका हो ।

कृतकृत्य—वि. [सं.] (१) जिसका कार्य या उद्देश्य सफल हो चुका हो, सफल-मनोरथ । (२) धन्य ।

कृतघन—वि. [सं. कृतघ्न] किये हुए उपकार को न मानने वाला, अकृतज्ञ ।

कृतघ्न—वि. [सं.] जो दूसरे का उपकार न माने, अकृतज्ञ ।

कृतघ्नता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दूसरे का किया हुआ उपकार न मानने का भाव ।

कृतताई—संज्ञा स्त्री. [हिं.कृतघ्न] किये हुए उपकार को न मानने का भाव ।

कृतघ्नी—वि. [सं. कृतघ्न] अकृतज्ञ, नमकहराम । उ.—महा कठोर सुन्न हिरदै कौ, दोष देन कौं नीकौ । बड़ौ कृतघ्नी और निकम्मा, बेधन, राकौ फीकौ—१-१८६ ।

कृतज्ञ—वि. [सं.] उपकार माननेवाला । उ.—मधुबन के सब कृतज्ञ धर्मीले । अति उदार परहित डोलत हैं बोलत बचन सुसीले—३०५५ ।

कृतज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दूसरों के उपकार को मानने का भाव, निहोरा मानना । ।

कृतदंड—संज्ञा पुं. [सं.] यमराज । उ.—गोपन सखा भाव करि देखे दुष्ट नृपति कृतदंड । पुत्र भाव बसुदेव देवकी देखे नित्य अखंड ।

कृतनिंदक—वि. [सं.] जो किये हुए उपकार को न माने ।

कृतमुख—संज्ञा पुं. [सं.] पंडित ।

कृतयुग—संज्ञा पुं. [सं.] सतयुग । उ.—कृतयुग धर्म भये त्रेता में पूरन रमा प्रकास—३०६ सारा. ।

कृतविद्य—वि. [सं.] किसी विद्या या कला का पूर्ण ज्ञाता, पंडित ।

कृतवेदी—वि. [सं.] दूसरे का उपकार माननेवाला ।

कृतहस्त—वि. [सं.] (१) काम में चतुर । (२) बाण चलाने में कुशल ।

कृतहिं—संज्ञा पुं० सवि० [सं. कृति + हिं. हिं (प्रत्य.)] किये हुए उपकार को । उ.—(क) सूरदास जो सरबस दीजै कारे कृतहिं न मानै—३४०४ । (ख) तिनहिं न पतीजै री जे कृतहिं न मानै—२७८६ ।

कृतहीन—वि. [सं.] कृतघ्न ।

कृतांजलि—वि. [सं.] हाथ बाँधे या जोड़े हुए ।

कृतांत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंत करनेवाला । (२)

यमराज। (३) कर्मों का फल। (४) मृत्यु।

कृतात्मा—वि. [सं. कृतात्मन्] शुद्ध आत्मावाला, महात्मा।

कृतारथ—वि. [सं. कृतार्थ] कृतकृत्य, सफल-मनोरथ। उ.—(क) बन मैं करी तपस्या जाइ, रह्यौ हरि चरननि सौं चित लाइ। या बिधि नृपति कृतारथ भयौ—६-१७४। (ख) नृपति कह्यौ मेरे गृह चलिये करौ कृतारथ मोय—८०० सारा।

कृतार्थ—वि० [सं.] (१) जो सफलता से संतुष्ट हो। (२) संतुष्ट। (३) कुशल। (४) दूसरे के उपकार से प्रसन्न।

कृतास्त्र—वि. [सं.] धनुष चलाने में निपुण।

कृति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) करनी, करतूत। उ.—(क) निज कृति-दोष बिचारि सूर, प्रभु तुम्हारी सरन गयौ—१-२१८। (ख) यह हित मनै कहत सूरज प्रभु इहि कृति कौ फल तुरत चखैहौं—७-५। (ग) नैन उघारि बिप्र जौ देखै, खात कन्हैया देख न पायौ। देखौ आइ जसोदा, सुत कृति, सिद्ध पाक इहि आइ जुठायौ—१०-२४८। (२) बड़ा काम। (३) जादू।

संज्ञा पुं.—विष्णु।

कृतिका—संज्ञा स्त्री. [सं. कृत्तिका] एक नक्षत्र।

कृतिवास, कृतिवासा—संज्ञा पुं. [सं. कृत्तिवास] महादेव।

कृती—वि. [सं०] (१) कुशल। (२) साधु। (३) पुण्यात्मा। (४) जिसने महान कार्य किया हो।

कृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मृगचर्म। (२) चमड़ा। (३) भोजपत्र। (४) कृत्तिका नक्षत्र।

कृत्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सत्ताइस नक्षत्रों में तीसरा जिसमें छः तारे हैं। इनका आकार अग्नि-शिखा के समान होता है। यह चंद्रमा की पत्नी मानी जाती है और अग्नि इसकी अधिष्ठात्री है। (२) बैलगाड़ी।

कृत्तिवास—संज्ञा पुं. [सं.] महादेव का एक नाम जो गजासुर को मारने के बाद उसकी खाल ओढ़ लेने के कारण पड़ा था।

कृत्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वे काम जिनका करना धर्म की दृष्टि से आवश्यक हो। (२) करनी, करतूत। उ०—सूर स्याम के कृत्य जसोमति ग्वाल-बाल कहि प्रगट सुनावत—४८०। (३) भूत-प्रेत।

कृत्यका—संज्ञा स्त्री. [सं.] भयंकर कार्य कर सकनेवाली साहसी स्त्री।

कृत्यविद्—वि. [सं.] कर्तव्य-पालन में चतुर।

कृत्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक राक्षसी जिसे तांत्रिक अपने अनुष्ठान से उत्पन्न करके विपक्षी का नाश करने के लिए भेजते हैं। उ.—(क) रिषि सक्रोध इक जटा उपारी। सो कृत्या भइ ज्वाला भारी—६-५। (ख) तब सिव ने उन कृत्या दीन्हीं बाढ़ो क्रोध अपार—७०७ सारा.। (२) तंत्र-मंत्र से साधे गये घातक कर्म। (३) कर्कशा स्त्री।

कृत्रिम—वि. [सं.] नकली, बनावटी।

कृदंत—संज्ञा पुं [सं.] वह शब्द जो धातु में 'कृत' प्रत्यय लगने से बनता है, जैसे भोक्ता।

कृपण—वि. [सं.] (१) कंजूस, सूम। (२) नीच, दुष्ट।

कृपणता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कंजूसी, सूमता। (२) (२) नीचता।

कृपन—वि. [सं. कृपण] (१) कंजूस, सूम, अनुदार। उ.—(क) कृपानिधान सूर की यह गति, कासौं कहै, कृपन इहिं काल—१-१२६ (ख) स्याम अछय निधि पाइकै तउ कृपन (कृपण) कहावै—पृ० ३२२। (ग) कीजै कहा कृपन की संपति बिन भोजन बिन दान—२०५१। (घ) हम निसिदिन करि कृपन की सम्पति कियो न कबहू भोग—२७९३। (२) तुच्छ, नीच।

कृपनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कृपण + आई (प्रत्य.)] कंजूसी, सूमता।

कृपया—क्रि. वि. [सं.] कृपापूर्वक।

कृपा—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) निस्वार्थ भाव से दूसरे की भलाई करने की भावना या इच्छा। अनुग्रह, दया। (२) क्षमा।

कृपाकरन—वि. [सं. कृपा + करण] कृपालु। उ.—भक्त-बछल, कृपाकरन, असरन-सरन, पतित उद्धरन कहै बेद गाई—८-६।

कृपाचार्य—संज्ञा पुं. [सं.] ये गौतम के पौत्र और शरद्वत के पुत्र थे। इन्होंने कौरवों और पांडवों को शस्त्र-विद्या सिखायी थी।

कृपाण, कृपान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तलवार। (२) कटार।

कृपानाथ—संज्ञा पुं. [सं.] कृपा करनेवाले।

कृपानिधि—संज्ञा पुं. [सं. कृपा + निधि] (१) कृपा के भांडार, अत्यन्त कृपालु। (२) कृपालु ईश्वर।

कृपापात्र—संज्ञा पुं. [सं.] वह व्यक्ति जो दया का अधिकारी हो।

कृपायतन—संज्ञा पुं. [सं.] दया के भांडार, बहुत दयालु।

कृपाल—वि. [सं. कृपालु] कृपा करनेवाला, दयालु।

कृपालता—संज्ञा स्त्री. [सं. कृपालुता] दया का भाव।

कृपाला—वि. [सं. कृपालु] दया करनेवाला। उ.—जो तुम जानत तत्व कृपाला मौन रहौ तुम घर अपने —३२१२।

कृपालु—वि. [सं.] कृपा करनेवाला, दयालु।

कृपालुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दया का भाव।

कृपावंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कृपा करनेवाला। उ०—सूरदास प्रभु कृपावंत ह्वै लै भक्तनि मैं डारौं १-१५८। (२) कृपालु ईश्वर। उ.—सूरदास जो संतन कौं हित, कृपावंत मेटत दुख-जालहिं—१-७४।

कृपिण, कृपिन—वि. [सं. कृपण] कंजूस, सूम, अनुदार। उ.—कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी अपनी—१-३९।

कृपिणता, कृपिनता, कृपिनाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कृपणता] कंजूसी।

कृपी—संज्ञा स्त्री. [सं.] द्रोणाचार्य की पत्नी जो कृपाचार्य की बहन थी। इसी के गर्भ से अश्वत्थामा का जन्म हुआ था।

कृमि—संज्ञा पुं. [सं.] छोटा कीड़ा।

कृश—वि. [सं.] (१) दुबला पतला। (२) छोटा।

कृशता, कृशताई—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दुबलापन। (२) कमी।

कृशानु—संज्ञा पुं० [सं.] अग्नि, आग।

कृशित—वि. [सं.] दुबला-पतला।

कृष—वि. [सं. कृश] पतला, क्षीणगात। उ.—(क) कृष (कृश या कृष) कटि सबल डंड बंधन मनो विधि दीन्हो बंधान—१६९१। (ख) लई जाइ जब ओट अटन की चीर न रहत कृष गात—२५३९।

कृषक—संज्ञा पुं० [सं.] किसान, खेतिहर।

कृषि—संज्ञा स्त्री. [सं.] खेती, किसानी।

कृषिक—वि. [सं. कृषि] खेती-बारी से सम्बन्धित।

कृषिफल—संज्ञा पुं० [सं.] फसल, पैदावार।

कृषी—संज्ञा स्त्री. [सं. कृषि] खेती, किसानी। उ.—ते खोजत-खोजत तहँ आए। जहँ जड़ भरत कृषी मैं छाए—५-३।

कृष्ण—वि. [सं.] (१) श्याम, काला। (२) नीला, आसमानी।

संज्ञा पुं.—यदुवंशी वसुदेव के पुत्र जो कंस के कारागृह में देवकी के गर्भ से जन्मे थे। मथुरा के अत्याचारी राजा कंस को मार कर प्रजा को इन्होंने सुखी किया था। द्वारका में यादवों का राज्य स्थापित करने वाले ये ही थे। महाभारत के भयंकर युद्ध में ये पांडव-पक्ष में रहे। एक बहेलिये का तीर लगने से इनकी मृत्यु हुई। ये विष्णु के आठवें अवतार माने जाते हैं।

कृष्णचंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] श्रीकृष्ण।

कृष्णद्वैपायन—संज्ञा पुं. [सं.] वेदव्यास जो पराशर के पुत्र थे।

कृष्णपक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] वह पक्ष जिसमें चंद्रमा घटता है। अँधियारा पक्ष।

कृष्णसखा—संज्ञा पुं. [सं.] अर्जुन।

कृष्णसखी—संज्ञा स्त्री. [सं.] द्रौपदी।

कृष्णसार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काला मृग। (२) शीशम।

कृष्णा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) द्रौपदी। (२) दक्षिण भारत की एक नदी। (३) राधा की एक सखी। उ.—कहि राधा किन हार चोरायो। ········। दर्वा रंभा कृष्णा ध्याना मैना नैना रूप। इतनिन में कहि कौने लीन्हौ ताको नाउ बताउ—१५८०। (४) अग्नि की एक जिह्वा। (५) आँख की पुतली। (६) काली देवी।

कृष्णाभिसारिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नायिका जो अँधेरी रात में प्रिय से मिलने संकेत-स्थल पर जाय।

कृष्णाष्टमी—संज्ञा स्त्री. [सं.] भादों के कृष्णपक्ष की अष्टमी जिस दिन श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जाता है।

कृष्नाकृति—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण + आकृति] कृष्ण-स्वरूप, कृष्ण-लक्षण, कृष्ण की आकृति । उ.—सुनि सानंद चले बलिराजा, आहुति जज्ञ बिसारी । देखि सरूप सकल कृष्नाकृति, कीनी चरन जुहारी—८-१४ ।

कृष्ण—संज्ञा पुं० [सं० कृष्ण] श्रीकृष्ण ।

कृस—वि० [सं० कृश] दुबली, पतली, क्षीण । उ०—कहाँ लगि सहौं रिस, बकत भई हौं कृस, इहिं मिस सूर स्याम-बदन चहूँ—१०-२६५ ।

कृसानु—संज्ञा स्त्री० [सं० कृशानु] अग्नि ।

कृसानु-सुत—संज्ञा पुं० [सं० कृशानु + सुत] अग्नि का पुत्र धूम । उ०—सुत-कृसानु-सुत प्रबल भए मिल चार ओर ते आये—सा० ११ ।

कृष्य—वि. [सं.] खेती के योग्य (भूमि) ।

कृस्न—संज्ञा पुं. [सं. कृष्ण] श्रीकृष्ण ।

केंचुआ—संज्ञा पुं. [सं. किंचिलिक, प्रा. केंचुओ] एक कीड़ा जो प्रायः बरसात में जन्मता है और मिट्टी खाता है ।

केंचुर, केंचुल—संज्ञा स्त्री० [सं. कंचुक] सर्प जैसे कीड़ों के शरीर के ऊपर की वह झिल्ली जो प्रतिवर्ष अपने आप अलग होकर गिर जाती है ।

केंचुरि, केंचुलि, केंचुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. केंचुल] झिल्ली, केंचुल । उ.—(क) नैन बैन मुख नासिका ज्यों केंचुलि तजै भुजंग—११८२ । (ख) ज्यों भुजंग तजि गयौ केंचुली सो गति भई हमारी-३०५६ ।

केंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी घेरे के ठीक बीच का बिंदु । (२) मुख्य स्थान जहाँ से दूर-दूर फैले कार्यों का संचालन हो । (३) बीच या मध्य । (४) अधिक समय तक रहने का स्थान ।

केंद्रित—वि. [सं.] केंद्र-स्थान में इकट्ठा किया हुआ ।

केंद्री—वि. [सं. केंद्रिन्] बीच में स्थित ।

केंद्रीकरण—संज्ञा पुं. [सं.] शक्तियों-अधिकारों आदि को केंद्र में एकत्र करना ।

केंद्रीय—वि. [सं. केंद्र] जिसका सम्बन्ध केंद्र से हो ।

केंवरा, केंवरो—संज्ञा पुं. [हिं. केवड़ा] केवड़े का पौधा और फूल । उ.—तहाँ कमल केंवरो फूले जहाँ केतकी कनेर फूले संतन हिल ही फूल डोल—२४०६ ।

के—प्रत्य. [हिं. का] सम्बन्ध सूचक 'का' विभक्ति का बहु वचन रूप । एक वचन प्रयोग भी होता है जब सम्बन्ध वान् के आगे कोई विभक्ति होती है । उ.—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवत तैं अधिक धायौ—१-५ ।

सर्व.—[सं. कः] कौन ?

केउ—सर्व.—[हिं. के + उ (प्रत्य.)=भी] कोई ।

केउर—संज्ञा पुं. [सं. केयूर] एक आभूषण ।

केऊ—सर्व. [हिं. के + ऊ (प्रत्य.)] कोई ।

क्रि.—कई, कितने ही ।

केकइ—संज्ञा स्त्री. [सं. कैकेयी] राजा दशरथ की छोटी रानी जो भरत की माता थी ।

केकड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कर्कट, पा. ककट] पानी का एक कीड़ा ।

केकय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) उत्तरी भारत का एक प्राचीन देश जो वर्तमान काश्मीर में है । (२) इस देश का निवासी या राजा । (३) कैकेयी के पिता ।

केकयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] राजा दशरथ की रानी जो भरत की माता थी ।

केका—संज्ञा स्त्री. [सं.] मोर की बोली या कूक ।

केकि, केकी—संज्ञा पुं. [सं. केकिन्] मोर, मयूर । उ.—केकी-पच्छ-मुकुट सिर भ्राजत, गौरी राग मिलै सुर गावत—५०६ ।

केचित्—सर्व. [सं.] कोई-कोई ।

केड़ा—संज्ञा पुं. [सं. करीर=बाँस का कल्ला] (१) नया पौधा, कोंपल । (२) किशोर, नवयुवक ।

केणिक—संज्ञा पुं. [सं. कोणिका] तंबू, रावटी ।

केत—संज्ञा पुं. [सं. केतु] एक राक्षस का कबंध । यह राक्षस समुद्र-मंथन के समय अमृत-पान करते करते विष्णु द्वारा मारा गया था । इसका धड़ राहु कहाता है । सूर्य और चन्द्रमा ने इसे पहचाना था; इसी लिए ग्रहण-काल में यह उन्हीं को ग्रसता मानाजाता है । उ.–राम-नाम बिनु क्यों छूटोगे, चंद्र गहै ज्यौं केत—१-२६६ ।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर, भवन । (२) स्थान, बस्ती । (३) ध्वजा । (४) बुद्धि । (५) सलाह (६) अन्न ।

केतक—संज्ञा पुं. [सं.] केवड़ा ।

वि. [सं. कति + एक] (१) कितने । (२) बहुत । (३) बहुत-कुछ ।

केतकर—संज्ञा स्त्री. [सं. केतकी] केतकी का पौधा और फूल ।

केतकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक छोटा झाड़ या पौधा जिसके सफेद फूल बहुत सुगंधित होते हैं । प्रसिद्धि है कि इसके फूल पर भौंरा नहीं बैठता । उ.—लोचन लालच तें न टरैं ।...... । ज्यों मधुकर रुचि रच्यौ केतकी कंटक कोटि अरैं । तैसोई लोभ तजत नहिं लोभी फिरि फिरि फिरी फिरैं—२७७० । (२) एक रागिनी का नाम । उ.—रामकली गुनकली केतकी सुर सुघराई गायौ । जैजैवंती जगतमोहिनी सुर सों बीन बजायौ—१०१७ सारा. ।

केतन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) निमंत्रण । (२) ध्वजा । (३) चिन्ह । (४) घर । (५) स्थान ।

केतने—वि० [हिं० कितना] कितने (संख्यावाचक) उ०—हौं अलि केतने जतन विचारों—सा० ६७ ।

केता—वि. [सं. कियत्] कितना ।

केतारा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह की ऊख ।

केति, केतिक—वि. [सं. कति + एक] (१) कितना, किस कदर । उ.—(क) तुम मोते अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पठाए (हो)—१-७ । (ख) कहौ बात अपने गोकुल की केतिक प्रीति ब्रजबालहिं । (ग) केतिक दूरि गयौ रथ माई—२५८० । (घ) आगैं दै पुनि ल्यावत घर कौं तू मोहिं जान न देति । सूर स्याम जसुमत मैया सौं हा हा करि कहै केति—४२४ । (२) बहुत ।

केती—वि. [हिं. केता] कितनी । उ.—एती केती तुमरी उनकी कहत बनाइ-बनाई—३३३४ ।

केतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्ञान । (२) प्रकाश । (३) ध्वजा, पताका । (४) चिन्ह (५) एक राक्षस का कबन्ध, जो नौ ग्रहों में माना जाता है । (६) पुच्छल तारा जिसकी पूँछ से प्रकाश निकलता है ।

केतुमान—वि. [सं.] (१) तेजस्वी । (२) जिसके पास ध्वजा हो । (३) बुद्धिमान ।

केते—वि. [हिं. केता] कितने । उ.—राका निसि केते अन्तर ससि, निमिष चकोर न लावत—१-२१० ।

केतो, केतौ—वि. [हिं. केता] कितना, कितना ही । उ.—कह्यौ, विषय सौं तृप्ति न होइ । केतौ भोग करौ किन कोई—९-८ । (ख) मोहन हमारौ भैया केतो दधि पियतौ—३७३ ।

केदलि, केदली—संज्ञा पुं. [सं. कदली] केले का पेड़ । उ.—खग पर कमल कमल पर केदलि केदलि पर हरि ठान । हरि पर सर सरवर पर कलसा कलसा पर ससि भान—२१६१ ।

केदार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिमालय पर्वत का एक शिखर और प्रसिद्ध तीर्थ जहाँ केदार नामक शिवलिंग है । उ.—अस्व मेध जज्ञहु जौ कीजै, गया बनारस-अरु केदार । राम नाम-सरि तऊ न पूजै, तनु गारौ जाइ हिवार—२-३ । (२) एक राग जो रात्रि के दूसरे पहर में गाया जाता है । उ.—राग-रागिनी साँचि मिलाई गावैं सुघर गुंड मलार । सुहवी सारँग टोडी भैरवों केदार-२२७६ । (३) वृक्ष के नीचे का थाला, थाँवला । (४) कामरूप देश का एक तीर्थ । (५) श्रीराम की सेना का एक बंदर । उ०—कपि सोभित सुभर अनेक संग । ज्यौं पूरन ससि सागर तरंग । सुग्रीव बिभीषन जामवंत अंगद सुषेन केदार संत—९-१६६ ।

केदारनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] हिमालय का एक पर्वत जिस पर केदारनाथ नामक शिवलिंग है ।

केदारो, केदारौ—संज्ञा पुं. [सं. केदार] मेघराग का चौथा भेद जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता है । उ.—(क) मधुरैं सुर गावत केदारौ, सुनत स्याम चित लाई । सूरदास प्रभु नंदसुवन कौं नींद गई तब आई—१०-२४२ । (ख) ऊँछ अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन । करत बिहार मधुर केदारो सफल सुरन सुख दीन—१०१४ सारा. ।

केना—संज्ञा पुं. [सं. क्रयण = मोल लेना] (१) वह अन्न जो साग-भाजी लेने पर बदले में दिया जाता है । (२) साग-भाजी ।

केम—संज्ञा पुं. [सं. कदंब] कदंब ।

केयूर—संज्ञा पुं. [सं.] बाँह में पहनने का एक आभूषण; अंगद, भुजबंद, भुजभूषण । उ.—अंग-

अभूषनि जननि उतारति। दुलरी ग्रीव माल मोतिनि की, लै केयूर भुज स्याम निहारति—५१२ ।

केयूरी—वि. [सं.] जो केयूर नामक अलंकार धारण किये हो।

केर—अव्य० [सं. कृत] संबंध सूचक विभक्ति । अवधी भाषा में 'का' के लिए इसका प्रयोग होता है ।

केरा—संज्ञा पुं. [हिं. केला] केला, कदली। उ.—खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख रस सीरा—१०-२११ ।

केराना—संज्ञा पुं. [हिं. किराना] मसाला, मेवा आदि ।

केराव—संज्ञा पुं. [सं. कलाय] मटर ।

केरि—प्रत्य. [सं. कृत] की ।

संज्ञा स्त्री. [सं. केलि] क्रीड़ा ।

केरी—प्रत्य. [सं. कृत, हिं. 'केर' अथवा 'के' विभक्ति का स्त्री. रूप] की । उ.—(क) नाहीं सही परति मोपै अब, दारुन त्रास निसाचर केरी—६६३ । (ख) सूर स्याम तुमको अति चाहत तुम प्यारी हरि केरी—१४५७ ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] कच्ची अँबिया।

केरे—प्रत्य. [सं. कृत, हिं. 'केर' का बहु० रूप] के । उ.—(क) गाउँ हमारो छाँड़ि जाइ बसिहौ केहि केरे—१०१५। (ख) बहुरि तातो कियो डारि तिन पर दियो आय लपटे सुतहु नंद केरे—२५६० ।

केरो, केरौ—प्रत्य. [सं. कृत, हिं. केर] का, के। उ.—अजान जानिकै अपनो दूत भयो उन केरो—३४३१ ।

केलक—संज्ञा पुं. [सं.] हाथ में तलवार, कटारी आदि लेकर नाचनेवाले लोग ।

केला—संज्ञा पुं. [सं. कदल, प्रा. कयल] एक पेड़ जिसके पत्ते खूब लंबे और गूदेदार फल मीठे होते हैं ।

केलि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) खेल, क्रीड़ा, लीला। उ.—आउ धाम मेरे लाल कैं आँगन बाल-केलि कौं गावति है—१०-७१। (२) रति, समागम। (३) हँसी- ठट्ठा। (४) पृथ्वी।

केलिक—संज्ञा पुं. [सं.] अशोक वृक्ष ।

केलिकला—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) सरस्वती की वीणा। (२) रति, समागम ।

केलिकिल—संज्ञा पुं. [सं.] नाटक का विदूषक ।

संज्ञा स्त्री.— कामदेव की स्त्री, रति ।

केली—संज्ञा स्त्री. [सं. कदली, प्रा. कदली] छोटी जाति का केला ।

संज्ञा स्त्री. [सं. केलि] क्रीड़ा, आनंद, विनोद, रंजन। उ.—मधुकर हम न होहिं वै बेली। जिन भजि तजि तुम फिरत और रँग करत कुसुम रस केली—२६६४ ।

केवट—संज्ञा पुं. [सं. कैवर्त्त, प्रा. केवट्ट] क्षत्रिय पिता और वैश्या माता से उत्पन्न एक वर्ण संकर जाति जिसके लोग प्रायः नाव चलाते हैं । उ.—जासु महिमा प्रगटि केवट, धोइ पग सिर धरन—१-३०८।

केवड़ा, केवरा—संज्ञा पुं [सं. केविका] (१) सफेद केतकी का पौधा। (२) इस पौधे का फूल । (३) इस फूल का उतारा हुआ अरक।

केवल—वि. [सं.] (१) अकेला । (२) पवित्र । (३) उत्तम, श्रेष्ठ। (४) जिसमें दूसरी बात या चीज की मिलावट न हो।

क्रि. वि.—सिर्फ, मात्र ।

संज्ञा पुं.—विशुद्ध और सम्यक ज्ञान ।

केवली—संज्ञा पुं. [सं. केवल+ई (प्रय.)] (१) मुक्ति का अधिकारी। (२) मुक्ति प्राप्त ।

केवाँच—संज्ञा स्त्री. [हिं. कौंछ] एक बेल ।

केवा—संज्ञा पुं. [सं. कुव=कमल] कमल की कली ।

संज्ञा पुं. [सं. किंवा] बहाना, मिस ।

केवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. केवा] कुईं, कुमोदनी ।

केश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण। (२) विश्व। (३) विष्णु। (४) सूर्य के बाल। (५) केशी नामक दैत्य जो कंस का सेवक था।

केशकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बाल सँवारने की क्रिया।

केशट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) कामदेव का शोषण नामक बाण।

केशपाश—संज्ञा पुं० [सं०] बालों की लट ।

केशर—संज्ञा पुं० [सं० केसर] केसर।

केशरिया—वि० [हिं० केसरिया] केसर के रंग का।

केशरी—संज्ञा पुं० [सं. केसरी] (१) सिंह । (२) हनुमान के पिता का नाम ।

केशव—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम । (२) श्रीकृष्ण का एक नाम । (३) परमेश्वर ।

केशविन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] बालों का सँवारना ।

केशांत—संज्ञा पुं० [सं०] मुंडन संस्कार ।

केशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था ।

केशिनी—वि० [सं०] सुंदर बालवाली ।

केशी—संज्ञा पुं० [सं० केशिन्] (१) एक असुर जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था । (२) एक यादव ।

वि०—अच्छे बालोंवाला ।

केस—संज्ञा पुं० [सं० केश] सिर के बाल ।

मुहा०—केस खसै—बाल बाँका हो, कष्ट पड़े । उ०—जाकौं मनमोहन अंग करै । ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ जग बैर परै—१-३७ । केस नहिं टारि सके—बाल बाँका न कर सके, कुछ हानि न पहुँचा सके । उ.—जाकी कृपा पपित है पावन पग परसत पाहन तरै । सूर केस नहिं टारि सकै कोउ, दाँति पीसि जौ जग मरै—१-२३४ ।

केसपास—संज्ञा पुं० [सं० केशपाश] बालों की लट । उ०—बरना भख कर में अवलोकत केसपास कृतबंद —९८९ सारा. ।

केसर—संज्ञा पुं० [सं०] बाल की तरह पतली सीकें जो फूलों के बीच में होती हैं । (२) एक प्रकार के फूल का केसर जिसका रंग लाल होता है, पर पीसने पर पीला हो जाता है । (३) घोड़े, सिंह आदि की गरदन के बाल, अयाल । (४) स्वर्ग । (५) नागकेसर ।

केसरि—वि० [हिं० केसर] केसर के रंग का, पीले रंग का । उ०—केसरि चीर पर अबीर मानो परयौ खेलत फागु डारयौ खिलारी—२५९५ ।

केसरिया—वि० [सं० केसर+इया (प्रत्य०)] (१) केसर के रंग का । (२) जिसमें केसर पड़ी हो ।

केसरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरिन्] (१) सिंह । (२) घोड़ा (३) नागकेसर । (४) हनुमान जी के पिता का नाम । (५) राम की सेना का एक बंदर । उ०—नल-नील द्विविद-केसरी-गवच्छ । कपि कहे कछुक हैं बहुत लच्छ—९-१६६ ।

केसव—संज्ञा पुं० [सं० केशव] (१) विष्णु का एक नाम । (२) श्रीकृष्ण का एक नाम ।

केसवराई—संज्ञा ०[सं० केशव + हिं० राय] श्रीकृष्ण का एक नाम, केशवराय । उ०—कर गहि छीर पियावत अपनौ, जानति केसवराई—१०-५२ ।

केसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कृसर, हिं० खेसारी] एक तरह का मटर ।

केसि, केसी—संज्ञा पुं० [सं० केशिन्, केशी] कंस का दरबारी एक राक्षस जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था । उ.—बकी बका सकटा त्रिन केसी बछ वृष भये समै अलि बिन गोपाल इति बैर कीन—सा.उ. ३६ ।

केसू—संज्ञा पुं० [सं० किंशुक] टेसू, पलाश ।

केहरि, केहरी—संज्ञा पुं० [सं० केसरी] (१) सिंह, शेर । उ०—कठुला-कंठ, बज्र केहरि नख, राजत रुचिर हिए—१०-९६ । (२) घोड़ा ।

केहरिनहा—संज्ञा पुं० [सं० केहरि + हिं० नख] बघनहा ।

केहरी—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह ।

केहा—संज्ञा पुं० [सं० केका, प्रा० केआ] (१) मोर । (२) बटेर के बराबर एक पक्षी ।

केहि, केही—वि० [सं० किं] किस । उ०—ब्रह्मा सिव स्तुति न सकैं करि मैं बपुरो केहि माहीं—१० उ०-१३२ ।

केहूँ—क्रि० वि० [सं० कथम्] किसी भाँति या तरह ।

केहू—सर्व० [हिं० के] कोई ।

कैं—प्रत्य० [हिं० कर] कर, करके । उ०—लच्छागृह तैं काढ़ि कैं पांडव गृह ल्यावै—१-४ ।

प्रत्य [हिं० के] कर्म, संप्रदान और अधिकरण का विभक्ति-प्रत्यय, के, के यहाँ । उ०—(क) जैसैं गैया बच्छ कैं सुमिरत उठि ध्यावै—१-४ । (ख) कौन जाति अरु पाँति बिदुर की ताही कैं पग धारत—१-१२ ।

प्रत्य० [हिं० का] संबंधसूचक विभक्ति-प्रत्यय, के । उ०—(क) तजि बैकुंठ, गरुड़ तजि, श्री तजि, निकट

दास कैं आयौ—१-१०।

कैंकर्य—संज्ञा पुं. [सं.] सेवा, सेवकाई।

कैंचा—वि. [हिं. काना+ऐंचा = कनैंचा] ऐंचाताना।

संज्ञा पुं. [तु. कैंची] बड़ी कैंची।

कैंची—संज्ञा स्त्री० [तु०] (१) कतरनी। (२) तिरछी रखी हुई तीलियाँ-सलाइयाँ आदि।

कैंचुल—संज्ञा स्त्री० [हिं० केंचुल] केंचुल।

कैंड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कांड = एक माप] (१) नापने का एक पैमाना। (२) चाल, ढंग। (३) चतुराई।

कैंती—क्रि० वि० [हिं० के + तीर] ओर से। उ०—मेरी कैंती बिनती करनी—६-१०१।

कै—वि. [सं. कति, प्रा. कइ] कितना (संख्या), किस कदर (परिमाण)। उ.—जैसैं अंधौ अंध कूप मैं गनत न खाल-पनार। तैसैहिं सूर बहुत उपदेसैं सुनि सुनि गे कै बार—१-८४।

अव्य. [सं. किम्] या, वा, अथवा, या तो। उ.—(क) राम भक्तबत्सल निज बानौं। जाति, गोत, कुल नाम गनत नहिं रंक होइ कै रानौ—१-११। (ख) जन्म सिरानौ ऐसैं ऐसैं। कै घर घर भरमत जदुपति बिनु, कै सोवत, कै बैसैं। कै कहुँ खान-पान रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसैं। कै कहुँ रंक, कहूँ ईस्वरत्ता, नट-बाजीगर जैसे—१-२६३।

प्रत्य.—[हिं. का] सम्बन्ध-सूचक विभक्ति, के, कर। उ.—(क) रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ौ—१-५। (ख) महा मोहिनी मोहि आत्मा अपमारगहिं लगावै। ज्यों दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै—१-४२।

क्रि. स. [हिं. करना] (१) करो, उपयोग में लाओ। उ०—नभ तैं निकट आनि राख्यौ है, जल-पुट जतन जुगै। लै अपने कर काढ़ि चंद कौं, जो भावै सो कै—१०-१९५। (२) करके। उ०—सुनि स्रवन, दस-बदन सदन-अभिमान, कै नैन की सैन अंगद बुलायौ—९-१२८।

संज्ञा पुं.—[देश.] एक तरह का मोटा धान।

संज्ञा स्त्री. [अ. कै] वमन, उलटी।

कैकइ, कैकई—संज्ञा स्त्री. [सं. कैकेयी] राजा दशरथ की रानी जो भरत की माता थी।

कैकस—संज्ञा पुं० [सं.] राक्षस।

कैकेयी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कैकय देश या गोत्र की स्त्री। (२) राजा दशरथ की रानी जो कैकय देश की राजकुमारी थी।

कैटभ—संज्ञा पुं. [सं.] एक दैत्य जो मधु का छोटा भाई था और विष्णु द्वारा मारा गया था।

कैटभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा का एक नाम।

कैटभारि—संज्ञा पुं. [सं. कैटभ + अरि] विष्णु का एक नाम जो कैटभ दैत्य को मारने के कारण पड़ा था। उ.—बोलत खग-निकर मुखर, मधुर होइ प्रतीति सुनौ, परम प्रान-जीवन-धन मेरे तुम बारे। मनौ बेद-बंदीजन, सूतबृंद मागधगन, बिरद बदत जै जै जै जैति कैटभारे—१०-२०५।

कैतव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धोखा, छल-कपट। (२) जुआ, द्यूत। (३) लहसुनियाँ।

वि.—(१) छली, कपटी। (२) जुआरी।

कैतवापह्नुति—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक अलंकार जिसमें विषय का किसी बहाने से गोपन या निषेध किया जाय।

कैथ, कैथा—संज्ञा पुं० [सं. कपित्थ] एक कँटीला पेड़।

कैथी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कायस्थ] एक पुरानी लिपि जो अधिकतर बिहार में प्रचलित है।

कैद—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) कारावास। उ०—साचौं सो लिखहार कहावै। ... । मन महतौ करि कैद अपने मैं, ज्ञान-जहतिया लावै—१-१४२। (२) बंधन। (३) शर्त, प्रतिबंध।

कैदखाना—संज्ञा पुं. [फा. क़ैदख़ाना] जेलखाना, कारागार, बंदीगृह।

कैदी—संज्ञा पुं. [अ. क़ैद] जो कैद हो, बंदी।

कैदु—संज्ञा स्त्री. [हिं. कैद] बंधन, प्रतिबन्ध। उ०—हारि मानि उठि चल्यौ दीन ह्वै जानि अपुन पै कैदु—३४६८।

कैधौं, कैवौं—अव्य. [हिं. कै+धौं] या, वा, अथवा। उ.—कैधौं तुम पावन प्रभु नाहीं, कै कछु मो मैं भोलौ। तौ हौं अपनी फेरि सुधारौं, वचन एक जौ बोलौ—१-१३६।

कैन—संज्ञा स्त्री. [सं. कंचिका] (१) बाँस की पतली टहनी। (२) पतली टहनी।

कैनित—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक खनिज पदार्थ।

कैफ—संज्ञा पुं. [अ.] (१) नशा, मद। (२) चारा जिसमें मादक द्रव्य मिला हो।

कैफियत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) समाचार, हाल। (२) विवरण। (३) विचित्र घटना।

कैबर—संज्ञा स्त्री. [देश.] तीर का फल।

कैबा—संज्ञा स्त्री., अव्य० [हिं. कै = कई + बार] (१) कितनी बार। (२) कई बार।

कैवार—संज्ञा पुं. [हिं. किवाड़] किवाड़।

कैम, कैमा—संज्ञा पुं. [सं. कदंब] चौड़े सिरे के पत्तेवाला कदंब।

कैयो—क्रि. वि. [हिं. कै = कई + यो] कई प्रकार के, कई तरह के। उ.—कैयो भाँति केरा करि लीने—२३२१।

कैर—संज्ञा स्त्री. [सं. करील] एक कँटीली झाड़ी।

कैरव—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुमुद। (२) सफेद कमल। (३) शत्रु। (४) जुआरी।

कैरवाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] कैरवों का समूह।

कैरवि—संज्ञा स्त्री. [सं.] चंद्रमा।

कैरवी—संज्ञा स्त्री. [सं.] चाँदनी (रात)।

कैरा—संज्ञा पुं. [सं. कैरव = कुमुद] (१) भूरा (रंग)। (२) लाल झलकवाली सफेदी। (३) एक तरह का बैल।

वि.—जिसकी आँखें भूरी हों।

कैरात—वि. [सं.] किरात जाति या देश संबंधी।

संज्ञा पु. [सं.] (१) एक तरह का चंदन। (२) बली आदमी। (३) एक तरह का साँप। (४) एक चिड़िया। (५) राग का एक भेद।

कैरी—वि. स्त्री. [हिं. कैरा] (१) भूरे रंग की। (२) लाली लिये सफेद रंग की।

संज्ञा स्त्री. [हिं. केरी] छोटा आम, अँबिया।

प्रत्य. [सं. कृत, हिं. 'केर' का स्त्रीलिंग रूप] की।

कैल—संज्ञा स्त्री० [हिं. कला] वृक्ष की नयी पतली शाखा, कनखा।

कैलास—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिमालय की चोटी जिस पर शिव जी का निवास माना जाता है, शिव का निवास स्थान। (२) एक प्रकार के षट्कोण मंदिर। (३) स्वर्ग।

कैफी—वि. [अ.] (१) मतवाला। (२) नशेबाज।

कैलासपति—संज्ञा पुं. [सं.] शिव जी।

कैलासवास—संज्ञा पुं. [सं.] मृत्यु।

कैलासी—संज्ञा पुं. [सं. कैलास = ई (प्रत्य.)] (१) कैलास निवासी शिव। (२) कुबेर।

कैवर्त—संज्ञा पुं. [सं. कैवर्त्त] एक वर्णसंकर जाति, केवट, मल्लाह।

कैवर्तिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

कैवल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शुद्धता, मिलावट न होना। (२) मुक्ति, निर्वाण। (३) एक उपनिषद का नाम।

कैवाँ, कैवा—क्रि. वि. [हिं. कै = कई+वाँ = बार] कई बार। उ.—कहा जानै कैवाँ मुवौ, (रे) ऐसे कुमति, कुमीच। हरि सौं हेत बिसारि कै, (रे) सुख चाहत है नीच—१-३२५।

कैशिक—वि. [सं.] बड़े बालवाला।

संज्ञा पुं.—(१) केशसमूह। (२) केशश्रृंगार।

कैशिकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाटक की एक वृत्ति।

कैसा—वि. [सं. कीदृश, प्रा. करेस] (१) किस तरह का। (२) किसी प्रकार का नहीं (निषेधात्मक प्रश्न-रूप में)।

क्रि. वि. [हिं. का + सा] के समान, की तरह।

कैसिक—क्रि. वि. [हिं. कैसा] कैसे, किस भाँति।

कैसे, कैसैं—क्रि. वि. [हिं. कैसा] (१) किस प्रकार से, किस रीति से। उ.—कहि, जाकौं ऐसौ सुत बिछुरै, सो कैसैं जीवै महतारी—१०-११। (२) किस हेतु, किस लिए, क्यों।

मुहा०—कैसेहुँ करि—किसी प्रकार से, बड़े यत्नों से, बड़े भाग्य से, राम-राम करके। उ.—ढोटा एक भयौ कैसेहुँ करि कौन कौन करबर बिधि भानी—३६८।

कैसो, कैसौ—वि. [हिं. कैसा] कैसा। उ.—उनहूँ कैं गृह, सुत, द्वारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसो—२-१४।

क्रि. वि. [हिं. का+सा] के समान, की तरह। उ.—कबहुँ नाहिं इहिं भाँति देख्यौ आजु कैसौ रंग—४१७।

कैहूँ—क्रि. वि. [हिं. कै=कैसे+हूँ (प्रत्य.)] **किस तरह, किस प्रकार।**

कैहैं—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहेंगे।** उ.—सबै कैहैं इहै भली मति तुम यहै नंद के कुँवर दोउ मल्ल मारे—२६०५।

कैहै—क्रि. स. [हिं. करना] **करेगा, संपादन करेगा।** उ.—कह्यौ तोहिं ग्राह आनि जब गैहै। तू नारायन सुमिरन कैहै—८-२।

कैहौं—क्रि. स. [हिं. करना] **करूँगा।** उ.—जब मैं भक्ति स्याम की कैहौं। जानत नहीं कहा मैं पैहौं—४-६।

कैहौ—क्रि. स. [हिं. कहना] **कहोगे, मुख से बोलोगे।** उ.—(क) एक गाँव एक ठाँव को बास एक तुम कैहौ, क्यों मैं सैहौं—८४३। (ख) कबहुक तात तात मेरे मोहन या मुख मोसौं कैहौ—२६५०।

कोंइछा—संज्ञा पुं. [हिं. कोंछा] **आँचल का भाग जिसमें कुछ बाँधकर कमर में खोंसा जाय।**

कोंई—संज्ञा स्त्री. [सं. कुमुदिनी, प्रा. कुउई] **कुमुदिनी।**

कोंचना—क्रि. स. [सं. कुच्] **चुभाना, गड़ाना।**

कोंचा—संज्ञा पुं. [हिं. कोंचना] **(१) पक्षी फँसाने की लासा लगी लग्घी। (२) भड़भूजे का कलछा।**

कोंछ—संज्ञा पुं. [सं. कक्ष, प्रा. कच्छ] **स्त्रियों के अंचल का छोर या कोना।**

कोंछना—क्रि. स. [हिं. कोंछ] **स्त्रियों की साड़ी का या मर्दों की बंगाली ढंग से पहनी जानेवाली धोती का आगे का भाग चुनना।**

कोंछियाना—क्रि. स. [हिं. कोंछ] **कोंछना।**

कोंछी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोंछ] **साड़ी या धोती का वह भाग जो चुनकर पेट के आगे खोंसा जाय, नीबी।**

कोंड़ई—संज्ञा पुं. [देश.] **एक कँटीला पेड़।**

कोंड़हा, कोंढ़ा—संज्ञा पुं. [सं. कुंडल] **धातु का छल्ला।**

कोंढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कोष्ठ] **कली जो खिली न हो।**

कोंध—संज्ञा स्त्री. [सं. कोण अथवा कुत्र, पु. हिं. कोद, कोध] **दिशा, ओर।** उ०—एक कोंध ब्रज सुन्दरी एक कोंध ग्वाल-गोविन्द हो। सरस परस्पर गावहीं द नारि गारि बहु वृंद हो—२४४६।

कोंप—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोंपल] **कल्ला, अंकुर।**

कोंपना—क्रि. अ. [हिं. कोंपल] **कोंपल निकलना।**

कोंपर—संज्ञा पुं. [हिं. कोंपल] **अधपका आम।**

कोंपल—संज्ञा स्त्री. [सं. कोमल या कुपल्लव] **नयी पत्ती, कल्ला, कनखा।**

कोंवर, कोंवरी—वि. स्त्री. [सं. कोमल] **(१) कोमल, नरम, मुलायम। (२) सहनीय, भली लगनेवाली।** उ.—प्रात-समय रवि-किरनि कोंवरी, सो कहि सुतहिं बतावति है। आउ धाम मेरे लाल कैं आँगन, बाल केलि कों गावति है—१०-७३।

कोंस—संज्ञा पुं. [सं. कोश] **लंबी कली, छीमी।**

कोंहड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. कुम्हड़ा] **कुम्हड़ा, सीताफल।**

कोंहड़ौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोंहड़ा = कुम्हड़ा + बरी] **कुम्हड़े या पेठे की बरी।**

कोंहरा—संज्ञा पुं. [देश.] **उबाले हुए चने या मटर जो छौंक कर खाये जाते हैं।**

कोंहार—संज्ञा पुं. [हिं. कुम्हार] **कुम्हार।**

को—सर्व [सं. कः] **कौन, किसने।** उ.—(क) ऐसी को करी अरु भक्त काजैं। जैसी जगदीस जिय धारी लाजैं—१-५। (ख) तू को? कौन देश है तेरौ, कै छल गह्यौ राज सब मेरो—१-२९०।

प्रत्य.—**कर्म और संप्रदान कारकों की विभक्ति।**

कोआ—संज्ञा पु. [सं. कोश या हिं. कोसा] **(१) रेशम का कीड़ा। (२) रेशमी कीड़े का घर। (३) कटहल का कोया।**

कोइ—प्रत्य. [हिं. का] **का।** उ.—सुनि देवता बड़े, जगपावन तू पति या कुल कोई—१०-५६।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कुँई] **कुमुदिनी।** उ.—पूरनमुख चंद्र देख नैन-कोइ फूलीं—६४२।

कोइरी—संज्ञा. [हिं. कोपर=साग-पात] **साग-तरकारी बोने वाली एक जाति।**

कोइल, कोइलिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] **(१) मथानी में लगी गोल छेददार लकड़ी। (२) करघी के बगल में लगी करघे की लकड़ी।**

संज्ञा स्त्री. [सं. कोकिल, हिं. कोयल] **कोयल।**

कोइली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोयल] **कच्चा आम जिस पर कोयल के बैठने से काला सा दाग पड़ जाय।**

कोई—सर्व. [सं. कोपि, प्रा. कोवि] **(१) अज्ञात मनुष्य या पदार्थ। (२) अनिर्देशित व्यक्ति या वस्तु। (३) एक**

भी (मनुष्य)। उ.—हरि सौं मीत न देख्यो कोई—१-१०।

वि.—(१) मनुष्य या पदार्थ जो अज्ञात हो। (२) अनेक में से कोई एक। (३) एक भी।

क्रि. वि.—लगभग।

कोउ—सर्व. [हिं. को + हू = भी] कोई। उ.—सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै—१-४।

कोउक—सर्व. [हिं. कोउ + एक] कोइ एक, कुछ लोग।

कोऊ—सर्व. [हिं. को+हू (प्रत्य.)=भी] कोई, कोई भी। उ.—गनिका-सुत सोभा नहिं पावत, जाके कुल कोऊ न पिता री—१-३४।

कोकंब—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़ जिसके सब भाग खट्टे होते हैं।

कोक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चकवा पक्षी, चक्रवाक। उ.—सूरस्याम पर गई बारनै निरख कोक जनु कोकी—सा. ११२। (२) कोकदेव जो रतिशास्त्र के आचार्य थे। (३) संगीत का एक भेद। (४) विष्णु। (५) भेड़िया।

कोकई—वि. [तु. कोक] गुलाबीपन लिये नीला।

कोककला—संज्ञा स्त्री. [सं.] रति विद्या, कामशास्त्र। उ.—(क) हाव-भाव, कटाच्छ लोचन, कोक-कला सुभाई—६६०। (ख) कोककला-गुन प्रगटे भारी—१२१६। (ग) कोककला वितपन्न भई हौ कान्हरूप तनु आधा—१४३७।

कोकन—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

कोकनद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लाल कमल। (२) लाल कुमुद।

कोकना—क्रि. स. [फ़ा. कोक = कच्ची सिलाई] कच्ची सिलाई करना, लंगर डालना।

कोकनी—संज्ञा पुं. [सं. कोक = चकवा] एक तरह का तीतर।

संज्ञा पुं. [तु. कोक = आसमानी] एक रंग।

वि. [देश.] (१) छोटा, नन्हा। (२) घटिया, मामूली।

कोकम—संज्ञा पुं. [देश.] एक दक्षिणी पेड़।

कोकव—संज्ञा पुं० [सं.] एक राग।

कोकशास्त्र—संज्ञा पुं. [सं.] कोकदेव नामक एक पंडित-कृत रति-शास्त्र।

कोका—संज्ञा पुं. [हिं. कोक] एक तरह का कबूतर।

संज्ञा पुं.—चकवा।

कोकाबेरी, कोकाबेली—संज्ञा स्त्री. [सं. कोका + हिं बेली] नीली कुईं या कुमुदिनी

कोकाह—संज्ञा पुं. [सं.] सफेद रंग का घोड़ा।

कोकिल—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) कोयल। (२) छप्पय छंद का एक भेद।

कोकिल'—संज्ञा स्त्री. [सं.] कोयल।

कोकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मादा चकवा।

कोको—संज्ञा स्त्री. [अनु.] कौआ।

कोख—संज्ञा पुं० [सं० कुक्षि, प्रा. कुक्खि] (१) गर्भाशय। उ०—(क) जसुमति कोख आय हरि प्रगटे असुर तिमिर कर दूर—सारा. ३६। (ख) धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ, धनि घरि जिहिं अवतारी—७०३।

मुहा०—कोख भाग सुहाग भरी—पति-पुत्र का सुख देखनेवाली और भाग्यवती। उ.—धनि दिन है, धनि यह राति, धनि-धनि पहर-घरी। धनि धनि महरि की कोख, भाग-सुहाग भरी—१०-२४। कोख की आँच—संतान का वियोग, संतान की ममता।

(२) उदर, पेट। (३) पेट के दोनों बगलों का स्थान।

कोखजली—वि. स्त्री. [हिं. कोख + जलना] जिसकी संतान मर जाती हो।

कोखबंद—वि. [हिं. कोख + बंद] जिसके संतान हुई ही न हो, बाँझ।

कोखि—संज्ञा स्त्री. [सं. कुक्षि, प्रा. कुक्खि, हिं. कोख] गर्भाशय, गर्भ। उ.—(क) याकी कोखि औतरै जो सुत करै प्रान-परिहारा—१०-४। (ख) अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोखि कौ जायौ—३४६। (ग) तिनमें प्रथम लियो कश्यप गृह दिति की कोखि मँझार—सारा. ४४।

कोखिजरी—वि. स्त्री. [हिं. कोख+जलना] जिसकी संतान जीवित न रहे, जिसे संतान का सुख न मिले। उ.—पाऊँ कहाँ खिलावन कौ सुख, मैं दुखिया दुख कोखिजरी—१०-८०।

कोगी—संज्ञा पुं. [देश.] एक जानवर (सोनहा) जो लोमड़ी के बराबर होता है।

कोचना—क्रि. स. [सं. कुच् = लिखना] चुभाना, गड़ाना।

कोचरा—संज्ञा पुं. [देश.] एक घनी लता।

कोचरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक पक्षी ।

कोचा—संज्ञा पुं. [हिं. कोचना] (१) हल्का घाव । (२) चुटीली बात, ताना ।

कोजागर—संज्ञा पुं. [सं.] शरद की पूर्णिमा ।

कोट—संज्ञा पुं. [सं. कोटि] (१) यूथ, जत्था । (२) समूह, ढेर । उ.—(क) सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी । सुमिरत पट कौ कोट बढ़्यौ तब, दुख-सागर उबरी—१-१६ । (ख) जैसे बने गिरिराज जू तैसे अन्न को कोट—६१२. (ग) दसहूँ दिसि तैं उदित होत हैं दावानल के कोट—२७०३ ।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) महल, राजप्रासाद । उ.—स्रवनन सुनत रहत जाको नित सो दरसन भये नैन । कंचन कोट कँगूरनि की छबि मानहु बैठे मैन—२५५८ । (२) दुर्ग, किला । उ.—(क) मय, माया-मय कोट सँवारो । ता मैं बैठि सुरनि जय करौ । तुम उनके मारे नहिं मरौ—७-७ । (ख) रही दे घूँघट पट की ओट । मनो कियो फिरि मान मवासो मनमथ बिकटे कोट—सा. उ. १६ । (३) शहरपनाह, प्राचीर ।

वि. [सं. कोटि] करोड़ । उ.—(क) राधे आज मदन-मद माती । सोहत सुंदर संग स्याम के षरचत कोट काम कल थाती—सा. ५० । (ख) भादौं की अधराति अँध्यारी । द्वार-कपाट कोट भट रोके दस दिसि कंत कंस-भय भारी—१०-११ ।

कोटपाल—संज्ञा पु० [सं.] दुर्गरक्षक ।

कोटर—संज्ञा पुं [सं०] (१) पेड़ का खोखला भाग । (२) दुर्ग के आसपास का वन ।

कोटरी—संज्ञा स्त्री [सं०] दुर्गा, चंडिका ।

कोटि—वि. [सं.] सौ लाख की संख्या, करोड़ ।

संज्ञा स्त्री [सं.] (१) धनुष का सिरा । (२) वर्ग, श्रेणी । (३) उत्तमता । (४) समूह, जत्था ।

कोटिक—वि. [सं कोटि + क (प्रत्य.)] (१) करोड़ । (२) अमित, असंख्य ।

कोटिक्रम—संज्ञा पुं. [सं.] विषय-प्रतिपादन-क्रम ।

कोटिच्युत—वि. [सं.] पद से नीचे भेजा हुआ ।

कोटिच्युति—संज्ञा स्त्री. [सं.] पद से गिराने की क्रिया ।

कोटितीर्थ—संज्ञा पुं. [सं] एक तीर्थ जो उज्जैन, चित्रकूट आदि अनेक स्थानों पर है ।

कोटिनि—संज्ञा पुं. [सं. कोटि + हिं. नि (प्रत्य)] करोड़ों का समूह, ढेर । उ.—पांडु-बधू पटहीन सभा मैं, कोटिनि बसन पुजाए । बिपति काल सुमिरत तिहिं अवसर जहाँ तहाँ उठि धाए—१-१५८ ।

कोटिफली—संज्ञा पुं. [सं.] गोदावरी नदी के सागर संगम समीप एक तीर्थ । प्रसिद्धि है कि इंद्र का अहिल्या उबंधी पाप यहीं स्नान करने से दूर हुआ था ।

कोटिबंध—संज्ञा पुं. [सं.] पद, महत्व या मूल्य के अनुसार श्रेणी-विभाजन करना ।

कोटिबद्ध—वि. [सं.] श्रेणियों में विभक्त ।

कोटिशः—क्रि. वि. [सं०] बहुत तरह से ।

वि.—बहुत बहुत ।

कोटी—संज्ञा स्त्री. [सं. कोटि] (१) नोक या धार । उ.—मेली सजि मुख-अंबुज भीतर उपजी उपमा मोटी । मनु बराह भूधर सह पुहुमी धरी दसन की कोटी—१०-१६४ । (२) किसी अस्त्र की नोक ।

कोटू—संज्ञा पुं. [देश.] एक पौधा जिसके बीजों का आटा फलहार रूप में खाया जाता है ।

कोट्टवी—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) बाणासुर की माता जो पुत्र की श्रीकृष्ण से रक्षा के लिए वस्त्र त्याग कर युद्ध क्षेत्र में आयी थी । (२) वस्त्ररहित स्त्री । (३) दुर्गा ।

कोठ—वि. [सं. कुंठ] बहुत खट्टा ।

कोठरिया, कोठरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोठा + ड़ी (री)] छोटा या तंग कमरा ।

कोठा—संज्ञा पुं. [सं. कोष्ठक] (१) बड़ा कमरा । (२) भंडार । (३) अटारी । (४) पेट (५) गर्भाशय । (६) खाना (शतरंज या चौपड़) । (७) शरीर या मस्तिष्क का भीतरी भाग ।

कोठार—संज्ञा पुं. [हिं. कोठा] अन्न आदि का भंडार ।

कोठारी—संज्ञा पुं. [हिं. कोठार + ई (प्रत्य.)] भंडारी ।

कोठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोठा] (१) बड़ा और बढ़िया पक्का मकान । (२) उस धनी या महाजन का मकान जो खूब लेन-देन करता हो या थोक विक्रेता हो ।

मुहा.—कोठी खोलि—लेन देन का काम या बड़ा कारबार शुरू करके । उ.—करहु यह जस प्रगट

त्रिभुवन निठुर कोठी खोलि। कृपा चितवनि भुज उठावहु प्रेम बचननि बोलि—पृ. ३४२ (१७)।

(३) अनाज का भंडार या कोठार।

संज्ञा स्त्री [सं. कोटि=समूह] **बाँसों का समूह जो एक साथ उगे हों।**

कोठीवाल—संज्ञा पुं. [हिं. कोठी+वाला (प्रत्य.)] (१) बड़ा महाजन। (२) बड़ा व्यापारी।

कोड़ना—क्रि. स. [सं. कुंड=खंडित करना] **खेत गोड़ना।**

कोड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कवर=गुथे हुए बाल] (१) चाबुक, सोंटा। (२) उत्तेजक बात। (३) चेतावनी।

कोड़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोड़ना] **खेत गोड़ने की मजदूरी या काम।**

कोड़ाना—क्रि. स. [हिं. कोड़ना का प्रे.] **कोड़ने का काम दूसरे से कराना।**

कोड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कोटि] **बीस का समूह।**

कोढ़—संज्ञा पुं. [सं. कुष्ट] **एक भयानक रोग।**

मुहा.—कोढ़ की (में) खाज—**दुख पर दुख।**

कोढ़ी—संज्ञा पुं. [हिं. कोढ़] **कोढ़ नामक भयानक रोग से पीड़ित मनुष्य जो घृणित और अस्पृश्य समझा जाता है।** उ.—उल्टी रीति तिहारी ऊधौ सुनै सु ऐसी को है।...। मुडली पटिया पारि सँवारै कोढ़ी लावै केसरि।...। सो गति होई सबै ताकी जो ग्वारिनि जोग सिखावै—३०२६।

कोण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोना। (२) दो दिशाओं के बीच की दिशा। (३) हथियारों की धार। (४) सोटा, डंडा।

कोणार्क—संज्ञा पुं. [सं.] **एक तीर्थ जो जगन्नाथपुरी में है।**

कोत—संज्ञा स्त्री. [अ. कुवत] **बल, शक्ति।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. कोद, कोध] **दिशा।**

कोतल—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) सजा हुआ घोड़ा जिस पर कोई सवार न हो। (२) राजा की सवारी का घोड़ा।

वि.—**जिसे कोई काम न हो।**

कोतवार, कोतवाल—संज्ञा पुं. [सं. कोटपाल] (१) पुलिस का एक प्रधान कर्मचारी। (२) **सभा या पंचायत में भोजनादि का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी।**

कोतवाली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोतवाल+ई (प्रत्य.)] (१) **कोतवाल का कार्यस्थान।** (२) **कोतवाल का पद।**

कोतह—वि. [फ़ा.] **छोटा, कम।**

कोता, कोताह—वि. [फ़ा. कोतः] **छोटा, कम।**

कोताही—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **कमी, त्रुटि।**

कोति—संज्ञा स्त्री. [सं. कुत्र=किधर] **दिशा, ओर।**

कोथ—संज्ञा पुं. [सं.] **आँख का एक रोग।**

कोथला—संज्ञा पुं. [हिं. स्थल या कोठला] (१) बड़ा थैला। (२) पेट।

कोथली—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोथला] **रुपए रखने की थैली जो कमर में बाँध ली जाती है।**

कोथी—संज्ञा स्त्री. [देश.] **म्यान के सिरे का छल्ला।**

कोदंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **धनुष, कमान।** उ.—तोरि कोदंड मारि सब जोधा तब बल भुजा निहारयौ—२५८६। (२) धनराशि। (३) भौंह।

कोद—संज्ञा स्त्री. [सं. कोण अथवा कुत्र] (१) **दिशा, ओर।** उ.—(क) आनंदकंद, सकल सुखदायक, निसि दिन रहत केलि रस ओद। सूरदास प्रभु अंबुज लोचन, फिरि चितवत ब्रज-जन-कोद—१०-११६। (ख) नारि-नर सब देखि चकित भए, दवा लग्यौ चहुँ कोद—५६२। (२) **कोना।**

कोदइत—संज्ञा पुं. [हिं. कोदो+ऐत (प्रत्य.)] **कोदो दलने वाला।**

कोदई—संज्ञा स्त्री. [सं. कोद्रव] **कोदों।**

कोदन—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोद, कोध] **दिशा, ओर, तरफ।** उ.—अन्नकूट जैसो गोबर्धन। अरु पकवान धरे चहुँ कोदन—१०२५।

कोदरा, कोद्व—संज्ञा पुं. [हिं. कोदो] **एक कदन्न।**

कोदवला—संज्ञा स्त्री. [हिं, कोदो] **एक घास।**

कोदों, कोदो—संज्ञा पुं. [सं. कोद्रव] **एक कदन्न।**

मुहा.—कोदों देकर पढ़ना (सीखना)-बेढंगी शिक्षा पाना। छाती पर कोदों दलना—दूसरे को बेबस करके कुढ़ाना या जलाना।

कोद्रव—संज्ञा पुं. [सं.] **कोदो, कोदई।**

कोध—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोद] **ओर, दिशा।** उ.—(क) नर नारी सब देखि चकित भे दावा लग्यो चहुँ कोध। (ख) एक कोध गोविंद ग्वाल सब एक कोध ब्रज-नारि—२३६६।

कोन—संज्ञा पुं. [सं. कोण] कोना, कोर, किनारा। उ.—(क) नैन कोन की अंजन-रेखा पटतर कहूँ न छीजै—२१६७। (ख) तीनि लोक जाकैं उदर-भवन, सो सूप कैं कोन परयौ है (हो)—१०-१२८।

कोना—संज्ञा पुं. [सं. कोण] (१) कोण, अंतराल। (२) नुकीला सिरा। (३) (वस्त्र या इमारत का) छोर या खूँट। (४) एकांत स्थान।

कोनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोना] (१) दीवार के कोने पर चीज रखने की पटिया। (२) मूर्ति आदि के कोनों का सजाना।

कोनी—सर्व. [हिं. कौन+ई] कौन, कौन (स्त्री०)। उ.—अरुन अधर दसनावली छबि बरनै कोनी (कौनी)—१८२१।

कोप—संज्ञा पुं. [सं.] क्रोध, रिस, गुस्सा। उ.—मदन बान कमान ल्यायौ करषि कोप चढ़ाय—सा. ३२।

कोपन—वि. [हिं. कोपी] क्रोध करनेवाला।

कोपना—क्रि. अ. [सं. कोप] क्रोध करना, नाराज होना।

वि.—क्रोध में भरी हुई, अप्रसन्न।

कोपभवन—संज्ञा पुं. [सं.] वह स्थान जहाँ कोई स्त्री-पुरुष अपने मित्रों-संबंधियों से अप्रसन्न होकर चला जाय।

कोपर—संज्ञा पुं. [सं. कपाल] कुंडेदार बड़ा थाल या परात। उ.—(क) दधि-फल-दूब कनक कोपर भरि साजत सौंज बिचित्र बनाई—६-१६६। (ख) मनि-मय आसन आनि धरे। दधि-मधु-नीर कनक के कोपर आपुन भरत भरे—६-१७१।

संज्ञा पुं. [सं. कोमल या कुपल्लव] डाल का पका आम।

कोपल—संज्ञा पुं. [सं. कोमल या कुपल्लव] नयी पत्ती, कल्ला, अंकुर।

कोपलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक बेल।

कोपली—वि. [हिं. कोपल] नये निकले हुए पत्ते के रंग का, बैंगनी रंग का।

संज्ञा पुं.—कालापन लिये हुए लाल या बैंगनी रंग।

कोपि—क्रि. अ. [सं. कोप, हिं. कोपना] कोप करके, क्रोधित होकर। उ.—(क) कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं, पांडु की बधू जस नैंकु गायौ—१-५। (ख) कोपि कै प्रभु बान लीन्हौ तबहिं धनुष चढ़ाइ—६-६७।

कोपित—वि. [सं. कुपित] (१) क्रुद्ध, क्रोधित। उ०—प्रात इन्द्र कोपित जलधर लै ब्रज मंडल पर छायौ—३०७७। (२) अप्रसन्न।

कोपी—वि. [सं. कोपिन] (१) कोप करनेवाला, क्रुद्ध, अप्रसन्न। उ०—सब ते परम मनोहर गोपी। ····। बारे कुबिजा के रंगहि राँचे तदपि तजी सोपी। तदापि न तजै भजै निसि-बासर नेकहू न कोपी-३१८७। (२) जल के किनारे रहनेवाला एक पक्षी।

वि. [सं. कोऽपि] कोई, कोई भी।

कोपीन—संज्ञा पुं. [सं. कौपीन] साधु-संन्यासियों की लँगोटी, कफनी, काछा।

कोपे—क्रि. अ. [सं. कोप, हिं. कोपना] क्रोधित हुए, क्रुद्ध हुए। उ.—आजु अति कोपे हैं रनराम—१५८।

कोपै—क्रि. अ. [हिं. कोपना] क्रोध करता है, रुष्ट होता है। उ.—कोपै तात प्रह्लाद भगत कौ, नामहिं लेत जरै—१८२।

कोपो—क्रि. अ. भूत. [हिं. कोप्यौ] क्रुद्ध हुआ। उ.—आजु रन कोपो भीमकुमार—सा. ७४।

कोप्यौ—क्रि. अ. [हिं. कोपना] क्रोध किया, क्रुद्ध हुआ। उ.—(क) जौ सुरपति कोप्यौ ब्रज ऊपर, क्रोध न कछू सरै—१-३७। (ख) इत पारथ कोप्यौ है हम पर, उत भीषम भट राउ—१-२७४।

कोफ्त—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) दुख। (२) परेशानी।

कोबिद—वि. [सं. कोविद] पंडित, विद्वान। उ.—परम कुशल कोविद लीलानट, मुसुकनि मन हरि लेत—१०-१५४।

कोबिदा—वि. स्त्री. [सं. कोविद] पंडिता, प्रौढ़ा। उ.—सूरस्याम कोविदा सुभूषन कर बिपरीत बनावै—सा. ५।

कोबिदार—संज्ञा पुं. [सं. कोविदार] कचनार का पेड़ या फूल।

कोमता—संज्ञा पुं. [देश.] एक कँटीला पेड़।

कोमल—वि. [सं.] (१) मृदु। (२) सुन्दर, मनोहर।

(३) सुकुमार। (४) कच्चा। (५) संगीत में स्वर का एक भेद।

कोमलता, कोमलताई—संज्ञा स्त्री. [सं. कोमलता] (१) मृदुता। (२) मधुरता, सुन्दरता।

कोमला, कोमलावृत्ति—संज्ञा स्त्री. [सं.] काव्य में एक मधुर वृत्ति।

कोमलाई—संज्ञा स्त्री. [सं. कोमलता] (१) कोमलता। (२) मधुरता।

कोय—सर्व. [हिं. कोई] कोई। उ.—निश्चय किए मुक्त सब माधव ताते जिये न कोय—१९५ सारा.।

कोयर—संज्ञा पुं. [सं. कोंपल] (१) साग-सब्जी। (२) हरा चारा।

कोयल—संज्ञा स्त्री. [सं. कोकिल] कोकिला।

संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

कोयला—संज्ञा पुं. [सं. कोकिल=जलता हुआ अंगारा] (१) जला हुआ काला पदार्थ जो अंगारा बुझाने से बच जाता है। (२) एक खनिज पदार्थ।

संज्ञा पुं. [देश.] सोम नाम का पेड़।

कोया—संज्ञा पुं. [सं. कोण] (१) आँख का डेला। (२) आँख का कोना।

संज्ञा पुं. [सं. कोश] कटहल के फल की गुठली जिसमें बीज रहता है।

कोर—संज्ञा स्त्री. [सं. कोण] (१) किनारा, सिरा। सिय अंदेस जानि सूरज-प्रभु लियौ करज की कोर—९२३। (२) कोना। उ.—(क) सूरके प्रभु कृपासागर चितै लोचन कोर। बढ़यौ बसन-प्रवाह जल ज्यौं, होत जयजय सोर—१-२५३। (ख) मन हर लियो तनक चितवनि में चपल नैन की कोर—३१४३।

मुहा.—कोर दबना—वश, अधिकार या दबाव में होना।

(३) बैर, द्वेष। उ.—उततें सूत्र न टारत कतहूँ मोसों मानत कोर—पृ. ३३५। (४) दोष, बुराई। (५) हथियार की धार। (६) पंक्ति, कतार। (७) स्थान, घर। उ.—स्रवन ध्वनि सुर नाद मोहत करत हिरदे कोर—३३३५। (८) रेखा। उ.—बहुरौ देख्यौ ससि की ओर। तामैं देखि स्यामता कोर—५-३।

संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) चैती की पहली सिंचाई। (२) जलपान का चबेना।

संज्ञा पुं. [सं.] शरीर के अवयवों की वह संधि जहाँ से वे मुड़ सकते हैं; उँगली, कुहनी आदि की संधि, गाँठ, पोर। उ.—इक सखी मिलि हँसति पूछति खैंचि कर की कोर—३३८९।

संज्ञा पुं. [सं. क्रोड़, हिं. कोरा] (१) गोद, उछंग, फंदा, पकड़। उ.—कँपति स्वास त्रास अति मोकति ज्यौं मृग केहरि कोर—२१६२। (२) आलिंगन। उ.—सूर स्याम स्यामा भरि कोर अरस परस रीझत उपरै नाहीं मैं समाई—१५६५।

कोरक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कली, अधखिला फूल। (२) फूल की हरी कटोरी जिसमें फूल रहता है; कमल की डंडी।

कोरकसर—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोर+फ़ा. कसर] (१) दोष और कमी। (२) कमी-बेशी।

कोरत—क्रि. स. [हिं. कोरना, कोड़ना] कटता है, खुरचता है, कुरेदा जाता है, कचोटता है। उ.—सूर स्याम पिय मेरे तौ तुम ही जिय तुम बिनु देखे मेरो हिय कोरत—१५२०।

कोरना—क्रि. स. [हिं. कोड़ना] (१) गोड़ना, खोदना। (२) कुतरना, कुरेदना।

क्रि. स. [हिं. कोर+ना (प्रत्य.)] लकड़ी छील-छाल कर नुकीली करना।

कोरनि—संज्ञा पुं. [सं. क्रोड़, हिं. कोरा+नि प्रत्य.)] गोद में, पकड़ में। उ.—मन्मथ पीर अधिक तनु कंपित ज्यौं मृग केहरि कोरनि—२८४२।

कोरवा—संज्ञा पुं. [हिं. कोरा] गोद।

कोरहा—वि. [हिं. कोरा+हा (प्रत्य.)]। नोकदार।

वि. [हिं. कोरा=गोद] गोद में ही रहनेवाला।

कोरा—वि. [सं. केवल] (१) जो काम में न लाया गया हो, अछूता, नया। (२) जो धोया न गया हो। (३) जिस (कागज इत्यादि) पर कुछ लिखा न गया हो, सादा। (४) खाली, रहित। (५) दोष या पाप से रहित। (६) अपढ़। (७) निर्धन। (८) केवल, खाली।

संज्ञा पुं. [सं. करक] **एक चिड़िया।**

संज्ञा पुं. [सं. क्रोड़] **गोद**। उ.—(क) कान्हैं जमुमति कोरा तैं रुचि करि कंठ लगाये—**१०-५३**। (ख) नंद उठाइ लिये कोरा करि, अपनैं सँग पौढ़ाइ—**५१८**।

कोरापन—संज्ञा पुं. [हिं. कोरा + पन (प्रत्य)] **अछूतापन, नयापन**।

कोरि—वि. [सं. कोटि] **करोड़**। उ.—तुरतहीं तोरि, गनि, कोरि सकटनि जोरि, ठाढ़े भये पौरिया तब सुनाये—**५८४**।

कोरिया—संज्ञा पुं. [सं. कोल = सुअर, हिं. कोरी] **हिंदुओं में एक जाति, कोरी जो कपड़ा बुनने का कार्य करते हैं, हिन्दू जुलाहे**।

संज्ञा स्त्री.—**झोपड़ी**। उ.—ढूँढ़ि फिरे घर कोउ न बतायौ स्वपच कोरिया लौं—**१-१५१**।

कोरी—संज्ञा पुं. [सं. कोल=सुअर] **हिंदुओं में एक छोटी जाति जो कपड़े बुनती है**।

संज्ञा स्त्री. [सं. कोरि या अँ. स्कोर] **बीस का समूह, कोड़ी**।

वि. [सं. कोटि, हिं. कोरि] **करोड़ों**। उ.—(क) ब्रज कहा खोरी। छत अरु अछत एक रस अंतर मिटत नहीं कोइ करहु कोरी—**२८६०**। (ख) निकसे देत असीस एक मुख गावत कीरति कोरी—**१० उ.—१५१**।

संज्ञा पुं. [सं. क्रोड, हिं. कोर] (१) **गोद**। (२) **आलिंगन**। उ.—निधि लौं भरत कोस अभ्यंतर जो हित कहो सु थोरी। भ्रमत भोर सुख और सुमन सँग कमल देत नहिं कोरी—**३२४४**।

वि. स्त्री. [हिं. कोरा] (१) **जो काम में न लायी गयी हो, नयी**। उ.—(क) जाउ लेहु आरे पर राखो काल्हि मोल लै राखै कोरी। (ख) कोरी मटुकी दह्यौ जमायौ जाख न पूजन पायौ—**३४६**। (२) **जो धोयी न गयी हो**। (३) **जो रँगी, लिखी या चित्रित न हो, सादी**। (४) **रहित**। (५) **दोषरहित, निष्कलंक**। उ.—दिन थोरी भोरी अति कोरी देखत ही जु स्याम भये चाढ़ी। (६) **अपढ़**। (७) **निर्धन**। (८) **खाली, केवल**। (९) **सादी, जिसमें घी न लगा हो**। उ.—रोटी, बाटी, पोरी, झोरी। इक कोरी इक घीव चभोरी—**३९६**।

कोरे—वि. [हिं. कोरा] (१) **ताजा, हरा, जो सूखा न हो**। उ.—मधुप करत घर कोरे काठ मैं बँधत कमल के पात—**३३८६**। (२) **सूखे, जो पानी, दही या खटाई में भिगोये न गये हों**। उ.—मूँग-पकौरा पनौ पतबरा। इक कोरे इक भिजे गुरबरा—**३९६**। (३) **नये, जो पहने न गये हों, जो धुले न हों**। उ.—काढ़ौ कोरे कापरा (अरु) काढ़ौ घी के मौन। जाति-पाँति पहिराइ कै (सब) समदि छतीसौ पौन—**१०-४०**।

कोरो—संज्ञा पुं. [हिं. कोर] (१) **खपरैल का नीचे का बाँस**। (२) **रेंड का सूखा पेड़**।

कोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सुअर**। (२) **गोद**। (३) **आलिंगन की स्थिति में दोनों भुजाओं के बीच का स्थान**। (४) **एक जंगली जाति**। (५) **काली मिर्च**। (६) **बेर का फल**।

कोलना—क्रि. स. [सं. क्रोड़न] **लकड़ी, पत्थर आदि को बीच से खोखला करना**।

क्रि. स.—**बेचैन होना**।

कोलाहल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **शोरगुल, हल्ला**। (२) **एक संकर राग**।

कोलिया—संज्ञा स्त्री. [सं. कोल = रास्ता] (१) **पतली गली**। (२) **पतला पर लंबा खेत**।

कोली—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रोड़, प्रा. कोल] **गोद, अँकवार**।

संज्ञा पुं. [हिं. कोरी] **हिंदू जुलाहा**।

कोल्हू—संज्ञा पुं. [हिं. कूल्हा ?] **तेल पेरने का यंत्र**।

कोविद—वि. [सं.] (१) **पंडित, विद्वान**। (२) **चतुर, प्रवीण**। उ.—सूर स्याम हित जानि कै सब काम कोविद निजकर कुटी सँवारी—**२२६६**।

कोविदार—संज्ञा पुं. [सं.] **कचनार का पेड़ या फूल**।

कोश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अंडा**। (२) **गोलक**। (३) **बिनखिली कली**। (४) **शराब का प्याला**। (५) **पूजा का पंचपात्र**। (६) **तलवार आदि की म्यान**। (७) **आवरण, खोल**। (८) **थैली**। (९) **वह ग्रंथ जिसमें शब्द और उसके अर्थ संकलित हों**। (१०) **रेशम,**

कटहल आदि का कोया। (११) संचित धन, खजाना।

कोशकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शब्द-कोश बनानेवाला। (२) म्यान आदि बनानेवाला। (३) रेशम का कीड़ा।

कोशज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रेशम। (२) शंख घोंघे आदि जीव। (३) मोती।

कोशपाल—संज्ञा पुं. [सं.] कोशाध्यक्ष।

कोशल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सरयू और घाघरा का तटवर्ती प्रदेश जिसकी प्राचीन राजधानी अयोध्या थी। (२) अयोध्या नगर। (३) एक राग।

कोशला—संज्ञा स्त्री. [सं.] अयोध्या जो कोशल की प्राचीन राजधानी थी।

कोशलिक—संज्ञा पुं. [सं.] घूस, उत्कोच।

कोशागार—संज्ञा पुं. [सं.] खजाना, भंडार।

कोशाधिप, कोशाधिपति, कोशाधीष, कोशाध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं] खजांची भंडारी।

कोशिश—संज्ञा पुं. [फ़ा.] चेष्टा, प्रयत्न।

कोष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फूलों की बँधी कली। उ.—सूर-मधुप निसि कमल-कोष-बस, करौ कृपा दिन-भान—१-१००। (२) म्यान। (३) संचित धन। (४) समूह। (५) शब्द-कोश। (६) कोया।

कोषाधिप, कोषाधिपति, कोषाधीश, कोषाध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] खजांची, भंडारी।

कोष्ठ—संज्ञा पुं. [सं] (१) पेट का भीतर भाग। (२) कोठा। (३) भंडार, खजाना। (४) चारो ओर से घिरा स्थान।

कोष्ठक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थान को घेरने की दीवार या लकीर। (२) बहुत से खानेवाला चक्र। (३) ब्राइकेट।

कोस—संज्ञा पुं. [सं. कोश] फूलों की बँधी हुई कली। उ.—बात-बस समृनाल जैसैं प्रात पंकज-कोस। नमित मुख इमि अधर सूचत सकुच मैं कछु रोस—३५०।

संज्ञा पुं. [सं. कोश] दो मील की नाप। उ.—कोस द्वादस रास परिमित रच्यौ नंदकुमार—१८३७।

मुहा०—काले कोसों—बहुत दूर। कोसों दूर रहना या भागना—बहुत दूर रहना।

क्रि. स. [सं. क्रोशण] गाली देना, बुरा मनाना।

मुहा.—पानी पीकर कोसना—बहुत बुरा मनाना।

कोसनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. कोस+नि (प्रत्य.)] कोसों, कोसों तक।

मुहा.—कारे कोसनि—काले कोसों—बहुत दूर। उ.—मथुरा हुते गए सखी री अब हरि कारे कोसनि—१० उ.-१८८।

कोसम, कोसम—संज्ञा पुं. [सं. कोशाम्र] एक बड़ा पेड़।

कोसल—संज्ञा पुं. [सं. कौशल] कोशल देश जिसकी राजधानी अयोध्या थी।

कोसलपति—संज्ञा पुं. [सं. कोशलपति] (१) श्री रामचंद्र। उ.—सीता करति बिचार मनहिं मन, आजु-काल्हि कोसलपति आवैं—९-८२। (२) राजा दशरथ।

कोसलपुर—संज्ञा पुं. [सं. कोशलपुर] अयोध्या नगर।

कोसा—संज्ञा पुं. [हिं. कोश] एक तरह का रेशम।

संज्ञा पुं. [सं. कोश=प्याला] बड़े दीपक की तरह का मिट्टी का पात्र।

कोसाकाटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कोसना+काटना] बहुत बुरा मनाना।

कोसिबे—क्रि.स. [हिं. कोसना] कोसने, बुरा चेतने, बुरा-भला कहने। उ.—गहि-गहि पानि मदुकिया रीतौ, उरहन कैं मिस आवत-जात। करि मनुहार, कोसिबे कैं डर, भरि भरि देत जसोदा मात—१०-३३२।

कोसिला—संज्ञा स्त्री. [सं. कौशल्या] कौशल्या जो राजा दशरथ की पत्नी और श्रीराम की माता थी।

कोसी—संज्ञा स्त्री. [सं. कौशिकी] एक नदी।

कोसौं—क्रि० स० [हिं० कोसना] कोसूँ, बुरा चेतूँ, बुरा-भला कहूँ। उ०—जसुदा तू जो कहति ही मोसौं। दिनप्रति देत उरहनै आवति, कहा तिहारैं कोसौं—१०-३१५।

कोह—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध] क्रोध, गुस्सा। उ०—(क) अब मैं मरौं, सिंधु मैं बूड़ौं, चित मैं आवै कोह। सुनौ बच्छ, धिक जीवन मेरौ, लछिमन-राम-बिछोह—९-८३। (ख) जानिकै मैं रह्यौ ठाढ़ो, छुवत कहा जु मोहिं। सूर हरि खीझत सखा सौं, मनहिं कीन्हौ कोह—१०-२१३।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] पहाड़ ।

संज्ञा पुं० [सं० ककुभ, प्रा० कउह] अर्जुन वृक्ष ।

कोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० कफोणि] बाँह के बीच का जोड़।

कोहबर—संज्ञा पुं० [सं० कोष्ठवर] विवाह के अवसर पर कुलदेवता की स्थापना का स्थान ।

कोहरा—संज्ञा पुं० [हिं० कुहरा] कुहासा, कुहरा ।

कोहल—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाट्यशास्त्र के प्रणेता एक मुनि । (२) एक तरह की शराब । (३) एक बाजा ।

कोहाँर—संज्ञा पुं० [हिं० कुम्हार] कुम्हार ।

कोहा—संज्ञा पुं० [सं० कोश = पात्र] नाँद के आकार का मिट्टी का पात्र ।

कोहान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ऊँट का कूबड़, डिल्ला ।

कोहाना—क्रि० अ० [हिं० कोह = क्रोध] (१) रूठना। (२) क्रोध करना ।

कोही—वि० [हिं० क्रोध] क्रोधी, गुस्सैल । उ०—सुर अति छमी, असुर अति कोही—३-६ ।

वि० [फ़ा० कोह = पहाड़] पहाड़ का, पहाड़ी ।

कोहु—संज्ञा पुं० [सं० क्रोध, हिं० कोह] क्रोध, गुस्सा । उ०—कृपा करौ, मम प्रोहित होहु। कियौ बृहस्पति मोपर कोहु—६-५ ।

कौं—विभ०-प्रत्य० [हिं० को] कर्म और सम्प्रदान कारकों का विभक्ति-प्रत्यय, को । उ०—(क) जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कुछ दरसाइ—१-१ । (ख) सिव-बिरंचि मारन कौं धाए यह गति काहू देव न पाई—१-३ ।

कौंकिर—संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कर, हिं० कंकर] हीरे या काँच की कनी, किरिच या रेत । उ०—सुन री सखी इहै जिय मेरे भूलि न और चितैहौं । अब हठ सूर इहै व्रत मेरो कौंकिर खै मरि जैहौं—२७७६ ।

कौंकुम—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह के पुच्छल तारे ।

कौंच—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] एक बेल ।

कौंची—संज्ञा स्त्री० [सं० कंचिका] बाँस की पतली टहनी।

कौंछ—संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छु] एक बेल, केवाँच ।

कौंडिन्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुंडिन मुनि का पुत्र ।

कौंतिक—वि० [सं०] भाला या बरछा चलानेवाला ।

कौंतेय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंती के पुत्र । (२) अर्जुन वृक्ष ।

कौंध—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौंधना] बिजली की चमक ।

कौंधति—क्रि० अ० [हिं० कौंधना] बिजली चमकती है । उ०—बीच नदी, घन गरजत बरषत, दामिनि कौंधति जात—१०-१२ ।

कौंधना—क्रि० अ० [सं० कनन = चमकना + अंध] बिजली का चमकना ।

कौंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं० किंकिणी] करधनी।

कौंधा—संज्ञा स्त्री० [हिं० कौंधना] बिजली की चमक । उ०—कारी घटा सधूम देखियत अति गति पवन चलायौ । चारौ दिसा चितै किन देखौ दामिनि कौंधा लायौ ।

कौंधै—क्रि० अ० [हिं० कौंधना] बिजली चमके । उ०—घन-दामिनि धरती लौं कौंधै, जमुना-जल सौं पागे—१०-४ ।

कौंभ, कौंभसर्पि—संज्ञा पुं० [सं०] सौ वर्ष पुराना घी ।

कौंर—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ ।

कौंल—संज्ञा पुं० [सं० कमल] कमल ।

कौंवरा—संज्ञा पुं० [सं० कोमल] कोमल ।

कौंहर, कौंहरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक सुंदर लाल फल जिसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि इसके पास साँप नहीं आता । कवि इससे प्रायः एँड़ी की उपमा देते हैं ।

कौ—प्रत्य० [हिं० का] का । उ०—दुर्वासा कौ साप निवारयौ, अंबरीष-पति राखी—१-१० ।

कौआ—संज्ञा पुं० [सं० काक] काग, काक ।

कौआना—क्रि० अ० [हिं० कौआ] (१) चकित होकर इधर-उधर ताकना । (२) सोते-सोते बड़बड़ाने लगना ।

कौआर—संज्ञा पुं० [हिं० कौआ + सं० रव = शब्द] कौओं का शोरगुल ।

कौटिल्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) टेढ़ापन । (२) कपट, कुटिलता । (३) चाणक्य का एक नाम ।

कौटुंबिक—वि. [सं.] (१) कुटुम्ब संबंधी । (२) परिवार-वाला ।

कौड़ा—संज्ञा पुं. [सं. कपर्दक, प्रा. कवद्दअ, कवड्डुअ] बड़ी कौड़ी ।

संज्ञा पुं. [सं. कुंड] तापने का अलाव।

कौड़िया—वि. [हि. कौड़ी] कौड़ी के रंग का।

संज्ञा पुं. [हिं. कौड़िल्ल] कौड़िल्ला पत्ती, किलकिला पत्ती।

कौड़ियाला—वि. [हिं. कौड़ी] हल्के नीले रंग का।

संज्ञा पुं.—(१) हलका नीला रंग। (२) एक विषैला साँप जिस पर कौड़ी की तरह की चित्तियाँ होती हैं। (३) कंजूस धनी जो साँप की तरह रुपए पर बैठा रहे, खर्चे नहीं। (४) एक पौधा।

कौड़िल्ला—संज्ञा पुं. [हिं. कौड़ी] (१) किलकिला नाम की चिड़िया। (२) एक पौधा।

कौड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कपर्दिका, प्रा. कवड्डिआ] (१) एक समुद्री कीड़े का अस्थिकोष।

मुहा०—कौड़ीका—जिसका कुछ दाम न हो, बहुत मामूली। कौड़ी के तीन तीन—बहुत सस्ता। कौड़ी हू न लहै—कौड़ी को न लेना या पूछना—बिलकुल निकम्मा समझना, कुछ भी कदर न करना। उ०—सूरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न लहै—२७११। कौड़ी-कौड़ी करि—एक एक कौड़ी (जैसे पाई, पाई), कुछ भी न छोड़ना, जरा भी रियायत न करना। उ०—दान लेहुँ कौड़ी कौड़ी करि बैर आपने लैहों—११२५। कौड़ी कौड़ी को मुहताज—बहुत ही गरीब। कौड़ी कौड़ी चुकाना, भरना—पाई पाई अदा कर देना। कौड़ी फेरा करना—जरा जरा सी बात के लिए दौड़े आना। कौड़ी भर—बहुत जरा सा। कानी, झंझी या फूटी कौड़ी—(१) टूटी हुई कौड़ी। (२) बहुत थोड़ा धन। कौड़ी लगि मग की रज छानत—कौड़ी के लिए मारे मारे फिरना, तुच्छ वस्तु के लिए बहुत परिश्रम करना। उ०—सब सुख निधि हरिनाम महामुनि, सो पापहुँ नहिं पहिचानत। परम कुबुद्धि तुच्छ रस लोभी, कौड़ी लगि मग की रज छानत—१-११४। कौड़ी कौड़ी जोड़त—बहुत कष्ट से थोड़ा थोड़ा धन जोड़ता है। उ०—लंपट, धूत, पूत दमरी कौ, कौड़ी कौड़ी जोरै। कृपन, सूम, नहिं खाइ खवावै, खाइ मारि कै औरै—१-१८६।

(२) धन, रुपया-पैसा। (३) अधीन राजाओं से लिया जानेवाला कर। (४) आँख का डेला। (५) छाती के नीचे की हड्डी। (६) जंघे, काँख और गले की गिलटी। (७) कटार की नोक।

कौणप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राक्षस। (२) वासुकी-वंशज एक साँप। (३) पापी प्राणी।

कौणपदंड—संज्ञा पुं. [सं.] भीष्म।

कौतिक, कौतिग—संज्ञा पुं. [सं. कौतुक] खेल, कुतूहल, अद्भुत बात।

कौतुक—संज्ञा पुं. [सं.] उ०—(१) कुतूहल। (२) अचंभे की बात, अचंभा। उ०—तबही नंदराय जू आये कौतुक सुनि यह भारी। बिस्मित भये देव ने राख्यौ बालक यह सुखकारी—सारा. ४१६। (३) विनोद। उ.—संग गोप गोधन गन लीन्हे नाना गति कौतुक उपजावत—४८०। (४) प्रसन्नता। (५) खेल-तमाशा, खिलवाड़। उ०—(क) कौतुक करि मतंग तब मारयौ—२६४३। उ०—जहाँ तहाँ कौ कौतुक देखि। मन मैं पावै हर्ष बिसेषि—४-११। (६) विवाह में पहना जानेवाला सूत्र।

कौतुकिया—संज्ञा पुं. [हिं. कौतुक + इया] (१) कौतुक करनेवाला। (२) विवाह संबंध करनेवाला।

कौतुकी—वि. [सं.] (१) खेल तमाशा करनेवाला। (२) विवाह संबंध करनेवाला।

कौतूह, कौतूहल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खेल-तमाशे। उ०—(क) आनँद भरे करत कौतूहल, प्रेम-मगन नर नारी—१०-४। (ख) बन मैं जाइ करौ कौतूहल यह अपनौ है खेरौ—१०-२१६। (ग) ग्वाल-बाल सँग करत कौतूहल गवनपुरी मंझार—२५७२। (२) प्रसन्नता, आनंद। उ०—सुर नर मुनि फूले, झूलत देखत नंदकुमार—१०-८४।

कौतूहलता—संज्ञा स्त्री. [हिं. कुतूहल] कौतुक, कुतूहल।

कौत्स—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुत्स ऋषि के एक शिष्य। (२) कुत्स कृत साम-गान।

कौथ—संज्ञा स्त्री. [हिं. कौन+तिथि] (१) कौन सी तिथि? (२) कौन संबंध?

कौथा—वि. [हिं. कौन + सं. स्था (स्थान)] कौन सा? गणना में किस संख्या या स्थान का।

कौधनी—संज्ञा स्त्री. [सं. किंकिणी] करधनी।

कौन—सर्व. [सं० कः, किम्, प्रा. कवरण] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम जिसका प्रयोग व्यक्ति या वस्तु के संबंध में परिचय पाने के लिए किया जाता है।

वि.—किस जाति का? किस प्रकार का?

कौनप—संज्ञा पुं. [सं. कौरणप] (१) राक्षस। (२) एक सर्प।

कौना—सर्व० [हिं. कौन] किसे, किसको। उ.—नटवर अंग सुभ सजे सजौना। त्रिभुवन में बस कियो न कौना। सूर नन्द सुत मदन-लजौना—२४२१।

कौनी—वि० [हिं० कौन] किस, किसी। उ.—कहा करौं कौन भाँति मरौं मन धीरज न धरै—२९८३।

कौने—वि. [हिं. कौन] कौन, किस। उ.—मेरैं संग आइ दोउ बैठै, उन बिनु भोजन कौने काम—१०-२३५।

कौनेहुँ—वि. [हिं० कौन] किसी भी प्रकार से। उ.—कौनेहु भाव भजै कोउ हमकौ, तिन तनताप हरै री—७८७।

कौनैं—वि. [हिं. कौन] (१) कौनने, किसने। (२) क्या क्या। उ.—उद्यम कहा होत लंका कौं, कौनैं कियौ उपाय—९-१२१।

कौपीन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) साधुओं की लँगोटी। (२) कौपीन से ढके शरीर के भाग। (३) पाप। (४) बुरा काम।

कौम—संज्ञा स्त्री. [अ.] जाति, वर्ण।

कौमकुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक केतु तारा। (२) रक्त, खून।

कौमार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पाँच वर्ष तक की कुमार-अवस्था। (२) कुमार।

कौमारभृत्य—संज्ञा पुं. [सं.] बाल-चिकित्सा शास्त्र।

कौमारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पहली पत्नी। (२) कार्तिकेय की शक्ति। (३) पार्वती का एक नाम।

कौमी—वि. [अ. क़ौम] (१) जातीय। (२) राष्ट्रीय।

कौमुद—संज्ञा पुं. [सं.] कातिक मास।

कौमुदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चाँदी, ज्योत्स्ना। (२) कार्तिकी पूर्णिमा। (३) कार्तिकी पूर्णिमा का उत्सव। (४) कुमुदिनी।

कौमोदकी, कौमोदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] विष्णु की गदा।

कौर—संज्ञा पुं. [सं. कवल] (१) ग्रास, गस्सा, निवाला। उ.—(क) कौर-कौर कारन कुबुद्धि, जड़, किते सहत अपमान। जहँ-जहँ जात तहीं तहिं त्रासत अस्म, लकुट पदत्रान—१-१०३। (ख) तब आपुन कर कौर उठायौ—२३२१।

मुहा०—मुँह का कौर छीनना-किसी का हिस्सा मार लेना।

(२) अन्न का वह भाग जो चक्की में पिसने के लिए एक बार में डाला जाय।

कौरना—क्रि. स. [हिं. कौड़ा] भूनना, सेंकना।

कौरनि—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. कौरा + हिं. नि (प्रत्य.)] कोने-कोने में, कोने की दीवार पर। उ.—कौरनि सथिया चीतति नवनिधि—१०-३२।

कौरव—संज्ञा पुं. [सं.] कुरु राजा की संतान, दुर्योधन और उसके भाई।

वि.—कुरु सम्बन्धी।

कौरवपति—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्योधन।

कौरव्य—संज्ञा पुं. [सं.] कौरव।

कौरा—संज्ञा पुं. [सं. कोल, क्रोड़] द्वार का कोना।

संज्ञा पुं. [हिं. कौड़ा] (१) बड़ी कौड़ी। (२) आग तापने का अलाव।

कौरी—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रोड़] (१) गोद, अँकवार। (२) आलिंगन।

मुहा०—कौरी भर कर मिलना—सस्नेह आलिंगन करना। उ.—पाछे ते ललिता चन्द्रावलि हरि पकरे भुज भरि कौरी की—२४०५।

संज्ञा स्त्री.—एक मिठाई। उ.—(क) पेठा पाक, जलेबी, कौरी। गोंद पाक, तिनगरी, गिंदौरी—३९६। (ख) पूरि सपूरि कचौरी कौरी। सदल सु उज्ज्वल सुन्दर सौरी—२३२१।

कौरे—संज्ञा पुं. [हिं. कौड़ा] एक गली फल।

संज्ञा पुं. [हिं. क्रोड़] द्वार का कोना।

मुहा०—कौरे लगना—(१) दूसरे की बात सुनने या अन्य किसी घात में छिपकर द्वार के पीछे खड़े होना। उ.—मन जिनि सुनै बात यह माई। कौरे लग्यौ कितहूँ कहि दैहै सो जाई। (२) मुँह फुला कर या रूठकर द्वार के कोने में खड़ा होना।

क्रि. स. [हिं. कौरना] भूने, सेंके। उ.—कुंदरू

और ककोरा कौरे । कचरी चार कचेंडा सौरे —२३२१ ।

कौरैं—संज्ञा पुं. [हिं. कौरा] द्वार का कोना।

मुहा०—कौरैं लागी—पकड़ने की घात में थी, उसके पीछे लगी थी। उ०—माखन-चोर री मैंपायौ। बहुत दिवस मैं कौरैं लागी, मेरी घात न आयौ—१०-२८८ ।

कौरै—संज्ञा स्त्री. [हिं. कौरी] (१) अँकवार, गोद। (२) आलिंगन, छाती से लगना।

मुहा०—कौरै लग्यौ होइगो—छाती से लगा होगा, आलिंगित होगा। उ०—मन जिनि सुनै बात यह माई। कौरै लग्यौ होइगो कितहूँ कहि दैहै को जाई —१६६५ ।

कौरौ—संज्ञा पुं. [सं. कौरव] कुरुवंशी, कौरव। उ०—क्यों बिस्वास करहिगो कौरौ सुनि प्रभु कठिन कीती —११-३ ।

कौरौ-दल—संज्ञा पुं. [सं. कौरव + दल] कौरवों की सेना।

कौल—संज्ञा पुं. [सं.] उत्तम कुल का ।

संज्ञा पुं. [सं. कमल] कमल ।

संज्ञा पुं. [सं. कवल] कौर, ग्रास ।

संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का गाना ।

संज्ञा पुं. [तु. करावल] सेना की छावनी का मध्य भाग।

संज्ञा पुं. [अ.] (१) कथन, वाक्य। (२) प्रतिज्ञा, प्रण।

यौ०—कौल-करार—दृढ़ निश्चय।

कौला, कौले—संज्ञा पुं. [सं. कोल=क्रोड़, गोद ; हिं. कौरा] (१) द्वार का कोना, कौरा।

मुहा०—कौले लगना—द्वार के कोने में छिपना। कौला सींचना—पूजा आदि अवसरों पर द्वार के इधर-उधर पानी छिड़कना।

(२) पाला ।

कौलौं—क्रि. वि. [हिं. कौ = कौन या कब + लौं = तक] कब तक, किस समय तक। उ०—धिक तुम, धिक या कहिबे ऊपर। जीवित रहिहौ कौलौं भूपर—१-२८४ ।

कौवा—संज्ञा पुं. [सं. काक, प्रा. काओ] (१) एक काला पक्षी, कौआ, काग। (२) काँइयाँ आदमी। (३) गले की घाँटी, लँगर, ललरी।

कौवाल—संज्ञा पुं. [अ. क़ौवाल] मुसलमानी गवैयों की एक जाति।

कौवाली—संज्ञा स्त्री. [अ. क़ौवाली] (१) कौवालों का गाना। (२) कौवालों का पेशा।

कौश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुश नामक द्वीप। (२) रेशमी वस्त्र।

कौशल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कुशलता। (२) कोशल देशवासी।

कौशलेय—संज्ञा पुं. [सं.] कौशल्या का पुत्र, राम।

कौशल्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) राजा दशरथ की पत्नी जो राम की माता थी। (२) धृतराष्ट्र की माता। (३) पाँच बत्ती की आरती।

कौशिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) इंद्र। (२) कुशिक राजा के पुत्र गाधि। (३) कुशिक राजा के वंशज विश्वामित्र। (४) कोशाध्यक्ष। (५) कोशकार। (६) एक राग।

कौशिकी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) चंडिका। (२) कोसी नदी। (३) एक रागिनी। (४) काव्य में एक वृत्ति।

कौशिल्या—संज्ञा स्त्री. [सं. कौशल्या] राजा दशरथ की पत्नी जो राम की माता थी।

कौषिकी—संज्ञा स्त्री. [सं. कौशिकी] एक देवी, चंडिका।

कौषेय—वि. [सं.] रेशमी।

संज्ञा पुं.—रेशमी कपड़ा।

कौसल—संज्ञा पुं. [सं. कौशल] (१) चतुरता। (२) कोशल देशवासी।

कौसलनरेस—संज्ञा पुं. [सं. कोशलनरेश] श्रीरामचंद्रजी।

कौसल्या—संज्ञा स्त्री. [सं. कौशिल्या] राजा दशरथ की बड़ी रानी जो राम की माता थी।

कौसिक—संज्ञा पुं. [सं. कौशिक] (१) इंद्र। (२) विश्वामित्र।

कौसिया—संज्ञा पुं. [देश.] एक संकर राग।

कौसिला—संज्ञा स्त्री. [सं. कौशल्या] कौशल्या जो राजा दशरथ की पत्नी और राम की माता थी। उ.—रामहिं राखौ कोऊ जाइ। जब लगि भरत अजोध्या आवैं, कहति कौसिला माइ—९-४७ ।

कौसिल्या—संज्ञा स्त्री [सं. कौशल्या] राजा दशरथ की पत्नी जो राम की माता थी।

कौसुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगली कुसुम। (२) एक साग।

कौस्तुभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समुद्र से निकला हुआ एक रत्न जिसे विष्णु अपने वक्षस्थलपर धारण किये रहते हैं। (२) एक प्रकार की मणि।

कौस्तुभ-मनि-धर—संज्ञा पुं. [सं.] कौस्तुभ मनि को धारण करनेवाले विष्णु का अवतार श्रीकृष्ण। उ.—कंबु कंठ-धर कौस्तुभ-मनि-धर बनमालाधर मुक्त-माल-धर —५७२।

कौह—संज्ञा पुं. [सं. ककुभ] अर्जुन वृक्ष।

कौहर—संज्ञा पुं. [देश] इंद्रायन।

क्या—सर्व. [सं. किम्] एक प्रश्नवाचक सर्वनाम।

मुहा.—क्या कहना है (१) बहुत अच्छा है। (२) बहुत बुरा है (व्यंग्य)। क्या क्या—बहुत कुछ। (किसी की) क्या चलाना—बराबरी न कर पाना। क्या जाता है—क्या हानि होती है। क्या पड़ना—कुछ गरज न होना। क्या से क्या हो गया—दशा बिलकुल बदल गयी। क्या समझते (गिनते) हैं—कुछ नहीं गिनते। (तो) फिर क्या है—(तो) बड़ा अच्छा हो जाय।

वि.—(१) कितना। (२) इतना (ऐसा) ज्यादा। (३) विचित्र, अद्भुत। (४) बहुत अच्छा।

क्रि. वि.—(१) किस लिए ? किस कारण ?

मुहा.—ऐसा क्या—इसकी क्या जरूरत है ? क्या आये क्या चले—इतनी जल्दी जाने की क्या जरूरत है ?

(२) नहीं।

अव्य०—केवल प्रश्नसूचक अव्यय।

मुहा.—क्या आग में डालूँ—यह मेरे किस काम का है ?

क्यार—संज्ञा पुं. [सं. केदार] पेड़ का थाला।

क्यारी—संज्ञा स्त्री. [हिं० कियारी] बाग या खेतों के मेड़ों की बीच की गहरी जमीन जिसमें पेड़ों की पंक्तियाँ लगायी जाती हैं।

क्यों, क्यौं—क्रि. वि. [सं. किम्, हिं. क्यों] (१) किस कारण ? किस लिए ?

मुहा.—क्योंकर—किस प्रकार। क्यों नहीं—(१) ठीक है (समर्थन में)। (२) हाँ, जरूर (स्वीकृति सूचक)। (३) ठीक नहीं है (व्यंग्य)। (४) कभी नहीं (व्यंग्य)। क्यों न हो—(१) बहुत खूब (प्रशंसात्मक)। बहुत बुरा (व्यंग्य)।

(२) किस प्रकार, कैसे।

क्रंदन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रोना, विलाप। (२) वीरों का आह्वान।

क्रकच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) करील का पेड़। (२) आरा। (३) एक बाजा। (४) एक नरक।

क्रकचा—संज्ञा स्त्री. [सं.] केतकी।

क्रकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) करील का पेड़। (२) किलकिला चिड़िया। (३) आरा। (४) दरिद्र।

क्रतु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दृढ़ संकल्प। (२) इच्छा। (३) विवेक। (४) जीव। (५) विष्णु। (६) अश्वमेध। (७) कृष्ण का एक पुत्र।

क्रप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दयालु। (२) कृपाचार्य।

क्रम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) डग भरने की क्रिया। (२) वस्तुओं या कार्यों का सिलसिला। (३) धीरे धीरे काम करने की प्रणाली।

मुहा.—क्रम क्रम करके—धीरे धीरे, शनैः शनैः। उ.—(क) लरखरात गिरि परति हैं, चलि घुटुरुनि धावैं। पुनि क्रम-क्रम भुज टेकि कै, पग द्वैक चलावैं—१०-११२। (ख) जो कोउ दूरि चलन को करै। क्रम क्रम करि डग डग पग धरै। क्रम से, क्रम क्रम से—धीरे धीरे।

(४) कार्य-संपादन की व्यवस्था। (५) वामन का एक नाम। (६) एक काव्यालंकार। (७) कर्म, प्रयत्न, श्रम। उ.—अगम सिंधु जतननि सजि नौका, हठि क्रम-भार भरत। सूरदास-व्रत यहै, कृष्ण भजि, भव-जलनिधि उतरत—१-५५।

संज्ञा पुं. [सं. कर्म] कार्य, कृत्य।

क्रमण—संज्ञा पुं. [सं.] पैर।

क्रमनासा—संज्ञा स्त्री. [सं. कर्मनाश] कर्मनाशा नदी।

क्रमशः—क्रि. वि. [सं.] (१) सिलसिलेवार। (२) थोड़ा थोड़ा।

क्रमसंख्या—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक क्रम से लिखी हुई संख्या।

क्रमांक—संज्ञा पुं. [सं.] एक क्रम से लिखे जानेवाले अंक।

क्रमागत—वि. [सं.] (१) धीरे धीरे किसी रूप को प्राप्त। (२) जो सदा से होता आया हो, परंपरागत।

क्रमात्—क्रि. वि. [सं.] (१) सिलसिले से। (२) सिलसिले से आगे। (३) धीरे धीरे।

क्रमानुकूल—क्रि. वि. [सं. क्रम+अनुकूल] सिलसिलेवार।

क्रमानुसार—क्रि. वि. [सं. क्रम+अनुसार] सिलसिलेवार।

क्रमान्वय—क्रि. वि. [सं. क्रम+अन्वय] एक के बाद एक।

क्रमि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कीड़ा। (२) पेट का एक रोग।

क्रमिक—क्रि. वि. [सं.] (१) जो धीरे-धीरे हुआ हो। (२) सो सदा से होता आया हो।

क्रमुक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुपारी का पेड़। (२) कपास का फल।

क्रमै—संज्ञा पुं. [सं. क्रम + ऐ (प्रत्य.)] क्रम, नियम, पूर्वापर-संबंधी व्यवस्था, सिलसिला। उ०—भ्रम-मद-मत्त, काम-तृष्ना-रस-बेग, न क्रमै गह्यौ। सूर एक पल गहरु न कीन्ह्यौ, किहिं जुग इतौ सह्यौ—१-४६।

क्रय—संज्ञा पुं. [सं.] खरीदना, मोल लेना।

क्रयी—संज्ञा पुं. [सं. क्रयिन] खरीदार।

क्रय्य—वि. [सं.] जो बेचने के लिए हो।

क्रवान—संज्ञा पुं. [हिं. किरवान] तलवार।

क्रव्य—संज्ञा पुं. [सं.] मांस।

क्रव्याद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मांसाहारी जीव। (२) राक्षस।

क्रांत—वि. [सं.] (१) दबा या ढका हुआ। (२) जो ग्रस्त हो। (३) आगे बढ़ा हुआ।

संज्ञा पुं.—(१) घोड़ा। (२) पैर।

क्रांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गमन, गति। (२) एक कल्पित वृत्त जिस पर सूर्य पृथ्वी के चारो ओर घूमता जान पड़ता है। (३) एक स्थिति से दूसरी में परिवर्तन, उलटफेर।

क्रांतिमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृत्त जिस पर सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता जान पड़ता है।

क्राथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हिंसा करने की क्रिया। (२) राम की सेना का एक बंदर। (३) धृतराष्ट्र का एक पुत्र। (४) एक राजा जो बाहुग्रह का अवतार माना जाता है।

क्रिमि—संज्ञा पुं. [सं. कृमि] (१) कीड़ा। (२) पेट का एक रोग।

क्रियमाण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह जो किया जा रहा हो। (२) एक प्रकार का कर्म।

क्रिया—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) किसी काम का होना, कर्म। (२) प्रयत्न, चेष्टा। (३) आरंभ। (४) व्याकरण का एक अंग। (५) श्राद्ध आदि प्रेत कर्म। उ०—हरि के देखत तजे परान। तासु क्रिया करि सब गृह आए। राजा सिंहासन बैठाए—१-२८०।

यौ०—क्रिया-कर्म—मृतक कर्म।

(६) नित्यकर्म। (७) उपाय।

क्रियात्मक—वि. [सं.] (१) क्रिया-सम्बन्धी। (२) क्रिया के रूप में प्रस्तुत किया हुआ।

क्रियानिष्ठ—वि. [सं.] संध्या, तर्पण आदि नित्यकर्म विधि-विधान से करनेवाला।

क्रियापंथ—संज्ञा पुं. [सं.] कर्मकांड। उ.—क्रिया पंथ स्रुति ने जो भाख्यौ सो सब असुर मिटायौ। बृहद् भानु ह्वै कै हरि प्रगटे छन में फिर प्रगटायौ।

क्रियावान्—वि. [सं.] कर्मनिष्ठ, कर्मठ।

क्रियाविशेषण—संज्ञा पुं. [सं.] वह शब्द जिससे क्रिया के काल, भाव या रीति का पता चले।

क्रीट—संज्ञा पुं. [सं. किरीट] किरीट नाम का सिर का आभूषण। उ.— क्रीट मुकुट सोभा बनी सुभ अंग बनी बनमाल। सूरदास प्रभु गोकुल जनमे, मोहन मदन गोपाल।

क्रीड़त—संज्ञा स्त्री. [सं.] क्रीड़ा करता है, आमोद-प्रमोद में मग्न रहता है। उ.—(क) निकट आयुध बधिक धारे, करत तीच्छन धार। अजा-नायक मगन क्रीड़त, चरत बारम्बार—१-३२१। (ख) सुधा-सर जनु मकर क्रीड़त......—६२७।

क्रीड़ना—संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्रीड़ा करना। (२) आमोद-प्रमोद।

क्रीड़नक—संज्ञा पुं. [हिं. क्रीड़ा] खिलौना।

क्रीड़ना—संज्ञा स्त्री. [सं.क्रीड़ा] खेलना-कूदना, आमोद-प्रमोद करना।

क्रीड़ा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) खेल, केलि, आमोद-प्रमोद। (२) लीला। उ.—एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और अनंत कथा स्रुति गाई—१-६। (३) एक वृत्त।

क्रीड़ाचक्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृत्त।

क्रीड़ाथल—संज्ञा पुं. [सं. क्रीड़ास्थल] खेल-कूद या लीला का स्थान।

क्रीड़ारथ—संज्ञा पुं. [सं.] फूलों का रथ।

क्रीड़ाशैल—संज्ञा पुं. [सं.] बनावटी पहाड़।

क्रीड़ास्थल—संज्ञा पुं. [सं.] क्रीड़ा या लीला का स्थान।

क्रीड़ित—वि. [सं. क्रीड़ा] वह व्यक्ति जिसने क्रीड़ा की हो।

क्रीड़ैं—क्रि. अ. [सं. क्रीड़ा, हिं. क्रीड़ना] कल्लोलते हैं, आमोद-प्रमोद करते हैं, खेल मचाते हैं। उ.—एक बिरध-किसोर-बालक, एक जोबन जोग। कृष्न जन्म सु प्रेम-सागर, क्रीड़ैं सब ब्रज लोग—१०-२६।

क्रीत—वि. [सं.] खरीदा या मोल लिया हुआ।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) मोल लिया हुआ पुत्र। (२) मोल लिया हुआ दास।

संज्ञा स्त्री. [सं. कीर्ति] यश, कीर्ति। उ.—सुनौ धौं दै कान अपनी लोक लोकनि क्रीत (क्रीती)। सूर प्रभु अपनी खचाई रही निगमनि जीत—३४७६।

क्रीतक—संज्ञा पुं. [सं.] खरीदा हुआ पुत्र।

क्रीति, क्रीती—संज्ञा स्त्री. [सं. कीर्ति] यश, कीर्ति, सुनाम। उ.—(क) वै सब परम बिचित्र सयानी अरु सब ही जग क्रीति—३४७८। (ख) हौं कहा कहौं सूर के प्रभु निगम करत जाकी क्रीति—१०३.—१७५। (ग) क्यों बिस्वास करहिंगो कौरौ सुनि प्रभु कठिन क्रीती—११-३।

क्रीला—संज्ञा स्त्री. [सं. क्रीड़ा] लीला, केलि, खेलकूद, आमोद-प्रमोद। उ.—सूरदास प्रभु की यह लीला। सदा करत ब्रज मैं यह क्रीला—१०२८।

क्रुद्ध—वि. [सं.] कोपयुक्त, क्रोध में भरा हुआ।

क्रुमुक—संज्ञा पुं. [सं.] सुपारी।

क्रुस्वा—संज्ञा पुं. [सं.] सियार, गीदड़।

क्रूर—वि. [सं.] (१) दूसरों को कष्ट देनेवाला। (२) निर्दय, कठोर। उ.—सूर नृप क्रूर अक्रूर क्रूरै भयौ धनुष देखन कहत कपटी महा है—२५०३। (३) कठिन। (४) तीखा, तीक्ष्ण। (५) गरम। (६) बुरा, नीच। (७) घोर।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) पका हुआ चावल। (२) लाल कनेर। (३) बाज पक्षी। (४) सफेद चील। (५) विषम राशियाँ। (६) रवि, मंगल, शनि, राहु और केतु ग्रह जिनसे युक्त तिथि या नक्षत्र में शुभ कार्य वर्जित हैं।

संज्ञा पुं. [सं. अक्रूर] अक्रूर जो श्रीकृष्ण के चाचा थे और कंस की आज्ञा से उन्हें मथुरा ले गये थे। उ. आप क्रूर लै चले स्याम को हित नाहीं कोउ हरि कै—२५२६।

क्रूरकर्मा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) नीच या कठोर कर्म करनेवाला। (२) सुरजमुखी।

क्रूरगंध—संज्ञा पुं. [सं.] गंधक।

क्रूरता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) निर्दयता, कठोरता। (२) नीचता, दुष्टता।

क्रूरा—वि. स्त्री. [सं.] दुष्ट स्वभाववाली।

क्रूरात्मा—वि. [स.] दुष्ट स्वभाववाला।

क्रूरै—वि. [सं. क्रूर] अधिक कठोर, बहुत निर्दयी। उ.—सूर नृप क्रूर अक्रूर क्रूरै भयौ धनुष देखन कहत कपटी महा है—२५०३।

क्रेता—संज्ञा पुं. [सं.] खरीदार, मोल लेनेवाला।

क्रौंच—संज्ञा पुं. [सं.] क्रौंच पर्वत।

क्रोड़—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) दोनों बाहों के बीच का (छाती का) भाग। (२) गोद, अँकवार।

क्रोड़पत्र—संज्ञा स्त्री. [सं.] अतिरिक्त या पूरक पत्र।

क्रोध—संज्ञा पुं. [सं.] कोप, रोष, गुस्सा।

क्रोधज—संज्ञा पुं. [सं.] क्रोध से उत्पन्न, मोह।

क्रोधमान—संज्ञा पुं. [सं. क्रोध + मान] गुस्से में भरा हुआ, क्रोधित। उ.—खंभ फारि, गल गाज मत्तबल,

क्रोधमान छबि बरनि न आई। नैन अरुन, बिकराल दसन अति, नख सौं हृदय बिदारयौ जाई—७-४।

क्रोधवंत—वि. [हिं. क्रोध + वंत = वाला] गुस्से में भरा हुआ। उ.—मांडव धर्मराज पै आयौ। क्रोधवन्त यह बचन सुनायौ—३-५।

क्रोधवश—क्रि. वि. [सं.] क्रोध में।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक राक्षस। (२) एक साँप।

क्रोधा—संज्ञा पुं. [सं. क्रोध] कोप, गुस्सा। उ.—कोटि कोटि तिनके सँग जोधा। को जीतै तिनके तनु क्रोधा—२४५६।

क्रोधित—वि. [हिं. क्रोध] कुपित, क्रुद्ध।

क्रोधी—वि. [सं.] जो बहुत क्रोध करता हो, जो शीघ्र क्रोध से भर जाता हो।

क्रौंच—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कराँकुल पक्षी। (२) सात द्वीपों में एक। उ.—सातों द्वीप जे कहे सुक मुनि ने सोई कहत अब सूर। जंबु प्लक्ष क्रौंच शाक शाल्मलि कुश पुष्कर भरपूर—सारा-३४। (३) एक राक्षस। (४) एक अस्त्र।

क्लांत—वि. [सं.] थका हुआ।

क्लांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) थकावट। (२) परिश्रम।

क्लिशित—वि. [सं.] जिसे बहुत दुख हुआ हो।

क्लिष्ट—वि. [सं.] (१) दुखी। (२) कठिन, मुश्किल से समझ में आनेवाली। (३) जो सरलता से सिद्ध या सत्य न हो सके।

क्लिष्टता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कठिनता। (२) काव्य का एक दोष जिससे भाव समझने में कठिनाई हो।

क्लिष्टत्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) क्लिष्टता का भाव। (२) काव्य का एक दोष।

क्लीव—वि. पुं. [सं.] (१) नपुंसक, षंड, नामर्द। (२) कायर, डरपोक।

क्लीवता—संज्ञा स्त्री. [सं.] नपुंसकता।

क्लीवत्व—संज्ञा पुं. [सं.] नपुंसकता।

क्लेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गीलापन। (२) पसीना।

क्लेदक—संज्ञा पुं. [सं] (१) पसीना लानेवाला। (२) शरीर की दस अग्नियों में एक।

क्लेदन—संज्ञा पुं. [सं.] पसीना लाने का काम।

क्लेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दुख, कष्ट। (२) लड़ाई, झगड़ा।

क्लेशित—वि. [सं.] दुखी, पीड़ित।

क्लोम—संज्ञा पुं. [सं.] फेफड़ा।

क्वचित—क्रि. वि. [सं.] बहुत कम, शायद कोई।

क्वण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वीणा का शब्द। (२) घुँघरू का शब्द।

क्वणित—वि. [सं.] (१) शब्द करता हुआ। (२) गूँजता हुआ। (३) बजता हुआ।

क्वाँर—संज्ञा पुं. [सं. कुमार, प्रा. कुवाँर, हिं. कुआर] भादों के बाद का महीना।

क्वाँरा—वि. [सं. कुमार] जिसका विवाह न हुआ हो, कुआरा।

क्वाँरापन—संज्ञा पुं. [हिं. क्वारापन] कुमारपन।

क्वाथ—संज्ञा पुं. [सं.] ओषधियों को उबालकर निकाला हुआ रस, काढ़ा। (२)व्यसन। (३) दुख।

क्वान—संज्ञा पु. [सं. क्वण] (१) घुँघरू का शब्द। (२) वीणा की झनकार।

क्वार—संज्ञा पुं. [सं. कुमार] (१) कुमार, पुत्र, कुँवर। उ.—भयौ सुरुचि तैं उत्तम क्वार। अरु सुनीति कैं ध्रुव सुकुमार—४-६। (२) क्वारा, बिनब्याहा।

क्वारछल—संज्ञा पुं. [सं. कुमार, हिं. क्वार + छल] क्वारापन।

क्वारपत, क्वारपन—संज्ञा पुं. [हिं. क्वारा+पत या पन] क्वारा होना, कुमारपन।

क्वारा—वि. [सं. कुमार] जिसका विवाह न हुआ हो, कुआरा।

क्वारापन—संज्ञा पुं. [हिं. क्वारा+पन] कुमारपन।

क्वासि—वाक्य [सं.] तू कहाँ या किस स्थान पर है। उ.—चलौ किन मानिनि कुंज कुटीर। तुव बिनु कुँअर कोटि बनिता तजि सहत मदन की पीर। गद्‌गद सुर पुलकित बिरहानल स्रवत बिलोचन नीर। क्वासि क्वासि बृषभानुनंदिनी बिलपत बिपिन अधीर।

क्वैला—संज्ञा पुं. [हिं. कोयला] (१) अंगारा। (२) अधजला कोयला।

क्षंतव्य—वि. [सं.] क्षमा के योग्य, क्षम्य।

क्षंता—वि. [सं.] क्षमा करनेवाला, क्षमाशील।

क्षण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समय का बहुत छोटा भाग। (२) समय। (३) अवसर। (४) उत्सव।

क्षणक—क्रि. वि. [सं. क्षण + क (प्रत्य.) क्षण भर में। उ.—बहुत दिनन के, विरह ताप दुख मिलत क्षणक में मेटे—८२४ सारा.।

क्षणद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल। (२) ज्योतिषी। (३) जो रात में देख न सके।

क्षणदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात। (२) हल्दी।

क्षणदाकर—संज्ञा पुं. [सं.] चंद्रमा।

क्षणद्युति—संज्ञा स्त्री. [सं.] बिजली।

क्षणप्रभा—संज्ञा स्त्री. [सं.] बिजली।

क्षणभंग, क्षणभंगु, क्षणभंगुर—वि. [सं क्षणभंगुर] शीघ्र नष्ट होनेवाला। उ.—सुख संपति दारा सुत हय गय हठै सबै समुदाय। क्षणभंगुर (छनभंगुर) ए सबै स्याम बिनु अंत नाहिं संग जाय।

क्षणिक—वि. [सं.] क्षण भर में (शीघ्र ही) नष्ट हो जाने वाला।

क्षणिकता—संज्ञा स्त्री. [सं.] क्षण भर में, या बहुत शीघ्र नष्ट होने का भाव।

क्षणिकवाद—संज्ञा पुं. [सं.] एक सिद्धांत जिसमें प्रति क्षण परिवर्तित होते होते वस्तु का नष्ट हो जाना मानते हैं।

क्षणिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बिजली।

क्षणिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] रात।

क्षणेक—क्रि. वि. [सं. क्षण + एक] क्षण भर।

क्षत—वि. [सं.] जो तोड़ा-फोड़ा गया हो, जिसे क्षति पहुँची हो, घायल।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) घाव। (२) फोड़ा, व्रण। (३) मार-काट। (४) क्षति पहुँचना।

क्षतज—वि. [सं.] (१) घाव से उत्पन्न। (२) लाल रंग का।

संज्ञा पुं. [सं] (१) रक्त, खून। (२) मवाद। (३) बुरी खाँसी। (४) शरीर में बहुत घाव लगने पर मालूम होने वाली प्यास।

क्षत-विक्षत—वि. [सं.] (१) घायल, लहू-लुहान। (२) नष्ट-भ्रष्ट।

क्षति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हानि, नुकसान। (२) नाश।

क्षत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बल। (२) राष्ट्र। (३) धन। (४) शरीर। (५) जल। (६) क्षत्रिय।

क्षत्र कर्म (धर्म)—संज्ञा पुं. [सं०] (युद्ध, दान, रक्षा आदि) क्षत्रियों के कर्म।

क्षत्रप—संज्ञा पुं. [सं०] ईरानी मांडलिक राजाओं की उपाधि जो भारतीय शासकों ने अपना ली थी।

क्षत्रपति—संज्ञा पुं. [सं.] राजा।

क्षत्रिआ—संज्ञा पुं० [सं. क्षत्रिय] क्षत्रिय। उ.—दियौ उनपै कह्यौ तुम कोउ क्षत्रिआ कपट करि विप्र कौ स्वाँग स्वाँग्यौ—१० उ.-१५१।

क्षत्रिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] मजीठ।

क्षत्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चार वर्णों में दूसरा जिसका काम देश का शासन और उसकी रक्षा माना गया था। (२) एक वर्ण का व्यक्ति। (३) राजा। (४) शक्ति।

क्षत्री—संज्ञा पुं. [सं. क्षत्रिय] (१) क्षत्रिय वर्ण। (२) इस वर्ण का व्यक्ति।

क्षदन—संज्ञा पुं. [सं.] दाँत।

क्षपणक—वि. [सं.] निर्लज्ज।

संज्ञा पुं.—(१) दिगंबर जैन साधु। (२) बौद्ध भिक्षु।

क्षपांत—संज्ञा पुं. [सं.] प्रभात।

क्षपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) रात। (२) हल्दी।

क्षपाकर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

क्षपाचर—संज्ञा पुं. [सं.] राक्षस।

क्षपानाथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

क्षपापति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

क्षम—वि. [सं.] योग्य, समर्थ।

संज्ञा पुं.—बल। शक्ति।

क्रि. स. [हिं. क्षमना] क्षमा करो। उ.—क्षम अपराध देवकी मेरो लिख्यौ न मेट्यौ जाई। मैं अपराध किये सिसु मारे कर जोरे बिललाई—३८६ सारा.।

क्षमणीय—वि. [सं.] क्षमा के योग्य।

क्षमता—संज्ञा स्त्री. [सं.] योग्यता, सामर्थ्य, शक्ति।

क्षमताशील—वि. [सं. क्षमता + शील] योग्य, समर्थ, सशक्त।

क्षमना—क्रि. स. [सं. क्षमा] क्षमा करना, माफ करना।

क्षमनीय—क्रि. स. [सं. क्षमणीय] क्षमा के योग्य।
वि. [सं. क्षम] बली, शक्तिशाली।

क्षमवाना—क्रि. स. [हिं. क्षमना] क्षमा कराना।

क्षमवाय—क्रि. स. [हिं. क्षमवाना] क्षमा कराकर, दूसरे से क्षमवाकर। उ.—बहुरि बिधि जाय क्षमवाय कै रुद्र को विष्णु बिधि रुद्र तहँ तुरत आये।

क्षमा—संज्ञा स्त्री. [सं०] (१) दिये हुए कष्ट को सहन करने और कष्ट देनेवाले के प्रति प्रतिकार की इच्छा न रखने की वृत्ति। (२) सहनशीलता। (३) पृथ्वी। (४) दुर्गा का नाम। (५) राधा की एक सखी का नाम। (६) एक छंद।

क्षमाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. क्षमा+ई (प्रत्य०)] क्षमा करने की क्रिया।

क्षमाए—क्रि. स. [हिं. क्षमाना] क्षमा कराये, क्षमा करवा दिये। उ.—तब हरि उनके दोष क्षमाए—८६६।

क्षमाना—क्रि. स. [हिं. क्षमना] क्षमा कराना।
क्रि. स. [हिं. क्षमा] क्षमा करना।

क्षमानै—क्रि. स. [हिं. क्षमाना] क्षमा कराने के लिए। उ.—यह सुनि कै अकुलाई चले हरि कृत अपराध क्षमानै—२०५३।

क्षमापन—संज्ञा पुं [सं. क्षमा+हिं. पन] (१) क्षमा करने का काम। (२) क्षमा कराने का काम।

क्षमायौ—क्रि. स. [हिं. क्षमना] क्षमा कराया। उ.—कौरवन मिलि बहुति भाँति बिनती करी दोष तिनको द्विजन मिलि क्षमायौ—१० उ.-१४६।

क्षमालु—वि. [सं०] क्षमावान्, क्षमाशील।

क्षमावत—क्रि. स. [हिं. क्षमावना] क्षमा करते हैं। उ.-परी पाँय अपराध क्षमावत सुनत मिलैगी धाय। सुनत बचन दूतिका बदन ते स्याम चले अकुलाय—६७३ सारा.।

क्षमावना—क्रि. स. [हिं. क्षमना का प्रे.] क्षमा कराना।

क्षमावान्—वि. पुं. [सं. क्षमावत्] (१) क्षमा करनेवाला। (२) सहनशील।

क्षमाशील—वि. [सं.] (१) क्षमा करनेवाला। (२) शांत प्रकृतिवाला।

क्षमाहीं—क्रि. स. [हिं. क्षमाना] क्षमा कराते हैं। उ.—सूर स्याम जुवतिन सौं कहि कहि सब अपराध क्षमाहीं—पृ. ३४१ (७०१)।

क्षमितव्य—वि. [सं.] जो क्षमा किया जा सके।

क्षमी—वि. [सं. क्षमा+ई (प्रत्य.)] (१) क्षमा करनेवाला। उ.—सुर हरि भक्त असुर हरि द्रोही। सुर अति क्षमी असुर अति कोही। (२) शांत प्रकृतिवाला।

क्षमैंगे—क्रि. स. [हिं. क्षमना] क्षमा करेंगे। उ.—अब हमकौ अपराध क्षमैंगे कृपा करौ मुख बोलौं जू—१६६१।

क्षम्य—वि. [सं.] क्षमा करने योग्य।

क्षयंकर—वि. [सं.] नाश करनेवाला।

क्षय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धीरे धीरे घटना या कम होना। (२) प्रलय। (३) नाश। (४) घर। (५) क्षयी रोग। (६) अंत।

क्षयवान्—वि. [सं. क्षयवत्] नाश होनेवाला।

क्षयी—वि. [सं.] चंद्रमा।
संज्ञा स्त्री. [सं. क्षय] एक भयंकर रोग।

क्षर—वि. [सं.] नाशवान्।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) जल। (२) मेघ। (३) शरीर। (४) अज्ञान। (५) जीवात्मा।

क्षरण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धीरे धीरे बहना। (२) झगड़ा। (३) नाश होना।

क्षांत—वि. [सं.] सहनशील, क्षमावान्।

क्षांति—संज्ञा स्त्री. [सं.] सहनशीलता।

क्षा—संज्ञा पुं. [सं.] पृथ्वी।

क्षात्र—वि. [सं०] क्षत्रिय संबंधी।
संज्ञा पुं. [सं.] क्षत्रियपन।

क्षाम—वि. [सं.] (१) दुबला-पतला। (२) दुर्बल, बलहीन। (३) थोड़ा।

क्षार—संज्ञा पुं० [सं.] (१) औषधियों को जलाकर तैयार किया हुआ नमक। (२) नमक। (३) सज्जी। (४) शोरा। (५) भस्म। (६) काँच।
वि. [सं.] (१) खारा। (२) धूर्त्त।

क्षालन—संज्ञा पुं. [सं.] धोना।

क्षालित—वि. [सं.] धुला हुआ, साफ।

क्षिति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पृथ्वी। उ.—अमल अकास

कास कुसुमित छिति लच्छण स्वाति जनाए—२८५४।
(२) जगह, घर। (३) क्षय। (४) प्रलयकाल।

छितिज—संज्ञा पुं० [सं] (१) वह वृत्ताकार स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी, दोनों मिले जान पड़ते हैं। (२) मंगल ग्रह। (३) वृक्ष।

छितिधार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत। (२) दिग्गज। (३) कच्छप।

छिपा—संज्ञा स्त्री. [सं.] रात।

छिप्त—वि. [सं.] (१) त्यक्त। (२) अपमानित। (३) पागल।

छिप्र—क्रि० वि० [सं.] (१) जल्दी, शीघ्र। (२) तुरंत।
वि. [सं.] (१) तेज। (२) चंचल।

छीण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दुबला-पतला। (२) छोटा, सूक्ष्म। (३) घटा हुआ।

छीणक—वि. [सं.] छीण करनेवाला।

छीणता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) कमजोरी। (२) दुबलापन। (३) छोटापन।

छीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दूध। (२) द्रव। (३) जल। (४) पेड़ों का दूध। (५) खीर।

छीरज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंद्रमा। (२) शंख। (३) कमल। (४) दही।
वि.—दूध से बना हुआ, दूध से उत्पन्न।

छीरधि—संज्ञा पुं. [सं.] समुद्र। उ.—पसुपति मंडल मध्य मनो छीरधि नीरधि नीर के—२५६६।

छीरनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

छीरनीर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आलिंगन। (२) मिलन।

छीरस—संज्ञा पुं. [सं.] दूध-दही की मलाई।

छीरसागर—संज्ञा पुं. [सं.] एक समुद्र।

छीरसार—संज्ञा पुं. [सं.] मक्खन।

छीरोद—संज्ञा पुं. [सं.] छीरसागर।

छीरोदक—[सं. छीर + उदक] दूध और पानी।
वि.—दूध के समान उज्ज्वल। उ.—छीरोदक घूँघट हातो करि सन्मुख दियो उघारि। मानो सुधाकर दुग्ध सिंधु ते कढ्यौ कलंक पखारि—१६८६।
संज्ञा पुं० [सं.] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो प्राचीन काल में बनता था। उ.—कहा भयो गेरो गृह माटी को। हौं तो गयो गुपालहिं भेंटन और खरच तंदुल गाँठी को ....। नौ तन छीरोदक (षीरोदक) जुवती पै भूषन हुते न कहुँ माटी को। सूरदास-प्रभु कहा निहोरो मानतु रंक त्रास टाटी को।

छीरोदतनय—संज्ञा पुं० [सं.] चंद्रमा जो समुद्र से उत्पन्न होने के कारण उसका पुत्र माना जाता है।

छीरोदतनया—संज्ञा स्त्री. [सं०] लक्ष्मी जो समुद्र से उत्पन्न होने के कारण उसकी पुत्री मानी जाती है।

छीरोदधि—संज्ञा पुं. [सं०] छीरसागर।

छीव—संज्ञा पुं [सं०] पागल।

छुणी—संज्ञा स्त्री. [सं०] पृथ्वी।

छुण्ण—वि. [सं०] (१) अभ्यासी, अभ्यस्त। (२) जो टुकड़े-टुकड़े या चूर-चूर हो। (३) टूटे अंग का, खंडित।

छुत—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूख, छुधा।

छुद्र—वि. [सं०] (१) कंजूस। (२) नीच। (३) छोटा। (४) निर्धन।
संज्ञा पुं. [सं०] चावल का कण।

छुद्रघंटिका—संज्ञा स्त्री, [सं.] (१) घुँघरू। (२) घूँघरूदार करधनी।

छुद्रता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) नीचता। (२) ओछापन।

छुद्रपति—संज्ञा पुं. [सं.] कुबेर। उ.—रुद्रपति, छुद्रपति, लोलपति वोकपति, धरनिपति, गगनपति, अगम बानी।

छुद्र प्रकृति—वि. [सं.] तुच्छ या नीच स्वभाववाला।

छुद्र बुद्धि—वि. [सं.] नीच स्वभाव का।

छुद्रमति—वि. [सं.] नीच बुद्धिवाला, ओछी बुद्धिवाला। उ.—बरष दिन संयोग देत मोकों भोग छुद्रमति ब्रजलोग गर्व कीनो—६४४।

छुद्रावली—संज्ञा स्त्री. [सं.] छुद्रघंटिका, किंकिणी, करधनी। उ.—अंग अभूषन जननि उतारति। दुलरी ग्रीव माल मोतिन की लै केयूर भुज स्याम निहारति। छुद्रावली उतारति कटि तैं सौंपति धरति मन ही मन वारति।

छुद्राशय—वि. [सं.] नीच स्वभाव का, 'महाशय' का विपरीतार्थक।

छुधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] भूख।

छुधातुर—वि. [सं.] भूखा।

क्षुधावन्त—वि. [सं. क्षुधा + वंत (प्रत्य.)] भूखा।

क्षुधित—वि. [सं.] भूखा।

क्षुप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) झाड़ी, पौधा। (२) श्री कृष्ण की पत्नी, सत्यभामा का पुत्र।

क्षुब्ध—वि. [पुं.] (१) चंचल। (२) व्याकुल। (३) डरा हुआ। (४) क्रुद्ध।

क्षुभित—वि. [सं.] (१) व्याकुल। (२) क्षोभ से युक्त।

क्षुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छुरा। (२) उस्तरा।

क्षेत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खेत। (२) समतल भूमि। (३) स्थान। (४) तीर्थ स्थान। (५) शरीर। (६) रेखाओं से घिरा हुआ स्थान।

क्षेत्रज—वि. [सं.] (१) खेत से उत्पन्न। (२) क्षेत्र-जनित।

क्षेत्रपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खेत का रखवाला। (२) किसान। (३) जीवात्मा।

क्षेत्रफल—संज्ञा पुं [सं.] वर्ग की लम्बाई-चौड़ाई का गुणन फल, वर्ग परिणाम।

क्षेत्री—संज्ञा पुं. [सं. क्षेत्रिन्] (१) खेत का स्वामी। (२) स्वामी।

क्षेप—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ठोकर। (२) निंदा। (३) दूरी। (४) (समय) बिताना।

क्षेपक—वि. [सं.] (१) मिलाया हुआ। (२) निंदनीय।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) नाव खेनेवाला, केवट। (२) ऊपर या पीछे से मिलाया हुआ अंश।

क्षेमंकरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक तरह की चील। (२) एक देवी।

क्षेम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) रक्षा। (२) कुशल मंगल। (३) सुख। (४) आनन्द।

क्षेमी—वि. [सं. क्षेमिन्] (१) कुशल करनेवाला। (२) भलाई चाहनेवाला।

क्षोणि—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पृथ्वी। (२) एक की संख्या।

क्षोणिप—संज्ञा पुं. [सं.] राजा।

क्षोणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

क्षोणीपति—संज्ञा पुं. [सं.] राजा।

क्षोभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खलबली। (२) घबराहट। (३) भय। (४) शोक। (५) क्रोध।

क्षोभन—वि. [सं.] क्षोभ उत्पन्न करनेवाला।

क्षोभना—क्रि. अ. [सं. क्षोभ] (१) व्याकुल होना। (२) भयभीत होना। (३) चंचल होना।

क्षोभित—वि. [सं. क्षोभ] (१) घबराया हुआ। (२) विचलित। (३) डरा हुआ।

क्षोभी—वि. [सं. क्षोभिन्] व्याकुल, चंचल।

क्षौणि, क्षौणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

क्षौम—संज्ञा. पुं. [सं.] कपड़ा।

क्षौर, क्षौरकर्म—संज्ञा पुं. [सं.] हजामत।

क्षौरिक—संज्ञा पुं. [सं.] नाई।

क्ष्मा—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

(ख)

ख—देवनागरी वर्णमाला के कवर्ग का दूसरा अक्षर; स्पर्श, महाप्राण व्यंजन। कंठ्य वर्ण।

खं—संज्ञा पुं. [सं० खम्] (१) खाली या शून्य स्थान। (२) शून्य, बिंदु। (३) आकाश। (४) स्वर्ग। (५) सुख। (६) मोक्ष।

खंक—वि. [सं० कंकाल] बलहीन।

खंख, खंखी—वि. [सं० कंक] (१) रिक्त, खाली। (२) उजाड़, बीरान। (३) निर्धन।

खंखर—वि. [हिं० खंख] बीरान, उजाड़।

खँखार—संज्ञा पुं. [हिं० खखार] गाढ़ा कफ।

खँखारना—क्रि. अ. [हिं० खखार] (१) खाँसना। खखारकर कफ निकालना।

खंग, खँग—संज्ञा पुं. [सं० खड्ग] (१) तलवार। (२) गैंडा।

संज्ञा स्त्री०—घाव। उ०—कुंभकरन तनु खंग लग गई लंक बिभीषन पाई।

खँगड़—संज्ञा पुं. [अनु०] कूड़ा-कबाड़ा।
वि.—उग्र, उद्दंड।

खँगना—क्रि. स. [हिं. छीजना] कम होना, घटना।

खंगर—वि. [देश०] बहुत सूखा।

खँगहा—वि. [देश०] बड़े दाँतवाला (पशु), दँतैल।
संज्ञा पुं.—गैंडा।

खँगारना, खँगालना—क्रि. स. [सं० ज्ञालन] (१) खाली पानी से साफ करना। (२) खाली करना, उड़ा ले जाना।

खँगी—संज्ञा स्त्री. [हिं० खाँगना] कमी, घटी।

खँगुआ—संज्ञा पुं. [हिं० खाँग] गैंडे के मुँह का सींग।

खँगैल—वि. [हिं० खँगहा] जिसके दाँत बाहर निकले हों, दँतैल।

खगौरिया—संज्ञा स्त्री. [देश०] गले का एक गहना, हँसुली

खँचना—क्रि. अ. [हिं. खाँचना] चिह्न पड़ना, चिह्नित होना।

खँचाना—क्रि. स. [हिं० खाँचना] (१) अंकित करना, चिह्न बनाना। (२) जल्दी लिखना। (३) खींचना।

खँचिया—संज्ञा स्त्री. [हिं० खाँची] झाबा, बड़ी डलिया।

खँचैया—वि. [हिं० खाँचना] खींचनेवाला।

खंज—संज्ञा पुं० [सं० खंजन] खंजन पक्षी। उ०—आलिंगन दै अधर पान करि खंजन खंज लरै।
वि.—[सं०] लँगड़ा, पंगु।

खंजक—वि. [हिं० खंज] लँगड़ा, पंगु।

खँजड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. खंजरीट] डफली की तरह एक बाजा।

खंजन—संज्ञा पुं. [सं०] (१) एक सुंदर पक्षी जो बहुत चंचल होता है और जिसकी उपमा कवि नेत्रों से देते हैं। (२) एक तरह का घोड़ा। (३) एक छंद।

खंजन-रति—संज्ञा पुं. [सं०] बहुत गुप्त विवाह।

खंजनिका—संज्ञा स्त्री. [सं०] एक चिड़िया।

खंजर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] कटार।

खंजरि, खंजरी—संज्ञा पुं. [सं. खंजरीट=एक ताल] डफली की तरह एक छोटा बाजा। उ.—कंसताल कठताल बजावत सृंग मधुर मुँह चंग। मधुर खंजरी पटह प्रणव मिलि सुख पावत रतभंग—१०७१ सारा.।
संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खंजर] (१) छोटा खाँड़ा। (२) एक तरह का रेशमी धारीदार कपड़ा।

खंजरीट—संज्ञा पुं. [सं.] खंजन पक्षी। उ.—(क) मनोहर है नैनन की भाँति। ...... । खंजरीट मृग मीन बिचारति उपमा को अकुलाति—२१४७। (ख) बालभाव अनुसरति भरति दृग अग्र अंशुकन आनै। जनु खंजरीट जुगल जठरातुर लेत सुभष अकुलानै—२०५३। (ग) मनहुँ मुदित मरकत मनि-आँगन खेलत खंजरीट चटकारे।

खंजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वृत्त।

खंड, खँड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भाग, हिस्सा। उ.—तासौं सुत निन्यानबे भए। ......तिन मैं नव नव-खँड अधिकारी—५-२। (२) खाँड़, चीनी। (३) दिशा। (४) देश, पौराणिक भूगोल के अनुसार प्राचीन द्वीपों के नौ या सात भाग। उ.—अखिल ब्रह्मांड खंड की महिमा दिखराई मुख माँहि—१०-२५५।
वि.—खंडित, छोटा।
संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] खाँड़ा।

खंडक—वि. [सं.] (१) खंड-खंड करनेवाला। (६) किसी बात का खंडन करनेवाला।

खंडकाव्य—संज्ञा पुं. [सं.] वह काव्य जिसमें कथा की घटना विशेष का वर्णन हो। इसमें काव्य के सब लक्षण नहीं होते।

खंडत—वि. [सं. खंडित] टूटा-फूटा, अपूर्ण, असंबद्ध।
क्रि.स. [हिं. खंडना] खंड खंड करता है।

खंडन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तोड़ना। (२) काटना। (३) असत्य, अशुद्ध या अनुचित सिद्ध करना।

खंडना—क्रि. स. [सं. खंडन] (१) तोड़ना-फोड़ना। (२) (बात या सिद्धांत को) अयुक्त ठहराना।

खंडनीय—वि. [सं.] खंडन करने योग्य।

खंडपति—संज्ञा पुं. [सं.] राजा।

खंडपरशु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव जी। (२) विष्णु। (३) परशुराम।

खंडपाल—संज्ञा पुं. [सं.] हलवाई।

खँडपूरी—संज्ञा स्त्री. [हिं खाँड़+पूरी] पूरी जिसमें मेवे-मसाले और चीनी भरी हो।

खंडप्रलय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) छोटा प्रलय। (२) किसी प्रदेश या खंड का नाश।

खँडबरा — संज्ञा पुं. [हिं. खँडौरा] मिश्री का लड्डू, ओला।

खंडर—संज्ञा पुं. [हिं. खँडहर] किसी गिरे हुए भवन का बचा हुआ भाग, खँडहर।

खंडरना—संज्ञा पुं. [हिं. खंडर] खंडित करना, नाश करना।

खँडरा—संज्ञा पुं. [हिं. खाँड़ + हिं. बरा (प्रत्य.)] एक पकवान या बड़ा।

खँडरिच—संज्ञा पुं. [सं. खंजरीट] खंजन पक्षी।

खंडल—संज्ञा पुं. [सं.] खंड ग्रहण करनेवाला।

संज्ञा पुं. [सं. खंड] खंड।

खँडला—संज्ञा पुं. [सं. खंड] टुकड़ा।

खँडवानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाँड़ + पानी] (१) शरबत। (२) वर पक्षवालों को भेजा गया जलपान या शरबत।

खंडशः—क्रि. वि. [सं. खंड] खंड खंड करके।

खँडसार, खँडसाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाँड + शाला] स्थान जहाँ खाँड़ बनती हो।

खँडहर—संज्ञा पुं. [सं. खंड + हिं. घर] टूटे हुए भवन का शेष, खंडर।

खंडा—संज्ञा पुं. [सं. खंड] (१) भाग, हिस्सा। (२) देश ; पौराणिक द्वीपों के नौ-नौ या सात-सात भाग। उ.—एक एक रोम कोटि ब्रह्मंडा। रवि ससि धनी धर नवखंडा—१०७०।

खंडि—क्रि. स. [सं. खंडन, हिं. खंडना] तोड़कर, टुकड़े करके। उ.—स्यंदन खंडि, महारथि खंडौं, कपि-ध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०।

खंडिक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) काँख। (२) वह व्यक्ति जो ग्रंथ को खंडशः पढ़े। (३) एक ऋषि।

खँडिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] निश्चित समय पर अदा किया जानेवाला अंश, किश्त।

खंडित—वि. [सं. खंड] (१) टूटी हुई, असंबद्ध, भग्न। उ.—(क) चारि मास बरसे जल खूटे हारि समुझ उनमानी। एतेहू पर धार न खंडित इनकी अकथ कहानी—३४५७। (ख) नैनन निरखि निमेष न खंडित प्रेम-व्यथा न बुझाई—२६७६। (२) जो पूर न हो, अपूर्ण।

खंडिता—संज्ञा स्त्री. [सं.] ऐसी नायिका जिसका पति रात में अन्य स्त्री के पास रहकर प्रातःकाल लौटे। उ.—नित्य रास जल नित्य बिहार। नित्य मान खंडिताभिसार—२३८०।

खंडिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] पृथ्वी।

खंडी—संज्ञा स्त्री. [सं. खंड] (१) लगान या कर इत्यादि की किश्त। (२) एक तोल या माप।

खंडै—क्रि. स. [हिं. खंडना] खंडन करे, तोड़े, न माने, उल्लंघन करे। उ.—पिता-बचन खंडै सो पापी, सोइ प्रह्लादहिं कीन्हौ। निकसे खंभ-बीच तैं नरहरि, ताहि अभय पद दीन्हौ—१-१०४।

खंडौं—क्रि. स. [हिं. खंडना] टुकड़े-टुकड़े कर दूँ। उ.—स्यंदन खंडि, महारथि खंडौं, कपिध्वज-सहित उड़ाऊँ—१-२७०।

खंडौरा—संज्ञा पुं. [हिं खाँड+औरा (प्रत्य.)] खाँड़ का लड्डू, ओला।

खंतरा—संज्ञा पुं. [सं. कांतार या हिं. अंतरा] (१) कोना, अंतरा। (२) दरार। (३) छोटा गढ़ा।

खंदक—संज्ञा पुं. [अ.] (१) गड्ढा (२) दुर्ग के चारो ओर की गहरी खाई।

खंदा—संज्ञा पुं. [हिं. खनना] खोदनेवाला, नाश करनेवाला। उ.—दैत्य दलन गजदंत उपारन, कंस केसि धरि फंदा। सूरदास बलि जाइ जसोमति सुत के सागर दुख के खंदा।

खँधवाना—क्रि. स. [हिं. खाली] खाली कराना।

खंधार—संज्ञा पुं. [स्कंधवार] सेना के रहने की जगह, छावनी।

संज्ञा पुं. [सं. खंडपाल] सामंत, सरदार।

खँधियाना—क्रि. स. [हिं. खाली] किसी पदार्थ को पात्र से बाहर निकालना।

खंबारा—संज्ञा पुं. [हिं. खंभार] घबराहट, चिंता। उ.—कंस परयौ मन इहै बिचारा। राम-कृष्ण बध इहै खंबारा—२४१६।

खंभ—संज्ञा पुं. [सं. स्तंभ, प्रा. खंभ] (१) स्तंभ, खंभा। (२) सहारा, आसरा।

खंभा—संज्ञा पुं. [हिं. खंभ] (१) स्तंभ। (२) सहारा।

खंभार—संज्ञा पुं. [सं. क्षोभ] (१) चिंता (२) घबराहट। (३) डर, भय। (४) शोक।

खंभारि, खंभारी—संज्ञा पुं. [हिं. खँभार] (१) खलबली, व्याकुलता, घबराहट। उ.—बहुत अचगरी जिनि करौ, अजहुँ तजौ झवारि। पकरि कंस लै जाइगौ, कालिहि परै खँभारि—५८६। (ख) जैहै बात दूरि लौं ऐसी परिहै बहुरि खँभारि—१०८८। (२) चिंता, ठेस, शोक। उ.—देखौ जाइ तहाँ हरि नाहीं, चकृत भई सुकुमारि। कबहुँक इत, कबहूँ उत डोलति, लागी प्रीति-खँभारि—६७६।

संज्ञा स्त्री. [सं. काश्मरी, प्रा. कम्हरी] एक वृक्ष।

क्रि. अ.—भयभीत कर दी, कँपा दी, विचलित कर दी। उ.—धायौ पवनहुतै अति आतुर धरनी देह खभारी—२५६४।

खंभारौ—संज्ञा पुं. [हिं. खँभार] डर, भय। उ.—तब ब्रह्मा करि बिनय कह्यौ, हरि, याहि सँहारौ। तुम हौ लीला करत, सुरनि मन परयौ खँभारौ—३-११।

खंमिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खंभा] छोटा खंभा।

खँव—संज्ञा स्त्री. [सं. खं] खत्ता जिसमें अनाज भरा जाय।

खँसना—क्रि. अ. [हिं. खसना] गिरना, सरकना, खिसकना।

ख—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश। (२) स्वर्ग। (३) शून्य। (४) ब्रह्म। (५) शब्द।

खइए—क्रि. स. [सं. खादन, पा. खाअन, खान ; हिं. खाना] खाइए, भोजन कीजिए। उ.—जूठा खइए मीठे कारन आपुहि खात लड़ावत—पृ. ३३१।

खई—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षयी] (१) क्षय करनेवाली क्रिया। (२) विरोध, तकरार, झगड़ा। उ.—(क) सुत-सनेह-तिय कुटुम्ब मिलि, निशि दिन होत खई—१-२६६। (ख) त्यौंरी भौंहन मोतन चितवै नैंक रहौ तौ करै खई—१२६१। (ग) कहतहि पोच सोच मनही मन करत न बनति खई—२७६१। (घ) भोजन भवन कछू नहिं भावत पलकन मानौं करत खई सी—१६८३। (३) युद्ध, लड़ाई।

खक्खा—संज्ञा पुं. [अनु०] जोर की हँसी।

खखरा—संज्ञा पुं. [हिं. खखड़] (१) बाँस का टोकरा। (२) बड़ा देग।

खखरिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] पतली कुरकुरी पूरी।

खखसा—संज्ञा पुं. [हिं. खेखसा] एक तरकारी।

खखार—संज्ञा पुं. [अनु.] गाढ़ा कफ।

खखारना—क्रि. अ. [सं.क्षरण] (१) खाँसना। (२) खरखराहट के साथ कफ खींचना।

खखेटना—क्रि. स. [सं. आखेट=शिकार] (१) पीछा करना। (२) घायल करना। (३) दबाना, व्याकुल करना।

खखेटा, खखेट्यौ—संज्ञा पुं. [हिं. खखेटना] (१) शंका, संदेह। (२) छिद्र।

खखोंडर—संज्ञा पुं. [सं. ख+कोटर] पेड़ के खोखले में बना हुआ घोसला।

खखोरना—क्रि. स. [हिं. खखोलना] खोजना, छानबीन करना।

खगंगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] आकाशगंगा।

खग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्षी, चिड़िया। (२) गंधर्व। (३) बाण। (४) देवता। (५) सूर्य। (६) चंद्र। (७) वायु।

खगउड़ा—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का कड़ा।

खगकेतु—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़।

खगत—क्रि. स. [हिं. खगना] चित्त पर असर करती है, मन में बैठती है। उ.—जाही सो लगत नैन ताही खगत बैन नख सिख लौं सब गात ग्रसति—१८६६।

खगना—क्रि. स. [हिं. खाँग=काँटा] (१) गड़ना, चुभना। (२) चित्त पर प्रभाव डालना। (३) अनुरक्त होना। (४) उभर आना, चिन्तित होना। (५) अटक जाना, अड़ रहना।

खगनाथ, खगनायक, खगपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गरुड़। (२) सूर्य।

खगपतिअरि—संज्ञा पुं. [सं. खगपति = गरुड़ + अरि = शत्रु] शेषनाग। उ.—जब दधि-रिपु हरि हाथ लियौ। खगपति-अरि डर, असुरनि संका, बासरपति आनंद कियौ—१०-१४३।

खगभूप - संज्ञा पुं. [सं.] (१) **गरुड़**। (२) **सुआ, तोता**। उ.—सेमर-फूल सुरँग अति निरखत, मुदित होत खग-भूप। परसत चोंच तूल उघरत मुख, परत दुःख कैं कूप—१-१०२।

खगराइ—संज्ञा पुं. [सं. खग+हिं. राय] **खगपति, गरुड़**।

खगहा—संज्ञा पुं. [हिं. खाँग= पैना दाँत] **गैंडा**।

खगी—क्रि. स. [हिं. खगना] **उभर आयी, चिह्नित हो गयी**। उ.— यह सुनि धावत धरनि चरन की प्रतिमा खगी पंथ में पाई।

खगे—क्रि. स. [हिं. खगना] (१) **लिप्त हुए, अनुरक्त हुए**। उ.—प्रफुलित बदन सरोज सुंदरी अति रस नैन रँगे। पुहुकर पुंडरीक पूरन मनो खंजन केलि खगे—पृ. ३५० (६४)। (२) **अटके थे, अड़ रहे थे, उलझे थे**। उ.—न्हात रहीं जल में सब तरुनी तब तुम नैना कहाँ खगे—१३१८।

खगेश—संज्ञा पुं. [सं. खग + ईश] **गरुड़**।

खगौ—संज्ञा पुं. [सं. खग] **पक्षी**। उ.—इहै कोऊ जानै री। वाकी चितवनि मैं कि चंद्रिका मैं किधौं मुरली माँझ ठगोरी। देखत सुनत मोहि जा सुर नर मुनि मृग और खगौ री—२३६१।

खगोल—संज्ञा पुं [सं.] (१) **आकाशमंडल**। (२) **खगोल विद्या, ज्योतिष**।

खग्ग—संज्ञा स्त्री [सं. खड्ग, प्रा. खग्ग] **तलवार**।

खग्रास—संज्ञा पुं. [सं.] **पूर्ण ग्रहण**।

खचन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जड़ना। (२) **अंकित या चित्रित करना**।

खचना—क्रि. अ. [सं. खचन=बाँधना, जड़ना] (१) **जड़ा जाना**। (२) **अंकित या चित्रित होना**। (३) **रमना, अड़जाना**। (४) **अटकना, फँसना**।

खचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **सूर्य**। (२) **मेघ**। (३) **गृह**। (४) **नक्षत्र**। (५) **वायु**। (६) **पक्षी**।

वि.—आकाश में चलनेवाला।

खचरा—वि. [हिं. खच्चर] (१) **वर्णसंकर, दोगला**। (२) **दुष्ट, नीच**।

खचाई—क्रि. स. [हिं. खचाना] **अंकित या चिन्हित की**।

मुहा०—अपनी खचाई—**अपनी ही बात ऊपर रखी, दूसरे का तर्क न सुना**। उ.—सुनौ धौं दै कान अपनी लोक लोकन कीति। सूर प्रभु अपनी खचाई रही निगमन जीति।

खचाखच—क्रि. वि. [अनु.] **खूब भरा हुआ, ठसाठस**।

खचाना—क्रि. स. [हिं. खँचाना] (१) **अंकित करना**। (२) **शीघ्र लिखना, खींचना**।

खचावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाँचना] **खचन, गठन**।

खचावनो—वि. [हिं. खँचाना] **जड़े हुए**। उ.—पटली बिच बिद्रुम लागे हीरा लाल खचावन —२२८०।

खचि—क्रि. अ. [हिं. खचना] (१) **जड़कर**। उ.—(क) कंचन-खंभ, मयारि, मरुवा-डाडी, खचि हीरा बिच लाल प्रबाल—१०-८४। (ख) किधौं बज्रकनि लाल नगनि खचि तापर बिद्रुम पाँति—१४१०। (ग) विद्रुम स्फटिक पची कंचन खचि मनिमय मंदिर बने बनावत—१०-उ.-५। (घ) द्रुम सर-घात ब्रजनाथ सुधानिधि राखे बहुत जतन करि सचि सचि। मन मुख भरि भरि नैन ऐन ह्वै उर प्रति कमल कोस लौं खचि खचि-२६०२। (२) **रमकर, अड़कर**।

खचित—वि. [सं. खचन=बाँधना, जड़ना] (१) **जड़ा हुआ**। उ.—(क) कनक खचित मनिमय आभूषन, मुख स्रम-कन सुख-देत ६२८। (ख) चारु चक्र मनि खचित मनोहर चंचल चमर पताका—२५६६। (२) **चित्रित, लिखित**।

खची—क्रि. अ. [हिं. खचना] (१) **अंकित हुई, चित्रित हुई**। उ.—देत भाँवरि कुंज मंडप पुलिन में बेदी रची। बैठे जो स्यामा स्याम बर त्रैलोक की सोभा खची। (१) **जड़ी गई**। उ.—चौकी हेम चंद्र मनि लागी हीरा रतन जराय जरी—पृ. ३४५ (४१)।

खचे—क्रि. अ. [हिं. खचना] **अटके, फँस गये**। उ.—नैना पंकज पंक खचे। मोहन मदन स्याम मुख निरखत भ्रुवन बिलास रचे—पृ. ३२५।

खचेरना—क्रि. स. [हिं. खदेरना] **दबाकर वश में करना**।

खच्यौ—क्रि. अ. भूत. [हिं. खचना] **रम गया, अड़ गया, मग्न हो गया**। उ.—(क) आजु हरि ऐसे रास रच्यौ। ....। गत गुन मँद अभिमान अधिक रुचि लै

लोचन मन तहँइ खच्यौ—पृ. ३५० (६६)। (ख) एक दिन बैंकुठवासी रास बृन्दावन रच्यौ । सोई स्वरूप बिलोकि माधौ आइ इन बिधि तनु खच्यौ —३२६० ।

खच्चर—संज्ञा पुं. [देश] एक पशु ।

खज—वि. [सं. खाद्य, प्रा. खाज्ज] जो खाने योग्य हो ।

खजला—संज्ञा पुं. [हिं. खाजा] एक पकवान ।

खजहजा—संज्ञा पुं. [सं. खाद्यान्न, प्रा. खज्जाज्ज] उत्तम मेवा ।

वि.—खाने योग्य ।

खजानची—संज्ञा पुं. [हिं. खजाना] कोषाध्यक्ष ।

खजाना, खजीना—संज्ञा पुं. [अ. खजाना] (१) कोष, भंडार, धनागार । (२) कर ।

खजुआ, खजुवा—संज्ञा पुं. [हिं. खाजा] खजला या खाजा नाम की मिठाई । उ.—दोना मेलि धरे हैं खजुआ । हौंस होय तौ ल्याऊँ पूआ ।

खजुलाना—क्रि. स. [हिं. खजुलाना] शरीर को नाखून आदि से सहलाना या रगड़ना ।

खजुली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुजली] खुजलाहट ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खाजा] एक मिठाई ।

खजूर, खजूरी—संज्ञा स्त्री. [सं. खर्जूर, हिं. खजूर] (१) एक प्रकार की मिठाई । उ.—मधुरी अति सरस खजूरी । सद परसि धरी घृत पूरी—१८३ । (२) खजूर का फल, खजूर ।

खट—संज्ञा पुं. [अनु.] टूटने, टकराने या ठोंकने-पीटने का शब्द ।

खटक—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) खटकने की क्रिया । (२) आशंका, चिंता ।

खटकत—क्रि. अ. [हिं. खटकना] बुरा लगता है, खलता है । उ. बल मोहन खटकत वाकैं मन, आजु कही यह बात—५२७ ।

खटकना—क्रि. अ. [हिं. खटक (अनु.)] (१) 'खटखट' का शब्द होना । (२) किसी चीज के गड़ने, चुभने या आ पड़ने से पीड़ा होना (३) बुरा लगना । (४) झगड़ा होना । (५) अनिष्ट या अपकार की आशंका होना । (६) अनुपयुक्त जान पड़ना ।

खटका—संज्ञा पुं. [हिं. खटकना] (१) 'खटखट' शब्द । (२) डर, आशंका । (३) चिंता ।

खटकाना—क्रि. स. [हिं. खटकना] 'खटखट' करना ।

खटकी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. खटकना (अनु.)] खटक, खटकनेवाली बात । उ.—कालिह मैं कैसे निदरति ही मेरे चित पर टरति न खटकी —१३०१ ।

खटखट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) ठोंकने पीटने का शब्द । (२) खटपट, झगड़ा, झंझट ।

खटखटाना—क्रि. स. [अनु.] खटखट शब्द करना ।

खटना—क्रि. अ. [हिं.] (१) धन कमाना । (२) बड़ी मेहनत करना । (३) विपत्ति में पीछे न हटना ।

खटपट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) टकराने या ठोंकने पीटने का शब्द । (२) झगड़ा ।

खटपटिया—वि. [हिं. खटपट] झगड़ालू ।

खटपद—संज्ञा पुं. [सं. षट्पद] भौंरा ।

खटपदी—संज्ञा स्त्री. [सं. षट्पदी] (१) छः पंक्तियों का छन्द । (२) छप्पय छंद ।

खटपाटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाट + पाटी] खाट की पाटी ।

खटमल—संज्ञा पुं. [हिं. खाट + मल = मैल] खटकीड़ा ।

खटमिट्ठा, खटमीठा—वि. [हिं. खट्टा + मीठा] जो कुछ खट्टा हो और कुछ मीठा ।

खटमुख—संज्ञा पुं. [सं. षटमुख] कार्तिकेय ।

खटरस—संज्ञा पुं. [सं. षट् + रस] खट्टा, मीठा, कड़ुआ, तीखा आदि छः रस ।

खटराग—संज्ञा पुं. [षट्राग] (१) झंझट, झगड़ा, बखेड़ा । (२) व्यर्थ की चीजें ।

खटला संज्ञा पुं. [देश.] कान का छेद जिसमें स्त्रियाँ बालियाँ पहनती हैं ।

खटवाट, खटवाटी, खटवाटू—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाट + पाटी] खाट की पट्टी ।

खटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खट्टा] (१) खट्टापन, अम्लता । उ.—(क) भरता भँटा खटाई दीनी—२३२१ । (२) वह पदार्थ जिसका स्वाद खट्टा हो ।

खटाका—संज्ञा पुं. [अनु.] 'खट' का शब्द ।

खटाखट—संज्ञा पुं. [अनु.] खटखट का शब्द ।

क्रि. वि.— (१) चटपट। (२) जल्दी।

खटाति—क्रि. अ. [हिं. खटाना] (१) निर्वाह होता है, निभता है। उ.—मधुकर कह कारे की न्याति। ज्यों जल मीन कमल मधुरन कौ छिन नहिं प्रीति खटाति —३१६८। (२) परीक्षा में ठहरता है।

खटाना—क्रि. अ. [हिं. खट्टा] (किसी वस्तुका) खट्टा हो जाना।

क्रि. अ. [सं. स्कभू, स्कब्ध; प्रा. खड्ड = ठहरा हुआ] (१) निर्वाह होना, निभना। (२) परीक्षा में डटे रहना।

खटापट, खटापटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटपट] लड़ाई, झगड़ा, तकरार।

खटाव—संज्ञा पुं० [हिं. खटाना] निर्वाह, निभना।

खटास—संज्ञा स्त्री. [हिं. खट्टा] खट्टापन।

खटिक—संज्ञा पुं. [सं. खट्टिक] तरकारी बेचनेवाली एक जाति।

खटीक—संज्ञा पुं. [हिं. खटिक] (१) खटिक। (२) कसाई।

खटोलना,खटोला—संज्ञा पुं. [हिं. खाट + ओला (प्रत्य)] (१) बच्चों की खाट। (२) पालना। (३) पालकी।

खट्टा—वि. [सं. कटु] अम्ल, तुर्श।

संज्ञा पुं. [सं. खट्वा] पलँग, चारपाई।

खट्वांग—संज्ञा पुं० [सं.] (१) एक सूर्यवंशी राजा। (२) शिव का एक अस्त्र।

खट्वा—संज्ञा स्त्री. [सं.] खटिया, चारपाई।

खड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) धान का पयाल। (२) घास। (३) एक ऋषि।

खड़क—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटक] खटकने का भाव, खटक।

खड़कना—क्रि. अ. [अनु.] (१) खड़ खड़ का शब्द होना। (२) खटकना।

खड़खड़ाना—क्रि. स. [अनु०] (१) खड़ खड़ का शब्द करना। (२) खटखटाना।

क्रि. अ.— खड़ खड़ का शब्द होना।

खड़खड़िया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़खड़ाना] पालकी, पीनस।

खड़ग—संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] तलवार।

खड़गी—वि. [सं. खड्गिन] जो तलवार लिये हो।

संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] गैंडा।

खड़जी—संज्ञा पुं. [हिं. खड़गी] गैंडा।

खड़बड़—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) खटखट की ध्वनि। (२) उलट-फेर, गड़बड़। (३) हलचल।

खड़बड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] (१) घबड़ाना। (२) उलट-फेर का होना। (३) घबरा देना।

खड़बड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़बड़ाना] (१) उलट फेर, गड़बड़ी। (२) घबराहट।

खड़बिड़ा, खड़बीहड़—वि. [हिं. खड्ड + सं. विघट, प्रा. विहड़] ऊँचा-नीचा, जो समतल न हो।

खड़मंडल—संज्ञा पुं. [सं. खंड + मंडल] गड़बड़, झंझट, झमेला।

वि.—(१) उलट-पुलट, नष्ट-भ्रष्ट।

खड़सान—संज्ञा पुं. [हिं. खर + सान] बहुत तीक्ष्ण सान जिस पर तलवार उतारी जाती है।

खड़हर—संज्ञा पुं. [हिं. खँडहर] टूटा-फूटा मकान, मन्दिर आदि।

खड़ा—वि. [सं. खड़क = खम्भा, थूनी] (१) समकोण उठा हुआ, दंड की तरह सीधा।

मुहा.—खड़े खड़े—झटपट। खड़ा जवाब—साफ इन्कार। खड़ा होना—सहायता करना। खड़ी पछाड़ें खाना—बहुत क्षोभ से पृथ्वी पर गिरना।

(२) टिका हुआ, स्थिर। (३) उत्पन्न। (४) सन्नद्ध, तैयार। (५) आरंभ। (६) बनाया हुआ, उठाया हुआ। (७) तैयार, जो काटी न गयी हो। (८) जो पका न हो, कच्चा। (९) समूचा, पूरा। (१०) जो बहता हुआ न हो।

खड़ाऊँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. काठ + पाँव; या खटपट अनु०] पादुका।

खड़ाका—संज्ञा पुं. [अनु.] खड़खड़ शब्द, खटका।

खड़ानन—संज्ञा पुं. [सं. षडानन] कार्तिकेय।

खड़िया—संज्ञा स्त्री [सं. खटिका] एक तरह की सफेद मिट्टी, खड़ी।

मुहा.—खड़िया में कोयला— बेमेल बात।

संज्ञा स्त्री. [सं. कांड या हिं. खड़ा] फली-पत्ती रहित अरहर का पेड़ या डंठल ।

खड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़िया] खड़िया मिट्टी ।

खड़ी बोली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़ी + बोली] आधुनिक हिंदी का वह रूप जिसका प्रचार सारे भारत में है। इसमें संस्कृत के साथ साथ अरबी, फारसी के भी प्रचलित शब्द घुले-मिले हैं ।

खड़ुआ—संज्ञा पुं [हि. कड़ा] हाथ या पाँव का कड़ा ।

खड्ग—संज्ञा पुं. [सं.] तलवार । उ.—शूद्रराज इहि अन्तर आयौ । वृषभ-गाइ कौं पाइ चलायौ । ताहि परीछित खंग उठाइ । बहुरौ बचन कह्यौ या भाइ —१ २९० ।

खड्गकोश—संज्ञा पुं. [सं] म्यान ।

खड्गपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष जो यमराज के यहाँ है और जिसमें पत्तियों की जगह तलवारें कटारें आदि लगी हैं। पापियों को इसपर चढ़ने का दंड दिया जाता है ।

खड्गपुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह की कटारी ।

खड्गारीट—संज्ञा पुं [सं.] चमड़े की ढाल ।

खड्गिक—संज्ञा पुं. [सं.] शिकारी ।

खड्गी—संज्ञा पुं. [सं. खड्गिन्] (१) वह जो तलवार लिये हो । (२) गैंडा ।

खड्ड, खड्ढा—संज्ञा पुं. [सं. खात्] गढ़ा ।

खणक—संज्ञा पुं. [सं. खनक] चूहा ।

खतंग—संज्ञा पुं. [देश.] एक तरह का कबूतर ।

खत—संज्ञा पुं. [अ. ख़त] (१) चिट्ठी, पत्र । (२) लिखावट । (३) रेखा, धारी । (४) दाढ़ी के बाल ।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षिति, प्रा. खिति) पृथ्वी ।

संज्ञा पुं. [सं. क्षत] घाव ।

खतखोट—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षत + हिं. खुड] घाव की सूखी हुई ऊपरी पपड़ी, खुरंड ।

खतना—अ. [हिं. खाता] खाते में लिखा जाना, खतियाया जाना ।

खतम—वि. [अ. ख़त्म] समाप्त ।

खतर, खतरा—संज्ञा पुं. [अ. ख़तर, ख़तरा] (१) डर । (२) आशंका ।

खता—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़ता] (१) कसूर, अपराध । उ.—सूरदास चरननि की बलि-बलि, कौन खता तैं कृपा बिसारी—१.१६० । (२) धोखा । (३) भूल चूक ।

संज्ञा पुं. [सं. क्षत] घाव ।

खतावार—वि. [हिं. खता + वार] अपराधी, दोषी ।

खति—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षति] हानि, नुकसान ।

खतिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खत्ता] छोटा गड्ढा ।

खतियाना—क्रि. स. [हिं खाता] प्रतिदिन का आय-व्यय अलग-अलग खातों या मदों में लिखना ।

खतियावै—क्रि. स. [हिं. खाता, खतियाना] प्रति दिन की आय-व्यय आदि खातों में यथानुसार लिखता है । उ.—साँचौ सो लिखहार कहावै । .... । बट्टा काटि कसूर भरम कौ, फरद तले लै डारै । निहचै एक असल में राखै, टरै न कबहूँ टारै । करि अवारजा प्रेम प्रीति कौ, असल तहाँ खतियावै । दूजे करज दूरि करि दैयत, नैंकु न तामैं आवै—२-१४२ ।

खतियौनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खतियाना] (१) आय-व्यय का खाता । (२) खतियाने की क्रिया । (३) लगान आदि लिखने का कागज ।

खत्ता—संज्ञा पुं. [सं. खात] (१) अन्न रखने का गड्ढा । (२) प्रांत, स्थान ।

खत्म—वि. [हिं. खतम] समाप्त, जो चुक गया हो ।

खत्रवट, खत्रवाट—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षत्री+वट (प्रत्य.)] वीरता ।

खदंग—संज्ञा पुं. [फा.] वाण, तीर ।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) जुगनू । (२) सूर्य ।

खदखदाना, खदबदाना—क्रि. अ. [अनु.] किसी चीज को इतना उबालना कि 'खदबद' शब्द होने लगे ।

खदरा—संज्ञा पुं. [हिं. खत्ता] (१) गड्ढा । (२) बछड़ा ।

वि.—[सं. क्षुद्र] बेकाम चीज, रद्दी ।

खदान—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोदना या खान] खान जिसमें से खनिज पदार्थ निकलते हैं ।

खदिर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कत्था । (२) चंद्रमा । (३) इंद्र ।

खदुका—संज्ञा पुं. [सं. खादक] (१)ऋणी । (२) ऋण लेकर व्यापार करनेवाला ।

खदेड़ना, खदेरना—क्रि. स. [हिं. खेदना] भगाना, दूर हटाना ।

खद्दड़, खद्दर—संज्ञा पुं. [देश.] हाथ से काते सूत का हाथ से बुना कपड़ा ।

खद्योत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जुगनूँ । (२) सूर्य ।

खद्योतक—संज्ञा पुं. [सं०] (१) सूर्य । (२) विषैले फल का एक वृक्ष ।

खन—संज्ञा पुं. [सं. क्षण] (१) क्षण, पल भर का समय, लमहा । उ.—खन भीतर, खन बाहिर आवति, खन आँगन इहिं भाँति—५४० । (२) समय । (३) तत्काल । उ.—खन गोपी कै पाँइँ परै धन सोई है नेम—३४४३ ।

क्रि. वि.—तुरंत ।

संज्ञा पुं. [सं. खंड] मंजिल, तल्ला, मरातिब ।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक वृक्ष । (२) एक कपड़ा ।

खनक—संज्ञा स्त्री. [खन से अनु.] खनखनाहट ।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) चूहा । (२) चोर जो सेंध लगाये । (३) खोदनेवाला । (४) भूतत्व ।

खनकना—क्रि. अ. [अनु.] खनखन शब्द होना ।

खनकाना—क्रि. स. [अनु.] खनखन शब्द करना ।

खनखनाना—क्रि. अ. [अनु.] खनखन शब्द करना ।

खनन—संज्ञा पुं. [हिं. खनना] खोदने का कार्य ।

खननहारा—वि. [हिं. खनना+हारा] खोदनेवाला ।

खनना—क्रि. स. [सं. खनन] (१) खोदना । (२) (खेत आदि) गोड़ना ।

खनवाना—क्रि. स. [हिं. खनाना] खुदवाना ।

खनहन — वि. [सं. क्षीण+हीन] (१) निर्बल । (२) निर्दोष, सुन्दर ।

खनाना — क्रि. स. [हिं. खनना] खनने को प्रेरित करना, खुदवाना ।

खनावत—क्रि. स. [हिं. खनना] खोदते हैं, खोदकर, खोदने (से) । उ.—वे हरि रत्न रूप सागर के क्यों पाइए खनावत घूरे (धूरे)—३०४२ ।

खनावै—क्रि. स. [हिं. 'खनना' का प्रे.] खोदवाता है । उ.—(क) परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै—१-१६८ । (ख) बसत सुरसरी तीर मंदमति कूप खनावै—२-६ ।

खनि—क्रि. स. [हिं. खनना] खोदकर । उ.—(क) कूप खनि कह जाइ रे नर, जरत भवन बुझाइ । सूर हरि कौ भजन करि लै, जनम-मरन नसाइ—१-३१५ । भरत भवन खनि कूप सूर त्यौं मदन अगिनि दहि जैहै—२०३४ ।

खनिज—वि. [सं.] खान से खोदकर निकाला हुआ ।

खनियाना—क्रि. स. [हिं. खनना] खाली करना ।

खनोना—क्रि. स. [हिं. खनना] खोदना, कुरेदना ।

खनोवति—क्रि. स. [हिं. खनना] खोदती है । उ.—द्रुम साखा अवलंब बेलि गहि नख सों भूमि खनोवति—१८०० ।

खपची—संज्ञा स्त्री. [तु. कमची] बाँस की पतली तीली ।

खपड़ा—संज्ञा पुं. [सं. खपरि, प्रा. खप्पट] । (१) खपड़ैल में लगाये जानेवाले मिट्टी के पके हुए टुकड़े । (२) भिखमंगों का खप्पर । (३) ठीकरा ।

संज्ञा पुं. [सं. क्षुरपत्र] चौड़े फल का तीर ।

खपड़ैल—संज्ञा स्त्री. [हिं. खपरैल] खपड़ों से छायी हुई छत ।

खपत—संज्ञा स्त्री. [हिं. खपना] (१) समाई, गुंजाइश । (२) माल की बिक्री ।

क्रि. अ.— खपता है, काम में आता है ।

खपना—क्रि. अ. [सं. क्षेपण] (१) काम में आना, व्यय होना । (२) निभ जाना । (३) नष्ट होना । (४) तंग हो जाना ।

खपर—संज्ञा पुं. [हिं. खपड़ा] खप्पर, टूटा हुआ पात्र जो भिखारियों के पास रहता है । उ.—गोपालहिं पावौं धौं किहिं देस । सृंगी मुद्रा कनक खपर करिहौं जोगिन भेष—२७५४ ।

खपरैल - संज्ञा स्त्री. [हिं. खपड़ा] खपड़े से छायी छाजन या छत ।

खपाना — क्रि. स. [सं. क्षेपण] (१) काम में लगाना । (२) निभाना । (३) स्वारथ करना, समाप्त करना । (४) तंग करना ।

खपायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. खपाना] नष्ट कर दी । उ. —मैना मेघनायक रितु पावस बान बृष्टि करि सैन खपायौ ।

खपुआ—वि. [हिं खपना = नष्ट होना] कायर, डरपोक।

खपुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सुपारी का पेड़। (२) बबनखा।

खपुष्प—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाशकुसुम। (२) असंभव बात।

खप्पड़, खप्पर—संज्ञा पुं. [सं. खर्पर] मिट्टी का चौड़ा पात्र जो भिखारियों के पास रहता है। उ.—हृदय सींगी टेर मुरली नैन खप्पर हाथ—३१२६।

खफगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खफा] नाराजगी, क्रोध।

खफा—वि. [अ. ख़फा] (१) अप्रसन्न। (२) क्रुद्ध।

खफीफ—वि. [अ. ख़फ़ीफ] (१) थोड़ा, कम। (२) सामान्य। (३) लज्जित।

खबर—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़बर] (१) समाचार।

मुहा.—खबर उड़ना (फैलना)—चर्चा होना। खबर लेना—(१) समाचार जानना। (२) ध्यान देना, दया दिखाना। (३) दंड देना।

(२) सूचना, जानकारी। (३) संदेश। (४) पता, खोज। (५) सुध, चेत।

खबरगीरी—संज्ञा स्त्री. [फा. ख़बरगीरी] (१) देखभाल। (२) दया, सहायता।

खबरदार—वि. [फ़ा ख़बरदार] होशियार, सावधान।

खबरदारी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा ख़बरदारी] होशियारी, सावधानी।

खबरि—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़बर] (१) समाचार, वृत्तांत। उ.—(क) किधौं सूर कोई ब्रज पठयो, आजु खबरि कै पावत हैं—२६४६। (ख) द्वारावति पैठत हरि सों सब लोगन खबरि जनाई—१० उ.-२७। (२) सूचना, ज्ञान, जानकारी। उ.—(क) क्यों जू खबरि कहौ यह कीन्हीं करत परस्पर ख्याल—२४२७। (ख) कूदि परयौ चढ़ि कदम तैं खबरि न करौ सबेर—५८६। (३) संदेश, सँदेसा। उ.—ज्ञान बुझाइ खबरि दै आवहु एक पंथ द्वै काज—२६२५। (४) चेत, सुधि, संज्ञा। (५) पता, खोज। उ.—अपने कुल की खबरि करौ धौं सकुच नहीं जिय आवति—११७४।

मुहा.—खबरि करि—ध्यान देकर, खबरदारी से पता लगाकर, समझ-बूझकर। अपनी बात खबरि करि देखहु न्हात जमुन के तीर—११४०।

खबरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खबर] समाचार, वृत्तांत।

खबरी—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़बरी] समाचार लाने या ले जानेवाला, दूत।

खबीस—संज्ञा पुं. [अ. ख़बीस] दुष्ट, भयंकर।

खब्त—संज्ञा पुं. [अ. ख़ब्त] सनक, झक।

खब्ती—वि. [हिं. खब्त] सनकी, झक्की।

खब्भड़—वि. [हिं. खाबड़] दुबला, जिसके हड्डियाँ निकली हों।

खभरना—क्रि. स. [हिं. भरना] (१) मिलाना, (एक वस्तु में दूसरी का) मेल करना। (२) उथल-पुथल करना।

खभार—संज्ञा पुं. [हिं. खँभार] (१) चिंता। (२) दुख। (३) व्याकुलता।

खभारे—संज्ञा पुं. [हिं. खँभार] अंदेशा, चिंता। उ.—कैसेहुँ ये बालक दोउ उबरैं, पुनि पुनि सोचति परी खभारे। सूर स्याम यह कहत जननिसों, रहि री मा धीरज उर धारे—५६५।

खम—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़म] (१) दोष, टेढ़ापन।

मुहा०—खम खाना—(१) दब जाना। (२) हारना। खम ठोकना (बजना) (१) ताल ठोककर लड़ने को ललकारना। (२) दृढ़ होना।

(२) गाते समय स्वर में लोच लाने के लिए लिया जानेवाला विश्राम।

खमकना—क्रि. अ. [अनु०] खमखम शब्द होना।

खमदार—वि [हिं. खम+दार] टेढ़ा।

खमा—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षमा] क्षमा, दया।

खमीर—संज्ञा पुं. [अ. खमीर] (१) गीले आटे का सड़ाव। (२) सड़ा कर तैयार किया हुआ पदार्थ। (३) स्वभाव।

खमीरा—वि. [अ. खमीरा] जिसमें खमीर मिला हो।

खय—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) गबन। (२) चोरी।

खया—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध] भुजमूल, दंड।

खयानत—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़यानत] धरोहर का कुछ भाग दबा लेना।

ख़याल—संज्ञा पुं. [हिं. ख़याल] (१) ध्यान, (२) याद। (३) विचार।

खयाली—वि. [हिं. ख्याल] कल्पित, फर्जी।
वि. [हिं. खेल] कौतुकी, खिलाड़ी।

खये—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध, हिं. खया] भुजमूल। उ.—अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खये —१० उ.-१०७।

खर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गधा। (२) रावण का भाई जिसे राम ने मारा था। (३) घास, तृण।
वि.— (१) कड़ा। (२) तेज, तीक्ष्ण। (३) तेज धार का। (४) हानिकारी। (५) आड़ा, तिरछा।
संज्ञा पुं. [हिं. खरा] खरापन, खराई।
संज्ञा पुं. [सं खर=तेज] कड़ा, करारा।

खरक—संज्ञा पुं. [सं खड़क=स्थाणु] (१) पशुओं के रखने का बाड़ा जो प्रायः आड़ी-सीधी बल्लियाँ खंभे गाड़कर तैयार किया जाता है। (२) चराई का स्थान।
संज्ञा स्त्री. [हिं. खटक (अनु.)] (१) खटका, खटकने का भाव। (२) भय, आशंका। (३) पीड़ा। उ.—हाहा चल प्यारा तेरो प्यारो चौंकि चौंकि परै पातकी खरक पिय हिय में खरक रही—२२३६।
क्रि. अ. [हिं. खटकना] रह रह कर पीड़ा होना।

खरकना—क्रि. अ. [हिं. खर] (१) फाँस चुभने का दर्द होना। (२) चल देना, भाग जाना, सरक जाना।
क्रि. अ. [हिं. खड़कना (अनु.)] खड़खड़ शब्द करना।

खरका—संज्ञा पुं. [हिं. खर] तिनका।
संज्ञा पुं. [हिं. खरक] (१) पशुओं का बाड़ा। (२) चराई का स्थान।

खरको, खरकौ—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटक (अनु.)] खटका, 'खटकने' का भाव। उ.—ननदी तौन दिए बिनु गारी नैकहु रहति सासु सपनेहू में आनि गोउति काननि में लए रहै मेरे पाँइन को खरकौ—१४९२।

खरखशा—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़रख़शा] (१) झगड़ा, बखेड़ा, झंझट। (२) भय, डर।

खरखौकी—संज्ञा स्त्री [हिं. खर=घास-फूस+खाना] घास-फूल भक्षण करनेवाली अग्नि।

खरग—संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] तलवार।

खरगोश—संज्ञा पुं. [फा.] खरहा।

खरच—संज्ञा पुं. [अ. खर्ज, हिं. खर्च] व्यय, दाम। उ.—सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत —१-२६६।

खरचना—क्रि. स. [फा. ख़र्च] (१) खर्च करना। (२) उपयोग में लाना।

खरचा—संज्ञा पुं. [हिं. खर्चा] खर्च, व्यय।

खरचि—क्रि. स. [हिं. खरचना] व्यय करना, खर्च करना। उ.—खाइ न सकै, खरचि नहिं जानै, ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी—१-३६।

खरचियतु—क्रि. स. [हिं. खरचना] व्यय करना, खरचना। उ.—यामें कछू खरचियतु नाहीं अपनो मतो न दीजै—२६७२।

खरचै—क्रि. स. [हिं. खरचना] व्यय करता है। उ.—खरचै लाख, लिखै नहिं एक—४-१३।

खरतर—वि. [हिं. खर+तर (प्रत्य.)] (१) बहुत तेज। (२) व्यवहार का खरा और सच्चा।

खरतल—वि. [हिं. खरा] (१) स्पष्ट बात करनेवाला। (२) शुद्ध हृदयवाला। (३) प्रचंड, उग्र।

खरतुआ—संज्ञा पुं. [हिं. खर+बथुआ] एक घास।

खरदूषण, खरदूषन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खर और दूषण नामक दो राक्षस जो रावण के भाई थे। (२) धतूरा।
वि.—जिसमें अनेक दोष हों।

खरधार—संज्ञा पुं. [सं] तेज धारवाला।

खरब—संज्ञा पुं. [सं. खर्व] संख्या का बारहवाँ स्थान, सौ अरब की संख्या।

खरबूजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. खर्पजः] एक फल।

खरभर—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) हलचल, गड़बड़। उ.—(क) तब मैं डरपि कियौ छोटौ तनु, पैठ्यौ उदर-मँझारि। खरभर परी, दियौ उन पैंडों, जीती पहिली रारि—६-१०४। (ख) कटक अगिनित जुरयौ, लंक खरभर परयौ, सूर कौ तेज धर-धूरि ढाँप्यो—६-१०६। (२) शोर, गुल-गपाड़ा।

खरभरना—क्रि. अ. [हिं. खरभर] (१) क्षुब्ध होना। (२) घबराना।

खरभराना—क्रि. स. [हिं. खरभर] (१) शोर करना। (२) गड़बड़ मचाना। (३) व्याकुल करना।

खरभरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरभर] (१) हलचल। (२) शोर-गुल।

खरभर्‌यौ—क्रि. अ. भूत. [हिं. खरभर] चंचल या व्याकुल होकर खरभराने लगा। उ.—तब जलनिधि खरभर्‌यौ त्रास गहि, जंतु उठे अकुलाइ—९.१२१।

खरमंडल—संज्ञा पुं. [हिं. खड़मंडल] अव्यवस्था, गड़बड़ी।

वि.—(१) उलटा-पुलटा। (२) नष्ट-भ्रष्ट।

खरमस्ती—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] भद्दी हँसी, पाजीपन।

खरमास—संज्ञा पुं. [सं.] पूस-चैत मास जिसमें शुभ कार्य करना मना है।

खरमिटाव—संज्ञा पुं. [हिं. जल+पान] जलपान।

खरल—संज्ञा पुं. [सं. खल] पत्थर या लोहे का गोल या लंबोतरा पात्र जिसमें डालकर ओषधियाँ कूटी जाती हैं।

खरवाँस—संज्ञा पुं. [हिं. खर+मास] पूस-चैत मास जिनमें शुभ कार्य वर्जित हैं।

खरसा—संज्ञा पुं [सं. षड्स] एक खाद्य पदार्थ।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक मछली।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) गरमी के दिन। (२) अकाल।

संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ारिश] खुजली, खाज।

खरसान—संज्ञा स्त्री. [हिं. खर+सान] एक प्रकार की तीक्ष्ण सान जिस पर तीर, तलवार आदि की धार तेज की जाती है। उ.—झलमलात रति रैनि जनावत अति रस मत्त भ्रमत अनियारे। मानहु सकल जगत जीतन को कामबान खरसान सँवारे—२१३२।

खरहर—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

खरहरना—क्रि. अ. [हिं. खर=तिनका + हरना] झाड़ू देना।

खरहरा—संज्ञा पुं. [हिं. खरहरना] (१) डंठलों का झाड़ू। (२) पशुओं का ब्रुश।

खरहरी—संज्ञा स्त्री [देश.] एक मेवा।

खरांशु—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।

वि,—तेज किरणोंवाला।

खरा—वि. [सं. खर = तीक्ष्ण] (१) तेज। (२) विशुद्ध, बिना मिलावट का।

मुहा.—खरा खोटा—भला-बुरा। जी खरा खोटा होना—नियत बुरी हो जाना।

(३) छल-कपट रहित, सच्चा।

मुहा.—खरा खेल—सच्चा व्यवहार।

(४) नक़द और उचित (मूल्य या वेतन)।

मुहा.—रुपया खरा होना—रुपया मिलने की बात पक्की हो जाना।

(५) स्पष्ट और निष्पक्ष बात कहनेवाला। (६) स्पष्ट और सच्ची बात जो सुनने में चाहे कितनी ही अप्रिय लगे।

मुहा.—खरी सुनाना—सच्ची सच्ची बातें कहना पर यह ध्यान न देना कि ये भली लगेंगी या बुरी।

(७) बहुत, ज्यादा।

खराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरा + ई (प्रत्य.)] 'खरा' होने का भाव, खरापन।

खराऊँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़ाऊ] खड़ाऊँ। उ.—एक अँधेरो हिये की फूटी दौरत पहिरि खराऊँ—२४६६।

खराद—संज्ञा पुं. [अ. खरात, फा. खराद] एक औजार जिस पर चढ़ाकर लकड़ी, धातु आदि की वस्तुएँ सुडौल, चिकनी और चमकीली की जाती हैं। उ.—पालनौ अति सुंदर गढ़ि ल्याउ रे बढ़ैया। सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ, बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बनैया—१०-४१।

मुहा.—खराद पर चढ़ना (उतरना)—(१) सुधर जाना। (२) व्यवहार में कुशल होना। खराद पर चढ़ाना (उतारना)—सुधारना, ठीक करना।

संज्ञा स्त्री.—(१) खरादने की क्रिया या भाव। बनावट, गढ़न।

खरादना—क्रि. स. [हिं. खराद] (१) खराद के सहारे किसी वस्तु को चिकना या सुडौल करना। (२) सुडौल करना।

खरापन—संज्ञा पुं. [हिं. खरा + पन] (१) खरा या शुद्ध होने का भाव। (२) सच्चाई। (३) उन्मत्त हो जाने का भाव।

खराब—वि. [अ. ख़राब] (१) बुरा, हीन, जिसकी दशा बिगड़ जाय। (२) जो पतित हो।

खराबी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा०] (१) बुराई, दोष। (२) बुरी दशा।

खरायँध—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षार + गंध] क्षार की-सी दुर्गन्ध।

खरारि, खरारी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खर दैत्य को मारनेवाले श्री रामचन्द्र। (२) विष्णु। (३) कृष्ण। (४) धेनुकासुर को मारनेवाले बलराम।

खराश—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़राश] खरोंच, छिलना।

खरिक—संज्ञा पुं. [देश.] ऊख जो खरीफ के बाद बोई जाय।

संज्ञा पुं. [सं. खड़क = स्थाणु, हिं. खरक] पशुओं के चरने या रहने का स्थान, बाड़ा। उ.—अहो सुबल श्रीदामा भैया ल्यावहु जाय खरिक के नेरे।

संज्ञा पुं. [सं. क्षारका, हिं. खारक] छोहारा नामक मेवा। उ.—खरिक दाख अरु गरी निरारी। पिंड बदाम लेहु बनवारी—३६६।

खरिकौ—संज्ञा पुं. [सं. खड़क=स्थाणु, हिं. खरक] पशुओं के रहने या चरने का स्थान। उ.—जो सुख मुनिगन ध्यान न पावत, सो सुख करत नंदसुत खरिकौ—१०-१८१।

खरिकनि—संज्ञा पुं. बहु. [देश.] गैयों के रहने का स्थान। उ.—राँभति गौ खरिकनि मैं, बछरा हित धाई—१०-२०२।

खरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खर+इया (प्रत्य.)] (१) पतली रस्सी की जाली जिसमें घास, भूसा जैसी चीजें बाँधते हैं। (२) झोली।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़िया] खड़िया।

संज्ञा स्त्री. [हिं खार = राख] कंडे की राख।

वि.—चोखी।

खरियाना—क्रि. स. [हिं. खरिया = झोली] (१) झोला या थैली में भरना। (२) छीन लेना। (३) थैली से गिराना।

खरिहान—संज्ञा पुं. [स. खल + स्थान] खेत के पास का स्थान जहाँ फसल काटकर रखी और माड़ी जाती है। उ.—माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध कौ, पोता-भजन भरावै—१-१४२।

खरी—वि. स्त्री. [सं. खड़क = खम्भा, थूनी ; हिं. पु. खड़ा] खड़ी, खड़ी खड़ी। उ.—(क) आनँद-प्रेम उमँगि जसोदा खरी गुपाल खिलावै—१०-१३०। (ख) माखन दधि हरि खात प्रेम सौं निरखति नारि खरी—११७७।

वि. स्त्री. [सं खर = तीक्षण, हिं. पुं. खरा] (१) तेज, तीखी, तीव्र स्वर की। उ.—त्राहि त्राहि द्रौपदी पुकारी, गई बैकुंठ अवाज खरी—१-२४६। (२) अच्छी, प्रिय, कल्याणकारिणी। उ.—इक बदन उघारि निहारि देहिं असीस खरी—१०-२४। (३) पूर्ण, बिलकुल, बहुत अधिक। उ.—(क) मैं जु रह्यौ राजीवनैन दुरि पाप-पहार-दरी। पावहु मोहिं कहाँ तारन कौं, गूढ़-गँभीर खरी—१-१३०। (ख) प्रभु जागे अर्जुन तन चितयौ, कब आये तुम कुसल खरी—१-२६८। (ग) ठाढ़ीं जल माहिं गुसांई खरी जुड़ाई नीर की—३३०३। (४) विशुद्ध, बिना मिलावट की। (५) छल-कपट रहित, सच्ची। उ.—कपट हेतु कियौ हरि हमसे खोटे होंहि खरी—२७४१।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खड़िया] खड़िया। (क) जैसे खरी कपूर दोउ यक सम यह भई ऐसी संधि—२६१२। (ख) सब विधि बानि ठानि करि राख्यौ खरी कपूर को रेहु—३०४०।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खली] सरसों इत्यादि की खली जो पशुओं को खिलायी जाती है।

खरीक—संज्ञा पुं. [हिं. खर] तिनका।

खरीता—संज्ञा पुं. [अ.] (१) थैली। (२) जेब।

खरीद—संज्ञा स्त्री. [फा. खरीद] (१) मोल लेना। (२) मोल ली हुई चीज।

खरीदना—क्रि. स. [हिं. खरीद] मोल लेना।

खरीदार—संज्ञा पुं. [हिं. खरीद] (१) मोल लेने वाला। (२) चाहनेवाला।

खरीदारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरीद] मोल लेने की क्रिया।

खरीफ—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़रीफ़] असाढ़ से आधे

अगहन के बीच में कटनेवाली फसल जिसमें धान, बाजरा, उर्द, मूँग आदि होते हैं।

खरु—संज्ञा पुं. [सं. खर] गधा। उ.—कामधेनु खरु लेइ कात अमृत उपजावै—१० उ.-८।

खरे—वि. [हिं. खरा] (१) बहुत अधिक, ज्यादा। उ.—ऐसौ अंध, अधम, अबिबेकी, खोटनि करत खरे—१-१६८। (२) ऐंठने या रूठनेवाले, जिद पकड़ लेनेवाले। उ.—पठवति हौं मन तिन्हैं मनावन निसि दिन रहत अरे री। ज्यों ज्यों मान करति उलटावन त्यों त्यों होत खरे री—१४४२ (३) तीखे, तीक्ष्ण, तेज। उ.—लागो या बदन की बलाई। खंजन तेरे खरे कटाक्षनि न्याउ गुपाल बिकाई—२२२७।

वि. [हिं. खड़ा] खड़े, उपस्थित। उ.—(क) सूरदास भगवन्त भजन बिनु जम के दूत खरे हैं द्वार—२-३। (ख) त्रास भयौ अपराध आपु लखि, अस्तुति करत खरे—४८३।

खरेई—क्रि. वि. [हिं. खरा + ई] (प्रत्य.) (१) सचमुच, वस्तुतः। (२) बहुत, अत्यन्त। उ.—सूरदास अब धाम दोहरी चढ़ि न सकत हरि खरेई अमान।

खरो—वि. [सं. खर = तीक्ष्ण] बहुत अधिक, ज्यादा। उ.—बालविनोद खरो जिय भावत—१०-१०२।

खरोंच, खरोंट—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुरण] शरीर के किसी भाग के छिलना का हलका चिन्ह।

खरोंचना, खरोंटना—क्रि. स. [हिं. खरोंच] खुरचना, छीलना।

खरोई—क्रि. वि. [हिं. खरा + ई (प्रत्य.)] सचमुच, वस्तुतः।

खरोष्ट्री, खरोष्ठी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लिपि जो भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर अशोक के समय में प्रचलित थी।

खरौंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खरोंच] नख या खरोंच लगने से छिलने का हलका चिन्ह।

खरौंटना—क्रि. स. [हिं. खरोंच, खरौंट] खरोंचना।

खरौंहा—वि. [हिं. खारा + औंहा] कुछ कुछ खारा या नमकीन।

खरौ—वि. [सं. खर = तीक्ष्ण, हिं. खरा] (१) विशुद्ध, बिना मिलावट का, 'खोटा' का उलटा। उ.—इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ। सो दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ—१-२२०। (२) बहुत अधिक। उ.—कारौ कहि कहि तोहिं खिझावत, बरजत खरो अनेरो—१०-२१६।

वि. [हिं. खड़ा] खड़ा, खड़ा हुआ। उ.—भरत पंथ पर देख्यौ खरौ—५-४०।

खर्ग—संज्ञा पुं. [हिं. खड्ग] तलवार।

खर्च—संज्ञा पुं. [अ. खर्ज, खर्च] (१) व्यय, काम में लगना। उ.—कहा भयौ मेरो गृह माटी को। हौं तो गयो हुतो गुपालहिं भेंटन और खर्च तंदुल गाँठी को—१० उ.-७१।

मुहा.—खर्च उठाना — खर्च करना। खर्च निर्वाह करना।

(२) धन जिसे व्यय करके काम चलाया जाय।

खर्चना—क्रि. स. [हिं. खर्च] व्यय करना।

खर्चीला—वि. [हिं. खर्च] बहुत खर्चनेवाला।

खर्पर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) तसले की तरह का भिक्षा-पात्र। (२) काली देवी का पात्र जिसमें वे रुधिर पान करती हैं।

खर्ब—वि. [सं. खर्व] (१) जिसका अंग भंग हो। (२) छोटा, लघु। (३) वामन, बौना।

संज्ञा पुं.—(१) सौ अरब की संख्या। (२) नौ निधियों में एक।

खर्रा—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) लंबा कागज जिस पर बहुत विस्तार से लेख लिखा जा सके।

खर्राट—वि. [हिं. खुर्राट] (१) होशियार, अनुभवी। (२) वृद्ध।

खर्राटा—संज्ञा पुं. [अनु.] सोते समय नाक से होनेवाला खर खर का शब्द।

खर्यौ—वि. [सं. खर = तीक्ष्ण, हिं. खरा] (१) बहुत, अधिक, खूब। उ.—यहि अन्तर यमुना तट आए स्नान दान कियौ खर्यौ—२५५२।

खर्व—वि. [सं.] (१) अपूर्ण अंग का। (२) छोटा, लघु। (३) वामन, बौना।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) सौ अरब की संख्या, खरब। (२) नौ निधियों में एक।

खल—वि. [सं.] (१) अधम, दुष्ट, दुर्जन, पापी। (२) धोखा देनेवाला। (३) क्रूर।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) पृथ्वी। (३) बादल।
मुहा.—खल भई—पिस गयी, चूर चूर हुई। उ.—खल भई लोक लाज कुल कानी।
संज्ञा पुं. [सं. खल = खरल] पत्थर का टुकड़ा। उ.—इहै मान यह सूर महा सठ हरि नग बदलि महा खल आनत।

खलई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खल + ई (प्रत्य.)] दुष्टता।

खलक—संज्ञा पुं. [अ. ख़लक़] (१) प्राणी। (२) संसार।

खलता—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुष्टता, नीचता।

खलना—क्रि. अ. [सं. खर = तीक्ष्ण] बुरा लगना।
क्रि. स. [हिं. खल या खरल] (१) खरल में कूटना। (२) नाश करना, पीसना।

खलबल—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) हलचल। (२) शोर। (३) कुलबुलाहट।

खलबलाना—क्रि. अ. [हिं. खलबल] (१) खौलाना। (२) हिलना-डोलना। (३) विचलित हो जाना।

खलबली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खलबल] (१) हलचल। (२) घबड़ाहट।

खलल—संज्ञा पुं. [अ. ख़लल] बाधा, रुकावट।

खलाइत—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाल + इत (प्रत्य.)] धौंकनी।

खलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खल + ई(प्रत्य.)] दुष्टता।

खलाना—क्रि. स. [हिं. खाली] (१) खाली करना। (२) गड्ढा बनाना। (३) धँसाना, दबाना, पचाना।

खलार—वि. [हिं. खाली] नीचा, गहरा।

खलास—वि. [अ.] (१) मुक्त, स्वतंत्र। (२) समाप्त। (३) गिरा हुआ।

खलासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खलास] मुक्ति, छुटकारा।

खलित—वि. [सं. स्खलित] (१) चलायमान, चंचल, डिगा हुआ। उ.—डोलत महि अधीर भयौ फनिपति कूरम अति अकुलान। दिग्गज चलित, खलित मुनि आसन, इंद्रादिक भय मान—६-२६। (२) पतित।

खलियान, खलिहान—संज्ञा पुं. [सं. खल + स्थान] (१) स्थान जहाँ फसल रखी और माँड़ी जाय। (२) ढेर, राशि।

खलियाना—क्रि. स. [हिं. खाल] खाल अलग करना।
क्रि. स. [हिं. खाली] खाली करना।

खली—संज्ञा स्त्री. [सं. खलि] तेलहन की सीठी या फोकट।
वि. [हिं. खलना] जो बुरी लगे।
संज्ञा पुं. [सं. खलिन्] महादेव।

खलीज—संज्ञा स्त्री. [अ.] खाड़ी, उपसागर।

खलीता—संज्ञा पुं. [हिं. खरीता] (१) थैली। जेब।

खलीफा—संज्ञा पुं. [अ. ख़लीफा] (२) अधिकारी। (२) खानसामा। (३) नाई।

खलु—क्रि. वि. [सं.] (१) प्रार्थना। (२) निषेध। (३) निश्चय, अवश्य।

खलेल—संज्ञा पुं. [हिं. खली + तेल] फुलेल में मिला हुआ खली जैसे पदार्थों का वह अंश जो छानने पर निकलता है।

खल्ल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चमड़ा। (२) चातक। (३) खरल।

खल्लड़—संज्ञा पुं. [सं. खल्ल] (१) चमड़े की मशक। (२) खरल। (३) वह वृद्ध जिसका चमड़ा झूल गया हो।

खल्व—संज्ञा पुं. [सं.] एक रोग जिसमें सिर के बाल गिर जाते हैं।

खल्वाट—संज्ञा पुं. [सं.] एक रोग जिस में सिर के बाल गिर जाते हैं।
वि.—गंजा, जिसके सिर के बाल गिर गये हों।

खवा—संज्ञा पुं. [सं. स्कंध] कंधा।

खवाइ—क्रि. स. [हिं. खिलाना] खिलाकर। उ.—संग खाइ खवाइ अपने सोच तो इतनौ दियो—३२६०।

खवाई—क्रि. स. [हिं. खाना, खवाना] खिलाने पर, खिलाने के पश्चात। उ.—पोषै ताहि पुत्र की नाई। खाहिं आप तब, ताहि खवाई—५-३।

खवाए—क्रि. स. [हिं. खिलाना] खिलाया, खिला दिये। उ.—नैन देखि चकृत भई क्यों पान खवाए—२७३६।

खवाना—क्रि. स. [हिं. खाना] खिलाना।

खवायौ—क्रि. स. [हिं. खाना, खिलाना] **खिलाया, खाने में लगाया।** उ.—माखन खाइ, खवायो ग्वालनि, जो उबर्‌यौ सो दियो लुढ़ाइ—१०-३०३।

खवारा—वि. [हिं. खराब] (१) **खोटा, बुरा।** (२) **अनुचित।**

खवावत—क्रि. स. [हिं. खवाना] **खिलाते हैं, भोजन कराते हैं।** उ.—(क) कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ मैं लौनी लिए खवावत—१०-११७। (ख) जाको राज-रोग कफ बाढ़त दह्यौ खवावत ताहि—३१४६।

खवावन—क्रि. स. [हिं. खाना, खिलाना] **खिलाना, भोजन कराना।** उ.—माखन माँगि लियौ जसुमति सौं। माता सुनत तुरत लै आई, लगी खवावन रति सौं—१०-३१२।

खवावहु—क्रि. स. [हिं. खिलाना] **खिलाओ।** उ.—कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक लवनी ताहि खवावहु—१०-१७६।

खवावै—क्रि. स. [हिं. खाना] **खिलाता है, भोजन कराता है।** उ.—कृपन, सूम, नहिं खाइ खवावै, खाइ मारि कै औरै—१०-१८६।

खवावौं—क्रि. स. [हिं. खिलाना] **खिलाऊँ, खाने को दूँ।** उ.—तब तमोल रचि तुमहिं खवावौं—१०-२११।

खवास—संज्ञा पुं. [अ. खवास] (१) **राजाओं-रईसों का खिदमतगार।** उ.—मोदी लोभ, खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार—१-१४१। (२) **राजसेवक।** उ.—कहि खवास कौं सैन दै सिरपाँव मँगायौ—२४७६। (३) **नाई** (४) **मंत्री।**

खवासी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खवास + ई (प्रत्य.)] (१) **खवास का काम।** उ.—इंद्रादिक की कौन चलावै संकर करत खवासी—३०८६। (२) **सेवा, चाकरी।** (३) **खवास के बैठने का स्थान।**

खवास्यौ—संज्ञा पुं. [हिं. खवास] **मंत्री।** उ.—तुम हौ निपट निकट के बासी सुनियत हुए खवास्यौ।

खवैया—संज्ञा पुं. [हिं. खाना + वैया (प्रत्य.)] **खानेवाला।** उ.—खाटी मही कहा रुचि मानो सूर खवैया घी को—३२५१।

खस—संज्ञा पुं. [सं] (१) **गढ़वाल प्रदेश का प्राचीन नाम।** (२) **इस प्रदेश की एक प्राचीन जाति।**

संज्ञा स्त्री. [फा. खस] **गाँडर घास की जड़ जो बहुत सुगंधित होती है।**

खसकंत—संज्ञा स्त्री. [हिं. खसकना + अंत] **खिसकने की क्रिया।**

खसकना—क्रि. अ. [हिं. खिसकना (अनु.)] (१) **स्थान जरा सा हट जाना।** (२) **चले जाना।**

खसकाना—क्रि. स. [हिं. खसकना] (१) **सरकाना।** (२) **जाने को प्रेरित करना।**

खसखस—संज्ञा स्त्री. [सं. खसखस] **पोस्ते का दाना।**

खसखसा—वि. [अनु.] **भुरभुरा।**

वि. [हिं. खसखस] **बहुत छोटा।**

खसखाना—संज्ञा पुं. [फ़ा. खस + खाना] **खस की टट्टियों से घिरा स्थान।**

खसखसी—संज्ञा पुं. [हिं. खसखस] **पोस्ते के फूल का हल्का आसमानी रंग।**

वि.—**पोस्ते के फूल की तरह हल्के आसमानी रंग का।**

खसत—क्रि. अ. पुं. [हिं. खसना] **खिसकते हैं, सरककर गिरते हैं।** उ.—फूल खसत सिर ते भए न्यारे सुभग स्वाति-सुत मानो—पृ० ३४६ (४३)।

खसति—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. खसना] **खिसकती है, सरककर गिरती है।** उ.—बिहँसि बोले गोपाल सुनि री ब्रज की बाल उछंग लेत कत धरनि खसति—१८६६।

खसना—क्रि. अ. [हिं. खिसकना] (१) **स्थान से हटना।** (२) **खिसक कर गिरना।**

खसबो—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुशबू] **सुगंध।**

खसम—संज्ञा पुं. [अ.] (१) **पति।** उ.—(क) जियत खसम किन भसम रमायो। (ख) गुप्त प्रीति तासौं करि मोहन, जो है तेरो दैया। सूरदास प्रभु झगरो सीख्यौ, ज्यौं घर खसम गुसैयाँ—७३४। (२) **स्वामी, मालिक।**

खसाना—क्रि. स. [हिं. खसना] **नीचे गिरना।**

खसि—क्रि. अ. [हिं. खसना] (१) **स्खलित होकर।** उ.—रुद्र कौ बीर्य खसि कै पर्‌यौ धरनि पर, मोहिनी

रूप हरि लिया दुराई—८-१०। (२) **खिसककर, गिरकर।** उ.—(क) खसि मुद्रावलि चरन अरुझी गिरी धरनि बलहीन—३४५१। (ख) खसि खसि परत कान्ह कनियाँ तैं सुसुकि सुसुकि मन खीझै—१०-१६०।

खसिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) **आसाम की एक पहाड़ी।** (२) **इस पहाड़ी का समीपवर्ती प्रदेश।**

वि. [अ. ख़स्सी] (१) **जिसके अंडकोश निकाले गये हों, बधिया।** (२) **नपुंसक।** (३) **बकरा।**

खसी—संज्ञा पुं० [अ. ख़स्सी] **बकरा।**

वि. [हिं. खसिया] **नपुंसक।**

खसीस वि. [अ. ख़सीस] **कंजूस।**

खसु—क्रि. अ. [हिं. खसना] **हटकर, खिसककर।**

यों—खसु दीन्ह्यौ—**हटा लिया, खिसका लिया।** उ.—सूर स्याम देख्यौ अहि व्याकुल खस दीन्ह्यौ, मेटे त्रय ताप—५५६।

खसे, खसै—क्रि. अ. [हिं. खसना] (१) **गिरे, खिसके।** उ.····भूषन खसे सुरत बस दोऊ केसन आपु सँवारे—१०११ सार.।

मुहा.—बार न खसै—**बाल बाँका न हो, जरा भी अनिष्ट न हो।** उ.—न्हात बार न खसै इनको कुसल पहुँचै धाम—२५६५। केस खसै—**अनिष्ट या अमंगल हो।** उ.—जाकौं मनमोहन अंग करै। ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं जौ जग बैर परै—१-३७।

(२) **दूर हो जाय, समाप्त हो जाय।** उ.—तन-मन-धन-जोबन खसै (रे) तऊ न मानै हार—१-३२५।

खसो—क्रि. अ. [हिं. खसना] **खिसको, सरको, गिरो।**

मुहा.—बार खसो—**अनिष्ट हो, अमंगल हो।** उ.—हम दिन देत असीस प्रात उठि बार खसो मत न्हातैं—३०२४।

खसोट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खसोटना] (१) **उखाड़ने-नोचने की क्रिया।** (२) **छीनने की क्रिया।**

खसोटना—क्रि. स. [सं. कृष्ट] (१) **उखाड़ना, नोचना।** (२) **बलपूर्वक छीनना।**

खस्ता—वि. [फा. ख़स्तः] **बहुत मुलायम, जो जरा से दबाव से टूट जाय।**

खस्यौ—क्रि. अ. भूत. [हिं. खसकना] **अपने स्थान से हटा, खिसका, गिरा, नष्ट हुआ।** उ.—(क) जैसैं सुखहिँ तन बढ़्यौ, (रे) तैसैं तनहिं अनंग। धूम बढ़्यौ, लोचन खस्यौ, (रे) सखा न सूझत अंग—१-३२५। (ख) जननी मधि, सनमुख संकर्षन, खैंचत कान्ह खस्यौ सिर-चीर—१०-१६१।

खाँखर—[हिं. खाँख] (१) **छेददार।** (२) **खोखला, पोला।**

खाँग—संज्ञा पुं. [सं. खड्ग, प्रा. खग्ग] (१) **काँटा।** (२) **गैंडे के मुँह पर का सींग।**

संज्ञा स्त्री [हिं. खँगना] **कमी।**

खाँगना—क्रि. अ. [सं. खंज, हिं. खोंड़ा] **लँगड़ा।**

क्रि. अ. [हिं. छीजना] **कम होना।**

क्रि. स.—**छेदना।**

खाँगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खँगना] **कमी, त्रुटि, घटी।**

खाँच—संज्ञा पुं. [हिं. खाँचना] (१) **दो वस्तुओं के बीच की संधि।** (२) **खींचा हुआ निशान।** (३) **गठन।**

खाँचना क्रि. स. [सं. कर्षण या कसन=खींचना, अथवा खचन=बैठाना] (१) **चिह्न बनाना, अंकित करना।** (२) **खींच खींच कर (कसते हुए कोई वस्तु) बनाना।** (३) **जल्दी लिखना।**

खाँचा—संज्ञा पुं. [हिं. खाँचना] (१) **झाबा।** (२) **बड़ा पिंजड़ा।** (३) **गड्ढा।**

खाँची—क्रि. स. [हिं खाँचना] (१) **खोचकर अंकित करके, चिह्नित है, खिची है।** उ.—(क) सूरदास भगवंत भजत जे तिनकी लीक चहूँ जुग खाँची—१-१८। (ख) जाके हृदय जौन कहै मुख ते तौन कैसे हरि को न कहि लीक खाँची—१२८८।

मुहा०—कहति लीक मैं खाँची। **लीक खींच कर कहती हूँ, प्रतिज्ञापूर्वक कहती हूँ जो कहती हूँ, वह सत्य है, अटल है।** उ.—सूर स्याम तेरे बस राधा कहति लीक मैं खाँची—१४७५।

(२) **लिखना, लिखकर।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. खाँचा] छोटा झाबा, डलिया, खँची।

खाँचै—क्रि. स. [हिं. खाँचना] अंकित करता है, खींचता है, चिह्न बनाता है, विचलित करता है। उ.—सीत-उष्न, सुख-दुख नहिं मानै, हर्ष-सोक नहिं खाँचै—१-८१।

खाँड़—संज्ञा स्त्री. [सं. खंड] कच्ची शक्कर। उ.—(क) रस लै लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई। फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तैं खाँड़ न होई—१-६३। (ख) घेवर अति घिरत चभोरे। लै खाँड सरस रस बोरे—१०-१८३।

खाँड़ना—क्रि. स. [सं. खंड=टुकड़ा] चबाकर खाना।

खाँडर—संज्ञा पुं. [सं. खंड] टुकड़ा, कतला।

खांडव—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन वन जिसे अर्जुन ने जलाया था और जिसके स्थान पर इंद्रप्रस्थ नगर बसाया गया था।

खांडविक—संज्ञा पुं. [सं.] हलवाई।

खाँड़ा—संज्ञा पुं. [सं. खड्ग] (१) खड्ग। (२) खड्ग की तरह का एक अस्त्र।

संज्ञा पुं. [सं. खंड] भाग, टुकड़ा।

खांडिक—संज्ञा पुं. [सं.] हलवाई।

खाँडौंगी—क्रि. स. [सं. खंड या खंडन, हिं. खाँडना] चबाऊँगी, (दाँत से) काटूँगी। उ.—मेरे इनके कोउ बीच परौ जिनि अधर दसन खाँडौंगी—१५११।

खाँधना—क्रि. स. [सं. खादन] खाना।

खाँधो—क्रि. स. [हिं. खाँधना] खाया। उ.—नैन नासिका मुख नहीं चोरि दधि कौने खाँध्यो—३४४३।

खाँपना—क्रि. स. [सं. क्षेपन, प्रा. खेपन] (१) खाँसना। (२) जड़ना।

खाँभ—संज्ञा पुं. [सं. स्तंभ, हिं. खंभा] खंभा।

संज्ञा पुं. [हिं. खाम] (१) लिफाफा। (२) थैली।

खाँभना—क्रि. स. [हिं. खाम] लिफाफे या थैली में बंद करना।

खाँवाँ—संज्ञा पुं. [सं. खं.] बहुत चौड़ी खाई।

संज्ञा पुं. [देश०] एक पौधा।

खाँसना—क्रि. अ. [सं. कासन, प्रा. खाँसन] कफ आदि निकालने के लिए वायु को झटके के साथ कंठ से बाहर निकालना।

खाँसी—संज्ञा स्त्री. [सं. काश, कास] (१) खाँसने की क्रिया। (२) खाँसने का रोग।

खाइ—क्रि. स. [हिं. खाना] (१) खा लेना, भोजन करना। उ.—(क) खाइ न सकै, खरच नहिं जानैं, ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी—१-३६। (ख) प्रभु-वाहन डर भाजि बच्यौ अहि, नातरु लेतौ खाइ—५७३।

मुहा.—धाइ धाइ खाइ—खाने दौड़ता है। उ.—भूमि मसान बिदित ए गोकुल मनहु धाइ धाइ खाइ—२७००।

(२) काटने से, डसे जाने से। उ.—मैया एक मन्त्र मोहिं आवै। बिषहर खाइ मरै जो कोऊ मोसौं मरन न पावै—७५६।

खाई—क्रि. स. [हिं. खाना] (१) भक्षण की, पेट में डाली। उ.—पाँचौ देखि प्रगट ठाढ़े ठग, हठनि ठगौरी खाई—१-१८७। (२) विषैले कीड़े (जैसे सर्प) ने काट लिया, डस लिया। उ.—(क) ताकी माता खाई कारैं। सो मरि गई साँप के मारैं—७-८। (ख) गई मुरछाइ, परी धरनी पर मनौं भुअंगम खाई—१०-५२। (ग) लागे हैं बिसारे बान स्याम बिनु जुग जाम घायल ज्यौं घूमैं मनौं विषहर खाई हैं—२८२७।

संज्ञा स्त्री. [सं. खानि, प्रा. खाई] किले, महल आदि के चारों ओर रक्षा के उद्देश्य से खोदी गयी नहर। उ.—(क) लंका फिरि गई राम दुहाई।...... दस मस्तक मेरे बीस भुजा हैं सौ जोजन की खाई—६-१४०। (ख) पश्चिम देस तीर सागर के कंचन कोट गोमती सी खाई—१०उ.-६२।

खाउँ—वि. [हिं. खाऊ] बहुत खानेवाला।

मुहा.—खाउँ खाउँ करै—खाने के लिए रिरियाता है। उ.—मचला, अलकैं-मूल, पातर, खाउँ खाउँ करै भूखा—१-१८६।

खाऊँ—क्रि. स. [हिं. खाना] खा जाऊँ, भक्षण कर लूँ। उ.—कहौ तो गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाहिं न राम—६-१४८।

खाऊ—वि. [हिं. खाना + ऊ (प्रत्य.)] (१) खूब खानेवाला। (२) दूसरे का धन हड़पनेवाला। (३) खूब रिश्वत लेनेवाला। (४) खूब उड़ाऊ।

खाए—क्रि. स. [हिं. खाना] 'खाना' का भूत०, बहु०, भोजन किये, भक्षण किये। उ.—पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो)—१-७।

खाएँ—क्रि. स. सवि. [हिं. खाना] खाने से, खा लेने पर। उ.—सूर मिटे अज्ञान-मूरछा, ज्ञान-सुभेषज खाएँ—६-१३२।

खाक—संज्ञा स्त्री [फ़ा. ख़ाक] (१) धूल, गर्द, भस्म।

मुहा.—खाक उड़ना—उजाड़ होना, नाश होना। खाक उड़ैहै—(१) खाक उड़ेगी, नाश होगा, उजाड़ हो जायगा। (२) धूल बनकर उड़ जायगा। उ.—या देही कौं गरब न करिये, स्यार काग गिध खैहैं। तीननि मैं तन कृमि, कै बिष्ठा, कै ह्वै खाक उड़ैहै—१-८६। खाक उड़ाना-(१) मारे मारे फिरना। (२) (दूसरे की) हँसी उड़ाना। खाक करना—नाश कर देना। खाक चाटना—खुशामद करना। खाक छानना—(१) मारे मारे फिरना। (२) बहुत ढूँढ़ना। खाक डालना—(१) छिपाना। (२) भूल जाना। खाक सिर पर डालना—रोना-पीटना। खाक बरसना—बरबाद हो जाना। खाक में मिलना—नाश होना।

(२) तुच्छ, साधारण। (३) जरा भी नहीं, नाम को भी नहीं।

खाकसार—वि. [फा. ख़ाकसार] (१) जो धूल में मिला हो। (२) तुच्छ, अकिंचन (नम्रतासूचक)।

खाका—संज्ञा पुं [फ़ा. ख़ाकः] (१) नकशा, चित्र का ढाँचा।

मुहा.—खाका उड़ाना—(१) नकल बनाना। (२) निंदा करना।

(३) खर्च के अनुमान का ब्योरा। (४) कच्चा चिट्ठा।

खाकी—वि. [फ़ा. ख़ाकी] (१) भूरा। (२) जो (भूमि) सिंची न हो।

संज्ञा पुं [फ़ा. ख़ाक] साधु जो सारे शरीर में राख मलते हैं।

खाख—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाक] धूल, मिट्टी, राख, भस्म। उ.—मृगमद मिलै कपूर कुमकुमा केसनि मलया खाक—३३२१।

खाखरा—संज्ञा पुं. [देश०] एक बाजा।

खाग—संज्ञा पुं. [हिं. खाँग] चुभती है, गड़ती है। उ.—नासा तिलक प्रसून पदवि पर चिबुक चारु चित खाग। दाड़िम दसन मंदकति मुसकनि मोहत सुर नर नाग—१३१४।

खागना—क्रि. अ. [हिं. खाँग = काँटा] चुभना, गड़ना।

क्रि. अ. [हिं. खाँगना] कम होना।

खागी—क्रि. अ. [हिं. खागना] चुभी, गड़ी।

क्रि. अ. —[हिं. खाँगना] घटी, कम हुई।

खाज—संज्ञा स्त्री. [सं. खर्जु] खुजली। उ.—पूरे चीर भीरु-तन-कृष्ना, ताके भरे जहाज। काढ़ि काढ़ि थाक्यौ दुस्सासन, हाथनि उपजी खाज—१-२५५।

मुहा०—कोढ़ की खाज—दुख या विपत्ति को अधिक बढ़ानेवाली वस्तु।

खाज—संज्ञा पुं. [सं. खाद्य, पा. खज्ज] (१) खाद्य पदार्थ। (२) मैदे की एक मिठाई। (३) एक पेड़।

खाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाजा] (१) भक्ष्य या खाद्य पदार्थ। उ.—बातैं पै रहि रहति कहन कौ सब जगजात काल की खाजी। (२) एक मिठाई।

मुहा०—खाजी खाना—मुँहकी खाना, बुरी तरह लज्जित होना।

खाझा—संज्ञा पुं. [हिं. खाजा] एक मिठाई जो बारीक मैदे की बनती है।

खाट—संज्ञा स्त्री. [सं. खट्वा) चारपाई, खटिया।

यौ०—खाट-खटोला—बोरिया-बँधना, कपड़ा-लत्ता।

मुहा०—खाट (पर) पड़ना—बीमार होना। खाट (से) लगना—लंबी बीमारी से बहुत दुबला हो जाना। खाट से उतारना—मरणकाल निकट आ जाना।

खाटा, खाटी—वि. स्त्री. [हिं. खट्टा] खट्टी। उ.—(क) सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई, कहति न मीठी खाटी—१०-२५४। (ख) आई उघरि प्रीति कलई सी

जैसी खाटी आमी—३०८०।

खाटे—वि. [हिं. खट्टा] **खट्टे, तुर्श, अम्ल**। उ.—भिल्लिनि के फल खाए, भाव सौं खाटे-मीठे-खारे —१-२५।

खाटो, खाटौ—वि. [हिं. खट्टा] **तुर्श, अम्ल, खट्टा**। उ.—अति उन्मत्त मोह-माया-बस नहिं कछु बात बिचारौ। करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ —१-१५५।

खाड़—संज्ञा पुं. [सं खात] **गड्ढा, गर्त**। उ.—पुनि कमंडल धरयौ, तहाँ सो बढ़ि गयौ, कुंभ धरि बहुरि पुनि माट राख्यौ। धरयौ खाड़, तालाब मैं पुनि धरयौ, नदी मैं बहुरि पुनि डारि दीन्हौ—८-१६।

खाड़व—संज्ञा पुं. [सं. षाड़व] **एक राग**।

खाड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाड़] **समुद्र का भाग जिसके तीन ओर पृथ्वी हो**।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खाड़] **अरहर का सूखा पेड़**।

संज्ञा स्त्री. [हिं. काढ़ना] **अंतिम बार निकाला हुआ रंग**।

खाड़ू—वि [हिं० खाँड़] **मीठा**। उ.—खी, खाड़, घृत, लावनि लाड़ू। ऐसे होहिं न अमृत खाँड़ू—३९६।

संज्ञा पुं. [हिं. खंड] **पतली लकड़ियाँ जिनपर खपड़े रखे जाते हैं**।

खादर—संज्ञा पुं. [हिं. खादर] **नीची जमीन जिसमें वर्षा का पानी कुछ दिनों तक भरा रहे**।

खात—क्रि. स. [सं. खादन, पा. खाअन, खान; हिं. खाना] (१) **खाता है, भखता है**। उ.—जा दिना तैं जनम पायौ, यहै मेरी रीति। बिषय-बिष हठि खात नाहीं, डरत करत अनीति—१-१०६। (२) **सहता है, प्रभाव पड़ता है**। उ.—भव.सागर मैं पैरि न लीन्हौ।······। अति गंभीर, तीर नहिं नियरैं, किहिं बिधि उतरयौ जात ? नहीं अधार नाम अवलोकत, जित तित गोता खात—१-१७१।

मुहा०—धाइ धाइ खात—**खाने दौड़ता है**। उ.—अब ए भवन देखियत सूनो धाइ धाइ ब्रज खात—२७७६।

संज्ञा पुं. [सं] (१) खोदने की क्रिया। (२) तालाब। (३) कुआँ। (४) खाद का गड्ढा।

संज्ञा स्त्री.—**वह स्थान जहाँ मद्य तैयार करने के लिए महुआ रखा जाता है**।

वि—**मैला, गंदा**।

खातक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **तलैया**। (२) **खाई**। (३) **कर्जदार, ऋणी**।

खातमा—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ातमा] (१) **अंत**। (२) **मृत्यु**।

खाता—संज्ञा पुं. [हिं. खाना] **खानेवाले**। उ.—तीनि लोक बिभव दियौ तंदुल के खाता—१-१२३।

संज्ञा पुं. [सं. खात] **अन्न रखने का गढ़ा, बखार**।

संज्ञा पुं. [हिं. खत] (१) **आयव्यय आदि लिखने की बही**।

मुहा०—खाता खोलना—**नया संबंध होना**। खाता डालना—**लेन-देन शुरू करना**।

(२) **मद, विभाग**।

खातिर—संज्ञा स्त्री [अ. खातिर] **आदर-सत्कार**।

अव्य०—**लिये, वास्ते**।

खातिरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खातिर] (१) **आदर-सत्कार**। (२) **संतोष**।

संज्ञा स्त्री. [देश.] **नदी किनारे की फसल**।

खाती—संज्ञा स्त्री. [सं. खात] (१) **खोदी हुई भूमि**। (२) **छोटा ताल**। (३) **बढ़ई**।

संज्ञा पुं.—खोदने का काम करनेवाली जाति।

खातो, खातौ—क्रि. स. [हिं. खाना] (१) **खाता है, भोजन करता है**। उ.—साँच-झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखौ खातौ। सूरदास कछु फिर न रहैगौ, जो आयौ सो जातौ—१-३०२। (२) **डस लेता, काट खाता**। उ.—आजु सबनि धरिकै वह खातौ धनि तुम हमहिं बचाये—२३६६।

खाद—वि. [सं. खाद्य] **खानेयोग्य, भोज्य, भक्ष्य**। उ.—खाद-अखाद न छाँड़ै अब लौं, सब मैं साधु कहावै—१-१८६।

संज्ञा स्त्री.—**पदार्थ जिसके डालने से खेत की उपज बढ़ती है, पाँस**।

खादक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **कर्जदार, ऋणी** (२) **धातु की भस्म जो खायी जाती है**।

वि.—**खानेवाला**।

खादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भोजन। (२) दाँत।

खादनीय—वि. [सं.] खाने योग्य।

खादर—संज्ञा पुं. [हिं. खात] (१) तराई, कछार, समतल भूमि। उ.—मेघ परस्पर यहै कहत हैं धोय करहु गिरि खादर। (२) पशुओं के चरने की भूमि।

खादि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) खाने योग्य पदार्थ, खाद्य वस्तु। (२) कवच। (३) दस्ताना।

संज्ञा स्त्री. [सं. छिद्र] दोष।

खादित—वि. [सं.] खाया हुआ।

खादिम—[अ. ख़ादिम] नौकर।

खादिर, खादिरसार—संज्ञा पुं. [सं.] कत्था।

खादी—वि. [सं. खादिन्] (१) खानेवाला। (२) शत्रु का नाश करनेवाला। (३) काँटेदार।

संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) हाथ के सूत का बना मोटा कपड़ा। (२) मोटा कपड़ा।

वि. [हिं. खादि = दोष] (२) जिसमें दोष हो। (२) दोष निकालनेवाला।

खादुक—वि. [सं.] हिंसा करनेवाला।

खाद्य—वि. [सं.] खानेयोग्य, भक्ष्य।

संज्ञा पुं.—भोजन।

खाध, खाधु, खाधुक—संज्ञा पुं. [सं. खाद्य] भोज्य पदार्थ।

वि. [सं. खादक] खानेवाला।

खाधे—क्रि. स. [हिं. खाना] खाया। उ.—नयन नासिका मुख न चोरि दधि कौने खाधे—३४४३।

खान—संज्ञा पुं. [हिं. खाना] (१) खाना, खाने की क्रिया। उ.—(क) सूरदास प्रभु कौं घर तैं लै, दैहौं माखन खान—१०-२७२। (ख) गोपालहिं माखन खान दै—१०-२७४। (२) भोजन की सामग्री। (३) भोजन की रीति या आचार। उ.—कै कहुँ खान पान रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसै—१-२९३। (४) खाने के लिए, निगल जाने को, मार डालने के लिए। उ.—भूत प्रेत बैताल रच्यो बहु दौरे विधि कौ खान—६५ सारा.।

मुहा०—लगत खान—खाने लगता है, खाने दौड़ता है, काटे खाता है। उ.—जिनि धरनि वह सुख बिलोक्यो ते लगत अब खान—२७४६।

संज्ञा स्त्री. [सं. खानि] (१) खानि, आकर। (२) आधार-स्थान, उत्पत्ति-स्थान। उ.—कुटिल-खान चंपक चंचल मति सबही ते जु निनारी—३३५६। (३) निधि, कोष। (४) समूह, समाज। उ.—तहँ ते गये जु चित्रकूट को जहाँ मुनिन की खान—२४४ सारा.।

संज्ञा पुं. [ता. काङ्=सरदार] (१) सरदार। (२) पठानों की उपाधि।

खानक—संज्ञा पुं. [सं. खन] (१) खान खोदनेवाला। (२) बेलदार। (३) बढ़ई।

खानगी—वि. [फ़ा. ख़ानगी] घरेलू, आपसी, निजी।

खानदान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] वंश, कुल।

खानदानी—वि. [फ़ा.] (१) ऊँचे कुल का। (२) कुल-परंपरा से चला आनेवाला, पैतृक।

खानपान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अन्न जल, भोजन और पानी, खाना-पीना। उ.—स्याम सुंदर मदन मोहन, मोहिनी सी लाई। चित्त चंचल कुँवरि राधा, खान-पान भुलाई—६७८। (२) खाने-पीने का आचार-व्यवहार।

खाना—क्रि. स. [सं. खादन पा० खाअन, खान] (१) भोजन करना।

मुहा.—जिसका खाना उसे आँख दिखाना (गुर्राना)—उपकार या अहसान न मानना। खाने के दाँत और दिखाने के और—करना कुछ दिखाना कुछ। खाना न पचना—जी न मानना, चैन न मिलना।

(२) शिकार पकड़ना और भक्षण करना।

मुहा.—(कच्चा) खा जाना—मार डालना। खाने दौड़ना—बहुत झल्लाना और क्रुद्ध होना।

(३) विषैले कीड़ों का काटना। (४) कष्ट देना, तंग करना। (५) कुतरना, काटना। (६) चूसना, चबाना। (७) बरबाद करना। (८) मार लेना, हड़प जाना। (९) खर्च कर डालना। (१०) रिश्वत लेना। (११) (किसी काम में) रुपया खर्च करा देना। (१२) समाना, भरना। (१३) (बीच बीच में) कुछ छोड़ देना। (१४) सह लेना, बरदाश्त करना।

मुहा.—मुँहकी खाना—(१) बुराई के बदले में नीचा देखना। (२) बुरी तरह हार जाना।

संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ाना] (१) घर, मकान। (२) कोई चीज रखने का घर। (३) अलमारी, मेज आदि का विभाग। (४) कोष्टक। (५) संदूक।

खानाजाद—वि. [फ़ा. ख़ानाज़ाद] जो घर में पैदा हुआ या पाला-पोसा गया हो।

संज्ञा. पुं.—सेवक, दास। उ.—मन बिगरयौ ये नैन बिगारे।······। ए सब कहौ कौन हैं मेरे खानाजाद चिचारे—पृ० ३२०।

खानि—संज्ञा स्त्री. [सं. खानि] (१) खानि, आकार, खदान। उ.—सूर एक ते एक आगरे वा मथुरा की खानि—३०५१। (२) वह स्थान या व्यक्ति जहाँ या जिसमें किसी वस्तु की अधिकता हो, खजाना। उ.—(क) जहाँ न काहू कौ गम, दुसह दारुन तम, सकल विधि बिषम, खलमल-खानि—१७७। (ख) उघरि आये कान्ह कपट की खानि—३२५०। (३) ओर, तरफ। (४) प्रकार, रीति।

खानिक—संज्ञा स्त्री. [हिं. खान] खान, आकर, खदान।

खानी—संज्ञा स्त्री. [सं. खानि] राशि, समूह, खजाना। उ.—आलस भरे नैन, सकल सोभा की खानी—१०.४४१

खापट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खपाटा] कड़ी भूमि।

खापर—संज्ञा स्त्री. [हिं. खापट] (१) कड़ी भूमि। (२) ऊँची-नीची भूमि।

खाब—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख्वाब] स्वप्न।

खाबड़, खूबड़—वि. [अनु.] ऊँचा-नीचा।

खाम—संज्ञा पुं. [हिं. खामना] (१) चिट्ठी का लिफाफा। (२) जोड़, टाँका।

संज्ञा पुं. [हिं. खांभा] (१) खंभा। (२) मस्तूल।

वि. [सं. क्षाम] घटनेवाला।

वि. [फ़ा. ख़ाम] (१) कच्चा। (२) जो दृढ़ न हो। (३) जो अनुभवी न हो।

खामना—क्रि. स. [सं. स्कंभन् = मूँदना, रोकना, प्रा. खंभन] (१) मिट्टी, आटे या मैदा से पात्र का मुँह बन्द करना। (२) लिफाफा बन्द करना।

खामी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ामी] (१) कच्चापन। (२) कमी। (३) अनुभवहीनता।

खामोश—वि. [फ़ा. ख़ामोश] चुप।

खामोशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ामोशी] चुप्पी।

खायो, खायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. खाना] (१) भोजन किया, भक्षण किया, खाया। उ.—काम-क्रोध-मद-लोभ-ग्रसित हौं, विषय परम बिष खायौ—१-१११। (२) विषैले कीट का काटना या डसना। उ.—माया बिषम भुजंगिनि कौ बिष, उतरयौ नाहिंन तोहिं।·······। बहुत जीव देह अभिमानी, देखत ही इन खायौ—२-३२।

खार—वि. [सं. क्षार, हिं. खरा] (१) खारी, क्षार या नमक के स्वाद का। (२) अरुचिकर, अप्रिय, अशुद्ध। उ.—जमुना तोहिं बह्यौ क्यौं भावै। तो मैं हेलुवा खेलै सो सुरत्यौ नहिं आवै। तेरो नीर सुची जो अब लौं खार पनार कहावै—५६१।

यौ.—नीर-खार—समुद्र। उ.—कहौं तौ परबत चाँपि चरन तर नीर-खार मैं गारौं—६-१०७।

संज्ञा पुं.—(१) लोना, रेह। (२) धूल, राख। (३) एक झाड़ी। (४) छोटा तालाब, डबरा। उ.—(क) दई न जात खार उतराई चाहत चढ़न जहाज। (ख) पुनि पाछे अघ-सिंधु बढ़त है सूर खार किन पाटत।

संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ार] (१) काँटा, फाँस। (२) खाँग। (३) डाह, जलन।

मुहा.—खार खाना—जलना, बुरा लगना।

खारक—संज्ञा पुं. [सं. क्षारक, प्रा. खारक] छोहारा।

खारा—वि. पुं. [सं. क्षार] (१) नमक के स्वाद का। (२) अरुचिकर, अप्रिय, अशुद्ध।

संज्ञा पुं. [सं. क्षार] (१) एक धारीदार कपड़ा। (२) जालदार बँधना। (३) थैला। (४) टोकरा। (५) बाँस का बड़ा पिटारा।

खारि—वि. [हिं. पुं. खार] (१) नमक के स्वाद का। उ.—खारि समुद्र छाँड़ि किन आवत निर्मल जल जमुना को पीजो—१०उ. ६५। (२) अरुचिकर।

खारिक—संज्ञा पुं. [सं. क्षारक] छोहारा, खारक। उ.—खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख, रस सीरा—१०-२११।

खारिज—वि० [अ. ख़ारिज] (१) निकाला हुआ। (२) अलग। (३) जिसकी सुनवाई न हो।

खारी—वि. [हिं. पुं. खार] (१) **नमकीन । उ**—निर्मल जल जमुना को छाँड़्यो सेवत समुद्र जल खारी—१० उ.-६७ । (२) **अरुचिकर ।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. खारा] **एक तरह का खार, लवण ।**

खारुआँ, खारुवा—संज्ञा पुं. [सं. क्षारक] (१) **एक प्रकार का रंग । (२) इस रंग से रँगा कपड़ा ।**

खारे—वि. पुं. [सं. क्षार, हिं. खारा] (१) **नमकीन । नमक के स्वाद का, खारी ।** उ.—(क) मधु मेवा पकवान मिठाई, व्यंजन खाटे, मीठे, खारे—१०-२६६ । (ख) जेहि मुख सुधा स्याम रस अँचवत अब पीवै जल खारे—३-६८ । (२) **कड़ुआ, अरुचिकर । उ.**—भिलिनि के फल खाए भाव सौं खाटे-मीठे-खारे—१-२५ ।

खारो, खारौ—वि. [हिं. खारा] (१) **नमक के स्वाद का, खारी ।** उ.—याकौ कहा परेखौ-निरखौ, मधु छीलर, सरितापति खारौ—६-३६ । (२) **कड़ुआ, अरुचिकर ।** उ.—कहौं कहा कछु कहत न आवै, औ रस लागत खारौ री— १०-१३५ । (३) **बुरा, अनुचित ।** उ.—करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटो, खारौ—१-१५२ ।

खाल—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षाल, प्रा. खाल] (१) **चमड़ा, त्वचा ।**

मुहा.—खाल उड़ाना (उधेड़ना, खीचना)—**बहुत मारना-पीटना ।** खाल कढ़ाइ—**खाल उधड़ाना या खिचवाना, कड़ा दंड दिलवाना ।** उ.—दिन दिन इनकी करौं बड़ाई, अहिर गए इतराइ । तौ मैं जो वाही सौं कहिकै इनकी खाल कढ़ाइ—२५७८ ।

(२) **मृत शरीर ।** उ.—कहि तू अपने स्वारथ सुख को रोकि कहा करिहै खलु खालहि—१०-८०२ । (३) **धौंकनी । (४) देह, शरीर । (५) किसी चीज का मिला-जुला आवरण ।**

संज्ञा स्त्री. [सं. खात या अ. ख़ाली] (१) **नीची भूमि । (२) खड़ी । (३) खाली जगह । (४) गहराई ।**

खालसा—वि. [अ. ख़ालिस = शुद्ध] (१) **जिस पर एक ही का अधिकार हो । (२) सरकारी, राजकीय ।**

संज्ञा पुं.—**सिक्खों का एक संप्रदाय ।**

खाला—वि. [हिं. ख़ाल = खाली] **नीचा, निचला ।**

संज्ञा स्त्री. [अ. ख़ालः] **माँ की बहिन, मौसी ।**

खालिक—संज्ञा पुं. [अ. ख़ालिक] **रचनेवाला, स्रष्टा ।**

खालिस—वि. [अ. ख़ालिस] **असली, शुद्ध ।**

खाली—वि. [अ. ख़ाली] (१) **जो भरा न हो, रीता । (२) जिसपर कुछ रखा न हो । (३) जहाँ कोई न हो ।**

मुहा—खाली हाथ होना—**पास में धन, अस्त्र-शस्त्र या काम न होना ।** खाली पेट—**बिना कुछ खाये ।**

(४) **हीन, रहित । (५) व्यर्थ, निष्फल ।** उ.—पुनि लछमी हित उद्यम करै । अरु जब उद्यम खाली परै । तब वह रहै बहुत दुख पाई—३-१३ ।

मुहा.—निशाना (वार) खाली जाना—**लक्ष्य चूक जाना ।** बात खाली जाना—**वादा झूठा होना ।** खाली दिन—**वह दिन जब कोई शुभ कार्य आरंभ करना मना हो ।**

(६) **जो किसी काम में न लगा हो ।**

मुहा.—खाली बैठना—(१) **काम न करना । (२) बेरोजगार होना ।**

(७) **जिससे काम न लिया जा रहा हो ।**

क्रि. वि.—**केवल, सिर्फ ।**

संज्ञा पुं.—**वह ताल जो खाली छोड़ दिया जाय ।**

खालीर—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाल] **चमड़ी, खाल ।**

खाले—संज्ञा स्त्री [हिं. खाला] **निचाई, गहराई ।**

वि. [हिं. खाल या खाली] **नीचा, निचला ।**

क्रि. वि.—**नीचे ।**

खाव—संज्ञा स्त्री. [सं. खात] **खाली जगह ।**

खाविंद—संज्ञा पुं. [फा. ख़ाविंद] (१) **पति । (२) स्वामी ।**

खास—वि. [अ. ख़ास] (१) **विशेष, मुख्य । (२) निजी, आत्मीय । (३) स्वयं । (४) ठेठ, विशुद्ध ।**

खासा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) **राजा का भोजन । (२) राजा का घोड़ा या हाथी । (३) एक सफेद सूती कपड़ा ।**

वि. पुं. [अ. ख़ास] (१) **अच्छा-भला । (२) स्वस्थ । (३) सुन्दर । (४) भरा-पुरा ।**

खासियत—संज्ञा स्त्री. [अ.] (१) स्वभाव। (२) गुण। (३) विशेषता।

खाँहिं, खाहीं—क्रि. स. [हिं. खाना] खाते हैं, भोजन करते हैं। उ.–हंस उज्ज्वल, पंख निर्मल, अंग मलि-मलि न्हाहिं। मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि चुनि खाहिं—१-३३८। (ख) बारम्बार सराहिं सूर प्रभु साग-बिदुर घर खाहीं—१-२४१।

खाहु—क्रि. स. [हिं. खाना] खाओ, खालो। उ. —बहुत भुजनि बल होइ तुम्हारे, ये अमृत फल खाहु —६·८३।

खिंचना—क्रि. अ. [सं. कर्षण] (१) घसिटना, सरकना। (२) बाहर निकलना। (३) किसी ओर बढ़ना, तनना। (४) आकर्षित होना। (५) चुस जाना, सोखा जाना। (६) भभके से अर्क आदि तैयार होना। (७) शक्ति या सार निकलना। (८) रुक जाना। (९) चित्रित होना। (१०) खपते रहना, चला जाना। (११) प्रेम कम हो जाना। (१२) दाम बढ़ जाना।

खिंचवा—वि. [हिं. खींचना] खींचनेवाला।

खिंचवाना—क्रि. स. [हिं. खींचना] खींचने को प्रेरित करना।

खिंचाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खींचना] (१) खींचने की क्रिया। (२) इस काम की मजदूरी।

खिंचाना–क्रि. स. [हिं. खींचना] खींचने की प्रेरणा देना।

खिंचाव—संज्ञा पुं. [हिं. खिंचना] (१) खींचने का भाव। (२) तनाव।

खिंचावट, खिंचाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिंचना] (१) खींचने की क्रिया। (२) खींचने का भाव।

खिंचिया—वि. [हिं. खींचना] खींचनेवाला।

खिंडाना—क्रि. स. [सं. क्षिप्त] फैलाना, बिखराना।

खिआल—संज्ञा पुं. [हिं. खेल, खियाल] (१) खेल। (२) हँसी, विनोद।

खिखिंद खिखिंध—संज्ञा पुं. [सं. किष्किंधा] मैसूर के आसपास किष्किंधा देश की एक पर्वत श्रेणी।

खिचड़वार, खिचरवार—[हिं. खिचड़ी + वार] मकर संक्रांति।

खिचड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कृसर] (१) मिला हुआ दाल चावल।

मुहा.—खिचड़ी पकाना—गुप्त सलाह करना। ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाना—बहुमत से अलग होकर काम करना। खिचड़ी खाते पहुँचा उतरना—बहुत नाजुक होना।

(२) मिले हुए एक या अधिक पदार्थ। (३) मकर संक्रांति जब खिचड़ी दान दी जाती है।

वि.—मिला हुआ।

खिजना—क्रि. अ. [हिं. खीझना] झुँझलाना।

खिजमत—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिदमत] सेवा, टहल।

खिजलाना—क्रि. अ. [हिं. खिझना] झुँझलाना।

क्रि. स.—चिढ़ाना, दुखी करना।

खिजाँ—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खिजाँ] (१) पतझड़ की ऋतु। (२) अवनति-काल।

खिझ—संज्ञा स्त्री [हिं. खीझ] झुँझलाहट।

खिझत—क्रि. अ. [हिं. खिझना] (१) खिझाते हैं, झुँझलाते हैं। उ.—(क) जबहिं मोहिं देखत लरिकन संग तबहिं खिझत बल भैया। (ख) जाहु घर तुरत जुबतिजन खिझत गुरुजन कहि डरवाई—पृ. ३४० (६७) (ग) मैया जब मोहिं टहल कहति कछु खिझत बबा वृषभान—७२४। (२) हठ करता है। रूठता है। उ.—कहत जननी दूध डारत खिझत कछु अनखाइ।

खिझना—क्रि. अ. [सं. खिद्यते, प्रा. खिज्जइत] खीझना, झुँझलाना।

खिझवै—क्रि. स. [हिं. खिझाना] चिढ़ाता है, खिझाता है। उ.—यह कहति जसोदा रानी। को खिझवै सारँगपानी—१०·१८३।

खिझाइ—क्रि. स. [हिं. खिझाना] खिझाकर, चिढ़ाकर, छेड़कर। उ.—हमहिं खिझाइ आपु मति खोवत या मैं कहा कहौ तुम पावत—३२६६।

खिझाई—क्रि. स. [हिं. खिझाना] चिढ़ाया (है), परेशान किया (है)। उ.—कहा करौं हरि बहुत खिझाई। सहि नहिं सकी, रिस ही रिस भरि गई, बहुतै ढीठ कन्हाई—३७७।

खिझाना—क्रि. स. [हिं. खिझना] चिढ़ाना, रुठाना, छेड़ना।

खिझायौ—क्रि. स. [हिं. खिझाना] चिढ़ाया, दिक किया। उ.—मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ —१०-२१५।

खिझावत—क्रि. स. [हिं. खिझाना] खिझाते हैं, चिढ़ाते हैं, दिक करते हैं। उ.—(क) ऐसैं कहि सब मोहिं खिझावत, तब उठि चल्यौ खिसैया—१०-२१७। (ख) और ग्वाल सँग कबहुँ न जैहौं, वै सब मोहिं खिझावत—४२४। (ग) सूर स्याम जहँ तहाँ खिझावत जो मनभावत दूरि करो लंगर सगरी—१०४५।

खिझावन—संज्ञा पुं. [हिं. खिझाना] चिढ़ाने के लिए, दिक करने की क्रिया। उ.—ऊधो तुम यह मत लै आए। इक हम जरैं खिझावन आए मानौं सिखै पठाए —३२१०।

खिझवाना—क्रि. स. [हिं. खिझना] चिढ़ाना।

खिझि—क्रि. अ. [हिं. खिझना] खीझकर, चिढ़कर, झुँझलाकर। उ.—सूरदास खिझि कहति ग्वालिनी, मन मैं महरि बिचारि —१०-७६।

खिझिलाइ—क्रि. अ. [हिं. खिझाना] खीझकर, चिढ़कर। उ.—रही ताड़ि खिझिलाई लकुट लै एकहु डर न डरे—पृ. ३३१।

खिझी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. खिझना] चिढ़ी, खीझी। उ.—कछुक खिझी कछु हँसि कह्यौ अति बने कन्हाई—२४४१।

खिझुवर—वि. [हिं. खीझना] शीघ्र ही चिढ़ने या खीझनेवाला।

खिझौना—वि. [हिं. खिझाना] खिझानेवाला।

खिझौनी—वि. स्त्री. [हिं. खिझौना] खिझानेवाली।

खिड़कना—क्रि. अ. [हिं खसकना] चले जाना, चल देना, उठ भागना।

खिड़काना—क्रि. स. [हिं. खिसकना] (१) टालना, हटाना (२) निकाल डालना, बेच देना।

खिड़की—संज्ञा स्त्री. [सं. खटक्किका] (१) छोटा दरवाजा, झरोखा। (२) चोर दरवाजा। (३) इस आकार का खाली स्थान।

खित—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षिति] पृथ्वी।

खिताब—संज्ञा पुं. [अ. ख़िताब] पदवी, उपाधि।

खिताबी—वि. [अ. ख़िताबी] जिसे खिताब मिला हो।

खित्ता—संज्ञा पुं. [अ.] प्रांत, देश।

खिदमत—संज्ञा स्त्री. [फा. ख़िदमत] सेवा।

खिदमती—वि. [हिं. खिदमत] (१) बहुत सेवा करने वाला। (२) जो सेवा के बदले में प्राप्त हुआ हो।

खिदरबन—संज्ञा पुं. [हिं. खदिरबन] बारह बनों में एक। उ.—नंदगाम संकेत खिदरबन और कामबन धाम—१०८९ सारा०।

खिन—वि. [सं. खिन्न] उदास, दुखी, चिंतित। उ. निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे, खिन लोटत धर, बपु न सँभारत —९-६२।

संज्ञा पुं. [सं. क्षण] क्षण, पल। उ.—खिन मुँदरी, खिन हीं हनुमति सों, कहति बिसूरि बिसूरि —९-८३।

मुहा.—खिन खिन—प्रति क्षण।

खिन्न—वि. [सं.] (१) उदास, चिंतित। (२) अप्रसन्न। (३) असहाय।

खिपना—क्रि. अ. [सं. क्षिप्] (१) खप जाना। (२) तल्लीन होना।

खिपाना—क्रि. स. [हिं. खपाना] (१) काम में लाना। (२) निभाना। (३) खत्म करना।

खियाना—क्रि. अ. [सं. क्षय] घिसना।

क्रि. अ. [हिं. खाना] खिलाना।

खियाल—संज्ञा पुं. [हिं. ख्याल] (१) ध्यान। (२) विचार।

संज्ञा पुं. [हिं. खेल] (१) खेल, क्रीड़ा। (२) विनोद।

खिर—संज्ञा स्त्री. [देश.] ढरकी या नार जिसमें बाने का सूत रहता है।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीर] (१) खीर। (२) दूध।

खिरकन—संज्ञा पुं. [हिं. खरक] पशुओं का बाड़ा। उ.—राँभी गौ खिरकन मैं बछरा हित धाई।

खिरका—संज्ञा पुं. [हिं. खरक, खरिक] पशुओं का बाड़ा।

खिरकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिड़की] **झरोखा, गवाक्ष, खिड़की।**

खिरनी—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीरिणी] (१) **एक ऊँचा पेड़। (२) इसका छोटा फल।**

खिर-लाडु—संज्ञा पुं. [हिं. खीर+लड्डू] **एक तरह की मिठाई।** उ.—खिरलाडु लवंगनि लाए। ते करि बहु जतन बनाए—१०-१८३।

खिराज़—संज्ञा. पुं. [अ. खिराज] **कर, मालगुजारी।**

खिरियाँ—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीर, हिं. खीर] **खीर। उ.**—सूरदास प्रभु बैठि कदम तर, खात दूध की खिरियाँ —४७०।

खिरिरना—क्रि. स. [अनु.] **खुरचना, खरोचना।**

खिरोरा, खिरौरा—संज्ञा पुं. [हिं. खैर=कत्था+ औरा (प्रत्य.)] **कत्थे की टिकिया।**

खिलंदरा—वि. [हिं. खेल] **खेल या खिलवाड़ करने वाला।**

खिलअत—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़िलअत] **राजा की ओर से सम्मान-रूप में दी जानेवाली पोशाक आदि।**

खिलकत—संज्ञा स्त्री [अ. ख़िलक़त] (१) **संसार। (२) भीड़, समूह।**

खिलकौरी—संज्ञा स्त्री [हिं. खेल+कौरी (प्रत्य.)] **खेल, खिलवाड़।**

खिलखिलाना—क्रि. अ. [अनु.] **खिलखिल करके जोर से हँसना।**

खिलत, खिलति—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलअत] **वस्त्र आदि जो सम्मान-रूप में राजा की ओर से दिये जायँ।**

खिलन—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलना] **प्रसन्न होना, प्रमुदित होना।** उ.—सूरदास प्रभु की सुन अरी आली तेरे अंग अंग भयो उदोत वह हिलनि मिलनि खिलन की तेरे प्रेम प्रीति जनाई—२१०७।

खिलना—क्रि. वि. [सं. स्खलन्] (२) **कली का निकलना। (२) प्रसन्न होना। (३) शोभित होना। (४) बीच से फटना। (५) अलग होना।**

खिलवत—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़िलवत] **एकान्त स्थान।**

खिलवतखाना—संज्ञा पुं. [ख़िलवतख़ाना] (१) **एकान्त स्थान। (२) मंत्रणागृह।**

खिलवति—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलअत] **सम्मानसूचक वस्त्रआदि।**

खिलवाड़, खिलवार—संज्ञा पुं. [हिं. खेलवाड़] **खेल, तमाशा।**

खिलवाना—क्रि. स. [हिं. खाना] **भोजन कराना।**

क्रि. स. [हिं. खीलना] (१) **खिलाने की प्रेरणा देना। (२) प्रफुल्लित कराना।**

क्रि. स. [हिं. खील] (१) **खिलाने की प्रेरणा देना। (२) खीलें बनवाना।**

क्रि. स. [हिं. खेलवाना] **खेलने की प्रेरणा देना।**

खिलाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खाना] (१) **खाने का काम। (२) खेलने का काम।**

खिलाए—क्रि. स. भूत० [हिं. खेलना] **खेल में लगाया।** उ.—कौरव पासा कपट बनाए। धर्मपुत्र कौं जुआ खिलाए—१-२४६।

खिलाड़, खिलाड़ी—संज्ञा पुं.[हिं. खेल+आड़ी (प्रत्य.)] (१) **खेलनेवाला। (२) कुश्ती, पटा आदि के खेल दिखानेवाला। (३) जादूगर।**

खिलाना—क्रि. स. [हिं. खेलना] **खेलने में लगाना।**

क्रि. स. [हिं 'खाना' का प्रे.] **भोजन कराना।**

क्रि. स. [हिं. खिलना] **विकसित करना।**

खिलाफ—वि. [अ. ख़िलाफ़] **विरोधी, उलटा।**

खिलारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खील=भुना हुआ दाना] **धनिया और ककड़ी आदि के भुने हुए बीज जो भोजन के बाद खाये जाते हैं।**

संज्ञा पुं. [हिं. खिलाड़ी] **खेलनेवाला, खिलाड़ी।** उ.—कैसरि चीर पर अबीर मानो परयो खेलत फाग डारयौ खिलारी—२५६५।

खिलावत—क्रि. स. [हिं. खिलाना] (१)**बच्चों या पक्षियों को) खिलाता है। (२) दना आदि चुगाते हैं। उ.**—नाहिंन मोर बकत पिक दादुर ग्वाल मंडली खगन खिलावत—३४८५।

खिलावति—क्रि. स. स्त्री. [हिं. खिलाना] **(खेल आदि) खिलाती है, खेलने में लगाती है। उ.**—जाकौ ब्रह्म पार न पावत, ताहि खिलावत ग्वालिनियाँ—१०-१३२।

खिलावन—संज्ञा पुं. [हिं. खेल, खिलाना] **खेल खिलाने की क्रिया।** उ.—पाऊँ कहाँ खिलावन कौं सुख मैं दुखिया, दुख कोखि जरी—१०-८०।

खिलावै—क्रि. स. [हिं. खिलाना] **(बच्चे को) खिलाती और हँसाती है, खेल में नियोजित करती है।** उ.—(क) गुन गन अगम, निगम नहिं पावै। ताहि जसोदा गोद खिलावै। (ख) आनँद-प्रेम उमँगि जसोदा खरी गुपाल खिलावै—१०-१३०।

खिलौना—संज्ञा पुं. [हिं. खेल + औना (प्रत्य.)] **(१) छोटी मूर्ति या इसी प्रकार की चीज जिससे बच्चे खेलते हैं। (२) खेलने की चीज, प्रिय वस्तु।** उ.—दंपति होड़ करत आपुस मैं स्याम खिलौना कीन्हौ री—१०-६८।

खिल्ली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलना] **हँसी, हास्य।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. गिलौरी] **पान की गिलोरी।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. खील] **कील, काँटा।**

खिल्लो—वि. स्त्री. [हिं. खिलना = प्रसन्न होना] **बहुत हँसनेवाली।**

खिसकना—क्रि. अ. [हिं. खसकना] **सरकना, एक स्थान से दूसरे को जाना।**

खिसकाना—क्रि. स. [हिं. खसकाना] **सरकाना, हटाना।**

खिसना—क्रि. अ. [हिं. खसना] **किसी स्थान से गिरना, हटना।**

खिसलना—क्रि. अ. [हिं. फिसलना] **रपटना, सरकना।**

खिसलाना—क्रि. स. [हिं. खिसलना] **रपटाना, फिसलाना।**

खिसलाव—संज्ञा पुं. [हिं. खिसलना] **फिसलने का भाव।**

खिसाई—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] **खिसियाकर, लज्जित होकर।** उ.—(क) दुर्योधन यह रीति देखि कै मन में रह्यौ खिसाई—१०उ.-५५। (ख) बहुरि भगवान सिसुपाल को छाँड़ि दियौ गयो निज देस को सो खिसाई—१० उ.-२१।

खिसाना—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] **खिसिया जाना, लज्जित होना।**

वि.—**खिसियाया हुआ, लज्जित।**

खिसानी—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] **लज्जित होकर, खिसियाकर।** उ.—कैती कही नेकु नहिं बोली फिरी आइ तब हमहिं खिसानी—१२८४।

वि.—**खिसियायी हुई।**

खिसाने—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] **खिसिया गये, लज्जित हुए।** उ.—(क) सखा कहत हैं स्याम खिसाने। आपुहि आपु बलकि भए ठाढ़े, अब तुम कहा रिसाने— १०-२१४। (ख) जब हरि मुरली अधर धरी।......। दुरि गये कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधि बिसरी। उडुपति, बिद्रुम, बिंब, खिसाने, दामिनि अधिक डरी—६५६।

वि.—**खिसियाये हुए, लज्जित।**

खिसाय (गये)—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] **खिसिया गये, लज्जित हो गये।** उ.—कछु नहिं चलत खिसाय गये सब रहे बहुत पचि हार—२१८ सारा.।

खिसावैं—क्रि. अ. बहु. [हिं. खिसियाना] **खिसिया जाती हैं, लज्जित होती हैं।** उ.—तरुनिन की यह प्रकृति अनैसी थोरेहि बात खिसावैं—११५२।

खिसाहीं—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] **खिसिया जाते हैं, लजाते हैं।** उ.—बर्वत घन गिरि देखि खिसाहीं—१०.५६।

खिसिआई—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] **लजाकर, खिसिया कर।** उ.—तब खिसिआइ के काल यवन अपने सँग ल्यायौ—१० उ.-३।

खिसिआइ—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] **लजाकर, खिसियाकर।**

यौ.—गई खिसिआई—**खिसिया गयी।** उ.—रघुपति कह्यौ, निलज निपट तू, नारि राच्छसी ह्याँ तैं जाई। सूरदास प्रभु इक पत्नीव्रत, काटी नाक गई खिसिआई—६-५६।

खिसिआनपन—संज्ञा पुं. [हिं. खिसिआना + पन] **लजाने का भाव।**

खिसिआना—क्रि. अ. [हिं. खीस-दाँत] **(१) लजाना, लज्जित होना। (२) क्रुद्ध होना।**

वि.—**लज्जित।**

खिसिआने—वि. [हिं. खिसिआना] **लजाये या शरमाये**

हुए। उ.—लाज गये प्रभु आवत नाहीं ह्वै जो रहे खिसिआने।

खिसियानो, खिसिआनौ—वि. [हिं. खीस, खिसिआना] **खिसियानेवाला, खिसियाया हुआ।** उ.—(क) हौं तौ जाति गँवार, पतित हौं, निपट निलज खिसिआनौ—१-१६६। (ख) लाज गए प्रभु आवत नाहीं ह्वै जो रहे खिसिआनो (खिसिआने)—३३४२।

खिसिआहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिसिआना + हट (प्रत्य.)] **लजाने का भाव।**

खिसियाइ—क्रि. अ. [हिं. खिसिआना] **लज्जित होकर, खिसियाकर।** उ.—(क) यह सुनि दूत चले खिसियाइ—६-४। (ख) यासौं हमरौ कछु न बसाइ। यह कहि असुर रह्यौ खिसियाइ—७-७।

खिसियाना—क्रि. अ. [हिं. खीस = दाँत] (१) **लज्जित होना।** (२) **नाराज होना।**

खिसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिसिआना] (१) **लज्जा, शर्म।** उ.—कहा चलत उपरावटे अजहूँ खिसी न गात। कंस सौंह दै पूछिये जिन पटके हैं सात—११३७। (२) **ढिठाई, घृष्टता।**

खिसै—क्रि. अ. [हिं. खसना] (१) **हटना, सरकना।** (२) **नष्ट हो जाय, चला जाय।** उ.—तन मन धन जोबन खिसै तऊ न मानै हार।

मुहा.—खिसै न बार—**बाल बाँका न हो।** उ.—इहै असीस सूर प्रभु सों कहि न्हात खिसै जनि बार—३१००।

खिसैया—क्रि. अ. [हिं. खिसियाना] **खिसिया कर, लज्जित होकर।** उ.—ऐसैं कहि सब मोहिं खिझावत तब उठि चल्यौ खिसैया—१०-२१७।

खिसौहाँ—वि. [हिं. खिसियाना + औहाँ (प्रत्य.)] **लज्जित, खिसियाया हुआ।**

खिस्याइ—क्रि. अ. [हिं. खिसिआना] (१) **लज्जित होकर, खिसियाकर।** उ.—सुरपति ताकैं रूप लुभायौ। बहुरि कुबेर तहाँ चलि आयौ। पै तिन तिहिं दिसि देख्यौ नाहिं। गए खिस्याइ दोउ मन माहिं—६-३। (२) **क्रुद्ध होकर, रिसाकर।** उ.—अस्वत्थामा बहुरि खिस्याइ। ब्रह्म-अस्त्र को दियौ चलाइ—१-२८६।

खिस्याई—क्रि. अ. [हिं. खिसिआना] **खिसियाकर, लज्जित होकर।** उ.—रहे पचिहारि, नहिं टारि कोऊ सक्यौ, उठ्यौ तब आपु रावन खिस्याई—६-१३५।

खिस्यानो, खिस्यानौ—क्रि. अ. [हिं. खिसिआना] **लज्जित हुआ।** उ.—आवत नहिं लाज के मारे मानो कान्ह खिस्यानो।

खींच—संज्ञा स्त्री. [हिं. खींचना] (१) **खिंचाव।** (२) **बहुत माँग।**

खींचतान—संज्ञा स्त्री. [हिं. खींचना + तानना] (१) **खींचातानी, नोकझोक।** (२) **जबरदस्ती अर्थ बैठाना।**

खीचना—क्रि. स. [सं. कर्षण] (१) **घसीटना।** (२) **बाहर निकालना।** (३) **ऐंचना।** (४) **आकर्षित करना।** (५) **लिखना, चित्रित करना।** (६) **सोखना।** (७) **अर्क आदि चुआना।** (८) **रोक रखना।**

मुहा.—हाथ खींचना—(१) **काम बन्द करना।** (२) **उदासीन हो जाना।**

खीचरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कृसर, हिं. खिचड़ी] **मिलाकर पकाया हुआ दाल-चावल।** उ.—खीर, खाँड़ खीचरी सँवारी—२३२१।

खीज—संज्ञा स्त्री. [हिं. खीजना] (१) **झुँझलाहट।** (२) **ऐसी बात जो चिढ़ाने के लिए कही जाय।**

खीजना—क्रि. अ. [सं. खिद्यते, प्रा. खिज्जइ] **झुँझलाना, खिजलाना।**

खीजै—क्रि. अ. [हिं. खीजना] **खिजलाता है, झुँझलाता है।** उ.—खसि खसि परत कान्ह कनियाँ तैं, सुसुकि सुसुकि मन खीजै—१०-१६०।

खीझ—संज्ञा स्त्री. [हिं. खीज] **झुँझलाहट।**

खीझत—क्रि. अ. [हिं. खीजना] **झुँझलाते हैं, खिजलाते हैं।** उ.—खीझत जात माखन खात। अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार-बार जँभात—१०-१००।

खीझन—क्रि. अ. [हिं. खीजना, खीझना] **खीजने लगे, झुँझलाने लगे।** उ.—नंद बबा तब कान्ह गोद करि खीझन लागे मोको—२६२७।

खीझना—क्रि. अ. [हिं. खीजना] **झुँझलाना।**

खीझिहैं—क्रि. अ. [हिं. खीजना] **खीजेंगी, नाराज होंगी, अप्रसन्न होंगी, झुँझलायँगी।** उ.—भली भई तुम्हैं

सौंपि गए मोहिं जान न दैहौं तुमकौं। बाँह तुम्हारी नैंकु न छाँड़ौं, महर खीझिहैं हमकौं—६८१।

खीझी—क्रि. अ. [हिं. खीझना] अप्रसन्न हुई, झुँझलायी। उ.—प्रात गईं नीकैं उठि घर तैं। मैं बरजी कहँ जाति री प्यारी, तब खीझी रिस भर तैं—७४४।

खीझे—क्रि. अ. [हिं. खीझना] झुँझलाये, रुष्ट हुए। उ.—उन नहिं मान्यौ, तब चतुरानन खीझे क्रोध उपाय—६४ सारा.।

खीझै—क्रि. अ. [हिं. खीजना] खीजती है, झुँझलाती है, रुष्ट होती है। उ.—(क) तू मौंहींकौं मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै—१०-२१५। (ख) बाँह गहे ढूँढ़ति फिरै डोरी। बाँधौ तौहिं सकै को छोरी। बाँधि पची डोरी नहिं पूरै। बार-बार खीझै, रिस भूरै—३६१।

खीझो, खीझौ—क्रि. अ. [हिं. खीझना] झुँझलाओ, खिजलाओ। उ.—कोऊ खीझो; कोऊ कितनो बरजो जुवतिन के मन ध्यान—८७०।

खीन—वि. [सं. खिन्न] उदास, चिंतित। उ.—चित्रकूट तैं चले खीन तन मन बिस्राम न पायौ —६-५५।

वि. [सं. क्षीण] दुर्बल, पतला, पुराना। उ.—(क) भयौ बलहीन खीन तनु कंपित तज्यौ बयारि बस पात—२६५७। (ख) यहै अपूर्व जानि जिय लघुता खीन इन्दु एहि दुख भाज्यौ—२३००।

खीनता, खीनताई—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीणता] दुर्बलता।

खीनौ—वि. [सं. क्षीण] क्षीण।

वि. [सं. खिन्न] उदासीन, खिन्न। उ.—देखिकै उमा कौं रुद्र लज्जित भए, कह्यौ मैं कौन यह काम कीनौ। इंद्रिजित हौं कहावत हुतौ, आपु कौं समुझि मन माहिं ह्वै रह्यौ खीनौ—८-१०।

खीप—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़। उ.—खीप पिंडारू कोमल भिंडी।

खीमा—संज्ञा पुं. [हिं. खेमा] तंबू।

खीर—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीर] दूध में पकाया हुआ चावल। उ.—खीर खाँड़ खीचरी सँवारी—२३२१।

संज्ञा पुं.—दूध। उ.—ए दोउ नीर-खीर निवारत इनहिं बँधायो कंस—३०४६

खीरा—संज्ञा स्त्री. पुं. [सं. क्षीरक] एक फल जो ककड़ी की जाति का होता है। उ.—(क) खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख-रस, सीरा—१०-२११। (ख) खीरा रामतरोई तामें। अरुचि न रुचि अंकुर जिय जामें—२३२१।

खीरी—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीरनी] खिरनी नाम का फल।

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीर] थन का ऊपरी भाग जिसमें दूध रहता है।

खील—संज्ञा स्त्री. [हिं. खिलना] भूना हुआ धान, लावा।

संज्ञा स्त्री. [हिं. कील] (१) कील, काँटा। (२) नाक में पहनने की लौंग।

संज्ञा स्त्री. [देश.] भूमि जो बहुत दिन बाद जोती-बोई जाय।

खीलना—क्रि. स. [हिं. कील,खील] कील लगाना, कील की तरह तिनके खोंसना।

खीला—संज्ञा पुं. [हिं. कील] काँटा, कील।

खीली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खील] पान का बीड़ा।

खीवन, खीवनि—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षीवन] मस्ती, मतवालापन। उ.—मेरे माई स्याम मनोहर जीवनि। निरखि नयन भूले ते बदन छबि मधुर हँसनिपै खीवनि।

खीवर—संज्ञा पुं. [सं. क्षीव = मस्त] शूर, वीर।

खीस—वि. [सं. किष्क = बध] नष्ट।

मुहा.—डारत खीस — नष्ट करता है। उ.—काहे को निर्गुन ग्यान गनत हौ जित तित डारत खीस—३१३०।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खीज] (१) अप्रसन्नता। (२) क्रोध।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खिसियाना] लज्जा।

संज्ञा स्त्री. [सं. कीश = बन्दर] दाँत बाहर निकालना।

मुहा.—खीस काढ़ना—(१) दाँत बाहर निकाल कर हँसना। (२) दीनता दिखाकर माँगना। (३) मर जाना।

संज्ञा स्त्री. [देश.] गाय का दूध जो ब्याने के सात दिन तक निकलता है।

खीसा—संज्ञा पुं. [फ़ा. कीसा] (१) थैला। (२) जेब। (३) कपड़े की थैली।

संज्ञा पुं. [हिं. खीस] दाँत जो ओंठ के बाहर निकले हों।

खुँटिला—संज्ञा पुं. [देश. खुटिला] कान में पहनने का एक गहना, कर्णफूल। उ.—खुँटिला सुभग जराइ के मुकुता मनि छबि देत। प्रगट भयो घन मध्य ते ससि मनु नखत समेत—२०६५।

खुँदाना—क्रि. स. [सं. क्षुण्ण = रौंदा हुआ] (एक ही स्थान पर घोड़ा) कुदाना।

खुआर—वि. [फ़ा. ख़्वार] (१) जिसकी दशा बुरी हो। (२) जिसका कुछ मान न हो।

खुआरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुआर] (१) बुरी दशा। (२) अनादर, अप्रतिष्ठा।

खुआरू—वि. [फा. ख्वार] (१) खराब। (२) जिसका आदर न हो।

खुक्ख—वि. [सं. शुष्क या तुच्छ, प्रा. छुच्छ] छूँछा, खाली।

खुखड़ी—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) तकुए पर लपेटा हुआ सूत। (२) नैपाली छुरा।

खुखला—वि. [हिं. खोखला] (१) जिसके भीतर पोला हो। (२) छूछा, खाली।

खुचर, खुचुर—संज्ञा स्त्री. [सं. कुचर = दूसरे के दोष निकालनेवाला] दोष निकालने की क्रिया या प्रकृति।

खुजलाना—क्रि. स. [सं. खर्जु, खर्जन] खुजली मिटाने के लिए रगड़ना या सहलाना।

क्रि. अ.—खुजली जान पड़ना।

खुजली—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुजलाना] खुजलाने की इच्छा, अनुभव या रोग।

खुटक—संज्ञा स्त्री. [हिं. खटकना] आशंका, खटका। उ.—(क) मन में खुटक जनि राखहु। दीन बचन मुख ते तुम भाखहु—१०२६। (ख) अपने जिय की खुटक मिटाऊँ—१४४६। (ग) भटक अति सब्द भयो खुटक नृप के हिए अटक प्रानन परयौ चटक करनी—२६०६।

खुटकना—क्रि. स. [सं. खुड् या खुंड] (ऊपरी भाग) खुटकना या तोड़ना।

खुटचाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटी + चाल] (१) दुष्टता, नीचता। (२) बुरा आचरण। (३) उपद्रव।

खुटचाली—वि. [हिं. खुटचाल + ई (प्रत्य.)] (१) दुष्ट, नीच। (२) दुराचारी। (३) उपद्रवी।

खुटना—क्रि. अ. [सं. खुड्] खुलना।

क्रि. अ. [हिं. छुटना] सम्बन्ध छोड़ देना, अलग होना।

क्रि. अ. [सं. खुड् या हिं. खोट] समाप्त होना।

खुटपन, खुटपना—संज्ञा पुं. [हिं. खोटा + पन, पना (प्रत्य.)] दोष, ऐब।

खुटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटाई] खोटापन, दोष।

खुटाना—क्रि. अ. [सं. खुड् = खोंडा, खोट] समाप्त होना।

खुटिला—संज्ञा पुं. [देश.] कान में पहनने का फूल या गहना। उ.—(क) नकबेसरि खुटिला तरिवन को गरह मेल कुच जुग उतंग को—१०४२। (ख) ससि मुख तिलक दियो मृगमद को खुटिला खुभी जरायज री—पृ. ३४५ (४१)।

खुतबा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) प्रशंसा। (२) सामयिक राजा की प्रशंसा-घोषणा।

खुत्थी, खुथी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खूँटी] (१) अनाज कट जाने पर पृथ्वी में गड़ा रहनेवाला पेड़ का भाग। (२) थाती, धरोहर। (३) धन, संपत्ति।

खुद—अव्य. [फ़ा.] स्वयं, आप।

खुदगरज़—वि. [फ़ा.] स्वार्थी, मतलबी।

खुदना—क्रि. अ. [हिं. खोदना] खोदा जाना।

खुदमुख्तार—वि. [फा.] जिसपर किसी का दबाव न हो, स्वच्छन्द।

खुदमुख्तारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुदमुख्तार] स्वच्छन्दता।

खुदवाना—[हिं. खोदना] खोदने का काम कराना।

खुदा—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ुदा] ईश्वर।

यौ.—खुदा न ख्वास्ता [फा. ख़ुदा न ख़्वास्ता] ईश्वर न करे कि कहीं ऐसा (बुरा, अनिष्ट) हो।

मुहा.—खुदा ख़ुदा करके—बड़ी कठिनता से। खुदा की मार—ईश्वरीय कोप।

खुदाई—संज्ञा स्त्री. [फा. ख़ुदाई] (१) ईश्वरता। (२) ईश्वर की रची सृष्टि।
संज्ञा स्त्री. [हिं. खोदना] (१) खोदने का भाव। (२) खोदने की क्रिया। (३) खोदने की मजदूरी।

खुदाव—संज्ञा पुं. [हिं. खोदना] खोदने की क्रिया या भाव।

खुदी—संज्ञा पुं. [हिं. खुद] (१) अहंभाव। (२) घमण्ड।

खुनकी—संज्ञा स्त्री. [फा.] ठंडक।

खुनखुना—वि. [अनु.] खन खन शब्द करके। उ.—खुनखुनाकर हँसत हरि, हर नचत डमरु बजाइ—१०-१७०।
संज्ञा पुं. [अनु.] झुनझुना नामक खिलौना।

खुनस—संज्ञा स्त्री. [सं. खिन्नमनस्] क्रोध, गुस्सा।

खुनसनि—संज्ञा सवि. [हिं. खुनसाना] क्रोध से, रिसाकर उ.—सूर इते पर खुनसनि मरियत ऊधो पीवत मामी—३०८०।

खुनसाना—क्रि. अ. [सं. खिन्नमनस्] क्रोध करना, गुस्सा होना।

खुनसी—वि. [हिं. खुनसाना] क्रोधी।

खुनुस—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुनस] क्रोध, रिस, झुँझलाहट। उ.—कौन करनी घाटि मोसौं, सो करौं फिरि काँधि। न्याइ के नहिं खुनुस कीजै, चूक पल्लैं बाँधि—१-१९९।

खुबानी—संज्ञा स्त्री [फ़ा. ख़ूबानी] एक प्रकार का मेवा, जरदालू, कुश्मालू। उ.—श्रीफल मधुर, चिरौंजी आनी। सफरी चिउरा, अरुन खुबानी—१०-२११।

खुभना—क्रि. स. [अनु.] चुभना, धँसना।

खुभराना—क्रि. अ. [सं. क्षुब्ध] उमड़ना, इतराना, इठलाना।

खुभाना—क्रि. स. [हिं. खुभना] चुभाना, गड़ाना।

खुभिया, खुभी—संज्ञा स्त्री [हिं. खुभना] (१) कान में पहनने का एक गहना जो लौंग की तरह का होता है और 'लौंग' ही कहलाता है। उ.—ससि मुख तिलक दियो मृगमद को खुटिल खुभी जरायज री—पृ. ३४५ (४१। (२) पीतल, सोने या चाँदी का छल्ला या खोल जो हाथी के दाँत पर चढ़ाया जाता है। उ.—मोतिनहार जलाजल मानो खुभी दंत झलकावै।

खुमान—वि. [सं. आयुष्मान] बड़ी आयुवाला, आयुष्मान।
संज्ञा पुं.—शिव जी।

खुमार, खुमारि खुमारी—संज्ञा स्त्री. [अ. ख़ुमार] (१) मद, नशा। उ.—(क) जब जान्यौ ब्रजदेव मुरारी। उतर गई तब गर्व खुमारी। (ख) तरुनी स्यामरस मतवारि। प्रथम जोबन रस चढ़ायो अतिहि भई खुमारि। (२) नशा उतरने की दशा। (३) रात में जागने की दशा।

खुमी—संज्ञा स्त्री. [अ. कुमः] एक छोटा पौधा जो पत्र पुष्प रहित होता है।
संज्ञा स्त्री. [हिं. खुभना] (१) सोने की कील जो दाँतों में जड़ी जाती है। (२) धातु का पोला छल्ला जो हाथी के दाँत पर चढ़ाया जाता है। उ.—गति गयंद कुच कुंभ किंकिनी मनहु घंट झहनावै। मोतिनहार जलाजल मानो खुमी दंत झलकावै।

खुम्हारि—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुमारी] नशे की खुमारी, आलस्य। उ.—कबहूँ इत कबहूँ उत डोलन लागी प्रीति खुम्हारि।

खुरंट, खुरंड—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुर=खरोचना+अंड] सूखे घाव की पपड़ी।

खुर—संज्ञा पुं. [सं. क्षुर] (१) सींगवाले चौपायों के पैर का निचला भाग जो बीच से फटा होता है। उ.—(क) मनहु चलत चतुरंग चमू नभ बाढ़ी है खुर खेह—२८२०(ख) माधौ, नैकुँ हटकौ गाइ। ...... । भुवन चौदह खुरनि खूंदति, सु धौं कहाँ समाइ—१-५६। (२) चारपाई, चौकी, कुर्सी के पाए का निचला भाग जो भूमि से लगा रहता है।

खुरक—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुटक] खुटका, अंदेशा।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) तिल का पेड़। (२) एक नाच।

खुरचन—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुरचना] (१) खुरच कर निकाली हुई वस्तु। (२) गाढ़ी रबड़ी।

खुरचना—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुरण] कुरेदना, करोना, करोचना।

खुरचाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटी+चाल] (१) दुष्टता । (२) बुरा आचरण ।

खुरचाली—वि. [हिं. खुरचाल] (१) दुष्ट । (२) जिसका आचरण अच्छा न हो ।

खुरतार—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर+ताड़न] टाप, खुर या सुम की ठोकर । उ.—धुरवा धूरि उड़त रथ पायक घोरन की खुरतार—२८२६ ।

खुरपा—संज्ञा [सं. क्षुरप्र] घास छीलने का औजार ।

खुरमा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) एक प्रकार की मिठाई । (२) छोहारा ।

खुरहर—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर+हर (प्रत्य.)] (१) खुर का चिह्न । (२) पतली पगडंडी ।

खुराक—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) भोजन । (२) औषध की मात्रा ।

खुराकी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] भोजन के लिए दिया जाने वाला धन ।

खुरुक—संज्ञा पुं. [हिं. खुटका] खटका, आशंका ।

खुलना—क्रि. अ. [सं. खुड, खुल=भेदन] (१) आवरण हटना, परदा न रहना । (२) तितर-बितर हो जाना । (३) फटजाना, छेद होना । (४) बंधन छूटना । (५) बँधी वस्तु का छूटना । (६) कार्य आरंभ होना । (७) (बात का) प्रकट हो जाना । (८) भेद बताना । (९) सुहाना, अच्छा लगना ।

खुला—वि. पुं. [हिं. खुलना] (१) जो बँधा न हो । (२) बाधारहित । (३) स्पष्ट, प्रकट ।

खुलासा—संज्ञा पुं. [अ.] सारांश ।

खुली—क्रि. अ. [हिं. खुलना] (१) प्रकट हुई । (२) छूटी । (३) शोभित हुई, फली । उ.—ते सब तजि अलि कहत मलिन मुख उज्वल भस्म खुली—३२२१ ।

खुले—क्रि. अ. [हिं. खुलना] मुक्त, खुल रहे, बंद न रहे, जुड़े या जड़के न रहे । उ.—बंदि-बेरी सबै छूटी, खुले बज्र कपाट—१०-५ ।

खुल्लमखुल्ला—क्रि. वि. [हिं. खुलना] प्रकट या प्रत्यक्ष रूप से, खुले आम ।

खुवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. ख्वारी] (१) बरबादी । (२) बदनामी, अपमान ।

खुश—वि. [फ़ा खुश] (१) प्रसन्न । (२) अच्छा, भला ।

खुशामद—संज्ञा स्त्री. [फ़ा] चापलूसी, चाटुकारी ।

खुशामदी—वि. [हिं. शामद+ई (प्रत्य.)] (१) चापलूस, चाटुकार । (२) मालिक की सब तरह से सेवा करनेवाला ।

खुशियाली—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खुशी] (१) खुशी, प्रसन्नता । (२) कुशल ।

खुशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खुशी] आनंद, प्रसन्नता ।

खुसामति—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुशामद] चाटुकारी, चापलूसी ।

खुसाल, खुस्याल—वि. [फ़ा. खुशहाल] खुश, प्रसन्न ।

खुही—संज्ञा स्त्री. [सं. खोलक] लपेटा हुआ वस्त्र जिसे शरीर के ऊपरी भाग की रक्षा के लिए सिर पर बाँधते हैं ।

खूँखार—वि. [फ़ा.] (१) हिंसक । (२) क्रूर ।

खूँट—संज्ञा पुं. [सं. खंड] (१) छोर, कोना । उ.—(क) नीलांबर गहि खूँट चूनरी हँसि हँसि गाँठि जुराइ हो—२४३६ । (ख) हा हा करति सबनि सौं मैं ही कैसेहु खूँट छुँड़ावति—८६५ । (ग) नैना भगरत आइ कै मोसौं री माई । खूँट धरत हैं धाइ कै चलि स्याम दुहाई—पृ. ३३३ (२८) । (२) ओट, तरफ । (३) भाग ।

संज्ञा स्त्री. [सं. खंड] कान में पहनने का एक बड़ा गहना, बिरिया, ढार ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खूँटना] रोक-टोक, पूछताछ ।

खूँटना—क्रि. स. [सं. खंडन = तोड़ना] (१) पूछताँछ करना, टोंकना । (२) छेड़ना । (३) घट जाना ।

खूँटा—संज्ञा. पुं. [सं. क्षोड] (१) बड़ी मेख । (२) गड़ी हुई लकड़ी ।

खूँटी—संज्ञा स्त्री. [हिं, खूँटा] (१) छोटी मेख । (२) सूखा डंठल । (३) सीमा । (४) लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो कुछ अटकाने के लिए किसी भीत में जड़ा या लगाया जाता है ।

खूँद—संज्ञा स्त्री. [हिं. खूँदना] (१) थोड़ी जगह में घोड़े का धीरे धीरे चलना या पैर पटकना । (२) उछल-कूद ।

खूँदति— क्रि. अ. [हिं. खूँदना] **पैरों से रौंदती है, उछल-कूद कर खराब करती है।** उ.—भुवन चौदह खुरनि खूँदति सु धौं कहाँ समाइ—१-५६।

खूँदना—क्रि. अ. [सं. खुंदन = तोड़ना] **(१) पैर पटकना, उछल-कूद करना। (२) पैरों से रौंदना। (३) कूटना, कुचलना।**

खूआ—संज्ञा पुं. [देश.] **एक मिठाई या पकवान।** उ.—दोना मेलि धरे हैं खूआ। हौंस होइ तौ ल्याऊँ पूआ—१०-३९६।

खूक, खूखू—संज्ञा पुं. [फ़ा. खूक] **सुअर।**

खूझा—संज्ञा पुं [सं. गुह्य, प्रा. गुज्झ] **(१) फल का रेशेदार भाग जो बेकार समझा जाता है। (२) उलझा हुआ लच्छा जो काम न आ सके। (३) एक पेड़।** उ.—खूझा मरुआ कुंद सों कहै गोद पसारी। बकुल बहुलि बट कदम पै ठाढ़ीं ब्रजनारी—१८२२।

खूझो—संज्ञा पुं. [हिं. खूझा] **एक पेड़।** उ.—खूझो मरबो मोगरो मिलि झूमकहो—२४४५ (३)।

खूटना—क्रि. अ. [सं. खुंडन] **(१) रुकना, बंद होना। (२) चुकना, समाप्त होना।**
क्रि. स. [सं० खुंड] **छेड़ना।**

खूटा—वि. [हिं. खोटा] **बुरा, अरसिक, नीरस।** उ.—प्रभु जू, हौं तौ महा अधर्मी।...... । चुगुल, ज्वारि, निर्दय अपराधी, झूठौ, खोटौ, खूटा—१-१८६।

खूटी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं.खूटना] **(१) रुक गयी,बंद हुई। (२) चुक गयी, समाप्त हो गयी।** उ.—(क) कागज गरे मेघ मसि खूटी सर दौ लागि जरे। सेवक सूर लिखैते आधो पलक कपाटअरे। (ख) तुम्हरेदेस कागर मसि खूटी—१० उ.-८०। **(३) मिट गयी, नष्ट हो गयी, निश्चित न रही।** उ.—सुरबासुर छल बोलवारी गढ़ अत्र अवधि मिति खूटी—२७५०।

खूटे—क्रि. अ. [हिं. खूटना] **समाप्त हो गया, चुक गया।** उ.—चरि मास बरसे जल खूटे हारि समुझ उनमानी। एतेहू पर धार न खंडित इनकी अकथ कहानी—३४५७।

खून—संज्ञा पुं. [फ़ा. खून] **(१) रक्त, लहू। (२) वध, हत्या।**

खूब—वि. [फ़ा. खूब] **अच्छा, भला।**
क्रि. वि.—**अच्छी तरह से।**

खूबसूरत—वि. [फ़ा. खूबसूरत] **सुंदर।**

बसूरती—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ूबसूरती] **सुंदरता।**

खूबानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा ख़ूबानी] **एक मेवा।**

खूबी—संज्ञा स्त्री [फ़ा. ख़ूबी] **(१) भलाई, अच्छाई। (२) विशेषता।**

खूसट—संज्ञा पुं० [सं. कौशिक] **उल्लू, घुग्घू।**
वि.—**जिसे आमोद प्रमोद न रुचै, अरसिक।**

खूसर—वि. [हिं. खूसट] **अरसिक, शुष्क हृदय।**
संज्ञा पुं.—**उल्लू।**

खेई—क्रि. स. [सं. क्षेपण, प्रा. खेवण, हिं. खेना] **नाव चलायी थी।** उ.—मो देखत पाहन तरै, मेरी काठ की नाईं। मैं खेई ही पार कौं, तुम उलटि मँगाई—९-४२।
संज्ञा स्त्री. [देश.] **झाड़-झंखाड़।**

खेकसा, खेखसा—संज्ञा पुं. [देश.] **एक फल।**

खेचर—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) आकाश में विचरनेवाला। (२) ग्रह। (३) तारा। (४) वायु। (५) देवता। (६) पक्षी। (७) बादल। (८) शिव।**

खेट—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) गाँव, खेड़ा। (२) घोड़ा। (३) आखेट, शिकार। (४) एक अस्त्र।**

खेटक—संज्ञा पुं [सं.] **(१) गाँव, खेड़ा। (२) बलदाऊ जी की गदा।**
संज्ञा पुं. [सं. आखेट] **शिकार, मृगया।**

खेटकी—संज्ञा पुं. [सं.] **भड्डर, भड्डरी, भडेरिया।**
संज्ञा पुं. [सं. आखेट] **(१) खिलाड़ी, शिकारी। (२) वधिक।**

खेड़—संज्ञा पुं. [हिं. खेड़ा] **गाँव।** उ.—द्रुम चढ़ि काहे न हेरौ कान्हा, गैयाँ दूरि गईं।..........। छाँड़ि खेड़ सब दौरि जात हैं, बोलौ ज्यौं सिखईं। सूरदास प्रभु-प्रेम समुझि कै, मुरली सुनि आइ गईं—६१२।

खेड़ा—संज्ञा पुं. [सं. खेट] **छोटा गाँव।**

खेड़े—संज्ञा पुं. [हिं. खेड़ा] **छोटा गाँव।**

मुहा.—खेड़े की दूब—**दुर्बल, तुच्छ।** उ.—नंद नँदन ले गए हमारी सब ब्रज कुल की ऊब। सूर स्याम तजि औरै सूझै ज्यों खेड़े की दूब—३३६१।

खेत—संज्ञा पुं. [सं. क्षेत्र] (१) **जोतने-बोने-योग्य धरती।**

मुहा.—उबरै खेत—**सुधर जाय, उद्धार हो जाय। खूब फूले-फले।** उ.—रे मन, राम सौं करि हेत। हरि-भजन की बारि करिलै, उबरै तेरौ खेत—१-३११। खेत करना—**भूमि बराबर करना।** खेत रखना—**रखवाली करना।**

(२) **तैयार फसल।** (३) **युद्धक्षेत्र।** उ.—(क) मूर्छित सुभट हो नहीं राखिये खेत में, जानि यह बात मैं इहाँ ल्यायो—१० उ.-५६। (ख) जैसे सुभट खेत चढ़ि धावै—पृ. ३१६। (४) युद्ध। उ.—तापर बैठ कृष्न संकर्सन जीते हैं सब खेत—५६९ सारा.।

मुहा.—खेत आना—**युद्ध में मारा जाना।** खेत करना—**लड़ना।** खेत छोड़ना—**युद्ध से भागना।** खेत रखना—**युद्ध जीतना।** खेत रहना—**मारे जाना।**

(५) **संसार, राज्य, ऐश्वर्य।** उ.—ऊँचे चढ़ि दसरथ लोचन भरि सुत मुख देखे लेत। रामचन्द्र से पुत्र बिना मैं भूँजब क्यों यह खेत—९-३९। (६) **स्थान, आलय।**

मुहा.—नील को खेत—**ऐसा स्थान जहाँ दोष, पाप और कलंक का भागी बनना पड़े।** उ.—भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत···। सेवा नहिं भगवंत चरन की भवन नील कौ खेत—२-१५।

खेतिहर—संज्ञा पुं. [सं. क्षेत्रधर] **खेती करनेवाला, किसान।** उ.—जन के उपजत दुख किन काटत। जैसे प्रथम असाढ़—आँजु-तृन, खेतिहर निरखि उपाटत—१-१०७।

खेती—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेत + ई (प्रत्य.)] (१) **कृषि, किसानी।** (२) **बोई हुई फसल।**

खेद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **अप्रसन्नता, दुख।** (२) **दुख का प्रसंग।** उ.—करौं मनोरथ पूरन सबके इहि अंतर इक खेद उपायो—पृ. ३४० (९६)। (३) **थकावट, ग्लानि।** (४) **भय, आशंका।** उ.—फूले द्विजसंत-बेद, मिटि गयौ कंस-खेद, गावत बधाई सूर भीतर बहर के—१०-३४।

खेदना—क्रि. स. [सं. खेट] **मारकर भगाना।**

क्रि. स.—**शिकार का पीछा करना।**

खेदा—संज्ञा पुं. [हिं. खेदना] (१) **हिंसक पशुओं को घेरकर निर्दिष्ट स्थान पर लाना।** (२) **शिकार।**

खेदित—वि. [सं.] (१) **खिन्न।** (२) **थका हुआ।**

खेना—क्रि. वि. [सं. क्षेपण, प्रा. खेवण] (१) **नाव चलाना।** (२) **समय काटना, बिता देना।**

खेप—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षेप] (१) **एक बार लादा जाने वाला बोझ।** उ.—आयो घोष बड़ो ब्योपारी। लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज में आनि उतारी। (२) **नाव, गाड़ी की एक बार की यात्रा।**

संज्ञा स्त्री. [सं. आक्षेप] **दोष।**

संज्ञा स्त्री.—**खोटा सिक्का।**

खेपना—क्रि. स. [सं. क्षेपण] **बिताना, (समय) काटना।**

खेम—संज्ञा पुं. [सं. क्षेम] **कुशल।**

खेमटा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) **एक ताल।** (२) **एक गाना या नाच।**

खेमा—संज्ञा पुं. [अ.] **तंबू, डेरा।**

खेरा—संज्ञा पुं. [हिं. खेड़ा] **गाँव।**

खेरे—संज्ञा पुं. [सं. खेट, हिं. खेड़ा] **गाँव।**

मुहा.—खेरे के देवन—**निर्जन स्थान के देवी देवता।** उ.—जो ऊजर खेरे के देवन को पूजै को मानै। तो हम बिनु गोपाल भए ऊधो कठिन प्रीति को जानै—३४०६।

खेरो, खेरौ—संज्ञा पुं. [सं. खेट, हिं. खेड़ा] **गाँव।** उ.—(क) बन मैं जाइ करौ कौतूहल, यह अपनौ है खेरौ—१०-२१६। (ख) इक उपहास त्रास उठि चलते तजि कै अपनो खेरो—१० उ.-१२४। (ग) बिछुरत भेंट देहु ठाढ़े ह्वै निरखौ घोष जन्म को खेरो—२५३२।

खेरौरा—संज्ञा पुं. [हिं. खाँड + औरा (प्रत्य.)] **खाँड या मिसरी का लड्डू, ओला।**

खेल—संज्ञा पुं. [सं. केलि] (१) **मन बहलाने या**

व्यायाम के उद्देश्य से किया गया काम, क्रीड़ा, लीला। उ.—कोटि ब्रह्मांड करत छिन भीतर, हरत बिलम्ब न लावै। ताकौं लिए नंद की रानी नाना खेल खिलावै—१०-१२६।

मुहा.—खेल जम्यो–अच्छी तरह खेल होने लगा। उ.—बटा धरनीडारि दीनौ लै चले ढरकाइ। आपु अपनी घात निरखत खेल जम्यौ बनाइ—१०-२४४।

(२) बात, प्रसंग। (२) साधारण काम। (४) काम-क्रीड़ा। (५) स्वाँग, तमाशा। (६) विचित्र व्यापार।

खेलक—संज्ञा पुं. [हिं. खेलना] खिलाड़ी।

खेलत—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेल खेल कर। उ.—बालापन खेलत हीं खोयौ—१-५७।

मुहा.—खेलत-खात रहे— आनन्द से जीवन बिताया, निश्चिंत रहकर दिन बिताये। उ.—खेलत खात रहे ब्रज भीतर। नान्हीं जाति तनिक धन ईतर —१०४२। (ख) बाद-बिबाद सबै दिन बीते खेलत ही अरु खात—२-२२।

खेलन—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेलने के लिए। उ.—(क) नृप-कन्या तहँ खेलन गई—६-३। (ख) बीरा खाय चले खेलन को मिलिके चारों बीर—१८६सारा.।

संज्ञा पुं.—खेलना, खेल। उ.—अबहीं नैंकु खेलन सीखे हैं, यह जानत सब लोग—७७४।

खेलना—क्रि. अ. [सं. केलि, केलन] (१) मन बहलाने के लिए दौड़ना-कूदना आदि। (२) भोग-विलास। (३) आ बढ़ना।

क्रि. स.—मन-बहलाव के साथ-साथ हार-जीत के विचार से कोई क्रिया करना। (२) जी बहलाना। (३) अभिनय करना।

खेलवाड़, खेलवार—संज्ञा पुं. [हिं. खेल + वार (प्रत्य.)] (१) खिलाड़ी। (२) खेल, तमाशा। (३) विनोद।

खेलवाड़ी, खेलवारी—वि. [हिं. खेलवाड़ + ई प्रत्य)] (१) बहुत खिलाड़ी। (२) बड़ा विनोदी, हँसमुख।

खेला—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेल] विनोद, मन-बहलाव।

खेलाइ—क्रि. स. [हिं. खेलाना (प्रे.)] बहलाना, उलझाये रखना। उ.—नवल आपुन बनी नवेली नागर रही खेलाइ—२६७६।

खेलाड़ी—वि. [हिं. खेल + आड़ी (प्रत्य.)] (१) खेलनेवाला। (२) विनोदप्रिय।

संज्ञा पुं. [हिं. खेल] (१) खेलनेवाला व्यक्ति। (२) तमाशा करनेवाला। (३) ईश्वर।

खेलाना—क्रि. स. [हिं. खेल] (१) खेल में लगाना। (२) खेल में सम्मिलित करना। (३) बहलाना।

खेलार—संज्ञा पुं. [हिं. खेल + आर (प्रत्य.)] खिलाड़ी। उ.—कर लिए डफहि बजावे हो हो सनाक खिलार होरी की—२४०१।

खेलि—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेल-कूद कर। उ.—सूरदास भगवंत भजनु बिनु, चले खेलि फागुन की होरी—१-३०३।

खेलिये—क्रि. अ. [हिं. खेलना] मन बहलाओ, खेलो। उ.—आवहु हिलि मिलि खेलिये—१८१४।

खेलिहौ—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेल खेलना। उ.—साँझ भई घर आवहु प्यारे। दौरत कहीं चोट लगिहै कहुँ, पुनि खेलिहौ सकारे—१०-२२६।

खेली—क्रि. अ, स्त्री. [हिं. खेलना] दौड़ी-धूपी, क्रीड़ा की।

मुहा.—प्रान जात हैं खेली—प्राणों पर आ बनी है, प्राण निकलने ही वाले हैं। उ.—बिरह ताप तन अधिक जरावत जैसे दव द्रुम-बेली। सूरदास प्रभु बेगि मिलावौं, प्रान जात हैं खेली—६-६४।

खेलै—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेलता है, क्रीड़ा करता है। उ.—सब रस कौ रस प्रेम है, (रे) बिषयी खेल सार। तन-मन-धन-जोबन खसै, (रे) तऊ न मानै हार—१-३२५।

खेलौना—संज्ञा पुं. [हिं. खिलौना] खिलौना, खेलने की चीज या साधन।

खेल्यौ—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेलना, खेल करना, खेला। उ.—पुनि जब षष्ठ बरस कौ होइ। इत उत खेल्यौ चाहै सोइ—३-१३।

खेल्योई—क्रि. अ. [हिं. खेलना] खेलना ही, खेल में

लगे रहना ही। उ.—रुहठि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ। सूरदास-प्रभु खेल्यौई चाहत, दाउँ दियौ करि नंद-दुहैया—१०-२४५।

खेवक—संज्ञा पुं. [सं. क्षेपक] केवट, मल्लाह।

खेवनहार—संज्ञा पुं. [हिं. खेना + हार (प्रत्य.)] (१) खेनेवाला, मल्लाह, केवट। उ.—खेवनहार न खेवट मेरैं, अब मो नाव अरी—१-१८५। (२) पार लगानेवाला।

खेवट, खेवटिया—संज्ञा पुं. [हिं. खेना] मल्लाह, माँझी। उ.—दई न जाति खेवट उतराई, चाहत चढ़्यौ जहाज—१-१०८।

खेवना—क्रि. स. [हिं. खेना] नाव चलाना।

खेवरिया—संज्ञा पुं. [हिं. खेवना] खेनेवाला, मल्लाह।

खेवा—संज्ञा पुं. [हिं. खेना] बार, दफा, अवसर। उ.—जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ, सत्य कहत अब होरे। सूरदास प्रभु पहिले खेवा, अब न बनै मुख मोरे—४८८। (२) नाव खेने का किराया। (३) नदी पार करने का काम। (४) लदी हुई नाव।

खेवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेना] (१) नाव चलाना। (२) नाव चलाने की मजदूरी।

खेस—संज्ञा पुं. [देश.] मोटे सूत की चादर।

खेसारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कृसर] एक तरह की मटर।

खेह, खेहर—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षार] धूल, राख, खाक, मिट्टी। उ.—(क) सरवर नीर भरै, भरि उमड़ै, सूखै, खेह उड़ाहि—१-२६५। (ख) भई देह जो खेह करम-बस जनु तट गंगा अनल दढ़ी—६-१७०। (ग) लेहु सँभारि सुखेह देह की को राखै इतने जंजालहिं—८०२।

मुहा.—बैरिन के मुख खेह—स्त्रियों की एक गाली। उ.—तनक तनक कछु खाहु लाल मेरे ज्यों बढ़ि आवै देह। सूर स्याम अब होहु सयाने बैरिन के मुँह खेह—१००४। खेह खाना—(१) धूल फाँकना, व्यर्थ समय खोना। (२) बुरी दशा होना।

खेहु—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेह] धूल, खाक, राख। उ.—जलके हेतु अस्व यह लेहु। पितर तुम्हारे भए जु खेहु। सुरसरि जब भुव ऊपर आवै।...। तबहीं उन सब की गति होइ—९-९।

खैंचना—क्रि. स. [हिं. खींचना] पकड़कर घसीटना।

खैंचि—क्रि. स. [हिं. खैंचना] (१) खींचकर, घसीट कर। (२) लिखकर। उ.—(क) कोउ न समरथ अघ करिबे कौं खैंचि कहत हौं लीकौ—१-१३८। (ख) रेखा खैंचि, बारि बंधनमय, हा रघुबीर कहाँ हौ भाई—९-५९। (३) मंत्र आदि का प्रभाव लौटा ले, प्रभाव दूर कर दे। उ.—इन ग्रोसनि रूसनो करति हौ करिहौ कबहिं कलोलै। कहा दियो पढ़ि सीस स्याम के खैंचि आपनो सो लै—२२७५।

खैए—क्रि. स. [हिं. खाना] खाइए, भोजन कीजिए। उ.—सीतल कुंज कदम की छहियाँ, छाक छहूँ रस खैए—४४५।

खैबे—क्रि. स. [हिं. खाना] खाना-पीना है। उ.—जननि कहति उठो स्याम, जानत जिय रजनि ताम, सूरदास प्रभु कृपालु तुमको कछु खैबे—२३२०।

खैर—संज्ञा पुं. [सं. खदिर] (१) एक तरह का बबूल। (२) कत्था जो पान में डालकर खाया जाता है।

संज्ञा पुं. [देश.] एक छोटा पक्षी जो जमीन से सटाकर अपना झोपड़ा बनाता है।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खैर] क्षेम-कुशल, भलाई।

अव्य.—(१) कुछ परवाह नहीं, कुछ चिंता नहीं। (२) अस्तु, अच्छा।

खैर भैर—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) शोरगुल। (२) हलचल।

खैरा—वि. [हिं. खैर] कत्थे के रंग का, कत्थई।

संज्ञा पुं.—कत्थई रंग का घोड़ा, कबूतर या बगला।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) तबले की एकताली दून। (२) एक छोटी मछली।

खैरात—संज्ञा पुं. [अ. ख़ैरात] दान।

खैरियत—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ख़ैरियत] (१) कुशल। (२) भलाई।

खैरी—वि. स्त्री. [हिं. पुं. खैर] कत्थई रंग की।

संज्ञा स्त्री.—कत्थई रंग की गाय। उ.—पियरी,

मौरी, गैनी, खैरी, कजरी, जेती । दुलही, फुलही, भौंरी, भूरी हाँकि ठिकाई तेती—४४५ ।

खैलर—संज्ञा स्त्री. [सं. क्ष्वेल] मथानी ।

खैला—संज्ञा पुं. [सं. क्ष्वेल] मथानी ।

खैहैं—क्रि. स. बहु. [हिं. खाना] खायँगे, भक्षण करेंगे । उ.—या देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग-गिध खैहैं—१-८६ ।

खैहै—क्रि. स. [हिं. खाना] (१) खायगा, भोजन करेगा । उ.—इतनो भोजन सब वह खैहै—१०१० । (२) (आघात आदि) सहेगा, (प्रभाव आदि) पड़ने देगा, (कसम, गम आदि) खायगा । उ.—(क) नर-बपु धारि नाहिं जन हरि कौं, गम की मार सो खैहै—१-८६ । (ख) बड़े गुरू की बुद्धि पढ़ी वह काहू को न पत्यैहै । एकौ बात मानिहै नाहीं सबकी सौहैं खैहै—१२६३ ।

खैहौं—क्रि. स. [हिं. खाना] खाऊँगा, भक्षण करूँगा । उ.—(क) लागी भूख, चंद मैं खैहौं, देहि देहि रिस करि बिरुझावत—१०-१८८ । (ख) मैया मैं अपने कर खैहौं धरि दे मेरैं हाथ—१०-३१२ ।

खैहौ—क्रि. स. [हिं. खाना] खाओगे, भक्षोगे । उ.—टूटे कंध अरु फूटी नाकनि, कौलौं धौं भुस खैहौ —१-३३१ ।

खोंइचा—संज्ञा पुं. [हिं. खूँट] आँचल, किनारा ।

खोखना—क्रि. अ. [खों खों से अनु.] खाँसना ।

खोंखल—वि. [हिं. खोखला] खोखला ।

खोंगा—संज्ञा पुं. [देश.] रुकावट, अटकाव ।

खोंगाह—संज्ञा पुं. [सं.] पीलापन लिये सफेद घोड़ा ।

खोंच—संज्ञा स्त्री. [सं. कुच] (१) किसी चीज से रगड़ कर शरीर छिलना । (२) किसी चीज से फँसकर कपड़ा फटना ।

संज्ञा पुं. [देश.] (१) मुट्ठी । (२) एक मुट्ठी में जो पदार्थ आ जाय ।

संज्ञा पुं. [सं. क्रौंच] एक तरह का बगुला ।

खोंचा—संज्ञा पुं. [सं. कुच] वह बाँस जिसके सिरे पर लासा लगाकर पक्षियों को फँसाया जाता है ।

खोंचिया—संज्ञा पुं. [हिं. खोंची] भिखारी ।

खोंची—संज्ञा स्त्री. [हिं. खूँट] भीख ।

खोंटना—क्रि. स. [सं. खुंड] (साग आदि वस्तुओं का) ऊपरी भाग नोचना ।

खोंटा—वि. [हिं. खोटा] (१) जो शुद्ध न हो । (२) बुरा ।

खोंडर, खोंड़र—संज्ञा पुं. [सं. कोटर] पेड़ का पोला या खोखला भाग ।

खोंड़हा खोंड़ा—वि. [सं. खुंड] जिसके अंग (विशेषत: आगे के दाँत) टूटे हों ।

खोंतल—संज्ञा पु. [हिं. खोंता] घोंसला, खोंता ।

खोंता, खोंथा—संज्ञा पुं. [हिं. घोसला] चिड़ियों का घोंसला ।

संज्ञा पुं. [हिं. खोंचा] नुकीली वस्तु में फँसने से कपड़े का फटा हुआ भाग ।

खोंपना—क्रि. स. [हिं. खोभना] गड़ाना, चुभाना ।

क्रि. स. [हिं. खोंप] खोंप या खोंटा सिक्का ।

खोंपा—संज्ञा पुं. [हिं. खोंता, खोंथा] वस्त्र का कील आदि से फटा हुआ भाग ।

संज्ञा पुं. [हिं. खोपना] (१) हल की लकड़ी जिसमें फाल लगता है । (२) छाजन का कोना ।

खोंसत—क्रि. स. [हिं. खोसना] अटकाते हैं, घुसेड़ते हैं, खोंसते हैं । उ.—सखी री, मुरली लीजै चोरि । ......। छिन इक घर-भीतर, निसि बासर, धरत न कबहूँ छोरि । कबहूँ कर, कबहूँ अधरनि, कटि कबहू खोंसत जोरि—६५७ ।

खोंसना—क्रि. स. [सं. कोश + ना (प्रत्य.)] (१) किसी वस्तु को सुरक्षित रखने के विचार से जेब, टेंट या अंटी अथवा अन्य किसी वस्तु में घुसेड़ना, अटकाना या लपेटना । (२) धँसाना, चुभाना, घुसेड़ना ।

खोआ—संज्ञा पुं. [हिं. खोवा] दूध से बना एक पदार्थ, खोवा, मावा ।

खोइ—क्रि. स. [हिं. खोना] (१) खोकर, नष्ट करके । उ.—रंक सुदामा कियौ इन्द्र-सम, पांडव-हित कौरव दल खोइ—१-६५ । (२) मिटाकर, दूर करके । उ.—याकैं मारैं हत्या होइ । मनि लै छाँड़ौ सोभा खोइ—१-२८६ ।

यौ.—जात खोइ—खो जाता है, दूर होता है, मिट जाता है। उ.—नंद कौ लाल उठत जब सोइ।……। मुनि मन हरत, जुवति जन केतिक, रति-पति मान जात सब खोइ—१०-२१०।

खोइया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोई] (१) ऊख के नीरस डंठल। (२) धान की खील, लाई।

खोइसि—क्रि. स. [हिं. खोना] खो दिया, नष्ट कर दिया। उ.—रे मन, जनम अकारथ खोइसि। हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्हीं, उदर भरे परि सोइसि—१-३३३।

खोई—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षुद्र] (१) ऊखदंडों के वे डंठल जो रस पेल लिये जाने पर कोल्हू में रह जाते हैं, छोई। उ.—(क) रस लै लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई—१-६६। (ख) हरि-सरूप सब घट यौं जान्यौ। ऊख माहिं ज्यौं रस है सान्यौ। खोई तन, रस आतम-सार। ऐसी विधि जान्यौ निरधार—३-१३। (२) भुने हुए धान की खील, लाई।

क्रि. स. [हिं. खोना] खो दिया, गवाँ दिया। उ.—जो रस सिव सनकादिक दुर्लभ सो रस बैठे खोई—२८८१।

खोऊँ—क्रि. स. [हिं. खोना] (१) खोऊँ, गवाँऊँ। (२) बिताऊँ। उ.—कछु दिन जैसे तैसे खोऊँ दूरि करौं पुनि डर कौं—७३८।

खोए—क्रि. स. [हिं. खोना] व्यर्थ कर दिये, बिता दिये, नष्ट कर दिये। उ.—किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए—१-५२।

खोखर—संज्ञा पुं. [देश.] एक राग जो दिन के पहले पहर में गाया जाता है।

खोखला—वि. [हिं. खुक्ख+ला (प्रत्य.)] (१) जिस वस्तु के भीतर कुछ न हो, जो वस्तु पोली हो। (२) जिस बात या कथन में कुछ सार न हो।

संज्ञा पुं.—(१) पोली या खाली जगह। (२) बड़ा छेद।

खोखा—संज्ञा पुं. [हिं. खुक्ख] वह हुंडी जिसका रुपया चुका दिया गया हो।

संज्ञा पुं. [बँ. खोका] बालक, लड़का।

खोचकिल—संज्ञा पुं. [देश.] घोंसला, खोंता।

खोचन—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोंच] (बातों का) घाव, आघात, चोट। उ.—धृग वै मात पिता धृग भ्राता दंत रहत मोहिं खोचन। सूर स्याम मन तुमहिं लुभानों हरद चून रँग रोचन—१५१७।

खोज—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोजना] (१) चिह्न, निशान, पता। उ.—(क) हम तिहुँ लोक माहिं फिरि आए। अस्व खोज कतहुँ नाहिं पाए—६-६। (ख) राखौं नहिं काहू सब मारौं। ब्रज गोकुल को खोज निवारौं—१०४३।

मुहा.—खोज मिटाना—ऐसा नाश करना कि चिह्न तक न रहे।

(२) अनुसंधान, शोध। (३) पता पाना, ढूँढ़ना, तलाश। उ.—ये सब मेरेहि खोज परी। मैं तो स्याम मिली नहिं नीके आजु रही निसि संग हरी—१६१७।

मुहा.—परयौ है खोज हमारे—हमारी खोज में है, हमारे पीछे पड़ा है। उ.—(क) नन्द घरनि यह कहति पुकारे। कोउ बरखत, कोउ अगिनि जरावत दई परयौ है खोज हमारे—५६५। (ख) स्वर्गहि गए कंस अपराधी परयौ हमारे खोज। दृष्टि से टारि ध्यानहु ते टारत वाऊ सबको चोज—३३४८।

(४) पहिए या पैर का चिह्न।

मुहा.—खोज मारना—पृथ्वी पर पड़े चिह्न इस तरह नष्ट करना जिससे उनके सहारे कोई कुछ पता न लगा सके।

खोजक—वि. [हिं. खोज+ क (प्रत्य)] ढूँढ़नेवाला।

खोजत—क्रि. स. [सं. खुज=चोराना] खोजते या ढूँढ़ते हैं। उ.—(क) खोजत जुग गए बीति, नाल कौ अन्त न पायौ—२-३६। (ख) खोजत नाल किती जुग गयौ—२-३७।

खोजना—क्रि. स. [सं.खुज=चोराना] ढूढ़ना, तलाश करना।

खोजमिटा—वि. [हिं. खोज+मिटना] जिसका नाम-निशान मिट जाय।

खोजवाना—क्रि. स. [हिं. खोजना] खोज कराना, ढुँढ़वाना।

खोजा—संज्ञा पुं. [फा. ख़्वाजः] (१) **नपुंसक व्यक्ति। (२) सेवक। (३) सरदार।**

खोजाना—क्रि. स. [हिं. खोजना] **खोज कराना।**

खोजि—क्रि. स. [हिं. खोजना] **खोजकर, ढूँढ़कर।** उ.—कै प्रभु हारि मानि कै बैठो, कै करौ बिरद सही। सूर पतित जौ झूठ कहत है, देखौ खोजि बही—१-१३।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खोज] **चिह्न, निशान, पता।** उ.—राखौं नहिं काहू सब मारौं। ब्रज गोकुल को खोजि (खोजु) निवारौं—१०४३।

खोजी—वि. [हिं. खोज + ई प्रत्य.)] **ढूँढ़नेवाला।**

खोजु—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोज] **चिह्न, निशान, पता।** उ.—छिन मैं बरषि प्रलय जल पाटौं खोजु रहै नहिं चीन्हो—६४५।

खोजो—क्रि. स. [हिं. खोजना] **पता लगाओ, खोज करो।** उ.—जद्यपि सूर प्रताप स्याम कौ दानव दूरि दुरात। तद्यपि भजन भाव नहिं ब्रज बिनु खोजो दीपै सात—३३५१।

खोट—संज्ञा स्त्री. [सं. खोट=खोंड़ा (दूषित)] (१) **दोष, ऐब, बुराई।** उ.—(क) पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यो न कोऊ खोट—१-१३२। (ख) सूरदास पारसके परसैं मिटति लोह की खोट—१-२३२। (२) **अच्छी चीज में बुरी का मिलाया जाना।** (३) **बुरी चीज जो अच्छी में मिलायी जाय।**

वि.—**बुरा, दुष्ट।** उ.—हरि पटतर दै हमहिं लजावत सकुच नहिं आवत खोट कवि.—१२६५।

खोटत, खोटता—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोट] **बुराई, खोटापन।** उ.—अमरापति चरनन पर लोटत। रही नहीं मनमें कछु खोटत—१०६६।

खोटनि—सवि. वि. [सं. खोट + नि (प्रत्य.)] **बुरों को, दुष्टों या पापियों को।** उ.—ऐसौ अँध अधम, अबिबेकी, खोटनि करत खरे—१-१६८।

खोटपन—संज्ञा पुं. [हिं. खोटा + पन] **खोटाई।**

खोटा—वि. पुं. [हिं. खोट] (१) **बुरा, ऐब से युक्त। (२) जो असली या शुद्ध न हो।**

मुहा.—खोटा-खरा—**बुरा-भला।** खोटा खाना—**अनुचित उपायों से कमाकर खाना।** खोटा-खरा कहना—**बहुत डाँटना-फटकारना।**

खोटाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटा+ई (प्रत्य.)] (१) **बुराई, दुष्टता। (२) छल, कपट। (३) दोष, ऐब।**

खोटाना—क्रि. अ. [हिं. खुटाना] **समाप्त होना।**

खोटापन—संज्ञा पुं. [हिं खोटा + पन (प्रत्य.)] **खोटाई, दोष।**

खोटी—वि. स्त्री. [हिं. पुं. खोटा] (१) **अनुचित, दूषित।** उ.—(क) जो चाहौ सो लेहु तुरत हीं, छाँड़ौ यह मति खोटी—१०-१६३। (ख) खोटी करनी जाहि मेरे की सोई करे उपादि—११३२। (२) **बुरी, दुष्ट प्रकृति या स्वभाववाली।** उ.—(क) बन भीतर जुवतिन कौं रोकत हम खोटी तुम्हरे ये हाल—१०१२। (ख) जे छोटी तेई हैं खोटी साजति माजति जोरी—१६२१।

खोटे—वि. [हिं. खोटा] (१) **बुरे, दुष्ट, जिसमें कोई दोष हो, दूषित, 'खरा' का उलटा।** उ.—हरि कौ नाम, दाम खोटे लौं, झकि झकि डारि दयौ—१-६४। (ख) सूरदास प्रभु वै अति खोटे यह उनहीं ते अति ही खोटी—१४७६। (ग) परम सुसील सुलच्छन नारी तुमहिं त्रिभंगी खोटे हौ—२०६१। (घ) सबै खोटे मधुबन के लोग—३०५२। (२) **छल कपटयुक्त।** उ.—अंजलि के जल ज्यौं तन छीजत खोटे कपट तिलक अरु मालहिं—१-७४।

खोटो, खोटौ—वि. [हिं. खोटा] **दूषित, बुरा, दुष्ट।** उ.—(क) चुगुल, ज्वारि, निर्दय, अपराधी, झूठौ, खोटो-खूटौ—१-१८६। (ख) सूरदास गथ खोटो काते पारखि दोष धरे—पृ.३३१।

मुहा.—खोटौ खायौ है—**बेईमानी या बुरी तरह से कमाकर खाया है।** उ.—फाटक दै कै हाटक माँगत भोरो निपट सुधारी। धुर ही ते खोटौ खायौ है, लिए फिरत सिर भारी—३३४०।

खोड़—संज्ञा पुं. [सं. कोटर] **छेद जो लकड़ी सड़ने पर वृक्ष में हो जाता है।**

संज्ञा स्त्री. [हिं. खोटा] **दैवी या अज्ञात शक्तियों का कोप।**

खोड़रा—संज्ञा पुं. [सं. कोटर] छेद जो सड़ने पर वृत्त की लकड़ी में हो जाता है।

खोद—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख़ोद] सैनिकों का टोप।
संज्ञा पुं. [हिं. खोदना] पूछ-ताँछ।

खोदई—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

खोदना—क्रि. स. [सं. खुद=भेदन करना] (१) मिट्टी हटाना, गड्हा करना, खनना। (२) उखाड़ना, गिराना। (३) नक्काशी करना। (४) छेड़-छाड़ करना। (५) उसकाना, उत्तेजित करना।

खोदनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोदना] खोदने की सींक या कील।

खोद-विनोद—संज्ञा पुं. [हिं. खोद+विनोद (अनु.)] बहुत जाँच-पड़ताल।

खोदवाना—क्रि. स. [हिं. खोदना] खोदने का काम कराना।

खोदाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोदना] (१) खोदने की क्रिया। (२) खोदने की मजदूरी।

खोदि—क्रि. स. [हिं. खोदना] खोदकर, खनकर। उ.—कहौ तौ मृत्युहिं मारि डारि कै खोदि पतालहिं पाटौं—६-१४८।

खोदैं—क्रि. स. [हिं. खोदना] खोदने से, गड्ढा करने से। उ.—आज्ञा होइ जाहिं पाताल । जाहु, तिन्हैं भाष्यौ भूपाल। तिनके खोदैं सागर भए—६-६।

खोना—क्रि. स. [सं. क्षेपण, प्रा. खेवण] (१) गँवाना, जाने देना। (२) छोड़ आना। (३) खराब या नष्ट करना, बिगाड़ना। उ.—सूर स्याम गारी कहा दीजै इही बुद्धि है घर खोना—१०३७।
क्रि. अ.—किसी वस्तु का छूट या निकल जाना।
मुहा.—खोया जाना—हक्का-बक्का होना।

खोन्चा—संज्ञा पुं. [फ़ा. ख्वान्चा] बड़ा थाल जिसमें बेचने के लिए चीजें सजायी जायँ।

खोपड़ा—संज्ञा पुं. [सं.खर्पर] (१) सिर की हड्डी। (२) सिर। (३) नारियल। (४) गिरी। (५) खप्पर जो भिखारियों के पास रहता है।

खोपड़ी—संज्ञा स्त्री [हिं. खोपड़ा] (१) सिर। (२) सिर की हड्डी।
मुहा.—अंधी (औंधी) खोपड़ी—मूर्ख। खोपड़ी खाना—बहुत बात करके परेशान करना। खोपड़ी चटकना—धूप या पीड़ा से सिर दुखना। खोपड़ी खुजलाना—मार खाने की इच्छा होना।

खोपरा—संज्ञा पुं. [हिं. खोपड़ा] (१) गरी का गोला, गरी। उ.—खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख-रस सीरा—१०-२११। (२) नारियल।

खोपरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोपड़ी] (१) सिर की हड्डी, (२) सिर।

खोपा—संज्ञा पुं. [हिं. खोपड़ा] (१) छाजन या छप्पर का कोना। (२) जूड़ा बँधी हुई वेणी।

खोभरा—संज्ञा पुं. [हिं. खुभना] (१) गड़ने या ठोकर लगनेवाली चीज। (२) कूड़ा-करकट।

खोम—संज्ञा पुं. [अ. कौम] समूह, झुंड।
संज्ञा पुं. [सं.क्षोम] किले का बुर्ज।

खोया—संज्ञा पुं. [सं. क्षुद्र] गरमाकर गाढ़ा किया हुआ दूध, मावा, खोआ।
क्रि. स.—'खोना' क्रिया का भूतकाल।

खोयौ—क्रि. स. [हिं. खोना] 'खोना' के भूत. 'खोया' का व्रज. प्र., व्यर्थ कर दिया, गँवा दिया। उ.—(क) नारद मगन भए माया मैं, ज्ञान-बुद्धि-बल खोयो—१-४३। (ख) चोरी करी, राजहूँ खोयौ, अल्प मृत्यु तब आइ तुलानी—६-१६०।
मुहा.—दई को खोयो—स्त्रियों की एक गाली। उ.—सूर इते पर समुझत नाहीं निपट दई को खोयो—३०२१।

खोर—वि. [सं. खोर या खोट] लँगड़ा, लूला, अंगभंग। उ.—प्रभु मोहिं राखिये इहि ठौर।""""। पाँच पति हित हारि बैठे, राखैं हित मोर। धनुष-बान सिरान कैधौं, गरुड़ बाहन खोर—१-२५३।
संज्ञा पुं. [हिं. खोट] दोष, ऐब। उ.—लखहिं साँचे नर को खोर—१२-३।
संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर] (१) तंग या सँकरी गली, कूचा। उ.—लूट लूट दधि खात साँवरो जहाँ साँकरी खोर—८६४ सारा. (२) चारा देने की नाँद।
संज्ञा स्त्री. [सं. क्षालन, हिं. खोरना] नहान, स्नान।

खोरन—क्रि. अ. [हिं. खोरना] नहाने के लिए। उ.—आतुर चली जमुन-जल खोरन काहू संग न लाई —२१७०।

खोरना—क्रि. अ. [सं. क्षालन] नहाना, स्नान करना।
क्रि. स. [हिं. खोलना] खोलना, प्रकट करना, बताना।

खोरा—वि. [सं. खोर या खोट] (१) लँगड़ा-लूला, अंग-भंग। (२) बुरा, खोटा।

खोराक—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.](१) भोजन की सामग्री। (२) भोजन की मात्रा।

खोराकी—संज्ञा स्त्री [फ़ा. खोराक+ई (प्रत्य.)] खोराक के लिए दिया जानेवाला धन।
वि.—जिसकी खोराक बहुत अच्छी हो।

खोरि—संज्ञा स्त्री. [सं. खोट या खोर] (१) ऐब, दोष, बुराई। उ.—(क) नृपति कह्यौ मारग सम आह। चलत न क्यौं तुम सूधै राह। कह्यौ कहारनि, हमैं न खोरि। नयो कहार चलत पग भोरि—५-४। (ख) मेरे नैनन ही सब खोरि।स्याम बदन छबि निरखि जु अटके बहुरे नहीं बहोरि—पृ. ३३३। (२) लँगड़ी, लूली, अंगभंग।
संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर, खोर] तंग या सँकरी गली। उ.—(क) भीर भई बहु खोरि जहाँ तहाँ —१०३७।
संज्ञा स्त्री. [सं. क्षौर या क्षुर] चन्दन का आड़ा टीका।

खोरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोरा] (१) पानी पीने का छोटा बरतन। (२) छोटी बिंदियाँ जो माथे पर लगायी जाती हैं।

खोरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खुर, खोरी] तंग गली। उ.—(क) सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख, भजे कुंज की खोरी—१०-२६७। (ख) प्रथम करी हरि माखन चोरी। ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे हरि ब्रज-खोरी—१०-२६८। (ग) जाकर हेतु निरंतर लीये डोलत ब्रज की खोरी—१०उ.-१५।
संज्ञा स्त्री. [सं. क्षौर या क्षुर] मस्तक पर लगा चंदन का आड़ा या धनुषाकार टीका। उ.—सुभग कलेबर कुमकुम खोरी—३३४५।

खोरैं—क्रि. अ. [सं. क्षालन, हिं. खोरना] स्नान करती हैं, नहाती हैं, स्नान करें, नहायें। उ.—(क) रवि सौं बिनय करति कर जोरे। प्रभु अंतरजामी, यह जानी, हम कारन जल खोरैं—७६८। (ख) ब्रज-बनिता रवि कौं कर जोरैं। सीत-भीति नहिं छहौं रितु, त्रिविधि काल जल खोरैं—७८२। (ग) कह्यौ, चलौ जमुना-जल खोरैं—७६६।

खोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु के ऊपर से चढ़ाया हुआ आवरण, गिलाफ। (२) मोटी चादर जो ओढ़ने के काम आती है।

खोलत—क्रि. स. [हिं. 'खुलना' का स. 'खोलना'] मिले या जुड़े भागों को अलग करता है। उ.—तुम बिनु भूलोइ भूलो डोलत। लालच लागी कोटि देवनि के, फिरत कपाटनि खोलत—१-१७७।

खोलना—क्रि. स. [सं. खुड, खुल=भेदन] (१) जुड़े हुए भागों को अलग करना। (२) बँधन तोड़ना। (३) बँधी हुई वस्तु अलग करना। (४) नया कार्य आरम्भ करना। (५) दैनिक कार्य आरम्भ करना। (६) सवारी चलाना। (७) गुप्त भेद प्रकट करना। (८) मन की बात कहना।

खोलि—क्रि. स. [हिं. खोलना] (१) (गुप्त बात को) प्रकट या स्पष्ट करके। उ.—सूर बिनती करै, सुनहु नँद-नंद तुम, कहा कहौं खोलि कै अँतरजामी —१-२१४। (२) बोलो, कहो। उ.—मुख तौ खोलि सुनौं तेरी बानी भली-बुरी कैसी घर कैहै —११६२।

खोलिया—संज्ञा स्त्री. [देश.] बढ़ई का एक औजार, रुखानी।

खोली—क्रि. स. [हिं. खोलना] बन्धनमुक्त कर दी, उन्नति का आरम्भ कर दिया, उत्थान का द्वार खोल दिया। उ.—सोच निवार करो मन आनन्द मानौ भाग्यदशा बिधि खोली—१० उ.-१०६।
संज्ञा स्त्री. [फ़ा. खोल] तकिए, लिहाफ या गद्दे का गिलाफ अथवा खोल।

खोले—क्रि. स. [हिं. खोलना] खोल दिये । उ.—सुरपतिहिं बोलि रघुबीर बोले । अमृत की वृष्टि रन-खेत ऊपर करौ, सुनत तिन अमिय भंडार खोले—९-१६३ ।

खोलै—क्रि. स. [हिं. खोलना] खोलती है। उ.-संदूकन भरि धरे ते न खोलै री—१५४६ ।

खोलौ—क्रि. स. [हिं. खोलना] बंधन-मुक्त करो, खोल दो। उ.—जागे हो जु रावरे है नैना क्यों न खोलौ—१९५९ ।

खोवत—क्रि. स. [हिं. खोना] खोते या नष्ट करते हैं। उ.—तन-धन-जोबन ता हित खोवत, नरक की पाछैं बात—९.१२४ ।

खोवन—वि. [हिं. खोना] खोनेवाला, नाश करने वाला। उ.—सूरदास रावन कुल-खोवन, सोवत सिंह जगायौ—९-८८ ।

खोवहु—क्रि. स. [हिं. खोना] खोना, गँवाना, हाथ से निकल जाने देना। उ.—(क) बिनु रति-काल नगन नहिं होवहु। अरु मम मैंढनि कौं मति खोवहु—९-२। (ख) बृथा जनम जग मैं जिनि खोवहु ह्याँ अपनौ नहिं कोई—७६५ ।

खोवनहारी—वि. [हिं. खोना + हारी (प्रत्य.) खोने वाली, नष्ट करनेवाली, मिटानेवाली । उ.—सुता बड़े बृषभानु की कुल खोवनहारी—१२४५ ।

खोवा—संज्ञा पुं. [सं. क्षुद्र, हिं. खोया] गरमाकर गाढ़ा किया हुआ दूध, खोया, मावा। उ.—खोवा-मय मधुर मिठाई। सो देखत अति रुचि पाई—१०-१८३।

खोवै—क्रि. स. [हिं. खोना] खोता है, गँवाता है। उ.—(क) निद्रा-बस जो कबहूँ सोवै। मिलि सो अविद्या सुधि-बुधि खोवै—४-१२ । (ख) देखिकै नारि मोहित जो होवै। आपनौ मूल या विधि सो खोवै—८-११ । (ग) कबहुँ अजिर ठाढ़े ह्वै ऐसे निसि खोवै—२४७४ ।

खोह—संज्ञा स्त्री. [सं. गोह] (१) गुफा, कंदरा। (२) पहाड़ी गहरा गड्ढा। (३) दो पहाड़ों के बीच का तंग रास्ता, दर्रा।

खोहनि—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोह + नि (प्रत्य.)] खोह में, निर्जन स्थान में, एकांत में। उ.—सूर सुबस घर छाँड़ि हमारो क्यों रति मानत खोहनि—२०१४ ।

खोहि—संज्ञा स्त्री. [हिं. खेह] धूल, खाक। उ.—सूर सुवस्तुहिं छाँड़ि अभागे हमहिं बतावत खोहि—३०२० ।

खोही—संज्ञा स्त्री. [सं. खोलक] (१) पत्तों की छतरी। (२) वर्षा या शीत से बचने के लिए सिर पर लपेटा हुआ कंबल आदि। (३) वस्त्र का सिर या कंधे पर पड़ा हुआ भाग। उ.—सुरंग केसरि खौरि कुसुम की दाम अभिराम कंठ कनक की दुलरी झलकत पीतांबर की खोही—८३८ ।

संज्ञा स्त्री. [हिं. खेह] धूल, खाक।

खौं—संज्ञा स्त्री. [सं. खन] (१) गड्ढा। (२) गहरा गढ़ा जिसमें अन्न जमा किया जाय। (३) वृक्ष का वह भाग जहाँ टहनी या पत्ती निकलती है।

खौंचा—संज्ञा पुं. [सं. षट् + च] साढ़े छः का पहाड़ा।

खौंट—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोंटना] (१) नोचने-खसोटने की क्रिया। (२) नोचने-खसोटने का शरीर पर चिह्न, खरोंट।

खौंड़ा—संज्ञा पुं. [सं. खन या खात] (१) गड्ढा। (२) अनाज रखने का गड्ढा।

खौफ—संज्ञा पुं. [अ.] डर, भय।

खौर—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षौर या क्षुर] (१) चंदन का आड़ा तिलक। उ.—(क) और बेस को कहै बरनि सब अंग अंग केसरि खौर—३०३१। (ख) खौर केसरि अति विराजत तिलक मृगमद को दियौ—१० उ.-२४। (२) एक गहना जो स्त्रियाँ माथे पर पहनती हैं।

खौरना—क्रि. स. [हिं. खौर] तिलक लगाना, चंदन का टीका लगाना।

खौरहा—वि. [हिं. खौरा + हा (प्रत्य.)] (१) जिस (पशु) के बाल झड़ गये हों। (२) जिस (पशु) को बाल झाड़ने की खुजली का रोग हो।

खौरा—संज्ञा पुं. [सं. क्षौर] भयानक खुजली जिसमें पशुओं के बाल झड़ जाते हैं।

वि.—जिसे यह रोग हो।

खौरि—संज्ञा स्त्री. [सं. क्षौर या क्षुर, हिं. खौर] **मस्तक पर लगा हुआ चन्दन का आड़ा तिलक।** उ.—(क) फिरत बननि बृन्दावन, बंसीबट, सँकेतबट, नागर कटि काछे, खौरि केसरि की किए—४६०। (ख) चन्दन खौरि, काछनी काछे, देखत ही मन भावत—४७६। (ग) चंदन की खौरि किये नटवर काछे काछनी बनाइ री—८८१।

खौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. खोपड़ी] **कपाल, खोपड़ी।**

संज्ञा स्त्री. [देश.] **राख।**

संज्ञा स्त्री. [सं. क्षौर या क्षुर, हिं. खौर] **मस्तक पर लगा चंदन का आड़ा या धनुषाकार तिलक।** उ.—बरन बरन सिरपाग चौतनी काछि कटि छबि चन्दन खौरी की—२४०२।

खौरु—संज्ञा पुं. [देश.] **बैल या साँड़ की बोली।**

खौलना—क्रि. स. [सं. क्ष्वेल] **(१) तरल पदार्थ का उबलना। (२) क्रोधित होना।**

खौलाना—क्रि. स. [हिं. खौलना] **उबालना।**

खौहड़, खौहा—वि. [हिं. खाना] **(१) बहुत खानेवाला। (२) दूसरे की कमाई खानेवाला।**

ख्यात—वि. [सं.] **प्रसिद्ध।**

ख्याति—संज्ञा स्त्री. [सं.] **प्रसिद्धि, नामवरी।**

ख्याल—संज्ञा पुं. [अ.] **(१) ध्यान।** उ.—औरे कहति और कहि आवति मन मोहन के परी ख्याल—११८३।

मुहा.—ख्याल करना—**याद करना।** ख्याल (पर चढ़ना)—**याद आना।** ख्याल रखना—**ध्यान रखना, देखभाल करते रहना।** ख्याल रहना—**याद बनी रहना।** ख्याल से उतरना (उतर जाना)—**भूल जाना।** ख्याल परी हैं—**पीछे पड़ गयी हैं, परेशान करने पर उतारू हैं।** उ.—राधा मन में यहै बिचारति। ये सब मेरे ख्याल परी हैं अब ही बातन लै निरुवारति—१३०८।

(२) अनुमान, अटकल, अंदाज।

मुहा.—ख्याल बाँधना—**अनुमान लगाना।**

(३) विचार, सम्मति। (४) आदर।

मुहा.—ख्याल करना—**रियायत करना।** ख्याल में लाना—**(१) रियायत करना। (२) ध्यान देने योग्य समझना।**

(५) एक विशेष गान। (६) लावनी गाने का एक ढंग।

संज्ञा पुं. [हिं. खेल] **खेल, दिल्लगी।** (उ०—(क) आनंदित ग्वाल-बाल करत बिनोद ख्याल, भुज भरि भरि धरि अंकम महर के—१०-३०। (ख) सूर प्रभु नंदलाल, मार्‌यौ दनुज ख्याल, मेटि जंजाल ब्रज जन उबार्‌यौ—१०-६२। (ग) कूदि पड़े चढ़ि कदम तैं, तुम खेलत यह ख्याल—५८६। (घ) हरि छबि अंग नट के ख्याल—पृ. ३२८। (ङ) अंतर्धान भये रचि ख्याल—१८११। **(२) अनुचित करनी, करतूत, अद्भुत चरित्र।** उ.—(क) मोकौं जनि बरजौ जुवती कोउ, देखौ हरि के ख्याल—३४५। (ख) ऐसे ख्याल करे इन बहु बिधि कहत जु आवै लाज—७४२ सारा.। **(३) लीला, माया, क्रीड़ा।** उ.—(क) यह सुनि रुकमिनि भई बेहाल। जानि परयौ नहिं हरि कौ ख्याल—१० उ.-३२। (ख) सुनहु सूर वह करनि कहनि यह, ऐसे प्रभु के ख्याल—५६८। (ग) जीव परयौ या ख्याल में अरु गये दसादस—११७७।

ख्याला—संज्ञा पुं [हिं. खेल, ख्याल] **(१) खेल, हँसी, क्रीड़ा, दिल्लगी।** उ.—चकृत भये नन्द सब महर चकृत भये चकृत नर नारि करत ख्याला—६४५। **(२) लीला, माया। (३) करनी, करतूत, अद्भुत या अनुचित कृत्य।** उ.—(क) नन्द महर की कानि करत हैं छाँड़ि देहु ऐसे ख्याला—१०३४। (ख) जोबन रूप देखि ललचाने अब हीं ते ये ख्याला—१०३८।

ख्याली—वि. [हिं. ख्याल] **(१) कल्पित, अनुमित। (२) सनकी, बहमी।**

वि. [हिं. खेल] **खिलाड़ी, कौतुकी।** उ.—साँझ गये कहि आइहैं मोसौं री आली। अनत बिरमि कतहूँ रहे बहु नायक ख्याली—२१७८।

ख्वाजा—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **(१) मालिक। (२) सरदार। (३) फकीर। (४) नपुंसक सेवक।**

खवान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] थाल, परात।

खवाब—संज्ञा पुं [फा.] (१) नींद। (२) स्वप्न।

मुहा.—खवाब होना (हो जाना)—पुन: प्राप्त न होना।

खवाय—क्रि. स. [हिं. खिलाना] खिलाकर। उ.—छल कियौ पांडवनि कौरव कपट-पासा ढरन। खवाय बिष, गृह लाय दीन्हौ, तउ न पाए जरन—१-२०२।

खवार—वि. [फा.] (१) नष्ट, बरबाद। (२) उपेक्षित।

ग

ग—कवर्ग का तीसरा व्यंजन। इसका प्रयत्न अघोष अल्पप्राण है। इसका उच्चारण-स्थान कंठ है।

गंग—संज्ञा स्त्री. [सं. गंगा] गंगा नदी। उ.—गंग प्रवाह माहिं जो न्हाइ। सो पवित्र ह्वै सुरपुर जाइ —६-६।

संज्ञा पुं.—(१) एक मात्रिक छन्द। (२) अकबर का दरबारी एक कवि।

गंगई—संज्ञा स्त्री. [अनु. गें गें] एक छोटी चिड़िया।

गंगकुरिया—संज्ञा स्त्री. [सं. गंगा + कूल] एक तरह की हल्दी।

गंगबरार—संज्ञा पुं. [हिं. गंगा + फा. बरार = बाहर या ऊपर लाया हुआ] वह भूमि जो नदी की धार या बाढ़ के हटने पर निकल आती है।

गँगरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक तरह की कपास।

गँगवा—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

गंगसुत—संज्ञा पुं. [सं.] भीष्म।

गंगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] भारत की सर्वप्रधान नदी।

मुहा.—गंगा उठाना—गंगा जल छूकर कसम खाना। गंगा पार करना—देश से निकालना। गंगा नहाना—छुट्टी पाना। गंगा दुहाई—गंगा की कसम। गंगा कैसो पानी—बहुत पवित्र और निर्मल, शुद्ध आचरणवाला। उ.—तुम जो कहति हौ, मेरौ कन्हैया गंगा कैसो पानी। बाहिर तरुन किसोर बयस बर,बाट घाट का दानी—१०-३११।

गंगागति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) मृत्यु। (२) मोक्ष।

गंगाचिल्ली—संज्ञा. स्त्री. [सं.] एक जलपक्षी।

गंगाजमनी—वि. [हिं. गंगा + जमुना] (१) मिला-जुला, दुरंगा। (२) सुनहले-रुपहले तारों का बना हुआ। (३) काला-सफेद।

संज्ञा स्त्री.—(१) कान का एक गहना। (२) अरहर-उर्द की मिली-जुली दाल। (३) सुनहले-रुपहले तार का काम।

गंगाजल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गंगा का जल। (२) एक महीन कपड़ा।

गंगाजली—संज्ञा स्त्री. [सं. गंगाजल] (१) सुराही या पात्र जिसमें गंगाजल भरा हो।

मुहा.—गंगाजली उठाना—गंगाजल से भरा पात्र हाथ में लेकर कसम खाना।

(२) धातु की सुराही।

संज्ञा पुं.—एक तरह का गेहूँ।

गंगाजाल—संज्ञा पुं. [सं. गंगा + जाल] मछुओं का जाल जो घास से बनता है।

गंगाद्वार—संज्ञा पुं. [सं.] हरद्वार।

गंगाधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिवजी। (२) एक औषध। (३) एक वर्णवृत्त।

गंगाधारी—संज्ञा पुं. [सं. गंगाधर] शिव, महादेव। उ.—चन्द्र चूड़, सिखि-चन्द सरोरुह, जमुना प्रिय, गंगाधारी—१०-१७१।

गंगापथ—संज्ञा पुं. [सं.] आकाश।

गंगापुत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तरह के ब्राह्मण जो घाट पर दान लेते हैं। (२) एक वर्णसंकर जाति।

गंगापूजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] विवाह के बाद की एक रीति।

गंगायात्रा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गंगा किनारे मरने जाना। (२) मृत्यु।

गंगाल—संज्ञा पुं. [सं. गंगा + आलय] पानी रखने का बड़ा कंडाल।

गंगाला—संज्ञा पुं. [सं. गंगा + आलय] गंगा का कछार।

गंगालाभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गंगा-प्राप्ति, गंगा-किनारे मृत्यु। (२) मृत्यु।

गंगावतरण—संज्ञा पुं. [सं.] गंगा का स्वर्ग से पृथ्वी पर आना।

गंगासागर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तीर्थ जहाँ गंगा समुद्र में गिरती है। उ.—यह तनु त्यागि मिलन यों बनिहै गंगा सागर संग—२६०१। (२) एक तरह की मोटी जनानी धोती। (३) बड़ी टोंटीदार झारी।

गंगासुत—संज्ञा पुं. [सं.] भीष्म।

गंगेटी—संज्ञा स्त्री. [सं. गंगाटी] एक बूटी।

गंगेय—संज्ञा पुं. [सं गांगेय] गंगा-पुत्र भीष्म।

गंगेरन—संज्ञा स्त्री. [सं. गांगेरुकी] एक पौधा।

गंगेरुवा—संज्ञा पुं. [सं. गांगेरुक] एक पहाड़ी पेड़।

गंगेरू—संज्ञा स्त्री. [हिं. गँगेरन] एक पौधा।

गंगेश—संज्ञा पुं. [सं.] महादेव।

गंगोझ—संज्ञा पुं. [सं. गंगोदक] गंगा-जल।

गंगोत्तरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गंगावतार] हिमालय का एक तीर्थ जहाँ गंगा ऊपर से गिरती है।

गंगोदक—संज्ञा पुं. [सं. गंगा + उदक] (१) गंगा-जल। (२) एक वर्णवृत्त।

गंगोल—संज्ञा पुं. [सं.] एक मणि, गोमेदक।

गंगौटी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गंगा + मिट्टी] गंगा किनारे की बालू।

गंगौलिया—संज्ञा पुं. [हिं. गंगाल] एक तरह का खट्टा नीबू।

गंज—संज्ञा पुं. [सं. कंज या खंज] एक रोग जिसमें सर के बाल गिर जाते हैं।

संज्ञा स्त्री०—(१) खजाना। (२) ढेर, राशि। (३) समूह, झुंड। (४) भंडार। (५) हाट, बाजार। (६) बनियों की आबादी। (७) मद्यपात्र। (८) मदिरालय।

संज्ञा पुं. [सं.] तिरस्कार।

संज्ञा स्त्री. [देश.] एक लता।

गंजन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अवज्ञा, तिरस्कार, निरादर। (२) नाश, हानि। उ.—(क) वृषभ-गंजन मथन-केसी हने पूँछ फिराइ—४६८। (ख) काली-बिष गंजन दह आए—५७८। (३) दुख, कष्ट। (४) ताल का एक भेद।

गंजना—क्रि. स. [सं. गंजन] (१) निरादर करना। (२) नाश करना। (३) चूर-चूर करना।

गंजा—संज्ञा पुं. [हिं. गंज] गंज रोग।

वि.—जिसे गंज रोग हो।

गँजाना—क्रि. अ. [हिं. गँजना] (१) निरादर करना। (२) नाश करना।

क्रि. स. [हिं. गाँजना] ढेर लगाना।

गंजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गंज] (१) ढेर, समूह। (२) शकरकंद।

संज्ञा स्त्री.—बनियायन।

वि. [हिं. गाँजा] गाँजा पीनेवाला।

गँजीफा—संज्ञा पुं. [फ़ा. गंजीफ़ा] (१) एक खेल जो ९६ पत्तों से खेला जाता है। (२) ताश।

गँजेड़ी—वि. [हिं. गाँजा + एड़ी (प्रत्य.)] गाँजा पीने वाला।

गँठकटा—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ + काटना] गिरहकट।

गँठछोर—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ + छोरना] गिरहकट।

गँठजोड़ा—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ + जोड़ना] गँठबंधन।

गँठबंधन—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ + बंधन] (१) विवाह की एक रीति जिसमें वर के दुपट्टे से वधू के आँचल का छोर बाँधा जाता है। (२) दो व्यक्तियों का हर समय का साथ।

गँठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] गाँठ। उ.—अछत-दूब-दल बँधाइ, लालन की गँठि जुराइ, इहै मोहि लाहौ नैननि दिखरावौ—१०-९५।

गँठुआ—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ] ताने-बाने के टूटे हुए तागों को जोड़ना।

गंड—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कपोल, गाल। (२) कनपटी, कान के नीचे गरदन का भाग। उ.—(क) स्याम सुभग तनु, चुअत गंड मद बरषत थोरे थोरे—२७६३। (ख) रत्न जटित कुंडल स्रवनन बर गंड कपोलनि झाईं—३०३१। (३) गले में पहनने का गंडा। (४) फोड़ा। (५) चिन्ह, दाग। (६) गाँठ। (७) गैंडा।

गंडक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गले में पहनने का गंडा। (२) गाँठ। (३) एक रोग जिसमें बहुत फोड़े निकलते हैं। (४) गैंडा। (५) चिन्ह। (६) एक नदी। (७) गंडकी नदी का प्रदेश।

गंडाक— संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वर्णवृत्त।

गंडकि, गंडकी—संज्ञा स्त्री. [सं. गंडकी] एक नदी जो नैपाल में हिमालय से निकलकर पटने के पास गंगा में गिरती है। सालग्राम की बहुत सी बटियाँ इसमें मिलती हैं। जड़ भरत ने इसी के किनारे आश्रम में तप किया था और यहीं हिरनी के बच्चे के प्रति मोह उनमें उत्पन्न हुआ था।

गँडदार—संज्ञा पुं. [सं. गंड या गँडासा + फ़ा दार (प्रत्य.)] हाथीवान, महावत।

गंडदूर्वा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गाँडर घास जिसकी जड़ 'खस' कहलाती है। (२) एक तरह की दूब।

गंडनि—संज्ञा पुं. [सं. गंड + नि (प्रत्य.] कनपटी में। उ.—गरजि घुमरात मद भार गंडनि स्रवत पवन ते बेग तेहि समय चीन्हौ—२५६१।

गंडमंडल—संज्ञा पुं. [सं.] कनपटी। उ.—(क) चलित कुंडल गंडमंडल, मनहुँ निर्तत मैन—१-३०७। (ख) चलित कुंडल गंडमंडल झलक ललित कपोल—६२७।

गंडमाला—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक तरह का रोग जिसमें गले में बहुत से फोड़े निकलते हैं।

गंडमूर्ख—वि. [सं.] बड़ा मूर्ख।

गँडरा—संज्ञा पुं. [सं. गंडाली] (१) एक घास। (१) एक तरह का धान।

गँडरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गँडरा] गँडरा घास।

गंडली—संज्ञा स्त्री. [सं.] । (१) छोटी पहाड़ी। (२) शिव।

गंडस्थल—संज्ञा पुं. [सं.] कनपटी।

गंडा—संज्ञा पुं. [सं. गंडक = गाँठ] गाँठ।

संज्ञा पुं. [सं. गंडक = गले में पहनने का जंतर] (१) बटे हुए तागे का जंतर जिसमें मंत्र पढ़कर गाँठ लगायी जाती है। (२) मंत्र पढ़कर बाँधा जानेवाला तागा। (३) पशुओं के गले में पहनाने का पट्टा।

संज्ञा पुं. [सं. गंडक] गिनने के लिए चार-चार की संख्या।

संज्ञा पुं. [सं. गंड = चिन्ह] (१) आड़ी लकीरों की पंक्ति। (२) रंगीन धारी, कंठी।

गंडारि—संज्ञा स्त्री. [सं.] कचनार।

गंडाली—संज्ञा स्त्री. [सं.] गाँडर घास।

गँडासा—संज्ञा पुं. [हिं. गँडी + असि = तलवार] चारा या घास काटने का औजार या हथियार।

गंडिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] चमड़े की छोटी नाव।

गंडिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

गंडीर, गंडीरी—संज्ञा पुं. [सं.] एक साग।

गंडुपद—संज्ञा पुं. [सं.] एक रोग जिसमें पैर बहुत मोटा हो जाता है।

गंडूक—संज्ञा पुं. [हिं. गंडूष] (१) चुल्लू। (२) कुल्ली।

गंडूपद—संज्ञा पुं. [सं.] केंचुआ।

गंडुपदभव—संज्ञा पुं. [सं.] सीसा धातु।

गंडूष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चल्लू, कुल्लू। उ.—सूरदास प्रभु भलैं परे फँद, देउँ न जान भावते जी कैं। भरि गंडूष, छिरकि दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकैं—१०-२८७। (२) हाथी की सूड़ की नोक।

गँडेरी—संज्ञा स्त्री. [सं. कांड या गंड] (१) ईख या गन्ने का छोटा टुकड़ा। (२) छोटा टुकड़ा।

गँडोरी—संज्ञा पुं. [सं. गंडोल = ईख या गुड़] कच्चा खजूर।

गंडोल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कच्ची शकर, गुड़। (२) ईख। (३) कौर, ग्रास।

गंतव्य—संज्ञा पुं. [सं.] लक्ष्य।

वि.—चलने योग्य।

गंता—संज्ञा पुं. [सं. गंत] जानेवाला।

गंदगी—संज्ञा स्त्री [फ़ा.] (१) मैलापन। (२) अपवित्रता। (३) मैला।

संज्ञा पुं. [सं. गंध] दुर्गंध।

गंदना—संज्ञा पुं. [सं. गंध] (१) एक कंद। (२) एक घास।

गंदम—संज्ञा पुं. [देश.] एक पक्षी।

गँदला—वि. [हिं. गंदा + ला (प्रत्य.)] मैला, गंदा।

गंदा—वि. [फ़ा.] (१) मैल-कुचैला। (२) अपवित्र। (३) घिनौना।

गँदोल—संज्ञा पुं. [सं. गंध] एक घास।

गंदुम—संज्ञा पुं. [फ़ा] गेहूँ।

गंदुमी—संज्ञा पुं. [फ़ा. गंदुम] (१) गेहुँआँ, ललाई लिये भूरे रंग का। (२) गेहूँ या उसके आटे का बना पदार्थ।

गँदोलना—क्रि. स. [फ़ा. गंदा] (पानी) गंदा करना।

गंध—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बास, महक। उ.—चाहत गंध बैरी बीर—सा. २८। (२) सुगंध, सुवास। उ.—माधौ नैंकु हटकौ गाइ।···।छहौं रस जौ धरौं आगैं, तउ न गंध सुहाइ—१-५६। (३) सुगंधित लेप या द्रव्य। (४) लेशमात्र संबंध। (५) गंधक।

गंधक—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक खनिज पदार्थ।

गंधकाष्ट—संज्ञा पुं. [सं.] अगर की लकड़ी।

गँधकी—वि. [हिं. गंधक] गंधक के हल्के पीले रंग वाला।

संज्ञा पुं.—सफेदी लिये हलका पीला रंग।

गंधकोकिल—संज्ञा पुं. [सं.] एक सुगंधित पदार्थ।

गंधगात—संज्ञा पुं. [सं. गंधगात्र] चंदन।

गंधचाहन—संज्ञा पुं. [सं. गंध+चाहन=चाहने वाले] गंध के चाहनेवाले भौंरे। उ.— चाहत गंध बैरी बीर। अपनो हित चहत अनहित होत छोड़त तीर —सा. २८।

गंधत्राण—संज्ञा पुं. [सं. गंध + त्राण] एक तरह की घास।

गंधद—संज्ञा पुं. [सं. गंध+ द] चंदन।

गंधनाल—संज्ञा पुं. [हिं.] नाक का छेद, नथुना।

गंधपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सफेद तुलसी। (२) नारंगी। (३) बेल।

गंधप्रत्यय—संज्ञा पुं. [सं.] नाक।

गंधप्रसारिणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

गधबंधु—संज्ञा पुं. [सं.] आम।

गंधबबूल—संज्ञा पुं. [सं. गंध+बबूल] एक तरह का बबूल।

गंधबेन—संज्ञा. पुं. [सं गंधवेणु] एक सुगंधित घास।

गंधमृग—संज्ञा पुं. [सं.] कस्तूरी मृग।

गंधमाद—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा।

गंधमादन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पर्वत। (२) भौंरा। (३) एक सुगंधित द्रव्य।

गंधरब—संज्ञा पुं. [सं. गंधर्व] देवताओं का एक भेद। उ.—जच्छ, भृतु, बासुकी नाग, मुनि, गंधरब, सकल बसु, जीति मैं किए चेरे—९-१३०।

गंधरबिन—संज्ञा स्त्री. [हिं. गंधर्विन] गंधर्व की स्त्री।

गंधराज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक तरह का बेला। (२) एक सुगंधित द्रव। (३) चंदन।

गंधर्ब, गंधर्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) देवताओं की एक जाति जो गाने में निपुण मानी गयी है। (२) मृग। (३) घोड़ा। (४) प्रेत। (५) स्त्रियों की वह अवस्था जब उनका स्वर विशेष मधुर होता है। (६) एक मानसिक रोग। (७) ताल का एक भेद। (८) विधवा का दूसरा पति।

गंधर्वनगर, गंधर्वपुर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मिथ्या भ्रम। (२) हल्के बादलों से ढका चंद्रमंडल। (३) पश्चिम में संध्या की लाली। (४) मानसरोवर के निकट माना हुआ एक नगर जिसकी रचा गंधर्व करते थे।

गंधर्व विद्या—संज्ञा पु. [सं.] गान विद्या।

गंधर्वविवाह—संज्ञा पुं. [सं.] वह विवाह जो वर-वधू माता-पिता की आज्ञा लिये बिना कर लें।

गंधर्ववेद—संज्ञा पुं. [सं.] संगीत शास्त्र।

गंधर्वा—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

गंधर्विन—संज्ञा स्त्री. [सं. गधर्व + हिं. इन (प्रत्य.)] (१) गंधर्व की स्त्री। (२) गंधर्व जाति की सुन्दर स्त्री। उ.—जो तुम मेरी रच्छा धरो। गंधर्विन के हित तप करो।

गंधर्वी—संज्ञा स्त्री. [सं.] गंधर्व की स्त्री।

वि. [सं. गंधर्व + ई (प्रत्य.)] गंधर्व संबंधी।

गंधवह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वायु। (२) नाक। (३) चंदन।

वि.—(१) गंध ले जानेवाला। (२) सुगंधित।

गंधवाह—संज्ञा पुं. [सं.] वायु।

गंधवाहपूत बांधव तासु पतनी भाइ—संज्ञा पुं. [सं. गंधवाह (=वायु, पवन) + पुत्र (पवन का पुत्र, भीम) + बांधव (=भाई, भीम का भाई=अर्जुन) तासु पतिनी (=उसकी पत्नी=अर्जुन की पत्नी=सुभद्रा) + भाइ (=भाई=सुभद्रा का भाई=श्रीकृष्ण) श्रीकृष्ण। उ.—गंधबाहन-पूत-बांधव तासु पतिनी भाई। कबै द्रग भर देखबो जू सबै दुख बिसराइ—सा. २२।

गंधवाही—संज्ञा पुं. [सं.] गंध का वहन करनेवाला।

गंधसार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) चंदन। (२) बेला।

गंधहर—संज्ञा पुं. [सं.] नाक।

गंधहस्ती—संज्ञा पुं. [सं.] मतवाला हाथी जिसके मस्तक से मद बहता हो।

गंधा—वि. स्त्री. [स.] गंधयुक्त, गंधवाली।

गँधात—क्रि. स. [हिं. गँधाना] दुर्गंध करता है, गँधाता है। उ.—रुधिर-मेद, मल-मूत्र, कठिन कुच उदर गंध-गधात—२-२४।

गँधाना, गंधाना—क्रि. स. [हिं. गंध] गंध देना, दुर्गंध करना।

संज्ञा पुं. [सं. गंधन] रोला छन्द।

गंधार—संज्ञा पुं. [सं. गांधार] गांधार देश।

गंधारी—संज्ञा स्त्री. [सं. गांधारी] (१) धृतराष्ट्र की स्त्री जो दुर्योधन आदि कौरवों की माता थी। गांधार देश के राजा सुबल इनके पिता थे। पति को अंधा देखकर ये आजीवन अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे रहीं। (२) गांधार देश की स्त्री।

गंधाशन—संज्ञा पुं. [सं.] पवन।

गंधाष्टक—संज्ञा पुं. [सं.] आठ गंध द्रव्यों से बना हुआ एक गंध।

गंधिनि, गंधिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गंधी] गंधी या अत्तार की स्त्री। उ.—दूलह देखौंगी जाय उतरे सँकेतबट केहि मिस देखन पाऊँ।.......। चन्दन अरगजा सूर केशरि धरि लेऊँ। गंधिनि ह्वै जाउँ निरखि नैन सुख देऊँ—पृ. ३४६ (६१)।

गंधिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] शराब, मदिरा।

गंधिया—संज्ञा पुं. [हिं. गंध] एक कीड़ा।

संज्ञा स्त्री.—एक बरसाती घास।

गंधी—संज्ञा पुं. [सं. गंधिन्](१) तेल, इत्र आदि बेचने वाला। (२) गंधिया घास। (३) गँधिया कीड़ा।

गँधीला, गंधीला—वि. [सं. गंध या हिं. गंदा] (१) मैला, गंदा। (२) बुरी गंधवाला।

गंधेज—संज्ञा स्त्री [सं. गंध] एक तरह की घास।

गंधेल—संज्ञा पुं. [सं. गंध] एक झाड़।

गंधेला, गंधेली—वि. [हिं. गंध] जिसमें बुरी गंध हो।

गंध्रब—संज्ञा पुं. [सं. गंधर्व] देवताओं की एक जाति। उ.—गंध्रब ब्रह्मा-सभा मँझारि। हँस्यौ अप्सरा ओर निहारि—७-८।

गंध्रबपुर—संज्ञा पुं. [सं. गंधर्वपुर] (१) स्वर्ग। (२) गंधर्वों का देश। उ.—गंधर्बनि कैं हित तप करौ। तप कीन्हैं सो दैहैं आग। ता सेती तुम कीनौ जाग। जज्ञ कियैं गंध्रबपुर जैहो। तहाँ आइ मोकौं तुम पैहो—६-२।

गंभारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक पेड़।

गँभीर, गंभीर—वि. [सं] (१) गहरा, जिसकी थाह न मिले। उ.—कुंजर कूल रमित अति राजत तहँ सोनित सलिल गँभीर—१० उ.-२। (२) घना, गहन। (३) शांत, सौम्य। उ.—प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ। अति गंभीर उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ—१-८। (४) गूढ़, जटिल। (५) घोर, प्रचंड। (६) बलशाली, सशक्त, भारी, दृढ़। उ.—लै लै सौन हृदय लरटावति, चुँबति भुजा गँभीर—१-२६। (७) कठोर, धैर्ययुक्त, दृढ़। उ.—तब ऊधो कर लै लिखी हरि जू की पाती। पढ़ी परत नहिं नेक रहे गंभीर करि छाती—३४४३। (८) प्रसिद्ध, महत्वपूर्ण। उ.—बड़ कुल, बड़े भूप दसरथ सखि, बड़ौ नगर गंभीर—६-४४।

संज्ञा पुं.—(१) जंभीरी नीबू। (२) कमल। (३) एक तरह का मंत्र। (४) शिव। (५) एक राग।

गंभीरवेदी—संज्ञा पुं. [सं. गंभीरवेदिन्] इतना मस्त हाथी कि अंकुश की मार से भी वश में न हो।

गंभीरिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ा ढोल।

गँवँ—संज्ञा स्त्री. [सं. गम्य] (१) दाँव, घात। (२) मतलब। (३) अवसर, मौका। (४) ढङ्ग, उपाय।

मुहा.— गँवँ से—(१) ढङ्ग से, उपाय से। (२) धीरे से, चुपके से।

गँवइँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँव] छोटा गाँव।

गँवरदल—वि. [हिं. गँवार + दल] (१) गँवारों की तरह का भद्दा। (२) गँवार, उजड्ड।

गँवरमसल—संज्ञा पुं. [हिं. गँवार + अ. मसल] गँवारों की कहावत या उक्ति।

गँवहियाँ—संज्ञा पुं. [सं. गोध्न=अतिथि] मेहमान, अतिथि।

गँवाइ—क्रि. स. [हिं. गँवाना] (समय) गँवा देना, खो देना।

यौ.-जैहै गँवाइ-व्यर्थ हो जायगा। उ.—सूरदास भगवंत भजन बिनु जहै जनम गँवाइ—१-३१७।

गँवाई—क्रि. स. [हिं. गँवाना] दूर की, खो दी, मिटा दी। उ.—(क) सूरदास उद्धार सहज गनि, चिंता सकल गँवाई—१-२०७। (ख) रंच काँच-सुख लागि मूढ़-मति, कंचन रासि गँवाई—१-३२८। (ग) .... भली करी हरि गेंद गँवाई—५२५।

गँवाए—क्रि. स. [हिं. गँवाना] खो दिये, दूर किये। उ.—(क) पहुँचे आइ बिपिन घन बंदा, देखत द्रुम दुख सबनि गँवाए—४४७। (ख) मुरली कौन सुकृति-फल पाए। अधर-सुधा पीवति मोहन कौ, सबै कलंक गँवाए—६६१।

गँवाना—क्रि. स. [सं. गमन, पुं. हिं. गवन] (१) (समय) बिताना या काटना। (२) (प्राप्त वस्तु) खो देना।

गँवायौ—क्रि. स. [हिं. गँवाना] (समय) बिताया या काटा। उ.—सूरदास भगवंत-भजन-बिनु, नाहक जनम गँवायौ—१-७६।

गँवार—वि. [हिं. गाँव + आर (प्रत्य.)] (१) देहाती, असभ्य। (२) मूर्ख, नासमझ। उ.—(क) इहि तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार। (ख) एकहुँ आँक न हरि भजे, (रें) रै सठ सूर गँवार—१-३२५। (३) अनाड़ी, अनजान।

गँवारता—संज्ञा स्त्री. [हिं. गँवार + ता (प्रत्य.)] गवारपन।

गँवारि, गँवारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गँवार] (१) देहातीपन। (२) मूर्खता। (३) नासमझी। (४) गँवार स्त्री।

वि. स्त्री. [हिं. गँवार + ई (प्रत्य.)] (१) गँवार की तरह का। (२) भद्दा। (३) नासमझ, मूर्ख। उ.—(क) बाँह पकरि तू ल्याई काकौं अति बेसरम गँवारि—१०-३१४। (ख) बारौं लाज भई मोकौं बैरिनि मैं गँवारि मुख ढाक्यौ—२५४६।

गँवारू—वि. [हिं. गँवार + ऊ (प्रत्य.)] (१) गँवार की भद्दी रुचि का। (२) भद्दा। (३) जो सुरुचिपूर्ण न हो।

गँवावत—क्रि. स. [हिं. गँवाना] (समय) बिताते या व्यर्थ खोते हैं। उ.—मैं-मेरी करि जनम गँवावत, जब लगि नाहिं परत जम-डोरी—१-३०३।

गँवावै—क्रि. स. [हिं. गँवाना] (१) (समय) बिताता या काटता है। (२) व्यर्थ खो देता है, नष्ट कर देता है। उ.—(क) आन देव हरि तजि भजे, सो जनम गँवावै—२-६। (ख) हरि की कृपा मनुष-तन पावै। मूरख बिषय-हेतु सो गँवावै—४-१२।

गँवैहै—क्रि. स. [हिं. गँवाना] (समय) बितावेगा या काटेगा। उ.—सूरदास भगवंत भजन बिनु बृथा सुजनम गँवैहै—१-८६।

गँवैहौं—क्रि. स. [हिं. गँवाना] दूर करूँगा, मिटाऊँगा। उ.—मो देखत मो दास दुखित भयौ, यह कलंक हौं कहाँ गँवैहौं—७-५।

गँवैहौ—क्रि. स. [हिं. गँवाना] (समय) नष्ट करोगे या व्यर्थ खोओगे। उ.—सूरदास भगवन्त-भजन बिनु, मिथ्या जनम गँवैहौ—१-३३१।

गँस, गंस—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथि] (१) द्वेष, बैर। उ.—(क) मरौ वह कंस, निरबंस वाकौ होइ, कन्यौ यह गंस तोकौं पठायौ—५५१। (ख) अपने घर के तुम राजा हौ सबके राजा कंस। सूर स्याम हम देखत ठाढ़े अब सीखे ये गंस—१०६२। (२) चुभने या लगने वाली चुटीली बात, आक्षेप, व्यंग्योक्ति। उ.—चलत सो मोहित गति राजहंस। हँसत परस्पर गावत गंस—१८२७।

संज्ञा स्त्री. [सं. कषा = चाबुक] तीर की नोक, गाँसी।

गँसना—क्रि. स. [सं. ग्रंथन, हिं. गंस] (१) जकड़ना, अच्छी तरह कसना। (२) बिने हुए तागों को इस तरह कसना कि छेद न रह जाय।

क्रि. अ.—(१) गँठ जाना, कस जाना। (२) (२) ठसाठस भर जाना, अच्छी तरह छा जाना।

गँसी, गंसी—क्रि. स. [हिं. गँसना] (१) कस गयी, जकड़ गयी, खूब गँठ गयी। उ.—बृन्दावन की माल कलेवर लता माधुरी गंसी। सूरदास लै भुज बीच राखी माधव मदन प्रसंसी—१६८५। (२) मिली, कसी।

गँसीला—वि. [हिं. गाँसी] नुकीला, चुभनेवाला।

वि. [हिं. गँसना] (१) गँठा हुआ, कसा हुआ। (२) जिसकी बुनावट गँठी हुई हो।

ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गीत। (२) गंधर्व। (३) गुरु या दीर्घ मात्रा। (४) गणेश।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) गानेवाला मनुष्य। (२) जानेवाला मनुष्य।

गइंद—संज्ञा पुं. [सं. गयंद] हाथी।

गइनाही—संज्ञा स्त्री. [सं ज्ञान] जानकारी, ज्ञान। उ.—डसी री माई स्याम भुअङ्गम कारे। ....। फुरै न जंत्र मंत्र गइनाही चले गनी गुन डारे।

गईं—क्रि. अ. स्त्री. [सं. गम] 'जाना' क्रिया का भूत. स्त्री० बहु० रूप, प्रस्थानित हुईं।

गई—क्रि. अ. [सं. गम] (१) 'जाना' क्रिया का भूत. स्त्री. रूप, प्रस्थान किया। इसका प्रयोग संयोजक क्रिया के रूप में भी होता है।

मुहा.—गई करना-छोड़ देना, ध्यान न देना। (२) भूली, (संज्ञा) खो दी। उ.—मुरछि परी तन-सुधि गई, प्रान रहे कहुँ जाई—५८६।

गई बहोर—वि. [हिं. गया + बहुरि] खोई या बिगड़ी हुई वस्तु को फिर पाने या बनानेवाला।

गउंक—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक घास।

गउ, गऊ—संज्ञा स्त्री. [सं. गो] गाय।

गए—क्रि. अ. [सं. गम, हिं. जाना] (१) जाना-क्रिया के भूतकालिक बहुवचन या आदरसूचक एक-वचन रूप, प्रस्थानित हुए, जाने पर। उ.—सरन गए को को न उबारयौ—१-१४। (२) बीते, व्यर्थ ही व्यतीत हुए। उ.— (क) सब दिन गए अलेखे। (ख) कछु दिन घटि षट मास गए—१०८८।

वि.—गया हुआ, खोया हुआ, नष्ट। उ.— गए राज का दुख नहिं कोइ—१-२८६।

गऐ—क्रि. अ. सवि. [सं. गम, हिं. जाना] (१) चले जाने पर, खो जाने पर, नष्ट होने पर। उ.—हरि रस तौ अब जाइ कहुँ लहिये। गऐ सोच आऐ नहिं आनँद, ऐसो मारग गहिये—२-१८। (२) बीतने पर, समाप्त होने पर। उ.—दिन दस गऐ विषय के हेतु...। —१०-४।

गगन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश। (२) शून्य स्थान। (३) छप्पय छन्द का एक भेद।

गगनकुसुम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश-कुसुम। (२) असंभव बात।

गगनगढ़—संज्ञा पुं. [सं. गगन + गढ़] बहुत ऊँचा महल या किला।

गगनगति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) आकाश में चलनेवाले पक्षी आदि। (२) सूर्य आदि ग्रह। (३) देवता।

गगनचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्षी। (२) ग्रह।

वि.—आकाश में चलनेवाले।

गगनचुंबी—वि. [सं.] बहुत ऊँचा।

गगनधूल—संज्ञा स्त्री. [सं. गगन + हिं. धूल] केतकी या केवड़े के फूल की धूल।

गगनध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सूर्य। (२) बादल।

गगनपति—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र। उ.—रुद्रपति, छुद्र-पति, लोकपति, वोकपति, धरनिपति, गगनपति, अगमबानी—१५२२।

गगनबानी—संज्ञा स्त्री. [सं. गगनवाणी] आकाशवाणी।

गगनवाटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) आकाश की वाटिका। (२) असंभव बात।

गगनभेड़—संज्ञा स्त्री. [सं. गगन + भेड़] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है।

गगनभेदी—वि. [सं.] बहुत ऊँचा।

गगनबती—संज्ञा पुं. [सं. गगनवर्ती] सूर्य।

गगनवाणी—संज्ञा स्त्री. [सं.] आकाशवाणी।
गगनस्पर्शी—वि. [सं.] बहुत ऊँचा।
गगनानंग—संज्ञा पुं. [सं.] एक मात्रिक छन्द।
गगनांगना—संज्ञा स्त्री. [सं.] अप्सरा।
गगनांबु—संज्ञा पुं. [सं. गगन + अंबु] वर्षा का जल।
गगनापगा—संज्ञा स्त्री. [सं.] आकाशगंगा।
गगनेचर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ग्रह, नक्षत्र। (२) पक्षी। (३) देवता।
वि.—आकाश में चलनेवाला।
गगरा—संज्ञा पुं. [सं. गर्गर = दही मथने का बर्तन] किसी धातु का कलसा।
गगरिया, गगरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्गरी = दही मथने की हाड़ी] धातु का छोटा घड़ा, कलसी।
गच—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) किसी नरम वस्तु में पैनी वस्तु के धँसने का शब्द। (२) चूने, सुरखी आदि का मसाला। (३) इस मसाले से बनी पक्की जमीन। (४) पक्की छत।
गचकारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गच + फ़ा. कारी] गच पीटने का काम।
गचगर—संज्ञा पुं. [हिं. गच + फ़ा. गर = बनानेवाला] कारीगर, थवई।
गचगीरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गच + फ़ा. गीरी] गच बनाने का काम, गचकारी।
गचना—क्रि. स. [अनु. गच] (१) ठूँस ठूँस कर भरना। (२) चुभाना। (३) वश में रखना।
गचाका—संज्ञा पुं. [हिं. गच से अनु.] गच से गिरने का शब्द।
क्रि. वि.—भरपूर।
गच्छ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पेड़। (२) साधुओं का मठ। (३) एक ही साधु के शिष्य।
गच्छना, गछना—क्रि. अ. [सं. गच्छ = जाना] जाना, प्रस्थान करना।
क्रि. स.—(१) निबाहना। (२) स्वयं भार लेना।
गजंद—संज्ञा पुं. [सं. गयंद] हाथी।
गज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी, गयंद। उ.—बारबार संकर्षन भाषत लेत नहीं ह्याँ ते गज टारी—२५८६। (२) महिषासुर का पुत्र। (३) श्रीराम की सेना का एक बंदर। (४) आठ की संख्या। (५) मकान की नींव।
संज्ञा पुं. [फ़ा. गज़] (१) लंबाई नापने की एक नाप। (२) बैलगाड़ी के पहिये की लकड़ी। (३) सारंगी बजाने की कमानी।
गजअसन—संज्ञा पुं. [सं. गजाशन] पीपल का पेड़।
गजक—संज्ञा पुं. [फ़ा. कजक] (१) तिल की पपड़ी। (२) जलपान। (३) चटपट खाने की चीज।
गजकुंभ—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी का उभरा हुआ मस्तक।
गजकेसर—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का धान।
गजगति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हाथी की चाल। (२) मंद और मस्तानी चाल। (३) एक वृर्णवृत्त।
गजगमन—संज्ञा पुं. [सं.] हाथी की सी मंद और मस्तानी चाल।
गजगामिनि, गजगामिनी—वि. [हिं. गजगामी] मंद और मस्तानी चालवाली। उ.—खंजन मीन मराल हरन छबि भान भेद गजगामिनि—पृ० ३४४ (३४)।
गजगामी—वि. [सं. गजगामिन्] जिसकी चाल मंद और मस्तानी हो।
गजगाह—संज्ञा पुं. [सं. गज + ग्राह] (१) हाथी की झूल। (२) झूल।
गजगौन—संज्ञा पुं. [सं. गजगमन] हाथी की सी मंद-मस्तानी चाल।
गजगौनी—वि. स्त्री. [सं. गजगामिनी] हाथी की सी मंद-मस्तानी चालवाली।
गजगौहर—संज्ञा पुं. [हिं. गज + फ़ा. गौहर] गजमुक्ता।
गजचर्म—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का चमड़ा। (२) एक रोग।
गजता—संज्ञा स्त्री. [सं.] हाथियों का झुंड।
गजदंत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का दाँत। (२) दीवार में लगी खूँटी। (३) घोड़ा जिसके दाँत मुँह के बाहर निकले हों (४) दाँत के ऊपर का दाँत।
गजदंती—वि. [सं. गजदंत + ई (प्रत्य.)] हाथीदाँत का बना हुआ, हाथी दाँत का। उ.—कर कंकन चूरी गजदंती नख मनिमानिक मेटति देती।
गजदान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) हाथी का दान। (२) हाथी का मद।

गजधर—संज्ञा पुं. [हिं. गज + धर] राज, मेमार, थवई।

गजना—क्रि. अ. [हिं. गाजना] गरजना।

गजनाल—संज्ञा स्त्री. [सं.] बड़ी तोप जिसे हाथी खींचें।

गजनी—संज्ञा स्त्री. [सं. गज] हथिनी। उ.—जो राजत तिहिं काल लाल ललना रसाल रस रंग। मानहु नहात मदन बधु सजनी गज गजनी गज संग २४५०।

गजपति—संज्ञा पुं. [सं. गज + पति] (१) बहुत बड़ा हाथी। (२) वह बड़ा हाथी जिसे ग्राह ने पकड़ लिया था और जिसको छुड़ाने के लिए भगवान विष्णु गरुड़ छोड़कर नंगे पैर दौड़े थे। (३) वह राजा जिसके पास बहुत हाथी हों। (४) कलिंग देशीय राजाओं की उपाधि।

गजपाँव—संज्ञा पुं [हिं. गज + पाँव] एक जलपक्षी।

गजपाल—संज्ञा पुं. [सं.] महावत, हाथीवान। उ.—क्रोध गजराज गजपाल कीन्हो—२५६१।

गजपुट—संज्ञा पुं. [सं.] धातुओं के फूँकने की रीति।

गजपुर—संज्ञा पुं. [सं.] हस्तिनापुर।

गजबंध—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का चित्रकाव्य।

गजब—संज्ञा पुं. [अ. ग़ज़ब] (१) कोप, रोष। (२) आफत, विपत्ति। (३) अंधेर। (४) अद्भुत बात।
मुहा०—गजब का—अद्भुत, बहुत अधिक।

गजबदन—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश।

गजबाँक, गजबाग—संज्ञा पुं. [सं. गज + बाँक या बाग] हाथी का अंकुश।

गजबेली—संज्ञा स्त्री. [स. गज + बल्ली] एक तरह का लोहा।

गजभक्षक, गजभक्ष्य—संज्ञा पुं. [सं.] पीपल।

गजमणि, गजमनि—संज्ञा स्त्री., पुं. [सं.] गजमुक्ता।

गजमनियाँ—संज्ञा स्त्री. अल्प. [सं. गजमणि] गजमणि, गजमुक्ता। उ.—पहुँची करनि, पदिक उर हरि-नख, कठुला कंठ, मंजु गजमनियाँ—१०-१०६।

गजमुक्ता—संज्ञा पुं. [सं.] मोती जो हाथी के मस्तक से निकलता माना गया है।

गजमुख—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश।

गजमोचन—संज्ञा स्त्री. [सं.] गज को संकट से छुड़ाने की क्रिया। उ.—एहि थर बनी क्रीड़ा गजमोचन और अनंत कथा स्तुति गाई—१-६।

संज्ञा पुं. [सं.] विष्णु का वह रूप जो उन्होंने ग्राह से गज को छुड़ाने के लिए धारण किया था। उ.—गजमोचन ज्यों भयो अवतार। कहौं सुनौ सो अब चितधार।

गजमोती—संज्ञा पुं. [सं. गजमौक्तिक, प्रा. गजमोत्तिय] गजमणि, गजमुक्ता।

गजर—संज्ञा पुं. [सं. गर्ज, हिं. गरज] (१) पहर-सूचक घंटे का शब्द। (२) प्रातःकाल-सूचक घंटे का शब्द। उ.—बोले तमचुर चारो याम को गजर मारयौ पौन भयौ सीतल तम तमता गई—१६०८। (३) जगाने की घंटी।

संज्ञा पुं. [हिं. गजर-बजर] मिला हुआ लाल-सफेद गेहूँ।

गजरथ—संज्ञा पुं. [सं.] बड़ा रथ जिसे हाथी खींचें।

गजर-बजर—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) मिले हुए कई पदार्थ। (२) अंड-बंड चीजों का मेल। (३) भक्ष्य-अभक्ष्य।

गजरा—संज्ञा पुं. [हिं. गाजर] गाजर के पत्ते।

संज्ञा पुं. [हिं. गंज = समूह] (१) फूलों की घनी गुँथी माला। (२) कलाई का एक गहना। (३) एक रेशमी कपड़ा।

गजराज—संज्ञा पुं. [सं.] बड़ा हाथी। उ.—(क) धाए गजराज-काज, केतिक यह बाता—१-१२३। (ख) ज्यों गजराज-काज के औसर औरै दसन दिखावत—३०९३।

गजरिपु—संज्ञा पुं. [सं. गज + रिपु=शत्रु] सिंह।

संज्ञा स्त्री.—पतली कमर या कटि जिसकी उपमा हाथी के शत्रु सिंह की पतली कमर से दी जाती है। उ.—एक कमल पर धारे गजरिपु एक कमल पर ससि-रिपु जोर—सा. उ. ४७।

गजरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गजरा] कलाई का एक आभूषण।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गाजर] छोटी गाजर।

गजरौट—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाजर + औटा] गाजर के पौधे की पत्ती।

गजल—संज्ञा [फ़ा. ग़ज़ल] श्रृंगार रस की कविता।

संज्ञा पुं. [सं० गज = करि = करी+ल = करील]

करील, बबूल। उ.—पग रिपु ता महँ परत गजल के को तन तें सुरझावै—सा. ८५।

गजवदन—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश।

गजवान—संज्ञा पुं. [हिं. गज+वान (प्रत्य.)] हाथी-वान, महावत।

गजशाला, गजसाला—संज्ञा स्त्री. [सं. गज+शाला] वह स्थान जहाँ हाथी बाँधे जाते हैं।

गजही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाज+फेन] वह लकड़ी जिससे दूध मथकर फेना या मक्खन निकालते हैं।

गजाधर—संज्ञा पुं. [सं. गदाधर] विष्णु जिन्होंने गदा-सुर की हड्डियों से बनी गदा धारण की थी।

गजानन—संज्ञा पुं. [सं. गज+आनन] गणेश।

गजा—संज्ञा पुं. [फ़ा. गज] नगाड़ा बजाने का डंडा।

गजारि—संज्ञा पुं. [सं. गज+अरि] (१) शाल। (२) एक वृक्ष। (३) सिंह।

गजाशन—संज्ञा पुं. [सं.] पीपल।

गजास्य—संज्ञा पुं. [सं.] गणेश।

गजी—संज्ञा पुं. [फ़ा. गज] गाढ़ा, मोटा कपड़ा।

संज्ञा पुं. [सं. गज+ई (प्रत्य.) अथवा गजिन्] हाथी का सवार।

संज्ञा स्त्री. [सं.] हथिनी।

गजेंद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा हाथी। (२) ऐरावत।

गज्जर—संज्ञा पुं. [अनु.] दलदल, कीचड़।

गज्जूह—संज्ञा पुं. [सं. गज+व्यूह] हाथियों का झुंड।

गज्झा—संज्ञा पुं. [सं. गज्ज=शब्द] (१) पानी में छोटे-छोटे बुलबुलों का समूह। (२) गज।

संज्ञा पुं. [सं. गज] (१) ढेर, अंबार। (२) खजाना, भंडार। (३) धन-संपत्ति। (४) लाभ।

गझिन—वि. [हिं. गझना] (१) घना। (२) मोटा कपड़ा, गाढ़ा।

गटई—संज्ञा स्त्री. [सं. कंठ, पु. हिं. घंट] (१) गला। (२) गिट्टी। (३) गोटी।

गटकना—क्रि. स. [हिं. गट से अनु.] (१) खाना, निगलना। (२) दबा लेना।

गटकि—क्रि. स. [हिं. गटकना] खाना, निगलना। उ.—लटकि निरखन लग्यो मटक सब भूलि गयौ हटक ह्वै कै गयौ गटकि सिल सौं रह्यौ मीचु जागी—२६०६।

गटकीला—वि. [हिं. गटक] खानेवाला।

गटगट—संज्ञा पुं [अनु.] घूँट भरने का शब्द।

क्रि. वि.—(१) धड़ाधड़, लगातार। (२) घूँटने का शब्द करते हुए।

गटना—क्रि. अ. [सं. ग्रंथन, प्रा. गंठन] बँधना।

गटपट—संज्ञा स्त्री. [अनु.] (१) पदार्थों या प्राणियों की मिलावट। (२) सहवास, प्रसंग।

गटा—संज्ञा पुं. [हिं. गट्टा] (१) कलाई, गट्टा। (२) गाँठ।

गटागट—क्रि. वि. [हिं. गटगट] (१) गटगट शब्द करके। (२) लगातार, धड़ाधड़।

गटी—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथि, पा गंठि] (१) गाँठ। (२) समूह।

क्रि. अ. [हिं. गठना] गँठी, बँधी। उ.—(क) अपनी रुचि जित-ही-जित ऐंचति इंद्रिय-कर्म-गटी। हौं तित हीं उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी—१-६८।

गट्ट—संज्ञा पुं. [अनु.] निगलने का शब्द।

गट्टा—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथ, प्रा. गंठ, हिं. गाँठ] (१) कलाई (२) पैर और तलुए के बीच की गाँठ। (३) गाँठ। (४) बीज। (५) एक मिठाई।

गट्टी—संज्ञा स्त्री. [देश.] नदी का किनारा।

गट्ठर, गट्ठा—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ] बड़ी गठरी, बड़ा बोझ।

गठकटा—वि. पुं. [हिं. गाँठ+काटना] (१) गिरहकट। (२) धोखा देकर रुपया ठग लेनेवाला।

गठजोरा—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ जोड़ना] गठबंधन।

गठन—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथन, प्रा. गंठन] बनावट।

गठना—क्रि. अ. [सं. ग्रंथन, प्रा. गंठन, हिं. गाँठना का अक. रूप] (१) जुड़ना, सटना, मिलना। (२) मोटी सिलाई होना। (३) ऐसी बनावट होना जिसमें छेद न रहे। (४) गुप्त कार्य या विचार में सम्मिलित होना। (५) ठीक बनना। (६) संयोग होना। (७) गहरी मित्रता होना।

गड़वाना—क्रि. स. [हिं. गाड़ना] गाड़ने का काम (दूसरे से) कराना।

गड़हा—संज्ञा पुं. [सं. गर्त, प्रा. गड्ड] गड्ढा।

मुहा.—गड़हा खोदना—बुराई करना। गड़हा भरना (पाटना)—(१) घाटा पूरा करना। (२) रूखी-सूखी खाकर पेट भरना। गड़हे में पड़ना—कठिनाई या असमंजस होना।

गड़ाए—क्रि. स. [हिं. गड़ना] धँसाये हुए। उ.—अति संकट मैं भरत भँटा लौं, मल मैं मूड़ गड़ाए—१-३२०।

गड़ाना—क्रि. स. [हिं. गड़ना] चुभाना, धँसाना।

क्रि. स. [हिं. गाड़ना] गाड़ने का काम कराना।

गड़ायट—वि. [हिं. गड़ना] गड़ने या चुभनेवाला।

गड़ारी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडल] (१) गोल रेखा, वृत्त। (२) घेरा, मंडल।

संज्ञा स्त्री. [सं. गड = चिन्ह] आड़ी रेखाएँ।

संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) कुएँ की चरखी। (२) चरखी के बीच का भाग जिस पर रस्सी रहती है। (३) एक घास।

गड़ाव—क्रि. स. [हिं. गड़ाना] गड़वा दो। उ.—पांडव-सुत अरु द्रौपदी कौं मारि गड़ावौ—१-२३८।

गड़ि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बछड़ा। (२) एक बैल।

क्रि. अ. [हिं. गड़ना] (१) गड़ने का चिन्ह बनना। उ.—बिनु गुण गड़ि माला रही ठाहिं कहुँ बिहराने—२१३८। (२) चुभना, खटकना, बुरा लगना। उ.—हमरौ यौवन रूप आँखि इनके गड़ि लागत—१०२५।

गड़िबे—क्रि. अ. [हिं. गड़ना] चुभना, धँसना, घुसना। उ.—कठिन कठिन कली बीनि करत न्यारी प्यारी के चरन कोमल जानि सकुच अति गड़िबेहि डराति—१०६८।

गड़ुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेंडुरी] एक पक्षी।

गड़े—क्रि. अ. [हिं. गड़ना] चुभे, धँसे, घुस गये। उ.—इहि उर माखन चोर गड़े—३१५१।

गड़ेरिया—संज्ञा पुं. [सं. गड्डरिक, पा. गड्डरिअ] एक जाति जो भेड़ें पालती है।

गड़ोना—क्रि. स. [हिं. गड़ाना] चुभाना, धँसाना।

गड़ना—संज्ञा पुं. [हिं. गाड़ना] एक तरह का पान।

संज्ञा पुं. [हिं. गड़ना] काँटा।

गड्ड—संज्ञा पुं. [सं. गण] समूह, गड्डी।

संज्ञा पुं. [सं. गर्त = गड्ढा] गड्ढा।

गढ़ंत—वि. [हिं. गढ़ना] कल्पित, बनावटी।

संज्ञा स्त्री.—बनावटी या कल्पित बात।

गढ़—संज्ञा पुं. [सं. गड़=खाई] (१) खाई। (२) किला, कोट। उ.—निरभय देह, राजगढ़ ताकौ, लोक मनन-उतसाहु—१-४०।

मुहा.—गढ़ तोड़ना (जीतना)—कठिन काम करना।

गढ़त, गढ़न—संज्ञा स्त्री. [हिं. गढ़ना] गढ़न, ढाँचा।

गढ़ना—क्रि. स. [सं. घटन, प्रा. घडन] (१) काँट-छाँट करना, रचना, बनाना। (२) सुडौल करना, ठीक करना। (३) बात बनाना, कल्पना करना।

मुहा.—गढ़ गढ़ कर बातें करना—झूठ-मूठ की बातें गढ़ना।

(४) मारना, पीटना। (५) प्रस्तुत या उपस्थित करना।

गढ़पति—संज्ञा पुं. [हिं. गढ़+पति] (१) किले का अधिकारी या स्वामी। (२) राजा।

गढ़वना—क्रि. अ. [सं. गढ़=किला] (१) किले में जाना। (२) रक्षित स्थान में पहुँचना।

गढ़वार, गढ़वाल—संज्ञा पुं. [हिं. गढ़+वाला] (१) किले का अधिकारी या स्वामी। (२) राजा।

गढ़वै—क्रि. अ. [सं. गढ़=किला] (भयभीत होकर) किले में आश्रय लिया। उ.—गढ़वै भयौ नरक-पति मोसौं, दीन्हें रहत किवार। सेना साथ बहुत भाँतिन की, कीन्हें पाप अपार—१-१४१।

संज्ञा पुं. (१) गढ़पति। (२) राजा। (३) सरदार।

गढ़ाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गढ़ना] (१) बनाने या सुडौल करने का काम। (२) गढ़ने की मजदूरी।

गढ़ाऊँ—क्रि. स. [हिं. गढ़ाना] गढ़वाऊँ, बनाऊँ, तैयार कराऊँ। उ.—मैं निरबल बित-बल नहीं, जो और गढ़ाऊँ—६-४२।

गढ़ाना—क्रि. स. [हिं. गढ़ना का प्रे.] (१) बनवाना, सुडौल करना।
क्रि. अ. [हिं. गाढ़=कठिन] बुरा लगाना।

गढ़ाये—क्रि. स. [हिं. गढ़ाना] बनवाये, सुघटित कराये। उ.—कंचन कलस गढ़ाये कब हम देखे धौं यह गुनिये—११३०।

गढ़ि—क्रि. स. [हिं. गढ़ना] (१) बनाकर, रचकर। उ.—गढ़ि गढ़ि ल्यायौ बाढ़ई, धरती पर डोलाइ, बलि हालरु रे—१०-४७।
मुहा.—गढ़ि गढ़ि बात बनावत (बानति)—झूठ-मूठ की कल्पना करना, नमक-मिर्च लगाकर कोई बात कहना। उ.—(क) उनके चरित कहा कोउ जानै, उनहीं कही तु मानति। कदम तीर तैं मोहिं बुलायौ, गढ़ि गढ़ि बातैं बानति। (ख) जो जैसो तैसौ त्यों चलिये हरि आगे गढ़ि बात बनावत—पृ. ३२६।
(२) लीन होकर, पगकर, मग्न होकर। उ.—यह चतुराई अधिकाई कहाँ पाई स्याम वाके प्रेम की गढ़ि पढ़े हौ पटी—२००८।

गढ़िया—संज्ञा पुं. [हिं. गढ़ना] गढ़नेवाला।

गढ़ी—क्रि. स. स्त्री [हिं. गढ़ना] सुघटित की, रची, ठीकठाक की। उ.—(क) भई देह जो खेह करम-बस जनु तट गंगा अनल दढ़ी। सूरदास प्रभु दृष्टि कृपा-निधि, मानौ फेरि बनाई गढ़ी—९-१७०। (ख) हौं अपराधिनि चतुर बिधाता काहे कौ बनाइ गढ़ी—२७६४।
संज्ञा स्त्री. [हिं. गढ़] (१) छोटा किला। (२) मजबूत मकान।

गढ़ीश, गढ़ीस—वि. [हिं. गढ़ + सं. ईश] गढ़ का स्वामी या अधिकारी।

गढ़ै—क्रि. स. [हिं. गढ़ना] गढ़ता है, सोचता है, कल्पना करता है। उ.—जिय जिय गढ़ै, करै बिस्वासहिं, जौन लंका लोग—९-७५।

गढ़ैया—वि. [हिं. गढ़ना] गढ़नेवाला, बनानेवाला, रचनेवाला। उ.—आनि धरयौ नन्दद्वार, अति हीं सुन्दर सुढार। ब्रज बधू कहँ बार-बार धन्य र गढ़ैया १०-४१—।

गढ़ोई—संज्ञा पुं. [हिं. गढ़] किले का स्वामी।

गढ़्यौ—क्रि. स. [हिं. गढ़ना] गढ़ा, बनाया, रचा। उ.—कनक-रतन-मनि पालनौ, गढ़्यौ काम सुतहार—१०-४२।

गण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) समूह, झुंड। (२) श्रेणी, कोटि। (३) तीन वर्णों का समूह। (४) शिव के पारिषद। (५) दूत, सेवक। (६) स्वपक्ष के व्यक्ति। (७) चोवा नामक सुगंधित द्रव्य। (८) समाज, संघ। (९) शासन के प्रबंधकों का संघ या मंडल।

गणक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ज्योतिषी। (२) गणना या हिसाबकिताब करनेवाला।

गणतंत्र—संज्ञा पु. [सं.] प्रजा के प्रतिनिधियों का शासन, जनतंत्र, प्रजातंत्र।

गणन—संज्ञा पुं. बहु. [सं. गण] दूत, सेवक। उ.—गणन समेत सती तहँ गयी।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) गिनना। (२) गिनती।

गणना—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) गिनती। (२) हिसाब। (३) संख्या। (४) एक अलंकार।

गणनाथ, गणनायक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गणेश। (२) शिव।

गणनायिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] दुर्गा।

गणनीय—वि. [सं.] (१) गिनने योग्य। (२) प्रसिद्ध।

गणप, गणपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गणेश। (२) शिव।

गणराज्य—संज्ञा पुं. [सं.] वह राज्य जो प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता हो।

गणाधिप गणाध्यक्ष—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गण का स्वामी। (२) गणेश। (३) शिव।

गणिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) वेश्या। (२) एक वृक्ष। (३) एक फूल। (४) धन के लोभ से प्रेम करने वाली स्त्री।

गणित—संज्ञा पुं. [सं.] (१) मात्रा, संख्या और परिमाण की विद्या। (२) हिसाब।

गणितज्ञ—वि. [सं.] (१) गणित शास्त्र का जानने वाला। (२) ज्योतिषी।

गणेश—संज्ञा पुं. [सं.] एक देवता जिनका शरीर मनुष्य का और सिर हाथी का सा है। इनके चार हाथ, एक

दाँत और तीन आँखे हैं। इनकी सवारी चूहा है। इनके हाथों में पाश, अंकुश, पद्म और परशु हैं। ये महादेव के पुत्र माने जाते हैं।

वि.—गणों का स्वामी या अधिकारी।

गण्य—वि. [सं.] (१) गिनने योग्य। (२) प्रसिद्ध, मान्य।

गत—वि. [सं.] (१) गया हुआ, बीता हुआ।

मुहा०—गत होना—मर जाना।

(२) रहित, हीन।

क्रि.अ.—(१) व्यतीत हुये, बीत गये, अतीत हुए। उ.—इहिं विधि भ्रमत सकल निसि दिन गत कछू न काज सरत—१ ५५। (२) जाने पर, अस्त होने पर। उ.—जनु रबि गत संकुचित कमल जुग निसि अलि उड़न न पावै—१०-६५।

संज्ञा स्त्री—(१) दशा, अवस्था।

मुहा.—गत का—ठीक, काम का। गत बनाना—(१) दुर्गति करना। (२) मारना-पीटना। (३) हँसी उड़ाना।

(२) रूप, रंग, आकृति।

मुहा.—गत बनाना— (१) विचित्र वेश या धजा बनाना। (२) आकृति बिगाड़ना। (३) काम या उपयोग में लाना। (४) दुर्गति, दुर्दशा। (५) मृतक का क्रिया-कर्म। (६) नृत्य में शरीर का संचालन।

गतांक—वि. [सं.] जिसमें सद्गुण न रहे हों, गया-बीता, निकम्मा।

गतागत—वि. [सं.] आया-गया।

संज्ञा पुं. [सं.] जन्म-मरण।

गतालोक—वि. [सं. गत + आलोक] (१) प्रकाशरहित। (२) महत्वहीन।

गति—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) चाल, जाने की क्रिया, गमन। उ.—(क) ग्राह गह्यौ गज-बल बिनु ब्याकुल बिकल गात, गति लंगी। धाइ चक्र लै ताहिं उबार्यौ मार्यौ ग्राह-बिहंगी—१-२१। (ख) मधु मराल जुग पद पंकज के गति-बिलास जल मीन—३०३८। (२) हिलने-डोलने की क्रिया या शक्ति। उ.—स्रवन न सुनत चरन-गति थाकी, नैन भए जलधार—१-११८। (३) अवस्था, दशा। उ.—(क) सूर स्यामसुन्दर जौ सेवै क्यों होवै गति दीन—१-४६। (ख) ज्यों भुवंग तजि गयौ केंचुली सो गति भई हमारी—३०५६।

मुहा—गति कीनी–दुर्दशा की, बुरी दशा को पहुँचा दिया। उ.—अजामील तौ बिप्र तिहारौ हुतौ पुरातन दास। नैंकु चूक तैं यह गति कीनी पुनि बैकुंठ निवास—१-१३२।

(४) रूप, रंग, वेश। (५) पहुँच, प्रवेश। उ—गति नाहीं काहू की जहाँ—१० उ.-१२८। (६) प्रयत्न या युक्ति की सीमा। (७) सहारा, शरण। उ.—मेरी तौ गति-पति तुम अनतहिं कहँ सुख पाऊँ (८) चेष्टा, कार्य। उ.—जेतिक अधम उधारे प्रभु तुम तिन की गति मैं नापी—१-१४०। (९) लीला, माया। उ.—(क) अबिगत गति कछु कहत न आवै—१-२। (ख) दयानिधि तेरी गति लखि न परै—१-१०४। (ग) या गति की माई को जानै—२८८७। (१०) रीति, ढंग। (११) सुधि, ध्यान। उ.—स्रवन न सुनत देह-गति भूली गई बिकल मति बौरी—८८३। (१२) चर्चा, प्रसंग, बात। उ.—जोग की गति सुनत मेरे अंग आगि बई—३१३१। (१३) जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे में प्रवेश। (१४) मृत्यु के बाद जीवात्मा की दशा। उ.—कपट-हेत परसैं बकी जननी-गति पावै—१-४। (१५) मोक्ष, मुक्ति। (१६) कुश्ती का पैतरा। (१७) ग्रहों की चाल। (१८) ताल-स्वर के अनुसार शरीर-संचालन।

गति वधि—संज्ञा स्त्री. [सं.] १) चेष्टा। (२) काम का रंग-ढंग या चाल-ढाल।

गतिशील—वि. [सं.] (१) जिसमें गति हो। (२) उन्नति करनेवाला।

गत्थ—वि. [सं.] (१) पूँजी, जमा। (२) माल।

गत्वर—वि. [सं.] (१) जानेवाला। (२) नाशवान।

गथ—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथ, प्रा. गत्थ] पूँजी, गाँठ का धन, धन संपत्ति। उ.—(क) घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ, जौन दियैं मैं छूटौं। धर्म-जमानत मिल्यौ न

चहैं, तातैं ठाकुर लूटौ—१-१८५। (ख) अति मलीन बृषभानु कुमारी।... .. अधोमुख रहति उपर नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी—३४२५। (२) व्यापार का सामान,पण्य द्रव्य।उ.—(क) तुम्हरो गथ लादो गयंद पर हींग मिरच पीपरि कहा गावति। (ख) सूरदास गथ खोंटो काहे पारखि दोष धरे—पृ. ३३१। (३) झुंड, गरोह।

गथना—क्रि.स. [सं.ग्रंथन] (१) एक चीज को दूसरे में जोड़ना या गूँथना। (२) गढ़ गढ़कर बातें करना।

गथु—संज्ञा पुं. [हिं. गथ] पूँजी। उ.—ज्यों जुआरि रस- बींधि हारि गथु, सोचति पटकि चितो--११--१।

गथौ—संज्ञा पुं. [हिं. गथ] पूँजी, जमा। उ.—झीनी कामरि काज कान्ह ऐसी नहिं कीजै। काच पोत गिर जाइ नंद घर गथौ न पूजै—११२७।

गद—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष। उ.—फुरै न मंत्र, जंत्र, गद नाहीं, चले गुनी गुन डारे। प्रेम-प्रीति बिष हिरदै पारयौ, डारत है तनु जारे—७४७। (२) रोग। (३) श्रीकृष्ण का छोटा भाई। (४) श्रीराम की सेना का एक बानर। (५) एक असुर। (६) मोटापा।

संज्ञा पुं. [अनु.] गुलगुली वस्तु पर कड़ी या गुलगुली वस्तु के आघात का शब्द।

गदका—संज्ञा पुं. [सं. गदा या गदक, हिं. गतका] (१) खेलने का डंडा। (२) एक खेल।

गदकारा—वि. पुं. [अनु. गद+कारा (प्रत्य.)] गुलगुला, गुदगुदा।

गदगद—वि. [सं. गद्गद] श्रद्धा, हर्ष आदि के आवेग से पूर्ण। उ.—गदगद बचन नयन जल पूरित बिलख बदन कृस गातैं—सा. उ. ४६।

गदगदा—संज्ञा पुं. [देश.] रत्ती का पौधा।

गदना—क्रि. स. [सं. गदन] कहना।

गदबद—वि. [हिं. गुदगुदा] गुलगुला, मुलायम।

गदम—संज्ञा पुं. [देश.] थाम, आड़, पुश्ता।

गदर—संज्ञा पुं. [अ. ग़दर] (१) हलचल, उपद्रव। (२) बगावत, विद्रोह।

संज्ञा पुं. [हिं. गद्दा] रुई की बगलबंदी जो जाड़े में ठाकुर जी को पहनाते हैं।

गदरा—वि. [हिं. गद्दर] जो अच्छी तरह पका न हो, अधपका।

गदराना—क्रि. अ. [अनु. गद] (१) (फल आदि) पकने लगना। (२) युवावस्था में शरीर का पुष्ट होने लगना। (३) आँखें दुखने पर होना।

वि.—गदराया हुआ, पुष्ट।

गदला—वि. [हिं. गंदा] मटमैला या गंदा (पानी)।

गदलाना—क्रि. स. [हिं. गदला] पानी गंदा करना।

क्रि. अ.—(पानी का) गंदा या मैला होना।

गदहपचीसी—संज्ञा स्त्री. [हिं.] अनुभवहीनता की उम्र जो १६ से २५ वर्ष तक मानी जाती है।

गदहपन—संज्ञा स्त्री. [हिं. गदहा+पन (प्रत्य.)] मूर्खता, अनुभवहीनता।

गदहा—संज्ञा पुं. [सं.] रोग हरनेवाला, वैद्य।

संज्ञा पुं. [सं. गर्दभ, प्रा. गद्दह] (१) गधा, खर, गर्दभ। (२) मूर्ख, नासमझ, अनुभवहीन।

गदांबर—संज्ञा पुं. [सं.] मेघ।

गदा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) लोहे का एक प्राचीन शस्त्र जिसमें डंडे के एक सिरे पर लट्टू होता था। (२) लोढ़ जो गदा के आकार का होता है।

संज्ञा पुं. [फ़ा.] भिखमंगा।

गदाई—वि. [फ़ा. गदा=फकीर+ई (प्रत्य.)] (१) तुच्छ, नीच। (२) रद्दी, बेकार।

गदाका—वि. [हिं. गद] सुडौल शरीरवाला।

संज्ञा पुं.—जमीन पर पटकने की क्रिया।

गदाधर—संज्ञा पुं. [सं.] गदासुर की हड्डियों की बनी गदा धारण करनेवाले विष्णु।

गदाला—संज्ञा पुं. [हिं. गदा] (१) हाथी पर कसने का गद्दा। (२) बहुत मोटा रुई का वस्त्र।

गदावारण—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाजा।

गदित—वि. [सं.] कहा हुआ।

गदी—वि. [सं. गदिन्] (१) रोगी। (२) गदाधारी।

गदेला—संज्ञा. पुं. [हिं. गद्दा] (१) रुई का मोटा वस्त्र। (२) हाथी की पीठ का गद्दा।

संज्ञा पुं. [देश.] छोटा बालक।

गदोरी—संज्ञा. स्त्री. [हिं. गद्दी] हथेली।

गद्गद—वि. [सं.] (१) अधिक हर्ष प्रेम, श्रद्धा आदि

के आवेग से ऐसा युक्त कि अपनी स्थिति का उसे ज्ञान न रहे। (२) अधिक हर्ष, प्रेम, श्रद्धा आदि के आवेग के कारण रुका या अस्पष्ट। उ.—गद्गद सुर पुलक रोम, अंग प्रेम भीजै—१-७२। (३) प्रसन्न, पुलकित।

संज्ञा पुं. [सं.] हकलाने का रोग।

गद—संज्ञा पुं. [अनु.] (१) मुलायम या गुदगुदी जगह पर किसी चीज के गिरने का शब्द। (२) किसी चीज के हजम न होने पर पेट का भारीपन। (३) एक कल्पित जादू की लकड़ी जिसका स्पर्श करके मनुष्य मूर्ख हो जाता है।

मुहा.—गद मारना—वश में करना। गद मारा जाना—मूर्ख हो जाना।

वि.— मूर्ख, जड़।

गदर—वि. [देश.] (१) अधपका। (२) मोटा गद्दा।

गद्दा—संज्ञा पुं. [हिं. 'गद्' से अनु.] (१) मोटा बिछौना जिसमें रुई या पयाल भरा हो। (२) हाथी की पीठ का मोटा बिछौना जिस पर हौदा कसा जाता है। (३) घास, रुई आदि का बोझ। (४) गुदगुदी चीज की पोली-पोली मार।

गद्दी—संज्ञा. स्त्री. [हिं. गद्दा] (१) छोटा गद्दा। (२) घोड़े, ऊँट आदि की काठी रखने की गद्दी। (३) बैठने की छोटी गद्दी। (४) किसी बड़े पदाधिकारी का पद। (५) राजवंश या शिष्यवंश-परंपरा। (६) हाथ-पैर की हथेली या गदेली।

गद्दीनशीन—वि. [हिं. गद्दी + फ़ा. नशीन] (१) जो सिंहासन पर बैठे। (२) उत्तराधिकारी।

गद्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) वह रचना जिसमें वर्ण-मात्रा आदि का नियम न हो, पद्य का उलटा। (२) काव्य का एक भेद जिसमें छंद-वृत्त का नियम न हो। (३) शुद्ध राग का एक भेद।

गद्यात्मक—वि. [सं.] गद्य का, गद्य में रचा हुआ।

गधा—संज्ञा पुं. [हिं. गदहा] (१) खर, गदहा। (२) मूर्ख, अनुभवहीन।

गधेड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गधी + एड़ी (प्रत्य.)] फूहड़ या गँवार स्त्री।

गन—संज्ञा पुं. [सं. गण] (१) समूह, दल, जत्था। उ.—(क) श्रीपति जू अरि-गन-गर्व प्रहारयौ—१-३१। (ख) मदन रिस के आदि ते मिल मिली गुनगन ऐन—सा. ६६। (२) दूत, सेवक। उ.—गनन समेत सती तहँ गयी। तासौं दच्छ बात नहीं कही। (३) श्रेणी, कोटि। (४) पक्षपाती। (५) चोवा नामक सुगंधित द्रव्य।

गनक—संज्ञा पुं. [सं. गणक] ज्योतिषी। उ.—सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल-गनक-गुनी—१०-२४।

गनगनाना—क्रि. अ. [अनु. गनगन] (१) रोमांच होना। (२) जाड़े आदि से काँपना।

गनगौर—संज्ञा स्त्री. [सं. गण+गौरी] चैत्र के शुक्ल पक्ष की तीज जब गणेश और गौरी की पूजा होती है।

गनत—क्रि. स. [सं. गणन, हिं. गिनना] (१) गिनते हैं, मानते हैं, समझते हैं। उ.- तिनका-सौं अपने जन कौ गुन मानत मेरु-समान। सकुचि गनत अपराध - समुद्रहिं बूँद - तुल्य भगवान—१-८। (२) ध्यान में लाते हैं,महत्व का समझते हैं। उ.—राम भक्तवत्सल निज बानौं। जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहिं, रंक होइ कै रानौं—१-११।

मुहा.—न गनत काहूँ—किसी को कुछ नहीं समझते, बदते या मानते हैं, बहुत तुच्छ समझते हैं। उ.—एक एक न गनत काहूँ, इक खिलावत गाय—१०-२६।

(३) गिनते-गिनते, हिसाब लगाते लगाते, जोड़ते-जोड़ते। उ.—अँखियाँ हरि दरसन की भूखी········। अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहीं झूँखी—३०२६।

गनती—संज्ञा स्त्री. [सं. गणना, हिं. गणना, गिनती] गिनती, गणना। उ.—(क) गाइ-गनती करन जैहैं, मोहि लै नँदराइ—६७६। (ख) गनती करत ग्वाल गैयनि की, मोहिं नियरैं तुम रैहौ—६८०।

मुहा.—कौने गनती—किस हिसाब में, बिलकुल तुच्छ, नगण्य। उ.—तुम हरता करता प्रभु जू, मातु-पिता कौने गनती—१२२८।

गनना—क्रि. स. [हिं. गिनना] गिनती करना या हिसाब लगाना।

संज्ञा स्त्री. [गिनना] **गिनती।**

गननाना—क्रि. अ. [हिं गन-गन (अनु.)] (१) **शब्द से भर जाना, गूँजना। (२) घूमना, चक्कर में आना।**

गननायक—संज्ञा पुं. [सं गण+नायक] (१) **गणेश। (२) शिव।**

गनप—संज्ञा पुं. [सं. गणप] **गणेश।**

गनपति—संज्ञा पुं. [सं. गणपति] (१) **गणों के नायक। (२) शिव। (३) गणेश।**

गनराय—संज्ञा पुं. [सं. गणराज] **गणेश।**

गनहिं—क्रि. स. [हिं. गिनना] **गिनते हैं, समझते हैं, मानते हैं।** उ.—सूरदास प्रभु सदा भक्तबस रंक न गनहिं न राइ—२६३६।

संज्ञा पुं. सवि. [सं. गण + हिं. हिं (प्रत्य.)] **गणों को।**

गनाइ—क्रि. स. [हिं. गिनाना] **गिनाकर, गिनवा (लीजिए)।** उ.—बहुत बिनय करि पाती पठई, नृप लीजै सब पुहुप गनाइ—५८२।

गनाना—क्रि. स. [हिं. गिनना] **गिनती कराना।**

क्रि. अ.—**गिना जाना, गिनती होना।**

गनायौ—क्रि. स. [हिं. गिनना] **मानता है, समझता है।** उ.—सूर कह्यो मुसुकाय प्रानप्रिय मो मन एक गनायौ—सा. ६५।

गनाल—संज्ञा स्त्री. [सं. गज + नाल] **एक तोप।**

गनावत—क्रि. स. [हिं. गिनाना] **गिनाते हैं, गिनती कराते हैं, महत्व समझाते हैं।** उ.—मेंढ़ा मढ़ी मगर गुडरारो मोर आपु मनवाह गनावत—६७८।

गनावन—क्रि. स. [हिं. गिनाना] **गणना कराने (के लिए), हिसाब लगवाने (के उद्देश्य से)।** उ.—कस्यप रिषि सुर तात, सु लगन गनावन रे–१०-२८।

गनावै—क्रि. स. [हिं. गिनाना] (१) **गिना रही है। (२) बता रही है, संकेत कर रही है।** उ.—सूरज प्रभु मिलाप हित स्यानी अनमिल उक्ति गनावै—सा. १५।

गनि—क्रि. स. [हिं. गिनना] (१) **समझ कर, अनुमान करके।** उ.—अब मिथ्या तप, जाप, ज्ञान सब प्रगट भई ठकुराई। सूरदास उद्धार सहज गनि, चिंता सकल गँवाई—१-२०७। (२) **गिनाकर, गणना करके।** उ.—सूर-प्रभु चरित अनगित, न गनि जाहिं—४-११।

गनिका—संज्ञा स्त्री. [सं. गणिका] (१) **एक वेश्या जिसका उद्धार तोते को राम नाम पढ़ाते समय हो गया था। (२) वेश्या।** उ.—गनिका-सुत सोभा नहिं पावत जाके कुल कोऊ न पिता री—१-३४। (३) **धन के लोभ से प्रेम करनेवाली स्त्री। (४) एक फूल। (५) एक वृक्ष।**

गनिकै—क्रि. स. [हिं. गिनना] **गिनकर, गणना करके, हिसाब लगाकर।** उ.—(नंद जू) आदि जोतिसी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयौ। लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुमहिं सुनायो—१०-८६।

गनियत—क्रि. स. [हिं. गिनना] (१) **गिनते हैं, गणना करते हैं।** उ.—कुसुमित धर्म-कर्म कौ मारग जउ कोउ करत बनाई। तदपि बिमुख पाँती सो गनियत, भक्ति हृदय नहिं आई—१-६३। (२) **मानते हैं, ध्यान देते हैं।** उ.—तुम्हरी प्रीति हमारी सेवा गनियत नाहिन कातें—२५२८।

गनियारी—संज्ञा स्त्री. [सं. गणिकारी] **एक पौधा।**

गनियै—क्रि. स. [हिं. गिनना] **गिनिए, गणना कीजिए, शुमार लगाइए।** उ.—कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी अपनी—१-३६।

गनी—क्रि. स. [हिं, गिनना] **गिनी, गिनकर, गणना करके।** उ.—अर्थ, धर्म अरु काम, मोक्ष फल, चारि पदारथ देत गनी—१-३६।

संज्ञा स्त्री [हिं. गिनती] **गणना, गिनती।**

मुहा.—कहा गनी—**क्या गिनती है, क्या समझा जाता है, तुच्छ या नगण्य है।** उ.—इन्द्र समान हैं जिनके सेवक नर बपुरे की कहा गनी—१-३६।

वि. [अ. ग़नी] **धनी या धनवान।**

गनीम—संज्ञा पुं. [अ. ग़नीम] (१) **लुटेरा। (२) शत्रु।**

गनीमत—संज्ञा पुं. [अ. ग़नीमत] (१)**लूट का माल। (२) मुफ्त या बेमेहनत का माल। (३) बड़ी बात, संतोष की बात।**

गनेस—संज्ञा पुं. [सं. गणेश] **हिन्दुओं के पाँच प्रधान देवताओं में एक जिनको महादेवजी का पुत्र माना गया है और जो उनके गणों के अधिपति हैं।**

गनेस्वर—संज्ञा पुं. [सं. गण + ईश्वर] गणों के नायक, गणेश जी। उ.—गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो) —१०.४०।

गनै—क्रि. स. [हिं. गिनना] (१) समझे, माने, महत्व का जाने। उ.—(क) यह व्रत धारे लोक मैं विचरै समकरि गनै महामनि-काँचै—२-११। (ख) चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै—६-५३। (ग) रुक्म बरबस ब्याहि दैहै गनै पितहि न माइ—१०उ.-११३। (२) गिनता है। उ.—भूमि रेनु कोउ गनै, नक्षत्रनि गनि समुझावै। कह्यौ चहै अवतार, अन्त सोऊ नहिं पावै—२-३६।

गनैगौ—क्रि.स. [हिं. गिनना] गिनेगा, मानेगा, समझेगा। उ.—जेइ निरगुन गुनहीन गनैगो सुनि सुन्दरि अलसात—२२८२।

गनो, गनौ—क्रि. [हिं. गिनना] (१) गिनो, गणना करो। (२) ध्यान लगाओ। उ.—दधिसुत-बाहन मेखला लैके बैठि अनईस गनौ री—सा. उ. ५२।

गनौं—क्रि. स. [हिं. गनना, गिनना] गिन लूँ, अनुमानूँ, शुमार लगाऊँ। उ.—जिह्वा रोम रोम प्रति नाहीं, पौरुष गनौं तुम्हार—६-१४७।

गनौ—क्रि. स. [सं. गणन, हिं. गिनना] समझो, मानों, स्वीकार करो। उ.—मोहिं बिधि, बिष्नु, सिव, इन्द्र, रवि ससि गनौ, नाम मम लेइ आहुतिनि डारौ —४-११।

गन्ना—संज्ञा पुं. [सं. कांड] ईख, ऊख।

गन्नी—संज्ञा पुं. [हिं. गोन या गून=रस्सी] (१) टाट। (२) रीहा घास आदि से बना कपड़ा।

गप—संज्ञा स्त्री. [सं. कल्प, प्रा. कप्प] (१) इधर-उधर की सत्य-असत्य बात। (२) सारहीन बात। (३) झूठी बात। (४) झूठी सूचना। (५) डींग।

संज्ञा पुं. [अनु.] (१) झटपट निगलने का शब्द। (२) खाने या निगलने की क्रिया।

गपकना—क्रि. स. [हिं. गप (अनु.) + करना] झटपट खा लेना या निगलना।

गपड़चौथ—संज्ञा पुं. [हिं. गपोड़=बातचीत + चौथ] सारहीन बातचीत।

वि.— लीप-पोत की हुई, ऊटपटाँग।

गपत—क्रि. स. [हिं. गपना] व्यर्थ की बात या बकवाद करता है।

गपना—क्रि. स. [हिं. गप (अनु.)] व्यर्थ की बात या बकवाद करना।

गपिया—वि. [हिं. गप] गप्पी, बकवादी।

गपिहा—वि. [हिं. गप + हा (प्रत्य.)] गप्प हाँकने वाला, गप्पी।

गपोड़, गपोड़ा—संज्ञा पुं. [हि. गप] व्यर्थ की बात या बकवाद।

वि.—झूठी बात करनेवाला।

गपोड़बाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गपोड़ा + फ़ा. बाजी] व्यर्थ की बकवाद।

गप्प—संज्ञा. स्त्री. [हिं. गप] व्यर्थ की बात, बकवाद।

गप्पा—संज्ञा पुं. [अनु. गप] धोखा।

गप्पी—वि. [हिं. गप] (१) डींग मारनेवाला। (२) बकवाद करनेवाला। (३) झूठा।

गप्फा—संज्ञा पुं. [हिं. गप (अनु.)] (१) बड़ा सा कौर। (२) लाभ, फायदा।

गफ—वि. [सं. ग्रप्स=गुच्छा] घनी या गझिन (बुनावट)।

ग़फलत—संज्ञा स्त्री. [अ. ग़फ़लत] (१) लापरवाही। (२) बेखबरी। (३) भूलचूक।

गफिलाई—संज्ञा स्त्री. [फा. ग़ाफ़िल] (१) असावधानी। (२) बेखबरी। (३) भ्रम, मोह।

गबड़ी, गबड्डी—संज्ञा स्त्री. [हिं. कबड्डी] एक खेल, कबड्डी का खेल।

गबदी—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

गबद्द—वि. [हिं. गावदी] मूर्ख।

गबन—संज्ञा पुं. [अ. ग़बन] चोरी से माल उड़ा देना।

गबरगंड—वि. [हिं. गबर + सं. गंड] मूर्ख, नासमझ।

गबरहा—वि. [हिं. गोबर + हा (प्रत्य.)] गोबर मिला या लगा हुआ।

गबरा—वि. [हिं. गब्बर] (१) घमंडी। (२) धनी।

गबरू—वि. [फ़ा. ख़ूबरू] (१) उठती जवानी का। (२) भोला-भाला।

संज्ञा पुं.—पति, दूल्हा।

गबरून—संज्ञा पुं. [फ़ा. ग़बरून] एक मोटा कपड़ा।

गब्बर—वि. [सं. गर्व, पा. गब्ब] (१) घमंडी, अभि-

मानी। (२) चुप्पी साधनेवाला, काम टालनेवाला, मट्ठर। (३) मूल्यवान। (४) धनी।

गब्भा—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ, पा. गब्भ] (१) रुई का गद्दा। (२) चारे का गट्ठा।

गभस्तल—संज्ञा पुं. [सं. गभस्तिमान] गभस्तिमान नामक द्वीप।

गभस्ति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किरण। (२) सूर्य। (३) हाथ।

संज्ञा स्त्री.—अग्नि की स्त्री, स्वाहा।

गभस्तिमान्—संज्ञा पुं. [सं.] सूर्य।

गभीर—वि. [सं. गंभीर] (१) गहरा। (२) घना। (३) घोर। (४) शांत, सौम्य।

गभुआर, गभुवार—वि. [सं. गर्भ, पा० गब्भ + आर या वार (प्रत्य.)] (१) गर्भ काल का (बाल)। (२) जिसके जन्म-काल के बाल न कटे हों, जिसका मुंडन न हुआ हो। (३) छोटा, नादान।

गभुआरी—वि. स्त्री. [हिं. गभुआर] (१) गर्भ-काल की (बालों की लटें)। (२) नादान, छोटी।

गभुआरे—वि. [हिं. गभुआर] गर्भ के (बाल)। उ.—गभुआरे सिर केस हैं, बर घूँघरवारे—१०-१३४।

गम—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राह, मार्ग। (२) सहवास।

संज्ञा स्त्री. [सं. गम्य] (किसी स्थान या विषय में) प्रवेश, पहुँच, पैठ। उ.—(क) जहाँ न काहू कौ गम, दुसह दारुन तम, सकल बिधि बिषम, खल मल खानि—१-७७। (ख) असुरपति अति ही गर्व धर्यौ। तिहूँ भुवन भरि गम है मेरो मो सन्मुख को आउ! (ग) स्वर्ग-पतार माहिं गम ताको—६-७४।

मुहा.—गम करना—चटपट खा लेना।

वि.—जो जानी जा सकें, जो ज्ञात हो सके। उ. —प्रभु की लीला गम नहीं, कियो गब अति अंग —४६२।

संज्ञा पुं. [अ. ग़म] (१) दुख, शोक।

मुहा.—गम खाना—क्षमा करना, ध्यान न देना। गम गलत—दुख भुलाने का प्रयत्न।

(२) चिंता, फिक्र।

गमक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जानेवाला व्यक्ति। (२) सूचक, बतलानेवाला (व्यक्ति)। (३) एक स्वर से दूसरे पर जाने का एक भेद (संगीत)। (४) तबले की ध्वनि।

संज्ञा स्त्री. [सं. गमक = फैलनेवाला] सुगंध, महक।

गमकना—क्रि. अ. [हिं. गमक] महकना, सुगंध फैलाना।

गमकीला—वि. [हिं. गमक + ईला (प्रत्य.)] सुगंधित, महकनेवाला।

गमखोर—वि. [फा. ग़म + ख़्वार] सहनशील।

गमखोरी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ग़म + ख़्वारी] सहनशीलता।

गमगीन—वि. [फ़ा. ग़म + गीन] दुखी, उदास।

गमत—संज्ञा पुं. [सं. गमन या गमथ = पथिक] (१) मार्ग, पथ। (२) व्यवसाय, धंधा।

गमथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) राह, मार्ग। (२) व्यवसाय, धंधा। (३) राही, पथिक।

गमन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जाना, चलने की क्रिया, यात्रा करना। उ.—अस्व-निमित उत्तर दिसि कैं पथ गमन धनंजय कीन्हौं—१-२६। (२) संभोग, सहवास। (३) राह, मार्ग। (४) सवारी।

गमनना—क्रि. अ [सं. गमन] जाना, गमन करना।

गमनपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] यात्रा का अधिकारपत्र।

गमना—क्रि. अ. [सं. गमन] जाना, चलना।

क्रि. अ. [अ. ग़म = रंज + ना (प्रत्य.)] (१) शोक करना, दुख मनाना। (२) परवाह करना, ध्यान देना।

गमनाक—वि. [फ़ा. ग़म + नाक] दुख भरा।

गमला—संज्ञा पुं. [?] छोटे पौधे लगाने का पात्र।

गमाई—क्रि. अ. [सं. गमन, हिं. गमना] बीत गयी, समाप्त हुई। उ.—तृतीय पहर जब रैनि गमाई—१०७२।

क्रि. स. [हिं. गमाना] खो दी, गँवा दी। उ.—(क) इंद्र ढीठ बलि खाइ हमारी देखौ अकल गमाई—६८५। (ख) बार बार कहै कुँवर राधिका मोतिसरी कहाँ गमाई—१५४४। (ग) लोक लाज की कानि गमाई फिरत गुडीबस डोरी—१४७२। (घ) हरि-ग्रह जननी हित न सरस कह सुरभी सुतर गमाई —सा. १६।

गमाए—क्रि. स. [हिं. गमाना] **खोकर, खो दिये, गँवाए।** उ.—कीन्ही प्रीति प्रगट मिलिबे की अँखिया सर्म गमाए।

गमागम—संज्ञा पुं. [सं. गम + आगम] **आना, जाना।**

गमाना—क्रि. स. [हिं. गँवाना] **खोना, गँवाना।**

गमार—वि. [हिं. गँवार] **(१) गाँव का, देहाती। (२) मूर्ख, असभ्य, उजड्ड।**

गमि—संज्ञा स्त्री. [हिं. गम] **पहुँच, प्रवेश, पैठ।** उ.—तिहूँ भुवन भरि गमि है मेरो मो सम्मुख को आउ—२३७७।

गमिना—क्रि. स. [हिं. गम=ध्यान देना] **ध्यान देना।**

गमी—संज्ञा स्त्री. [अ. ग़म, ग़मी [**(१) शोक की अवस्था। (२) मृत व्यक्ति का शोक। (३) मृत्यु।**

गम्मत—संज्ञा स्त्री. [मराठी] **(१) विनोद, हँसी। (२) मौज, बहार।**

गम्य—वि. [सं.] **(१) जाने योग्य। (२) प्राप्य, लभ्य, साध्य।** उ.—तन-रिपु काम चित रिपु लीला ज्ञान गम्य नहिं याते—३११५। **(३) संभोग या सहवास के योग्य।**

संज्ञा स्त्री. [सं.] **पहुँच, प्रवेश, पैठ।** उ.—तिहूँ भुवन भरि गम्य है जाकौ नर नारी सब गाउ—११५८।

गम्यता—संज्ञा स्त्री. [सं. गम्य] **गमन।**

गम्हीर—वि. [सं. गंभीर] **गहन, जिसको पार करना कठिन हो।** उ.—आठ रवि लें देख तब तें परत नाहिं गम्हीर—सा. ४४।

गयंद—संज्ञा पुं. [सं. गजेंद्र, प्रा. गयिंद, गइन्द्र] **(१) हाथी, गज। (२) दोहे का एक भेद।**

गय—संज्ञा पुं. [सं. गज, प्रा. गय] **हाथी।** उ.—(क) जो बनिता सुत-जूथ सकेले, हय गय-बिभव घनेरो। सबै समर्पौं सूर स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरो—१-२६६। (ख) अमरा सिव रबि ससि चतुरानन हय गय बसह हंस मृग जावत।

संज्ञा पुं. [सं.] **(१) घर, मकान। (२) आकाश। (३) धन। (४) प्राण। (५) श्री रामकी सेना का एक बानर सेनापति (६) एक राजर्षि। (७) पुत्र, संतान। (८) एक असुर। (९) गया तीर्थ।**

गयन—संज्ञा पुं. [सं. गमन] **(१) मार्ग, राह, गैल। (२) गमन, प्रस्थान।** उ.—ना करु बिलँब, भूषन करत दूषन, चिहुर बिहुर ना ना करत गयन—२२१४।

गयनाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. गज + नाल] **बड़ी तोप।**

गयल—संज्ञा स्त्री. [हिं. गैल] **मार्ग, राह।**

गयवली—संज्ञा पुं. [देश.] **एक पेड़।**

गयवा—संज्ञा स्त्री. [देश.] **मोहेली मछली।**

गयशिर—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) आकाश। (२) गया के समीप एक पर्वत जो गय नामक असुर के सिर पर माना जाता है। (३) गया तीर्थ।**

गया—संज्ञा पुं. [सं.] **बिहार या मगध देश का एक पुण्य स्थान जो प्राचीन समय में प्रधान यज्ञस्थल था। यह तीर्थ श्राद्ध और पिंडदान के लिए बहुत प्रसिद्ध है।** उ.—अस्व-जज्ञहु जौ कीजै, गया, बनारस अरु केदार—२-३।

संज्ञा स्त्री.—**गया तीर्थ में की जानेवाली पिंडोदक आदि क्रियाएँ।**

क्रि. अ. [सं. गम] **'जाना' क्रिया का भूतकालिक रूप, प्रस्थानित हुआ।**

मुहा.—गया-गुजरा (बीता)—**बुरा, नष्ट-भ्रष्ट।**

गयापुर—संज्ञा पुं. [सं.] **गया तीर्थ।**

गयाल—संज्ञा स्त्री. [देश.] **वह जायदाद जिसका कोई मालिक न हो।**

गयावाल—संज्ञा पुं. [हिं. गया+वाल (प्रत्य.)] **गया तीर्थ का पंडा।**

गयो—क्रि. अ. [हिं. गया] **(१) प्रस्थानित हुआ। (२) बीत गया, समाप्त हुआ।** उ.—जनम साहिबी करत गयौ—१६४।

गरंड—संज्ञा पुं. [सं. गंड = मंडलाकार रेखा] **चक्की के चारो ओर का घेरा जिसमें पिसा आटा गिरता है।**

गरंथ—संज्ञा पुं. [सं. ग्रंथ] **पुस्तक, ग्रंथ।**

गर—संज्ञा पुं. [हिं. गल] **गला, गरदन।** उ.—(क) कंचन मनि खोलि डारि, काँच गर बँधाऊँ—१-१६६। (ख) लोचन सजल, प्रेम-पुलकित तन, गर-अंचल, कर माल—१-१८९। (ग) सूर परस्पर करत कुलाहल गर-स्रग पहिरावैंनी—९-११। (घ) मुंड-माला मनौ हर-गर—१०-१७०।

संज्ञा पुं. [सं.]—(१) कड़ुआ और मादक रस। (२) एक रोग। (३) विष, जहर।

प्रत्य. [फ़ा.] बनानेवाला।

गरक—वि. [अ. ग़र्क़] (१) डूबा हुआ। (२) नष्ट, बरबाद। (३) (काम में) लीन।

गरकाब—संज्ञा पुं. [हिं. गरक] डूबने का भाव।

वि.—डूबा हुआ, निमग्न।

गरगज—संज्ञा पुं. [हिं. गढ़ + गज] (१) किले की दीवारों पर तोपों लिए बना बुर्ज। (२) ऊँचा टीला जहाँ युद्ध-सामग्री रखी जाती थी। (३) नाव की ऊपरी छत। (४) फाँसी का तख्ता।

वि.—बहुत बड़ा, विशाल।

गरगरा—संज्ञा पुं. [अनु.] गराड़ी, चरखी।

गरगवा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) नर गौरैया। (२) एक घास।

गरगाव—संज्ञा पुं. [फ़ा. ग़र्क़, गरक़ाब] डूबने की क्रिया या भाव।

वि.—(१) डूबा हुआ। (२) बहुत लीन।

गरज—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्जन] गंभीर शब्द।

संज्ञा स्त्री. [अ. ग़रज] (१) प्रयोजन, मतलब। उ.—प्रीति के बचन बाँचे बिरह अनल आँचे अपनी गरज को तुम एक पाँइ नाचे—२००३। (२) आवश्यकता। (३) चाह, इच्छा।

मुहा.—गरज का बावला—बहुत अधिक जरूरतमंद, जो अपनी इच्छा पूरी करने के लिए भला-बुरा सभी कुछ करने को तैयार हो।

क्रि. वि.—(१) निदान, आखिरकार। (२) अस्तु, अच्छा, खैर।

गरजत—क्रि. अ. [हिं. गरजना] (१) गंभीर और तुमुल शब्द करता है। उ.—गरजत क्रोध-लोभ कौ नारौ, सूझत कहुँ न उतारौ—१-२०६। (२)गर्व से ललकारता है। उ.—कहा कहौं हरि केतिक तारे, पावन पद परतंगी। सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी—१-२१। (३) चटकता है, तड़कता है, कड़कता है।

गरजन—संज्ञा पुं. [सं. गर्जन] (१) गरज,कड़क, गंभीर शब्द। (२) गरज का भाव। (३) गरजने की क्रिया।

गरजना—क्रि. अ. [सं. गर्जन] (१) गंभीर शब्द करना। (२) चटकना, तड़कना। (३) ललकारना, चुनौती देना।

वि.—गरजनेवाला, जोर से बोलनेवाला।

गरजमंद—वि. [फ़ा. ग़रज़मन्द] (१) जरूरतवाला। (२) इच्छा रखनेवाला।

गरजी—क्रि. अ. स्त्री [हिं. गरजना] गंभीर शब्द करने लगी, जोर से बोली। उ.—धर-अम्बर लौं रूप निसाचरि गरजी बदन पसारि—६-१०४।

वि. [हिं.गरज़ + ई(प्रत्य.)] (१) मतलब गाँठनेवाला, प्रयोजन रखनेवाला। (२) चाहनेवाला,गाहक। उ.—तुम्हरी प्रीति ऊधो पूरब जनम की अब जु गये मेरे तनहु के गरजी—३१६२।

गरजू—वि. [हिं. गरजी] (१) मतलब रखनेवाला। (२) इच्छा रखनेवाला।

गरट्ट—संज्ञा पुं. [सं. ग्रन्थ, पा. गंठ, हिं. गट्ठ] समूह, झुंड।

गरत—क्रि. अ. [हिं. गलना] गलता है, क्षीण होता है। उ.—अब सुनि सूर कान्ह केहरि के बिन गरत गात जैसे ओरे-२८१८।

गरतौ—क्रि. अ. [हिं. गलना] नष्ट होता, वृथा हो जाता। उ.—तुम गुन की जैसे मिति नाहिंन, हौं अघ कोटि बिचरतौ। तुम्हैं-हमैं प्रतिबाद भए तैं गौरव काकौ गरतौ—१-२०३।

गरद—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गर्द] धूल, राख, खाक।

मुहा.—गरद समोयौ—धूल में मिला दिया, नष्ट हो गये। उ.—सौ भैया दुरजोधन राजा, पल मैं गरद समोयौ—१-४३।

संज्ञा स्त्री. [सं.] विष देनेवाला।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष। (२) एक कपड़ा।

गरदन—संज्ञा स्त्री. [फा.] (१) धड़ और सिर के बीच का अंग, ग्रीवा।

मुहा.—गरदन उठाना—विरोध या विद्रोह करना। गरदन ऐंठना (मरोड़ना)—(१) गला दबाकर मार डालना। (२) कष्ट पहुँचाना। गरदन

काटना—(१) सिरकाटना (२)हानि पहुँचाना।गरदन झुकना—(१) नम्र या अधीन होना। (२) लज्जित होना। (३) बेहोश होना। (४) मरना। गरदन न उठाना—(१) चुपचाप सहन करना। (२) लज्जित होना। (३) दुख या बीमारी से पड़े रहना। गरदन नापना—अपमान करना। गरदन पर—जिम्मे, ऊपर। गरदन पर बोझ रखना—भारी काम सौंपना। गरदन पर बोझ होना—(१) बुरा लगना। (२) भार होना। गरदन मारना—(१) मार डालना। (२) बहुत हानि पहुँचाना।

(२)जुलाहों की एक लकड़ी, साल। (३) बरतन आदि का ऊपरी पतला भाग।

गरदना—संज्ञा पुं. [हिं. गरदन] (१) मोटी गरदन। (२) गरदन पर लगनेवाला झटका या थप्पड़।

गरदनियाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरदन + इयाँ (प्रत्य.)] गरदन में हाथ डालने की क्रिया।

गरदनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरदन](१) कुर्ते आदि का गला। (२) गले का एक गहना। (३) कारनिस, कँगनी।

गरदर्प—संज्ञा पुं. [सं.] साँप।

गरदा—संज्ञा पुं. [फ़ा. गर्द] धूल, मिट्टी।

गरदान—वि. [फ़ा.] घूम फिरकर एक ही स्थान पर आ जानेवाला।

संज्ञा पुं.—(१) एक तरह का कबूतर जो घूम फिर कर अपने स्थान पर आ जाता है। (२) शब्द रूप-साधन। (३) फेर, चक्कर।

गरदानना—क्रि.स.[फ़ा. गरदान] (१) शब्द-रूप साधना। (२) बार बार कहना। (३) मानना, आदर करना।

गरदुआ—संज्ञा पुं. [हिं. गरदन] एक तरह का ज्वर।

गरधरन—संज्ञा पुं. [सं.] विष धारण करनेवाले, शिव।

गरना—क्रि. अ. [हिं. गलना] गल जाना।

क्रि. अ. [हिं. गड़ना] चुभ जाना।

क्रि. अ. [हिं. गारना] (१) निचोड़ा जाना। (२) निचुड़ना।

गरनाल—संज्ञा स्त्री. [हिं. गर+नली] चौड़े मुँह की तोप।

गरप्रिय—संज्ञा पुं. [सं.] विष पीनेवाले शिव।

गरब—संज्ञा पुं. [सं. गर्व] (१) घमंड, अभिमान। (२) हाथी का मद।

गरबई—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्व.] गर्व का भाव।

गरबगहेला—वि. पुं. [हिं. गर्व+गहना=ग्रहण करना] गर्वयुक्त, अभिमानी।

गरबत—क्रि. अ. [सं. गर्व, हिं. गरबना] गर्व करता है, घमंड या अभिमान दिखाता है। उ.—इहिं तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार—१-८४।

गरबना—क्रि. अ. [सं. गर्व.] गर्व या शेखी करना।

गरबाइ—क्रि. अ. [हिं. गरबाना] गर्व करना, घमंड में आना। उ.—रूप जोबन सकल मिथ्या, देखि जनि गरबाइ। ऐसे हीं अभिमान-आलस, काल ग्रसिहै आइ—१-३१५।

गरबाए—क्रि. अ. [हिं. गरबाना] गर्व किया, घमंड में आये। उ.—मागधपति बहु जीति महीपति, कछु जिय मैं गरबाए। जीत्यौ जरासंध, रिपु मारयौ, बल करि भूप छुड़ाए—१-१०६।

गरबाऊ—क्रि. अ. [हिं. गरबाना] गर्व हुआ, अभिमान किया। उ.—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरबाऊ। धरि बाराह रूप सो मारयौ, लै छिति दंत अगाऊ—१०-२२१।

गरबाना—क्रि. अ. [सं.गर्व.] अभिमान या घमंड करना।

गरबानो, गरबानौ—क्रि. अ. [हिं. गरबाना] घमंड में आया, अभिमान किया। उ.—भक्ति कब करिहौ जनम सिरानौ। बालापन खेलत ही खोयौ, तरुनाई गरबानौ—१-३२६।

गरबाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गलबाहीं] गले में बाँह डालने की क्रिया।

गरबित—वि. [सं. गर्व] गर्वयुक्त, अभिमानी। उ.—दाउँ परयौ अहि जानि कै, लियौ अंग लपटाइ। काली तब गरबित भयौ, दियौ दाउँ बताइ—५८६।

गरबीला—वि. [सं. गर्व,] अभिमानी, घमंडी।

गरबीली—वि. स्त्री. [हिं. पुं. गर्वीला] अभिमानिनी, गर्व करनेवाली। उ.—दधि लै मथति ग्वालि गरबीली—१०-२६६।

गरभ—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ] गर्भाशय। उ.-गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयौ बिस्राम—१-५७।

संज्ञा पुं. [सं. गर्व.] अभिमान, घमंड।

गरभदान—संज्ञा पुं. [सं. गर्भाधान] ऋतु प्रदान, पेट रखना।

गरभाना—क्रि. अ. [हिं. गर्भ] (१) गर्भ से होना। (२) गेहूँ आदि के पौधों में बाल लगना।

गरभी—वि. [हिं. गर्वी] अभिमानी।

गरम—वि. [फ़ा॰ गर्म (१) जलता हुआ, तप्त। (२) तेज, उग्र। (३) प्रबल, जोरशोर का। (४) जिसके सेवन से गरमी बढ़े। (५) आवेशयुक्त, उत्साहपूर्ण, जोश से भरा हुआ।

गरमाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरम] गरमी।

गरमागरमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरम+गरम] (१) मुस्तैदी, जोश, उत्साह। (२) कहा-सुनी।

गरमाना—क्रि. अ. [हिं. गरम] (१) शरीर में गरमी आना, उष्ण होना।

मुहा.—टेंट (हाथ) गरमाना—पास में रुपया पैसा आना या होना।

(२) मस्ताना, मद से भर जाना। (३) क्रोध करना, झल्लाना। (४) कुछ परिश्रम करने के बाद पशुओं का तेजी पर आना।

क्रि. स.—गरम करना, तपाना।

मुहा.—टेंट (हाथ) गरमाना-(१) रुपया देना। (२) रिश्वत या इनाम देना।

गरमाहट—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरम] गरमी, उष्णता।

गरमी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गर्मी] (१) ताप, उष्णता। (२) जी, उग्रता। (३) क्रोध, आवेश। (४) उमंग, जोश। (५) ग्रीष्म ऋतु।

गररा—संज्ञा पुं. [देश. गर्रा] एक तरह का घोड़ा।

गररात—क्रि. अ. [अनु.] भीषण ध्वनि करता हुआ, गरजता हुआ। उ.—सुनत मेघवर्तक साजि सैन लै आए।.......। घहरात तररात गररात हहरत पररात झहरात माथ नाए—६४४।

गरराना—क्रि. अ. [अनु.] गरजना, गड़गड़ाना, गंभीर या भीषण ध्वनि करना।

गररी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक चिड़िया जिसका दर्शन अथवा लड़ना अशुभ माना जाता है। इसे किलँहटी, गलगलिया या सिरोही भी कहते हैं। उ.—फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर, गररी करत लराई। माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाई—५४१।

गरल—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) विष, गर, जहर। उ.—अहि मयंक मकरंद कंद हति दाहक गरल जिवाए—२८५४। (२) साँप का विष। (३) घास का मुट्ठा, अँटिया या पूला।

गरलधर—संज्ञा पुं. [सं.] (२) विषपान करनेवाले शिव। (२) साँप।

गरलारि—संज्ञा पुं. [सं.] मरकतमणि, पन्ना।

गरवा—वि. [सं. गुरु] भारी, गरुआ।

संज्ञा पुं. [हिं. गला] गरदन, गला।

गरवाना—क्रि. अ. [हिं. गर्व] घमंड करना, अभिमान या गर्व करना।

गरवाने—क्रि. अ. [हिं. गरवाना] घमंड या अभिमान में आ गये। उ.—कहि कुसलातैं, साँची बातैं आवन कह्यौ हरि नाथै। कै गरवानै राजसभा अब जीवत हम न सुहाथै—३४४१।

गरवानौ—वि. [हिं. गरवाना] गर्व में चूर, अभिमान में भरा हुआ। उ.—हँसे स्याम मुख हेरि कै धोवत गरवानो—२५७५।

गरव्रत—संज्ञा पुं. [सं.] मोर, मयूर।

गरसना—क्रि. स. [हिं. ग्रसना] (१) खाना, भक्षण करना। (२) पकड़ना, थामना, रोकना।

गरह—संज्ञा पुं. [सं. ग्रह] (१) ग्रह। (२) बाधा।

वि.-बुरी तरह से पकड़ने या कष्ट पहुँचानेवाला।

गरहन—संज्ञा पुं. [सं.] काली तुलसी।

संज्ञा पुं. [देश.] एक मछली।

संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण] (१) चंद्र या सूर्य-ग्रहण। (२) पकड़ने की क्रिया।

गरहर—संज्ञा पुं. [हिं. गर = गल + हर] नटखट चौपायों के गले में बँधा हुआ काठ का टुकड़ा, कुंदा।

गरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

संज्ञा पुं. [हिं. गला] गरदन, गला।

गरागरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक लता।

गराज—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्जन] गरज, गंभीर शब्द ।

गराड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली या हिं. गड़गड़ (अनु.)] काठ या लोहे की चरखी जो कुएँ में घड़े की रस्सी डालने के लिए लगायी जाती है, घिरनी, चरखी ।

संज्ञा स्त्री. [सं. गंड = चिह्न] रगड़ का चिह्न ।

गराना—क्रि. स. [हिं. गलाना] (१) घुलाना । (२) पिघलाना ।

क्रि. स. [हिं. गारना] निचोड़कर दूर फेंक देना ।

गरानि, गरानी—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्लानि] लज्जा ।

गरारा—वि. [सं. गव, पु. हिं. गारो + आर (प्रत्य.)] प्रबल, प्रचंड, गर्वीला, उद्धत ।

संज्ञा पुं. [अ. गरगरा] (१) गरगर शब्द करके कुल्ली करना । (२) गरगरा करने की दवा ।

संज्ञा पुं. [हिं. घेरा] (१) ढीली मोहरी का पायजामा । (२) ढीली मोहरी । (३) चौड़ा थैला ।

संज्ञा पुं. [अनु.] चौपायों का एक रोग ।

गरारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गराड़ी] कुएँ की चरखी ।

गरावन—संज्ञा पुं. [हिं. गड़ावन] एक तरह का नमक ।

गरावा—संज्ञा पुं. [देश.] कम उपजाऊ भूमि ।

गरास—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास] कौर, गस्सा ।

गरासना—क्रि. स. [हिं. ग्रसना] (१) पकड़ना, थामना । (२) खाना, भक्षण करना ।

गरासी—वि. [सं. ग्रस्त, ग्रसित] पकड़ा या जकड़ा हुआ । उ.—अपनी सीतलता नहिं तजई जद्यपि बिधु भयो राहु गरासी—३३१५ ।

गरि—क्रि. अ. [हिं. गलना] गलकर, सड़कर ।

यौ.—जाउ गरि—गल जाय, सड़ जाय, नष्ट हो जाय । उ.—पापी जाउ जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात बिचारी—६-७६ । गए गरि—नष्ट हो गये, दूर हो गये । उ.—गज - गीध - गनिका - ब्याध के अघ गए गरि गरि गरि—१-३०६ ।

गरिमा—संज्ञा स्त्री. [सं. गरिमन्] (१) भारीपन, गुरुता । (२) महिमा, गौरव । (३) गर्व, अहंकार । (४) आत्मप्रशंसा, शेखी । (५) आठ सिद्धियों में एक जिससे साधक अपने को जितना चाहे भारी कर सकता है ।

गरिया—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़ ।

गरियाना—क्रि. अ. [हिं. गारी+आना (प्रत्य.)] गाली देना ।

गरियार—वि. [हिं. गड़ना-एक जगह रुकना] आलसी ।

गरियालू—संज्ञा पुं. [हिं. करिया, करियालू] काला या नीला रंग ।

वि.—काले-नीले रंग का ।

गरिष्ठ—[सं.] (१) बहुत भारी । (२) जो जल्दी न पचे ।

संज्ञा पुं.—(१) एक राजा (२) एक दानव । (३) एक तीर्थ ।

गरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुलिका, प्रा. गुडिया] (१) नारियल के भीतर का गूदा, गोला । (२) बीज की गूदी, गिरी, मींगी ।

संज्ञा स्त्री. [सं.] देवताड़ ।

गरीब—वि. [अ. ग़रीब] (१) दीन-हीन । उ.—स्याम गरीबनि हूँ के गाहक । दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निबाहक—१-१६ । (२) निर्धन, दरिद्र ।

संज्ञा पुं. [सं.] एक राग ।

गरीबनिवाज, गरीबनेवाज—वि. [फ़ा. ग़रीब + निवाज] दीन का दुख हरनेवाला, दयालु । उ.—लीजै पार उतारि सूर कौं महाराज ब्रजराज । नई न करन कहत प्रभु, तुम हौ सदा गरीबनिवाज-१-१०८ ।

गरीबपरवर—वि. [फ़ा.] दीनों को पालनेवाले ।

गरीबाना—वि. [फ़ा.] गरीबों की हैसियत का ।

गरीबामऊ—वि. [हिं. गरीब + मय (प्रत्य.)] गरीबों की हैसियत का ।

गरीबी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरीब + ई (प्रत्य.)] (१) दीनता, नम्रता । (२) दरिद्रता, निर्धनता ।

गरीयसी—वि. [सं.] (१) बड़ी भारी । (२) महान, प्रबल । (३) गौरवयुक्त, महत्वपूर्ण ।

गरु, गरुअ, गरुआ—वि. [सं. गुरु] (१) भारी, वजनी । (२) गौरवयुक्त । (३) गंभीर, शांत ।

गरुआई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरुआ] गुरुता, भारीपन ।

गरुआना—क्रि. अ. [सं. गुरु] भारी होना ।

गरुड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पक्षियों का राजा और विष्णु का वाहन । इसके पिता कश्यप थे और माता

विनता थी। यह सर्पों का शत्रु समझा जाता है। (२) उकाव पक्षी। (३) एक सफेद पक्षी जो पानी के किनारे रहता है। (४) सेना के एक व्यूह की रचना। (५) एक तरह का प्रासाद। (६) श्रीकृष्ण का एक पुत्र। (७) छप्पय छंद का एक भेद।

गरुड़गामी—संज्ञा पुं [सं.] विष्णु, श्रीकृष्ण। उ.—(क) नाथ सारंगधर, कृपा करि मोहिं पर, सकल अघ-हरन हरि गरुड़गामी—१-२१४। (ख) इहाँ औ कासौं कैहौं गरुणगामी।

गरुड़घंटा—संज्ञा पुं. [सं.] घंटा जिस पर गरुड़ की मूर्ति हो।

गरुड़ध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु (२) वह स्तंभ जिस पर गरुड़ की आकृति बनी हो।

गरुड़पाश—संज्ञा पुं. [सं.] एक तरह का फंदा।

गरुड़पुराण—संज्ञा पुं. [सं.] अठारह पुराणों में एक।

गरुड़भक्त—संज्ञा पुं. [सं.] गरुड़ के उपासक भक्त जो भारत में लगभग दो हजार वर्ष पूर्व रहते थे।

गरुड़यान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण।

गरुड़रुत—संज्ञा पुं [सं.] सोलह अक्षरों का एक छन्द।

गरुड़व्यूह—संज्ञा पुं. [सं.] सेना की एक व्यूह रचना।

गरुड़ासन—संज्ञा पुं. [सं. गरुड़ + आसन] वाहन गरुड़। उ.—जिन स्रवननि जन की बिपदा सुनि, गरुड़ासन तजि धावै (हो)—१०-१२८।

गरुत—संज्ञा पुं. [सं.] पंख, पक्ष, पर।

गरुता—संज्ञा स्त्री [सं. गुरुतर] (१) भारीपन, गुरुता। (२) बड़प्पन, बड़ाई, महत्व।

गरुवा—वि. [सं. गुरु] (१) भारी, वजनी। (२) गंभीर, शांत। (३) गौरवयुक्त।

गरुवाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरुआई] भारीपन, गुरुता।

गरूहर—संज्ञा पुं. [हिं. गरू + हर (प्रत्य.)] बहुत भारी बोझ।

गरू—वि. [सं. गुरु] भारी, वजनी। उ.—गरू भए महि मैं बैठाये, सहि न सकी जननी अकुलानी—१०-७८।

गरूर—संज्ञा पुं. [अ. ग़रूर] घमंड, अभिमान। उ.—हरि सरि कटि तटि लरकि जाइ जिनि बिसद नितम्ब गरूर—२११६।

गरूरता, गरूरताई संज्ञा स्त्री. [हिं. गरूर] (१) घमंड। (२) मस्ती।

गरूरा—वि. [हिं. गरूर] अभिमानी।

गरूरियो—वि. [हिं. गरूरी] घमंडी, अभिमानी। उ.—औषधि बैद गरूरियो हरि नहिं मानै मंत्र दोहाई—२८३९।

संज्ञा स्त्री.—अभिमान, घमंड।

गरूरी—वि. [अ. ग़रूरी] घमण्डी, अभिमानी।

संज्ञा स्त्री.—अभिमान, घमण्ड।

गरे—संज्ञा पुं. [सं. गल, हिं. गला] गला। उ.—बिच बिच हीरा लगे (नन्द) लाल गरे को हार—१०-४०।

मुहा.—गरे परी—अनिच्छित वस्तु, अनचाही चीज। उ.—सूरदास गाहक नहिं कोऊ दिखिअत गरे परी—३१०४।

गरेड़िया—संज्ञा पुं. [हिं. गड़रिया] वह व्यक्ति जो भेड़ें पालता हो।

गरेबान—संज्ञा पुं. [फ़ा. गरेबान] (१) अंगे-कुरते आदि का गला। (२) कोट आदि का कालर।

गरेरना—क्रि. स. [हिं. घेरना] (१) घेरना। (२) रोकना।

गरेरा—वि. [हिं. घेरा] चक्कर या घुमावदार।

गरेरी, गरेली—संज्ञा स्त्री. [हिं. घेरा,] चरखी, घिरनी।

वि.—चक्करदार, घुमावदार।

गरैं—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. गला] गले में, गरदन में। उ.—मुकुट सिर धरैं, बनमाल कौस्तुभ गरैं—४-१०।

गरै—क्रि. अ. [हिं. गलता] गलता है, नष्ट होता है। उ.—राजा कौन बड़ौ रावन तैं गर्बहिं गर्व गरै—१-३५।

गरैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गला] दोहरी रस्सी जो पशुओं के गले में डाली जाती है, पगहा।

गरोह—संज्ञा पुं. [फ़ा.] झुंड, समूह, जत्था।

गर्ग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक वैदिक ऋषि जो आंगिरस भरद्वाज के वंशज और ऋग्वेद, छठे मंडल के सैंतालीसवें सूक्त के रचयिता माने जाते हैं। (२) नंद जी के पुरोहित का नाम। उ.—गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छनु, अबिगत हैं अबिनासी—१०-८७।

(३) बैल, साँड़। (४) गगोरी कीड़ा। (५) बिच्छू। (६) केचुआ। (७) एक पर्वत। (८) ब्रह्मा का एक पुत्र। (९) संगीत में एक ताल।

गर्गर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भँवर। (२) एक प्राचीन बाजा। (३) गागर। (४) एक मछली।

गर्गरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) दही मथने का बरतन। (२) गगरी, कलसी। (३) मथानी।

गर्ज—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरज] गंभीर या तुमुल शब्द। उ.—मनहुँ सिंह की गर्ज सुनत गोबच्छ दुखित तनु डोलत—३४२०।

संज्ञा स्त्री. [अ. ग़रज़] (१) मतलब, स्वार्थ। (२) आवश्यकता, जरूरत। (३) चाह, इच्छा।

गर्जंत—क्रि. अ. [सं. गर्जन, हिं. गरजना] (१) गर्जता हूँ। (२) निर्भीक होकर विचरता हूँ। उ.—मोहिं बर दियो देवनि मिलि, नाम धर्यौ हनुमंत। अंजनि कुँवर राम कौ पायक, ताकैं बल गर्जंत—९-८३।

गर्जत—क्रि. अ. [हिं. गरजना] (१) गरजता है, गंभीर शब्द करता है। (२) गर्व से बोलता है।

गर्जन—संज्ञा पुं. [सं.] भीषण ध्वनि, गंभीर नाद। उ.—गर्जन औ तरपन मानो गो पहरक में गढ़ लेइ—१० उ.-१६८।

यौ.—गर्जन-तर्जन—(१) तड़प। (२) डाँटडपट।

संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

गर्जना—क्रि. अ. [हिं. गरजना] घोर शब्द करना।

गर्जहिं—संज्ञा पुं. [सं. गर्जन+हिं (प्रत्य.)] गर्जना को, गंभीर नाद को।

संज्ञा स्त्री. [फ़ा. ग़रज़] मतलब, काम, स्वार्थ कामना। उ.—या रथ बैठ बंधु की गर्जहिं पुरवै को कुरु-खेत ?—१-२९।

गर्जि—क्रि. अ. [हिं. गरजना] गंभीर ध्वनि करके, भीषण रूप से गरज कर। उ.—इतने में मेघन गर्जि बृष्टि करि तनु भीज्यो मों भई जुड़ाई—२८८५।

गर्जित—संज्ञा स्त्री. [हिं. गर्जन] गर्जनपूर्ण।

गर्त्त—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गड्ढा, गढ़हा (२) दरार। (३) घर। (४) रथ। (५) जलाशय। (६) एक नरक का नाम।

गर्द—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] धूल, राख, भस्म।

मुहा.—गर्द उड़ाना—नष्ट करना। गर्द झड़ना—मार की परवाह न करना। गर्द फाँकना—मारे मारे घूमना। गर्द को पहुँचना—बराबरी न कर सकना। गर्द होना—(१) तुच्छ ठहरना। (२) नष्ट होना।

गर्दखोर, गर्दखोरा—वि. [फ़ा. गर्दख़ोर] जो गर्द से खराब न हो।

संज्ञा पुं.—पैर पोछना।

गर्दन—संज्ञा पुं. [हिं. गरदन] गला, गरदन।

गर्दना—संज्ञा पुं. [हिं. गरदना] मोटा गला।

गर्दभ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गधा, गदहा। उ.—हय-गयंद उतरि कहा गर्दभ-चढ़ि धाऊँ—१-१६६। (२) सफेद कुमुद या कोईं। (३) एक कीड़ा।

गर्दिश, गर्दिस—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) घुमाव, चक्कर। (२) विपत्ति।

गर्द्ध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) लोभ। (२) एक वृक्ष।

गर्द्धत, गर्द्धित—वि. [सं.] लुब्ध।

गर्द्धी—वि. [सं. गर्द्धिन्] (१) लोभी। (२) लुब्ध।

गर्ब—संज्ञा पुं. [सं. गर्व] अहंकार, घमंड, अभिमान।

मुहा.—गर्ब प्रहार्यौ—घमंड चूर कर दिया, गर्व तोड़ दिया। उ.—ग्वालनि हेत धर्यौ गोबर्धन, प्रगट इंद्र कौ गर्ब प्रहार्यौ—१-१४।

गर्बगत—वि. [सं. गर्व + गत = रहित (प्रत्य.)] जिसका गर्व नष्ट हो गया हो, गर्वरहित, गर्वहीन। उ.—करुनामय जब चाप लियौ कर, बाँधि सुदृढ़ कटि-चीर। भूभृत सीस नमित जो गर्बगत, पावक सींच्यौ नीर—९-२९।

गर्बना—क्रि. अ. [सं. गर्व] गर्व या अभिमान करना।

गर्ब-प्रहारी—संज्ञा पुं. [सं. गर्व + हिं. प्रहारी] गर्व का नाश करनेवाला, अभिमान तोड़नेवाला, गर्वनाशक। उ.—जाकौ बिरद है गर्बप्रहारी, सो कैसैं बिसरैं—१-३७।

गर्बहिं-गर्ब—संज्ञा पुं. [सं. गर्व+हिं=(प्रत्य.) + गर्व] गर्व ही गर्व, बहुत अधिक घमंड।

गर्भ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गर्भ के अंदर का बालक।

उ.—ब्रह्म बाण तैं गर्भ उबारयौ, टेरत जरी जरी—१-१६। (२) गर्भाशय।

गर्भक—संज्ञा पुं. [सं.] एक वृक्ष।

गर्भकार—संज्ञा पुं. [सं.] पति या प्रेमी जिससे गर्भ रहे।

गर्भकाल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) ऋतुकाल। (२) वह काल जब स्त्री गर्भवती हो।

गर्भकेसर—संज्ञा पुं. [सं.] फूलों के पतले सूत जिनसे पराग का मेल होने पर फल और बीज पुष्ट होते हैं।

गर्भकोष—संज्ञा पुं. [सं.] गर्भाशय।

गर्भगृह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) घर का भीतरी भाग। (२) आँगन। (३) तहखाना। (४) मंदिर की वह कोठरी जिसमें मुख्य प्रतिमा हो।

गर्भज—वि. [सं.] (१) गर्भ से उत्पन्न, संतान। (२) जन्मकाल से साथ रहनेवाला (रोग आदि)।

गर्भपत्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोंपल, कोमल पत्ता। (२) फूल के भीतरी पत्ते जिनमें गर्भकेसर हो।

गर्भपात—संज्ञा पुं. [सं.] गर्भ गिरना।

गर्भवती—वि. स्त्री. [सं.] जिसके पेट में बच्चा हो।

गर्भांक—संज्ञा स्त्री. [सं.] नाटक के अंक का वह भाग जिसमें केवल एक दृश्य होता है।

गर्भाधान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सोलह संस्कारों में पहला। (२) गर्भ की स्थिति।

गर्भाशय—संज्ञा पुं. [सं.] पेट का वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है।

गर्भिणी—वि. स्त्री. [सं] (१) गर्भवती। (२) खिरनी का पेड़।

संज्ञा स्त्री.—[सं.] प्राचीन काल की एक नाव।

गर्भित—वि. [सं.] (१) गर्भयुक्त। (२) भरा हुआ, पूर्ण।

संज्ञा पुं. [सं.] काव्य में अतिरिक्त वाक्य-दोष।

गर्रा—वि. [सं. गरहाधिक=लाख] लाख के रंग का।

संज्ञा पुं.—(१) लाख का रंग। (२) इस रंग का घोड़ा। (३) इस रंग का कबूतर।

संज्ञा पुं. [अनु.] बहते पानी का थपेड़ा।

संज्ञा पुं. [हिं. गराड़ी] चरखी, फिरकी, घिरनी।

गर्री—संज्ञा स्त्री. [हिं. गरेरना] तार लपेटने की चरखी।

गर्व—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अभिमान, घमंड। (२) एक संचारी भाव जिसके अनुसार अपने को दूसरों से बड़ा समझा जाता है।

गर्वप्रहारी—वि. [सं.] घमंड चूर करनेवाला।

गर्ववंत—वि. [सं. गर्ववान का बहु गर्ववंतः] घमंडी, अभिमानी। उ.—गर्ववंत सुरपति चढ़ि आयो। बाम करज गिरि टेकि दिखायौ।

गर्वाना—क्रि. अ. [सं. गर्व.] गर्व या अभिमान करना, घमंड दिखाना।

गर्वानी—क्रि. अ. [हिं. गर्वाना] गर्व करने लगी, घमंड दिखाने लगी। उ.—कहा तुम इतनेहि को गर्वानी। जोबन रूप दिवस दसही को ज्यों अँजुरी को पानी।

गर्वानो—क्रि. अ. [हिं. गर्वाना] गर्व किया, घमंड दिखाने लगा। उ.—यह सुनि हर्ष भयो गर्वानो जबहिं कही अक्रूर सयानी—२४६६।

गर्विणी—वि. स्त्री. [सं.] गर्व करनेवाली।

गर्वित—वि. [सं.] अहंकारी, अभिमानी। उ. (क) हस्ती देखि बहुत मन-गर्वित, ता मूरख की मति है थोरी—१-३०३। (ख) सूर सरस सरूप गर्वित दीपकावृत चाइ—सा. १८।

गर्विता—संज्ञा स्त्री [सं.] वह नायिका जिसे रूप, गुण आदि का गर्व हो।

गर्विष्ठ—वि. [सं.] अहंकारी, अभिमानी।

गर्वी, गर्वीला, गर्वीले—वि. [सं. गर्व+हिं. ईला (प्रत्य.)] घमण्डी, अहंकारी। उ.—जिनि वह सुधा पान मुख कीन्हों वे कैसें कटु देखत। त्यों ए नैन भए गर्वीले अब काहे हम लेखत।

गर्वै—संज्ञा पुं. सवि. [सं. गर्व] अहंकार या अभिमान करे। उ.—गगन शिखर उतरै चढ़ै गर्वै जिय धरई—२८६१।

गर्हण—संज्ञा पुं. [सं.] निंदा, बुराई।

गर्हणीय—वि. [सं.] निन्दा के योग्य, बुरा।

गर्हित—वि. [सं.] (१) जिसकी निंदा की जाय, निंदित। (२) बुरा, दूषित।

गर्ह्य—वि. [सं.] निंदनीय, नीच।

गल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गला, कण्ठ।

मुहा.—गल गाजना—हर्षित होना। गल गाजै—गरजते हैं। उ.—ध्वजा बैठि हनुमत गल गाजै, प्रभु हाँकैं रथ यान—१-२७५। गल गाजि—(१) हर्षित होकर। उ.—धाये मब गलगाजि कै ऊधो देखो जाइ—३४४३। (२) क्रोध से गरज कर। उ.—खंभ फारि, गल गाजि मत्त बल, क्रोधमान छबि बरन न आई—७-४।

(२) एक मछली। (३) एक बाजा। (४) गाल।

गलकंबल—संज्ञा पुं. [सं.] गाय के गले का निचला भाग, झालर।

गलगंजना—क्रि. अ. [हिं. गाल + गाजना] जोर से बोलना, भारी शब्द करना।

गलगंड—संज्ञा पुं. [सं.] गले का एक रोग।

गलगल—संज्ञा स्त्री. [देश.] (१) एक छोटी चिड़िया। (२) बड़ा नीबू।

गलगला—वि. [हिं. गीला] भीगा हुआ, तर।

गलगलाना—क्रि. अ. [हिं. गलगला] गीला होना।

गलगाजना—क्रि. अ. [हिं. गाल + गाजना] (१) गाल बजाना। (२) खुशी से किलकारी मारना।

गलजँदड़ा—संज्ञा पुं. [सं. गल + यंत्र या पं. जंदरा] (१) सदा साथ रहनेवाला। (२) गले की पट्टी।

गलजोड़, गलजोत—संज्ञा स्त्री. [हिं. गला+जोड़ या जोत] (१) वह रस्सी जिससे दो बैलों के गले बाँधे जायँ। (२) गले का हार, सदा साथ रहनेवाला व्यक्ति।

वि.—जो सहा न जा सके।

गलझंप—संज्ञा पुं. [हिं. गला+झंप] लोहे की झूल जो युद्ध में हाथियों को पहनायी जाती है।

गलतंग—वि.—[हिं. गला + तंग] जिसे सुधि न हो।

गलतंस—संज्ञा पुं. [सं. गलित + वंश] (१) मनुष्य जो निसन्तान मरे। (२) ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति जिसके कोई सन्तान न हो।

गलत—वि.—[अ. ग़लत] (१) जो शुद्ध न हो। (२) जो सत्य न हो, मिथ्या।

गलतफहमी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गलत + फहम] भ्रम, गलती।

गलतान—वि. [फ़ा. ग़लताँ] चक्कर मारता या लुढ़कता हुआ।

गलती—संज्ञा स्त्री. [अ. ग़लत + ई (प्रत्य.)] (१) भूल-चूक। (२) अशुद्धि।

गलथन, गलथना—संज्ञा पुं. [सं. गलस्तन, पा. गलत्थन, गलथन] बकरी के गले के स्तन या थन जिनमें दूध नहीं होता।

गलन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गिरना (२) गलना।

गलना—क्रि. अ. [सं. गरण = तर होना] (१) पिघलना, घुल जाना। (२) क्षीण होना। (३) शरीर सूख जाना। (४) सरदी से ठिठुरना। (५) व्यर्थ हानि होना, बेकार हो जाना, कुछ स्वार्थ न निकलना।

गलफाँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाल+फाँसी] (१) गले की फाँसी। (२) दुखदायी वस्तु या काम।

गलबल—संज्ञा पुं. [अनु.] कोलाहल, खलबली। उ—गलबल सब नगर परयौ प्रगटे जदुबंसी। द्वारपाल इहै कहै जोधा कोउ बच्यौ नहीं, काँधे गजदंत धारे सूर ब्रह्म अंसी—२६१०।

गलबहियाँ, गलबाहीं—संज्ञा स्त्री. [हिं. गला + बाँह] गले में बाह डालना, कंठालिंगन।

गलमुँदरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गल+मुद्रा] (१) गाल बजाने की मुद्रा। (२) व्यर्थ बकवाद करना।

गलमुद्रा—संज्ञा स्त्री. [सं. गल + मुद्रा] शिवभक्तों को गालबजाने की मुद्रा।

गलवाना—क्रि. स. [हिं. 'गलाना' का प्रे.] गलाने का काम करना।

गलशुंडी संज्ञा स्त्री. [सं०] जीभ की तरह का मांस का टुकड़ा जो जिह्वा की जड़ के पास रहता है।

गलसिरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गल+श्री] गले का एक गहना।

गलसुई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाल + सुई] छोटा तकिया जो गाल के नीचे रखा जाता है।

गलस्तन—संज्ञा स्त्री. [सं.] बकरियों के गले के थन जो व्यर्थ होते हैं।

गलस्वर—संज्ञा पुं. [सं.] एक प्राचीन बाजा।

गला—संज्ञा पुं. [सं. गल] (१) गरदन, कंठ।

मुहा.—गला काटना—(१) मार डालना। (२) बहुत दुख देना। (३) अन्याय से माल हड़प लेना। (४) बुराई करना। गला घुटना—(१) दम घुटना। (२) बड़े कष्ट का जीवन व्यतीत करना। गला छूटना—झंझट से पीछा छूटना। गला दबाना (घोटना)—(१) गला दबाकर मार डालना। (२) अनुचित दबाव डालना। गला फाड़ना—बहुत जोर से चिल्लाना। गलाबँधना-मजबूर हो जाना। गले का हार—बहुत प्यारा। गले पड़ना—(१) न चाहने पर भी कोई भार माथे मढ़ा जाना। (२) भोगने या सहने को तैयार होना। गले मढ़ना—(१) इच्छा के विरुद्ध देना या सौंपना। (२) इच्छा के विरुद्ध विवाह कर देना। गले लगाना—(१) आलिंगन करना। (२) इच्छा के विरुद्ध सौंपना।

(२) कंठस्वर। (३) कपड़े का भाग जो कंठ पर रहता है। (४) बर्तन का भाग जो उसके मुँहड़े के नीचे होता है।

गलाना—क्रि. स. [हिं. गलना] (१) पिघलाना, नरम या द्रव करना। (२) पिघलाकर धीरे धीरे लुप्त या क्षय करना। (३) (रुपया) व्यर्थ खर्च करना।

गलानि—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्लानि] (१) दुख या पछतावे की लज्जा या खिन्नता। (२) दुख, खेद।

गलित—वि. [सं.] (१) गला या पिघला हुआ। (२) प्रयोग या उपयोग के कारण जो चुस्त या कठिन न हो, जिसका बहुत उपयोग हो चुका हो। (३) जीर्ण-शीर्ण, पुराना। (४) चुआ या गिरा हुआ। (५) नष्ट-भ्रष्ट। (६) परिपक्व, परिपुष्ट। उ.—दान लैहौं सब अंगनि कौ। अति मद गलित तालफल ते गुरु जुगल उरोज उतंगनि कौ। (७) बिखरा हुआ, अस्तव्यस्त साज-शृंगारवाला। उ.—छूटी लट छूटी नकबेसरि मोतिन की दुलरी। अरुन नैन सुख सरद निसा-कर कुसुम गलित कबरी—२१०६। (८) शिथिल, क्लांत, थका हुआ। उ.—सुधि न रही अति गलित गात भयो जनु डसि गयौ अह्यौ—२५६७।

गलित यौवना—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह स्त्री जिसका यौवन ढल गया हो।

गलिन, गलिनि—संज्ञा स्त्री. [सं. गल, हिं. गली] गलियाँ, तंग रास्ते। उ.—सो रस गोकुल-गलिनि बहावैं—१०-३।

गलियारा—संज्ञा पुं. [हिं. गली + आरा (प्रत्य.)] पतली गली, तंग रास्ता।

गली—संज्ञा स्त्री. [सं. गल] (१) खोरी, कूचा, तंग रास्ता। उ.—आजु मेरी गली ह्वैके करत बंसी सोर—सा. ६१। (२) मौहल्ला।

मुहा.—गली गली फिरना—(२) जीविका के लिए भटकना। (२) बहुत साधारण होना।

क्रि. स. भूत. [हिं. गलना] (१) गल गयी, घुल गयी। (२) क्षीण या नष्ट हो गयी।

गलीचा—संज्ञा पुं. [फ़ा ग़ालीचा] ऊन या सूत का मोटा बिछौना जिस पर रंग-बिरंगे बेल-बूटे हों।

गलीज—वि. [अ. ग़लीज़] मैला-कुचैला।

संज्ञा पुं.—गंदगी, मैल।

गलीत—वि. [अ. ग़लीज़ = मैला या अशुद्ध] मैला-कुचैला, बुरी दशा को प्राप्त।

गलेबाजी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गला + बाजी] डींग, बढ़ बढ़कर बातें करना।

गलौ—संज्ञा पुं. [सं. ग्लौ] चन्द्रमा।

गल्प—संज्ञा स्त्री. [सं. जल्प या कल्प] (१) झूठी कथा। (२) डींग, शेखी। (३) कहानी।

गल्ल—संज्ञा पुं. [सं.] गाल।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गाल या गल्प अथवा फ़ा. गिला] बात, चर्चा।

गल्ला—संज्ञा पुं. [अ. गुल, हिं. गुल्ला] शोर, हुल्लड़।

संज्ञा पुं. [फ़ा. गल्लः] झुंड, समूह।

संज्ञा पुं. [हिं. गाल] अन्न जो एक बार चक्की में पिसने के लिए डाला जाय, मुट्ठी भर अन्न, कौरी।

संज्ञा पुं. [अ. गल्लः] (१) फसल, पैदावार। (२) अन्न, अनाज। (३) धन की गोलक।

गवँ, गवँही—संज्ञा स्त्री. [सं. गम, प्रा. गवँ] (१) घात, अवसर। (२) मतलब, प्रयोजन।

मुहा०—गवँ से—(१) घात या अवसर देखकर। (२) चुपचाप, धीरे से।

गव—संज्ञा पुं. [सं. गवय] **एक बंदर जो श्रीराम की सेना में था।**

गवई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँव] **छोटा गाँव।** उ.—अब हरि क्यौं बसैं गोकुल गवई—३३०४।

गवच्छ—संज्ञा पुं. [सं. गवाक्ष] **एक बंदर जो श्रीरामचंद्र की सेना में था।** उ.—नल-नील-द्विविद-केसरि गवच्छ। कपि कहे कछुक, हैं बहुत लच्छ—६-१६६।

गवन—संज्ञा पुं. [सं. गमन] **(१) चलना, जाना, प्रस्थान।** उ.—तहाँ गवन प्रभु सूरज कीन्हौ—२६४३। **(२) वधू का पहिली बार पति के घर जाना, गौना। (३) गवन का वेग या गति।** उ.—छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ—१-५।

गवनचार—संज्ञा पुं. [सं. गमन + आचार] **वधू का पति के घर पहली बार जाना, गौना।**

गवनना—क्रि. अ. [हिं. गवन] **जाना, प्रस्थान करना।**

गवना—संज्ञा पुं. [हिं. गौना] **वधू का पहली बार पति के घर जाना।**

गवनीं—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. गवनना] **प्रस्थान किया, (अन्य स्थान को) गयीं।** उ.—(क) गृह-गृह तैं गोपी गवनीं जब—१०-३२। (ख) मुरली सब्द सुनत बन गवनी पति सुत गृह बिसराये—३०६०।

गवने—क्रि. अ. [हिं. गमना या गवनना] **गये, चले गये, यात्रा की, प्रस्थान किया।** उ.—(क) पठवौ दूत भरत कौं ल्यावन, बचन कह्यौ बिलखाई। दसरथ-बचन राम बन गवने, यह कहियौ अरथाइ—६-४७। (ख) जब तैं तुम गवने कानन कौं भरत भोग सब छाँड़े—६-१५४।

गवय—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) नील गाय। (२) एक बानर जो श्रीराम की सेना में था। (३) एक छंद।**

गवाँए—क्रि. स. [हिं. गवाँना] **खो दिये, खो बैठे।** उ.—सूरदास तेहिं बनिज कवन गुन मूलहु माँझ गवाँए—३२०१।

गवाँना—क्रि. स. [हिं. गवना का प्रे.] **खोना, नष्ट करना।**

गवाँवत—क्रि. स. [हिं. गवाना] **खोते हैं, नष्ट करते हैं।** उ.—बचन कठोर कहत कहि दाहत अपनो महत गवाँवत—३००८।

गवाइ—क्रि. स. [हिं. 'गाना' का प्रे.] **गवाकर, मधुर आलाप कराकर।** उ.—सखियनि संग गवाइ, बहु बिधि बाजे बजाइ—१०-४१।

गवाक्ष गवाख, गवाछ—संज्ञा पुं. [सं. गवाक्ष] **(१) छोटी खिड़की, झरोखा। (२) एक बानर जो श्रीराम की सेना में था।**

गवाक्षी—संज्ञास्त्री. [सं.] **(१) इंद्रायन। (२) एक लता।**

गवाय—क्रि. स. [हिं. गाना, गवाना] **गवाकर, गाने के लिए प्रेरित करके।** उ.—गावत हँसत गवाय हँसावत, पटकि पटकि करतालिका ६०९।

गवारा—वि. [फ़ा.] **(१) मनभाता, रुचिकर। (२) अंगीकार, रुचनेवाला।**

गवास, गवासा—संज्ञा पुं. [सं. गवाशन] **कसाई।**
संज्ञा स्त्री. [हिं. गाना] **गाने की इच्छा।**

गवाह—संज्ञा पुं. [फ़ा.] **साक्षी, साखी।**

गवाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गवाह] **गवाह का बयान, साक्षी का कथन, साक्ष्य।**

गवीश—संज्ञा पुं. [सं. गवेश] **(१) गोस्वामी। (२) विष्णु। (३) साँड़।**

गवेल—वि. [हिं. गाँव] **गँवार, देहाती।**

गवेषण—संज्ञा स्त्री. [सं.] **खोज, छानबीन।**

गवेषी, गवेसी—वि. [सं. गवेषण] **खोजी, ढूँढ़नेवाला।**

गवेसना—क्रि. स. [सं. गवेषण] **खोज करना।**

गवैया—वि. [हिं. गाना + ऐया (प्रत्य.) अथवा गावना] **गानेवाला, गायक।**

गवैहा—वि. [हिं. गाँव + ऐहा (प्रत्य.)] **(१) गाँव का रहनेवाला। (२) गँवार, असभ्य।**

गव्य—वि. [सं.] **गाय से प्राप्त दूध, दही, घी, गोबर आदि पदार्थ।**
संज्ञा पुं. [सं.] **(१) गायों का समूह। (२) पंचगव्य—गाय से मिलनेवाले पाँच पदार्थ—दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र।**

गश—संज्ञा पुं. [फ़ा. ग़श] मूर्च्छा, बेहोशी।

गश्त—संज्ञा. पुं. [फ़ा.] (१) घूमना-फिरना। (२) घूम घूम कर पहरा देना।

गश्ती—वि. [फ़ा.] (१) घूमनेवाला। (२) कई व्यक्तियों के पास भेजा जानेवाला (पत्र आदि)।

संज्ञा स्त्री.—व्यभिचारिणी स्त्री।

गसना—क्रि. स. [सं. गुथना] (१) गाँठना, जोड़ना। (२) गठी हुई बुनावट करना।

गसीला—वि. [हिं. गसना] (१) गठा हुआ। (२) गठी हुई बुनावट का (कपड़ा)।

गस्सा—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास, प्रा. गास, गस्स] कौर, ग्रास, नेवाला।

गह—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रह] (१) मूठ, कब्जा, दस्ता।

हित। उ.—माधव जू आवनहार भये। अंचल उड़त मन होत गहगहो फरकत नैन खये।

गहडोरना—क्रि. स. [अनु.] पानी मथकर गंदा करना।

गहत—क्रि. स. [हिं. गहना] (१) पकड़ते, रोकते या ग्रहण करते ही, थामते ही। उ.—रिपु कच गहत द्रुपदतनया जब सरन सरन कहि भाषी। बढ़ै दुकूल-कोट अंबर लौं, सभा माँझ पति राखी—१-२७। (२) धारण करता है।

गहति—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़ता, रोकता या ग्रहण करता है, थामता है। उ.—चिरजीवौ सुकुमार पवन-सुत, गहति दीन ह्वै पाइ—९-८३।

गहन—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़ने अथवा ग्रहण करने (के लिए), धरने या थामने (के लिए)। उ.—(क)

नोट—फार्म ३७६-३८६ के बाद के फार्म पर भी भूल से यही पृष्ठ-संख्या पड़ गयी है। कृपा करके सुधार लें। शब्दों का क्रम ठीक है। तीसरे खंड में पृष्ठ-संख्या ४११ से आरंभ की जायगी। —संपादक

सुभ बानी बिमल पूर्व दिसि बोलै। आजु मिलाओ स्याम मनोहर तू सुनु सखी राधिके भोले—१० उ. -१०६। (२) खूब घिरता हुआ, बड़ी धूमधाम और जोरशोर के साथ। उ.—गहगहात किलकिलात अंधकार आयौ। रवि कौ रथ सूझत नहिं, धरनि गगन छायौ—९-१३६।

गहगहाना—क्रि. अ. [हिं. गहगहा] (१) आनंद या उमंग में भरा हुआ। (२) फसल का अच्छा होना।

गहगहे—क्रि. वि. [हिं. गहगहा] (१) बड़ी प्रफुल्लता या उमंग के साथ, अच्छी तरह। (२) खूब धूमधाम और जोरशोर से। उ.—बाजन बाजैं गहगहे (हो), बाजैं मंदिर भेरि—१०-४०।

गहगहो—वि. [हिं. गहगहा] सानंद, प्रफुल्लित, उत्सा-

पर्व रवि गहन कहा कहौं तासु बड़ाई—१० उ.-१०५। (२) कलंक, दोष। (३) दुख। (४) बंधक, रेहन।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गहना=पकड़ना] (१) पकड़। (२) हठ, जिद, अड़। उ.—एकै गहन धरी उन हठ करि मेटि बेद बिधि नीति—३४७८। (३) घास खोदने का एक औजार।

गहना—संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण=धारण करना] (१) आभूषण, अलंकार। (२) बंधक, रेहन।

क्रि. स. [सं. ग्रहण, प्रा. गहण] पकड़ना, थामना।

गहनि—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रहण] टेक, हठ, जिद। उ.—(क) छबि तरंग सरितागन लोचन ए सागर जनु प्रेम धार लोभ गहनि नीके अवगाही। (ख) हरि पिय

तुम जिनि चलन कहो। यह जिनि मोहिं सुनावहु बलि जाउँ जिनि जिय गहनि गहो—२४५५।

गहनु—संज्ञा पुं. [सं. ग्रहण] (१) ग्रहण। (२) कलंक।

गहने—क्रि. वि. [हिं. गहना = बंधक] बंधक या रेहन के रूप में।

गहबर, गहबरा—वि. [सं. गह्वर] (१) गहन, दुर्गम। उ.—तुम जानकी, जनकपुर जाहु। कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहबर बन दुख-सिंधु अथाहु—९-३४। (२) दुखी, व्याकुल। (३) ध्यान में लीन, बेसुध।

गहबरना—क्रि. अ. [हिं. गहबर] (१) घबराना। (२) जी भर आना।

गहबराना—क्रि. स. [हिं. गहबर] घबरा देना, व्याकुल करना।

गहर—संज्ञा स्त्री. [हिं. घड़ी, घरी; अथवा सं. ग्रह; अथवा फ़ा. गाह = समय] (१) देर, विलंब। उ.—(क) कत हौ गहर करत बिन काजैं, बेगि चलौ उठि धाइ—१०-२०। (ख) गहर जनि लावहु गोकुल जाइ। तुमहिं बिना व्याकुल हम होइहैं यदुपति करी चतुराई। (ग) गहर करत हमको कहा मुख कहा निहारत—२५७६। (२) टालना, बहाना करना। उ.—देहो दधि कौ दान नागरी गहर न लाओ चित्त—सारा. ८७६।

वि. [सं. गह्वर] दुर्गम, कठिन।

गहरना—क्रि. अ. [हिं. गहर = देर] देर लगना, विलंब करना।

क्रि. अ. [अ. क़हर] (१) झगड़ा करना, उलझना। (२) कुढ़ना, खीझना, झुँझलाना।

गहरा—वि. [सं. गंभीर, पा. गहीर] (१) जिसकी थाह सरलता से न मिले। (२) जिसकी सतह बहुत नीचे हो। (३) बहुत ज्यादा।

मुहा.—गहरा असामी—बड़ा धनी। गहरा हाथ मारना—(१) पूरा वार करना। (२) बहुत धन पा जाना। (३) बड़े मूल्य या काम की चीज पाना।

(४) मजबूत, दृढ़। (५) गाढ़ा, जो पतला न हो।

मुहा.—गहरी घुटना (छानना)—(१) बहुत मेल-जोल होना। (२) घुलघुल कर बातें होना।

गहराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहरा + ई (प्रत्य.)] गहरापन।

गहराना—क्रि. अ. [हिं. गहरा] गहरा होना।

क्रि. स.—खूब गहरा करना या बनाना।

क्रि. अ. [हिं. गहर] नाराज होना, खीझना।

गहरानी—क्रि. अ. [हिं. गहर, गहराना] नाराज हुई, रूठ गयी, अप्रसन्न हुई। उ.—अधर कंप, रिस भौंह मरोरयौ, मन ही मन गहरानी—१८६५।

गहराव—संज्ञा पुं. [हिं. गहरा + आव (प्रत्य.)] गहरापन।

गहरि—क्रि. अ. [हिं. गहर = झगड़ा] झगड़ा करके, रूठ कर, खीझकर। उ.—तुम सौं कहत सकुचत महरि। स्याम के गुन नहीं जानति जात हम सों गहरि—८६०

गहरु—संज्ञा स्त्री. [हिं. घड़ी, घरी अथवा फा. गाह = समय] देर, विलंब। उ.—(क) सूर एक पल गहरु न कीन्हयौ किहिं जुग इतौ सह्यौ—१-४६। (ख) माखन बाल गोपालहिं भावैं। भूखे छिन न रहत मन मोहन, ताहि बदौं जो गहरु लगावै—१०-२३५। (ग) ऊधौ ब्रज जिनि गहरु लगावहु—२६२६। (घ) नव और सात बीस तोहिं सोभित काहे गहरु लगावति—सा. उ.—११।

गहरे—क्रि. वि. [हिं. गहरा] अच्छी तरह, खूब।

गहवा—संज्ञा पुं. [हिं. गहना = पकड़ना] सँडसी।

गहवाना—क्रि. स. [हिं. गहाना] पकड़ाना।

गहाइ—क्रि. स. [हिं. गहाना] पकड़ाकर, थमाकर। उ.—कहौ तौ तातैं तृन गहाइ कै, जीवत पाइनि पारौं—९-१०८।

गहाई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहना] पकड़ने का कार्य या भाव, पकड़।

गहाऊँ—क्रि. स. [हिं. 'गहना' का प्रे. गहाना] पकड़ाऊँ, थमाऊँ, उठवाऊँ। उ.—(क) आजु जौ हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ। तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु सुत न कहाऊँ—१-२७०। (ख) जो तुमरे कर सर न गहाऊँ गंगा-सुत न कहाऊँ—सारा. ७८०।

गहागह—क्रि. वि. [हिं. गहगह] धूमधाम से।

गहाना—क्रि. स. [हिं. गहना = पकड़ना] पकड़ने या थामने को प्रेरित करना।

गहायौ—क्रि. स. भूत. [हिं. गहाया] पकड़ाया, धरने को प्रेरित किया। उ.—अति कृपालु आतुर अबलनि कौं

व्यापक अंग गहायौ—२६६८।

गहावत—क्रि. स. [हिं. गहना = पकड़ना का प्रे. 'गहाना'] **पकड़ाते हैं, थमाते हैं।** उ.—(क) सिखवति चलन जसोदा मैया। अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया—१०-११५। (ख) सुफलकसुत ए सखि ऊधौ मिली एक परिपाटी। उनतौ वह कीन्ही तब हमसौं, ए रतन छँड़ाइ गहावत माटी—३०५६।

गहावन—क्रि. स. [हिं. 'गहना' का प्रे. गहाना] **पकड़ाने की, थमाने की।** उ.—निज पुर आइ, राइ भीषम सौं, कही जो बातैं हरि उचरी। सूरदास भीषम परतिज्ञा, अस्त्र गहावन पैज करी—१-२६८।

गहावै—क्रि. स. [हिं. 'गहना' = पकड़ना का प्रे.] **गहाती है, पकड़ाती है, थमाती है।** उ.—कबहुँक पल्लव पानि गहावै, आँगन माँझ रिंगावै—१०-१३०।

गहासना—क्रि. स. [सं. ग्रसना] **पकड़ना।**

गहि—क्रि. स. [हिं. गहना] **रोककर, टेककर, पकड़कर, थामकर।** उ.—गहि सारँग, रन रावन जीत्यौ, लंक बिभीषन फिरी दुहाई—१-२४।

गहिए—क्रि. स. [हिं. गहना] **पकड़िए, धरिए, थामिए।** उ.—जो तुम जोग सिखावन आए निर्गुन क्यों करि गहिए।—२६८७।

गहिबो—क्रि. स. [हिं. गहना] **पकड़ना, धरना।**

मुहा.—चित गहिबो—**ध्यान में लाना, ख्याल करना, विचार में रखना।** उ.—घोष बसत की चूक हमारी कछू न चित गहिबो—३३१५।

गहियत—क्रि. स. [हिं. गहना] **पकड़ता है, थामता है।** उ.—फिरि फिरि वहइ अवधि अवलंबन बूड़त ज्यौं तून गहियत—३३००।

गहियै—क्रि. स. [हिं. गहना] **ग्रहण कीजिए, पकड़िए, अपनाइए, स्वीकारिए।** उ.—(क) दुख, सुख, कीरति, भाग आपनैं आइ परै सो गहियै—१-६२। (ख) गएँ सोच आएँ नहिं आनँद ऐसौ मारग गहियै—२-१८।

गहियौ—क्रि. स. [हिं. गहना] **पकड़ूँगा, ग्रहण करूँगा।** उ.—यै सब बचन सुने मनमोहन यहै राह मन गहियौ—१०-३१३।

गहिर, गहिरा—वि. [हिं. गहरा] **जिसकी थाह सरलता से न मिले, अथाह।**

गहिराई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहराई] **गहरापन।**

गहिराव—संज्ञा पुं. [हिं. गहरा] **गहरापन।**

गहिरो, गहिरौ—वि. [हिं. गहरा] **जहाँ पानी ज्यादा हो, गहरा।** उ.—आगैं जाउँ जमुन-जल गहिरौ, पाछैं सिंह जु लागे—१०-४।

गहिला—वि. [हिं. गहेला] **पागल, उन्मत्त।**

गही—क्रि. स. [हिं. गहना] **रोकी, पकड़ी, हाथ में ली।** उ.—(क) दुस्सासन जब गही द्रौपदी, तब तिहिं बसन बढ़ायौ—१ ३२। (ख) भृकुटी सूर गही कर सारँग निकर कटाछनि चोट—सा. उ. १६।

गहीर—वि. [हिं. गहरा] **अथाह, गहरा।**

गहीली—वि. स्त्री. [हिं. गहेला, गहिला] (१) **घमंड में चूर रहनेवाली, अभिमानिनी।** उ. (क) राधा हरि के गर्व गहीली—१३०६। (ख) हम तैं चूक कहा परी जिय गर्व गहीली—१७१५। (ग) यह तौ जोबन रूप गहीली संका मानत हर की—पृ. ३१७ (६८)।

(२) **पगली, उन्मत्त।**

गहु—संज्ञा स्त्री. [सं. गह्वर या हिं. गँव] **छोटा रास्ता, ली।**

गहूँ—क्रि. स. [हिं. गहना] **पकड़ूँ, थामूँ।** उ.—चित्र गुप्त सु होत मुस्तौफी, सरन गहूँ मैं काकी—१-१४३।

गहूरी—संज्ञा स्त्री [हिं. गहना = रखना] **दूसरे के माल की रक्षा की मजदूरी।**

गहे—क्रि. स. [हिं. गहना] (१) **पकड़े, रोके या थामे हुए।** उ.—क्रोध-दुसासन गहे लाज यह, सर्व अंध-गति मेरी—१-१६५। (२) **किसी के द्वारा पकड़े या ग्रसे जाने पर।** उ.—ग्राह गहे गजपति मुकरायौ—१-१०। (३) **ग्रहण करने पर।** उ.—ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर उतरायौ—१-१५।

गहेजुआ—संज्ञा पुं. [देश.] **छछूँदर।**

गहेलरा—वि. [हिं. गहेला] (१) **पागल, उन्मत्त।** (२) **मूर्ख, गँवार।**

गहेला—वि. [हिं. गहना = पकड़ना + एला (प्रत्य.)]

(१) हठी, जिद्दी। (२) घमंडी, अभिमानी। (३) पागल, उन्मत्त। (४) मूर्ख, अज्ञानी।

गहैं—क्रि. स. [हिं. गहना] गहते हैं, रोकते हैं, पकड़ते हैं। उ. (क) गहैं दुष्ट द्रुपदी कौ सारँग, नैननि बरसति नीर—१-३३। (ख)........चंद्र गहैं ज्यौं केत—१-२६६।

गहै—क्रि. स. [हिं. गहना] (१) पकड़ता है, थामता है। उ.—सूरदास सब सुखदाता-प्रभु-गुन बिचारि नहिं चरन गहै—१-५३। (२) ग्रहण करता है, प्राप्त करता है। उ.—और कछू विद्या नहिं गहै—५-३।

गहैया—वि. [हिं. गहना + ऐया (प्रत्य.)](१) पकड़नेवाला। (२) मानने या स्वीकार करनेवाला।

गहोगे—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़ोगे, थामोगे। उ.—बाबा नंदहिं पालागन कहि पुनि पुनि चरन गहोगे—२६३२।

गहौं—क्रि. स. [हिं. गहना] पकड़ूँ, थामूँ। उ.—सूरदास-प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं—१-१६१।

गहौंगौ—क्रि. स. [हिं. गहना] गहूँगा, पकड़ूँगा। उ.—मैया री मैं चंद लहौंगौ। कहा करौं जलपुट भीतर कौ, बाहर ब्यौंकि गहौंगौ—१०-१६४।

गहौ—क्रि. स. [सं. ग्रहण, प्रा. गहण] (१) पकड़ो, रोको, थाम लो। उ.—(क) सूर पतित तुम पतित-उधारन, गहौ बिरद की लाज—१-१०२। (ख) अजहूँ सूर देखिबौ करिहौ, बेगि गहौ किन बाँह—१-१७५। (२)अपनाओ, स्वीकार करो। उ.—अब तुम नाम गहौ मन नागर—१-६१।

गह्यो गह्यौ—क्रि. स. [हिं. गहना] (१) पकड़ा, थामा, अंगीकार किया। उ.—(क) स्याम गह्यौ भुज सहज हीं वयों मारत हमकौं—२५७७। (ख) सार कौ सार, सकल सुख कौ सुख, हनूमान-सिव जानि गह्यौ—२-८। (२) ग्रहण किया, उठाया। उ.—सक्र कौ दान-बलि,मान ग्वारनि लियौ गह्यौ गिरि पानि जस जगत छायौ—१-५।

गह्वर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) जंगल, वन। उ.—कटि-तट तून, हाथ सायक-धनु, सीता-बंधु-समेत। सूर गमन गह्वर कौ कीन्हौ जानत पिता अचेत—९-३६। (२) अंधकारमय और अनजाना गूढ़ स्थान। (३) बिल, सूराख। (४) विषम स्थान। (५) गड्ढा, गहरा स्थान। उ.—अति गह्वर मैं जाइ परी हम—२४३३। (६) कुंज। (७) झाड़ी। (८) गुप्त स्थान। (९) दंभ। (१०) रोना। (११) गूढ़ार्थक वाक्य (१२) जटिल विषय। (१३) जल।

वि.—(१) दुर्गम, जटिल (२) छिपा हुआ।

गांग—वि. [सं.] गंगा-संबंधी।

संज्ञा पुं.—(१) भीष्म। (२) वर्षा का जल। (३) कार्तिकेय। (४) एक मछली। (५) सोना।

गांगायनि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भीष्म। (२) कार्तिकेय। (३) एक ऋषि।

गांगेय—संज्ञा पुं. [सं.] (१) भीष्म। (२) कार्तिकेय। (३) एक मछली। (४) सोना। (५) धतूरा।

गांग्य—वि. [सं. गंगा] गंगा-संबंधी।

गाँछना—क्रि. स. [सं. गुत्सन] (माला आदि) गूँधना।

गाँज—संज्ञा पुं. [फ़ा. गंज] (१) राशि। (२) डंठल या लकड़ी का तले ऊपर लगा हुआ ढेर।

गाँजना—क्रि. स. [हिं. गाँज] ढेर लगाना।

गाँजा—संज्ञा पुं. [सं. गंजा] एक नशीला पौधा।

गाँठ—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथि, प्रा. गंठि] (१) गिरह, ग्रंथि।

मुहा—गाँठ खुलना— समस्या या उलझन दूर होना। गाँठ खोलना (छोरना)—उलझन मिटाना। मन की गाँठ खोलना—(१) जी खोलकर बात करना (२) इच्छा पूरी करना। मन में गाँठ करना (पड़ना)—बुरा मानना। गाँठ पर गाँठ—(१) उलझन बढ़ना। (२) द्वेष बढ़ना।

(२) कपड़े में कुछ लपेटकर लगायी हुई गिरह।

मुहा.—गाँठ काटना—(१) गाँठ काट लेना। (२) सौदे में ठगे जाना। गाँठ करना—(१) अपने पास इकट्ठा करना। (२) याद रखना। गाँठ का—अपना, अपने पास का। गाँठ का पूरा—धनी। गाँठ खोलना—अपने पास का धन खरचना। (बात) गाँठ बाँधना—ध्यान रखना। गाँठ में—पास में। गाँठ से—पास से।

(३) बोझ, गठरी। (४) शरीर के अंगों का जोड़। (५) ईख आदि की पोर। (६) गाँठ की बनावट की चीज आदि।

गाँठकट—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ+काटना] (१) गाँठ काटनेवाला। (२) ठग।

गाँठना—क्रि. स. [सं. ग्रंथन, प्रा. गंठन]। (१) गाँठ लगाना, साँटना। (२) टाँकना, गूँथना। (३) जोड़ना। (४) क्रम से लगाना।

मुहा.—मतलब गाँठना—काम निकालना।

(५) अपनी तरफ मिला लेना। (६) तय कर लेना। (७) दबाना, दबोचना। (८) वश में करना।

गाँठि—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] (१) गाँठ, गिरह, ग्रंथि, फंदा। उ.—(क) बचन बाँह लै चलौं गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी—१-१४६। (ख) अंचल गाँठि दयी दुख भाज्यौ सुख जु आनि उर पैठ्यो—६-१६४।

मुहा.—कहा गाँठि को लागत—पास का क्या खर्च होता है, क्या जमा जथा खर्च होती है। उ.—इतनो कहा गाँठि को लागत जो बातनि जस पाइए—१६८८। गाँठि परी—और जकड़ गयी, मामला पेचीदा होगया। उ.—कठिन जो गाँठि परी माया की तोरी जाति न झटकैं—१-२६३। गाँठि की—अपने पास की। उ.—सूर सुगंध गँवाइ गाँठि को रही बौरई मानि—१५७२। (२) किसी कपड़े में लपेटकर लगायी हुई गाँठ। उ.—होतौ नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहिं टरतौ—१-२६७। (३) बाँस, ऊख आदि की गाँठ। उ.—मुरली कौन सुकृत फल पाये।......। मन कठोर तन गाँठि प्रगट ही, छिद्र बिसाल बनाये—६६१।

गाँठिकटा—संज्ञा पुं. [हिं. गाँठ+काटना] जेब काटनेवाला, गिरहकट। उ.—बटपारी, ठग, चोर, उचक्का गाँठिकटा, लठबाँसी—१-१८६।

गाँठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] (१) गाँठ। उ.—मेरो जिव गाँठी बाँधो पीतांबर की छोर—८८०।

मुहा.—गाँठी को—अपना, अपने पास का। उ.—हौं तो गयौ गुपालहिं भेंटन और खर्च गाँठी कौ—१० उ.—८७। गाँठि दै राखति—छिपा कर या बंद करके रखती है। उ.—दधि माखन गाँठी दै राखति करत फिरत सुत चोरी—१०-३२४

(२) हाथ की कोहनी में पहनने का एक गहना। (३) गँठीला डंठल।

गाँडर—संज्ञा स्त्री. [सं. गंडाली] (१) एक घास। (२) एक तरह की गँठीली दूब।

गाँडा—संज्ञा पुं. [सं. कांड या खंड] (१) कटा हुआ खंड। (२) गँडेरी। (३) ईख, गन्ना।

संज्ञा पुं. [सं. गंड] चक्की की मेड़।

गांडीव—संज्ञा पुं. [सं.] अर्जुन के धनुष का नाम।

गांडीवी—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अर्जुन। (२) अर्जुन नामक वृक्ष।

गाँथना—क्रि. स. [सं. ग्रंथन] (१) (माला आदि) गूँथना। (२) गाँठना, जोड़ना, सीना।

गांदिनी, गांदी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) अक्रूर की माता। (२) गंगा।

गांधर्व—वि. [सं] गंधर्व का, गंधर्व जातीय।

संज्ञा पुं. [सं.] (१) गंधर्व विद्या। (२) गान विद्या। (३) विवाह का एक प्रकार। (४) घोड़ा।

गांधर्वी—संज्ञा पुं. [सं.] दुर्गा।

गांधार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) सिंधु नद का पश्चिमी प्रदेश। (२) इस प्रदेश का निवासी। (३) गंधरस।

गांधारी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गांधार देश की स्त्री। (२) धृतराष्ट्र की पत्नी जो गांधार देश के राजा सुबल की पुत्री थी।

गांधी—संज्ञा स्त्री. [सं. गांधिक] (१) हरे रंग का एक बरसाती कीड़ा। (२) एक घास। (३) हींग।

संज्ञा पुं. [सं. गांधिक] (१) इत्र तेल बेचनेवाला, गंधी। (२) गुजराती वैश्यों की एक जाति।

गांभीर्य—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गहराई। (२) गंभीरता। (३) स्थिरता। (४) धीरता। (५) (विषय की) जटिलता।

गाँव—संज्ञा पुं. [सं. ग्राम, पा. गाम, प्रा. गावँ] किसानों की बस्ती, खेड़ा।

मुहा.—गँवई-गाँव—देहात। गाँव-गिराव—जमींदारी। गाँव मारना—डाका डालना।

—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँसना] (१) संकट, आपत्ति, बाधा। उ.—अजहूँ नाहिं डरात मोहन, बचे कितने गाँस—१०—४२७। (२) गुप्त बात, भेद, रहस्य। उ.—जोबन दान लेहिंगे तुम सौं। चतुराई मिलवति है हम सौं। इनकी गाँस कहा री जानौ। इतनी कही एक जिय मानौ—११६१। (३) गाँठ, फंदा, गठन, बनावट। उ.—इतने सबै तुम्हारे पास। निरखि न देखहु अंग अंग अब चतुराई की गाँस—११३२। (४) रोकटोक, बंधन, प्रतिबंध। (५) वैर, ईर्ष्या, द्वेष। (६) तीर या बरछी की नोक। (७) नुकीला हथियार, छुरी, बर्छी। उ.—भुजा धरे रज अंग चढ़ायौ, गाँस धरे हरि ऊपर आयौ—२६०६। (८) देखरेख, निगरानी।

मुहा.—गाँस करि राखी—ध्यान में रखी, मन में बैठा ली। उ.—तुम वह बात गाँस करि राखी, हम कहँ गई भुलाइ।

गाँसना—क्रि. स. [हिं. ग्रंथन] (१) गूँथना, गाँठना। (२) चुभोना, आर-पार करना। (३) कसना (४) देखरेख में रखना, वश में करना, दबोचना। (६) ठूसना, ठूँसकर भरना (७) छेद बंद करना।

गाँसी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँस] (१) तीर या बरछी की नोक। (२) तीर। उ.—सूरदास सोई पै जानैं जा उर लागै गाँसी— ३१३३। (३) गाँठ, गिरह। (४) कपट। (५) ईर्ष्या, द्वेष। (६) वश, अधिकार।

मुहा.—जोर करैगो गाँसी—जबरदस्ती वश में करेगा, हठपूर्वक अधिकार या शासन जमायगा। उ.—पावैगो पुनि कियौ आपनो जोर करैगो गाँसी।

गाइ—क्रि. स. [हिं. गाना] (१) मधुर स्वर से गाकर। (२) सविस्तार वर्णन करके। उ.—पारथ के सारथि हरि आप भए हैं। भक्त-बछल नाम निगम गाइ गये हैं—१-२३।

संज्ञा स्त्री. [सं. गौ, हिं. गाय] गाय। उ.—(क) माधो जू, यह मेरी इक गाइ। अब आज तैं आप आगैं दई, लै आइए चराइ—१-५१। (ख) माधो सखा स्याम इन कहि कहि अपने गाइ-ग्वाल सब घेरो—२५३२।

गाइयै—क्रि. स. [हिं. गाना] प्रशंसा या बड़ाई कीजिए, बखानिए। उ.—हरि सुमिरत सुख होइ, सु हरि-गुन गाइयै—उ.—३-११।

गाइबो—क्रि. स. [हिं. गाना] (गीत) गाया। उ.—जन मन भयो सूर आनँद हरषि मंगल गाइबो—१० उ.-२४ (८)।

गाईं—क्रि. स. [हिं. गाना] प्रार्थना करने लगीं, स्तुति की। उ.—राजरवनि गाईं ब्याकुल ह्वै, दै दै तिनकौं धीरक। मागध हति राजा सब छोरे, ऐसे प्रभु पर पीरक—१-११२।

गाई—क्रि. स. [हिं. गाना] (१) मधुर स्वर में अलापी। (२) विस्तार के साथ वर्णन की। उ.—एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और अनंत कथा स्तुति गाई—१-६

गाउँ—संज्ञा पुं. [सं. ग्राम, पा. गाम] (१) गाँव, खेड़ा। उ.—प्रभु जू, यौं किन्ही हम खेती। बंजर भूमि, गाँउ हर जोते, अरु जेती की तेती—१-१८५। (२) जमीन, जायदाद। उ.—द्याऊँ तोहिं राज-धन-गाऊँ—४-६। (३) राज्य, राजधानी। उ.—भलैं राम कौं सीय मिलाईं, जीति कनकपुर गाउँ—६-७५।

गाउ—क्रि. अ. [हिं. गाना] गा रहे हैं, मधुर स्वर से बोल रहें हैं। उ.—कुसुमसर रिपु नंद बाहक हहर हरषित गाउ—सा. उ.-४०।

गाऊँ—क्रि. स. [हिं. गाना] प्रशंसता हूँ, बखानता हूँ, स्तुति करता हूँ। उ.—सूर क्रूर, आँधरौ, मैं द्वार पर्यौ गाऊँ—१-१६६।

गाऊ—क्रि. स. [हिं. गाना] गाते हैं, बखानते हैं। उ.—सूरदास प्रभु की यह लीला निगम नेति नित गाऊ—१०-२२१।

गाए—क्रि. स. [हिं. गाना] गाये गये, सविस्तार वर्णित किये गये। उ.—दीनबंधु हरि, भक्तकृपानिधि, बेद-पुराननि गाए (हो) —१-७।

गाएँ—क्रि. स. सवि. [हिं. गाना] गाने से, वर्णन करने या बखानने से। उ—जो सुख होत गुपालहिं गाएँ—२-६।

गाऊघप्प—वि. [हिं. खाऊ+ गप्प (१) **जमा मार लेने-वाला। (२) खूब खरचने-उड़ानेवाला।**

गागर, गागरा, गागरि, गागरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्गर, पा. गग्गर, हिं. गगरा] घड़ा, **गगरी** । उ.—(क) पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस ज्यौं जल मैं काँची गगरि गरि—१०-१२०। (ख) ज्यौं जल माँह तेल की गागरि बूँद न ताको लागी—३३३५। (ग) मटकति गिरी गागरी सिर तैं अब ऐसी बुधि ठानति।

गाछ—संज्ञा पुं. [सं. गच्छ] **पौधा, पेड़।**

गाछो—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाछ + ई (प्रत्य)] (१) **कुंज, बाग। (२) (खजूर की) कोंपल। (३) बोरा या गद्दा जो पशुओं की पीठ पर रखा जाता है।**

गाज—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्ज] (१) **गरज, शोर। (२) बिजली गिरने का शब्द। (३) बिजली, वज्र।**

मुहा.—गाज पड़ना—**बिजली गिरना, वज्रपात होना।** (किसी पर) गाज पड़ना—**आफत आना।** (किसी बात पर) गाज पड़ना—**समूल नष्ट होना।** गाज मारना—(१) **वज्रपात होना। (२) आफत आना।** जिय गाज—**जी में भय उत्पन्न होना, भयानक संकट पड़ना।** उ.—चक्र धरे हरि आवहीं सुनि असुरन जिय गाज—१० उ.-८।

संज्ञा पुं. [अनु. गजगज] **फेन, झाग।**

गाजत—क्रि. अ. [हिं. गाजना] (१) **(प्रसन्न होकर) हुंकारते हैं।** उ.—जिहिं जल तृन, पसु, दारु बूड़ि, अपनैं सँग औरनि पारत। तिहिं जल गाजत महावीर सब, तरत आँखि नहिं मारत—६-१२३ (२) **क्रोध से गरजता है।** उ.—(क) रावन तब लौं ही रन गाजत। जब लौं सारँगधर कर नाहीं सारँग-बान बिराजत। तैसें सूर असुर आदिक सब सँग तेरे हैं गाजत—६-१३०। (ख) निसि दिन कलमलात सुन सजनी सिर पर गाजत मदन अर—२७६४।

गाजति—क्रि. अ. [हिं. गाजना] **गरजकर, शब्द करके।**

यौ.—गाजति-बाजति—**धूमधाम के साथ।** उ.—मुरली मोहे कुँवर कन्हाई।······। गाजति-बाजति, चढ़ी दुहूँ कर, अपनैं शब्द न सुनत पराई—६५४।

गाजन—संज्ञा. पुं. [सं. गर्जन, पा. गज्जन] **गर्जन, हुंकार, जोर का शब्द, ध्वनि।** उ.—सुनत बन मुरली धुनि की बाजन। पपिहा गुंज कोकिल बन कूँजत, अरु मोरनि कियौ गाजन—६२२।

क्रि. अ. [हिं. गाजना] **गरज कर।**

प्र०—आए गाजन—**गरजने आये हैं, भयंकर ध्वनि करके डराने आये हैं।** उ.—ब्रज पर बदरा आये गाजन—२८१७। लागे गाजन—**गरजने लगे हैं।** उ.—ब्रज पर बहुरो लागे गाजन—१० उ.-६६।

गाजना—क्रि. अ. [सं. गर्जन, पा. गज्जन] (१) **शब्द करना, गरजना। (२) प्रसन्न होना।**

मुहा.—गल गाजना—(१) **प्रसन्न होकर हुंकारना या किलकारी मारना। (२) क्रोध से गरजना।**

गाजनु—संज्ञा पुं. [सं. गर्जन, पा. गज्जन] **गरज, हुंकारने की क्रिया।** उ.—सूरदास नागर बिन अब यह कौन सहै सिर गाजनु—२८७२।

गाजर—संज्ञा स्त्री. [सं. गुंजन] **एक पौधा, उसकी जड़।**

गाजा—संज्ञा पुं. [हिं. गाज] **गरज, ध्वनि।**

संज्ञा पुं. [फ़ा. ग़ाज़ा] **मुँह पर मलने का पाउडर।**

गाजी—संज्ञा पुं. [अ. ग़ाज़ी] (१) **धर्मयुद्ध करनेवाले इस्लामी वीर। (२) वीर।**

क्रि. अ. [हिं. गाजना] (१) **गरजने लगी। (२) हर्षित हुई।**

मुहा.—सबहिनि के सिर गाजी—**सबको परास्त करके हर्षित हुई, सबको चुनौती देकर किलकारी भरी।** उ.—सुफल भयो पछिलो तप कीन्हो देखि सुरूप काम-रति भाजी। जगत के प्रभु बस किये सूर सुनि सबहिं सुहागिन के सिर गाजी—३०६४।

गाजु—क्रि. अ. [हिं. गाजना] **गरजा कर, चिल्लाया कर, बकाकर।** उ.—राखौ रोकि पाइ बंधन कै, अरु रोकौ जल नाजु। हौं तौ तुरत मिलौंगी हरिकौं, तू घर बैठौ गाजु—८०८।

गाजै—क्रि. अ. [हिं. गाजना] **गरजते हैं, हुंकारते हैं।** उ.—(क) बिप्र सुदामा कौं निधि दीन्हीं, अर्जुन रन मैं गाजै—१-३६। (ख) माई री ए मेघ गाजैं—२८१६।

गाजै—क्रि. अ. [हिं. गाजना] (१) हुंकारे, गरजे, चिल्लाये। (२) प्रसन्न हुए।

मुहा.—गल गाजै—हर्षित होकर किलकारता है। (किसी पर) गाजै—परास्त कर सकता है, चुनौती देता है, बहुत बढ़कर है। उ.—तेज-प्रताप राइ केसो कौ तीनि लोक पर गाजै—२६३२।

गाटर, गाटी—संज्ञा पुं. [हिं. कठा] छोटा खेत।

गाठी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] ग्रंथि, बंधन। उ.—प्रभु कब देखिहौ मम ओर। जान आपुन आपु ते गिरनाथ गाठी छोर—सा. उ. ४२।

गाड़—संज्ञा स्त्री. [सं. गर्त्त, प्रा. गड्ड] (१) गड्ढा, गढ़ा। (२) अन्न रखने का गड्ढा। (३) कुएँ की टाल। (४) खेत की मेंड़, बाढ़।

गाड़ना—क्रि. स. [हिं. गाड़ = गड्ढा] (१) गड्ढा खोद कर किसी चीज को मिट्टी आदि से दबा देना, तोपना। (२) गड्ढा खोद कर किसी चीज को इस तरह खड़ा करना कि वह मजबूती से जमी रहे। (३) किसी चीज को उसके नुकीले भाग की तरफ से धँसाना। (४) (किसी बात या रहस्य को) छिपाना या प्रकट न करना।

गाडर—संज्ञा स्त्री. [सं. गड्डरी या गड्डरिका] (१) भेड़। (२) गाँडर घास जो मूँज की तरह होती है।

गाड़रू—संज्ञा पुं. [हिं. गारुड़ी] साँप का विष झाड़ने वाला व्यक्ति।

गाड़ा—संज्ञा पुं. [सं. शकट, प्रा. सगड़] बैलगाड़ी, छकड़ा। उ.—सीधो बहुत सुरासुर नंदै गाड़ा भरि पहुँचायौ।

संज्ञा पुं. [सं. गर्त्त, प्रा. गड्ड] (१) छिपकर बैठने का गड्ढा (२) कोल्हू के नीचे का गड्ढा।

गाड़ि—क्रि. वि. [हिं. गाड़=गड्ढा, गाड़ना] जमीन में गाड़कर। उ.—(क) भैया-बंधु कुटुंब घनेरे, तिनतैं कछु न सरी।······मरती बेर सम्हारन लागे, जो कछु गाड़ि धरी—१-७१। (ख) कबहूँ पाप करैं पावत धन, गाड़ि धूरि तिहिं देत—२-१५। (ग) सूर जोग-धन राख मधुपुरी कुबिजा के घर गाड़ि—३००४।

गाड़िऐ—क्रि. स. [हिं. गाड़ना] गढ़े में दबा दीजिए, तोपिए। उ.—ये पांडव क्यौं गाड़िऐ, धरनीधर डोलैं—१-२३८।

गाड़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. शकट, प्रा. सगड़] सवारी जिसे घोड़े या बैल खींचते हैं।

क्रि. स. [हिं. गाड़ना] (१) गढ़े में गाड़कर, तोप कर। (२) जबरदस्ती रोककर। उ.—मोको बैरी भए कुटुँब सब फेरि फेरि ब्रज गाड़ी। जो हौं, कैसेहुँ जान पावती तौ कत आवत छाड़ी—२७०१।

गाड़ू—संज्ञा पुं. [सं. गारुड़] मंत्र, जादू। उ.—कछु पढ़ि-पढ़ि कर, अंग परसि करि, विष अपनौ लियौ झारि। सूरदास प्रभु बड़े गारुड़ी, सिर पर गाड़ू डारि—७५६।

गाड़े—संज्ञा पुं. [सं. गर्त. प्रा. गड्ड, हिं. गाड़] गड्ढा, गहरा गढ़ा। उ.—गृह गृह प्रति द्वार फिर्‍यौ, तुमकौं प्रभु छाँड़े। अंध अंध टेकि चलै, क्यों न परै गाड़े—१-१२४।

गाढ़—वि. [सं.] (१) बहुत अधिक। (२) दृढ़, मजबूत। (३) घना, गाढ़ा। (४) गहरा, अथाह। (५) दुर्गम।

संज्ञा पुं.—(१) आपत्ति, संकट। उ.—(क) उलटी गाढ़ परी दुर्वासैं दहत सुदरसन जाकौं—१-११३। (ख) डसी री माई स्याम भुजंगम कारे।···सूरस्याम गारुड़ी बिना को जो सिर गाढ़ उतारै। (ग) जहँ-जहँ गाढ़ परै तहँ आवै—६७०। (घ) जब-जब गाढ़ परति है हमकौ तहँ करि लेत सहैया—२३७४। (२) जुलाहों का करघा।

गाढ़ा—वि. [सं. गाढ़] जो कम पतला हो। (२) जिसके सूत खूब घने मिले हों। (३) घनिष्ट, गहरा। (४) घोर, कठिन।

संज्ञा पुं.—(१) हाथ के सूत का मोटा कपड़ा। (२) मस्त हाथी।

गाढ़ी—वि. स्त्री. [हिं. गाढ़ा] (१) बढ़ी-चढ़ी, घोर, कठिन। उ.—एती करबर हैं टरी, देवनि करी सहाय। तब तैं अब गाढ़ी पड़ी, मोकौं कछु न सुझाइ—५८६। (२) बहुत बढ़ी हुई, अत्यंत। उ.—धेनु दुहत अतिहीं रति बाढ़ी। मोहन कर तैं धार चलति, परि मोहनि

मुख अति ही छबि गाढ़ी—७३६। (३) घनी, गहरी, घोर। उ.—मानहु मेघ घटा अति गाढ़ी—१०उ-२।

गाढ़े—वि. [हिं. गाढ़ा] (१) घनिष्ट, गूढ़। (२) बढ़े-चढ़े, घोर, कठिन, विकट। उ.—सूर उपँग-सुत बोलत नाहीं अति हिरदै हैं गाढ़े—२९६६।

मुहा.—गाढ़े की कमाई—मेहनत से कमाई हुई दौलत। गाढ़े के मीत, साथी या संगी—संकट समय के मित्र, विपत्ति में साथ देनेवाले। उ.—गोबिंद गाढ़े दिन के मीत। गज अरु ब्रज, प्रहलाद, द्रौपदी, सुमिरत ही निहचीत—१-३१। गाढ़े दिन—संकट के दिन, विपत्ति-काल। गाढ़े में—विपत्ति या संकट के दिनों में।

क्रि. वि. [हिं. गाढ़ा] (१) दृढ़ता से, मजबूती से। उ.—(क) पहुँची आइ जसोदा रिस भरि, दोउ भुज पकरे गाढ़े—४१३। (ख) हार सहित अँचरा गह्यो गाढ़े एक कर गह्यौ मटुकिया मेरी। (२) अच्छी तरह, खूब।

गाढ़ैं—वि. सवि. [सं. गाढ़, हिं. गाढ़ा] विपत्ति के दिनों में। उ.—हमारे निर्धन के धन राम। चोर न लेत, घटत नहिं कबहूँ, आवत गाढ़ैं काम—१-६२।

क्रि. वि. [हिं. गाढ़ा] दृढ़ता से, जोर से, मजबूती से। उ.—(क) इक कर सौं भुज गहि गाढ़ैं करि, इक कर लीन्ही साँटी—१० २५५। (ख) दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हें, गई महरि के आगैं—१०-३१७। (ग) लिए लगाइ कठिन कुच कैं बिच, गाढ़ैं चापि रही अपनैं कर—१०-३०१। (२) अच्छी तरह, भली भाँति, खूब, ऊँचे (स्वर) से। उ.—बरजति है घर के लोगनि कौं हरुऐ लै लै नामहिं। गाढ़ैं बोलि न पावत कोऊ डर मोहन बलरामहिं—५१५।

गाढ़ो—वि. [हिं. गाढ़ा] गहरा, गूढ़, बहुत अधिक, खूब बढ़ा हुआ। उ.—(क) गाढ़ो मान दूरि करि डारयौ हरष भई मन बाम—२१५१। (ख) बहुरि सखी सुफलक सुत आयौ परयौ संदेह जिय गाढ़ौ—२९७१। (ग) नाम सुदामा कहत नाथ जो दुखी आहि अति गाढ़ो—१० उ.-७७।

गाढ़ौ—वि. [हिं. गाढ़ा] कठिन, विकट, प्रचंड, घोर। उ.—(क) सुनियत हैं, तुम बहु पतितनि कौं, दीन्हौ है सुखधाम। अब तौ आनि परयौ है गाढ़ौ सूर पतित सौं काम—१-१७६। (ख) इत पारथ गांगेय बली उत जुरो जुद्ध अति गाढ़ौ—सारा.७८१।

गाणपत्य—त्रि. [सं.] गणपति-संबंधी।

संज्ञा पुं.—गणेश-उपासक-संप्रदाय।

गात—संज्ञा पुं. [सं. गात्र, पा० गत्त] (१) शरीर, अंग। उ.—(क)ग्राह गह्यौ गज बल बिनु ब्याकुल, बिकल गात गति लंगी। धाइ चक्र लै ता हि उबारयौ, मारयौ ग्राह बिहंगी—१-२१। (ख) सूरदास प्रभु बोलि न आयौ प्रेम पुलकि सब गात—२५३१। (२) शरीर के गुप्तांग। (३) स्तन, कुच। (४) गर्भ।

गातन—संज्ञा पुं. सवि. [हिं. गात] शरीर में। उ.—पाये जानि सकल सुनि मधुकर जे गुन साँवरे गातन—३०२५।

गाता—संज्ञा पुं. [हिं. गात] शरीर, अंग। उ.—नैन अलसात अति, बार-बार जमुहात, कंठ लगि जात, हरषात गाता—४४०।

संज्ञा पुं. [सं. गातृ (गाता)] गानेवाला, गवैया।

संज्ञा पुं. [सं. गत्ता] दफ्ती, कुट।

गाती—संज्ञा स्त्री. [सं. गात्री या गात्रिका] (१) चद्दर जो शरीर या गले में बाँधी-लपेटी जाय। उ.—सारी सुभग काछ सब दिये। पाटंबर गाती सब दिये। (२) गाती या चादर शरीर के चारो ओर लपेटकर गले में बाँधने का ढंग।

गातु—संज्ञा पुं. [सं.] (१) कोयल। (२) भौंरा। (३) गंधर्व। (४) गानेवाला। (५) गान। (६) पथिक। (७) पृथ्वी।

गाते—संज्ञा पुं. [हिं. गात] शरीर। उ.—गदगद बचन नैन जल पूरित बिलखि बदन कृस गाते—३४६१ और सा. उ.—४६।

गात्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) अंग, देह, शरीर। उ.—पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनो गात्र—१-२१६। (२) हाथी के अगले पैरों का ऊपरी भाग।

गाथ—संज्ञा पुं. [सं. गाथा] (१) गान, गीत। उ.—सूर स्याम हौं ठगी महानिसि पढ़ि जु सुनाये प्रात के

गाथ—२७३६ । (२) स्तोत्र । (३) यश, प्रशंसा । उ.—(हरि) पतित-पावन, दीनबन्धु अनाथनि के नाथ । संतत सब लोकनि स्तुति, गावत यह गाथ —१-१८२ । (४) वचन, वाणी, कथन । उ.—तब बोले जगदीस जगतगुरु सुनो सूर मम गाथ । तू कृत मम जस जो गावैगौ सदा रहै मम साथ—सारा.११०४ ।

गाथक—संज्ञा पुं. [सं.] गानेवाला, गायक ।

गाथना—क्रि. स. [हिं. गाँथना] गूँथना, गाँथना ।

गाथा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) स्तुति । (२) श्लोक । (३) रचना जिसमें दान, यज्ञ आदि का वर्णन हो । (४) आर्यावृत्ति । (५) एक प्राचीन भाषा जिसमें पाली और संस्कृत के विकृत शब्द-रूप रहते थे । (६) गीत । (७) कथा, वृत्तांत ।

गाथी—संज्ञा पुं. [सं. गाथिन्] सामवेद-गायक ।

गाद—संज्ञा स्त्री. [सं. गाध = जल का तल] (१) तरल पदार्थ की निचली गाढ़ी चीज, तलछट । (२) तेल की कीट । (४) गाढ़ी चीज ।

गादड़—वि. [सं. कातर या कदर्य, प्रा. कादर] कायर ।
संज्ञा पुं.— (१) अड़ियल बैल । (२) गीदड़ ।
संज्ञा पुं. [सं. गड्डर] भेड़ा, मेढ़ा ।

गादर—वि. [सं. कातर या कदर्य, प्रा. कादर] (१) कायर, भीरु । (२) सुस्त, मट्ठर ।
संज्ञा पुं.—(१) अड़ियल बैल । (२) गीदड़ ।
वि. [हिं. गदराना] गदराया हुआ ।

गादा—संज्ञा पुं. [सं. गाधा = दलदल] (१) अधपका अन्न । (२) कच्ची फसल । (३) हरा महुआ ।

गादी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गद्दी] (१) एक पकवान । (२) गद्दी ।

गादुर—संज्ञा पुं. [सं. कातर, प्रा. कादर] चमगादड़ ।

गाध—संज्ञा पुं. [सं.] (१) स्थान, जगह । (२) जल की थाह (३) नदी का बहाव । (४) लोभ ।
वि.— (१) जो बहुत गहरा न हो । (२) थोड़ा ।

गाधा—संज्ञा स्त्री. [सं.] गायत्री-स्वरूपा महादेवी ।

गाधि—संज्ञा पुं. [सं.] विश्वामित्र के पिता जो कुशिक राजा के पुत्र थे ।

गाधितनय, गाधिपुत्र, गाधिसुत — संज्ञा पुं. [सं.] विश्वामित्र ।

गाधी – संज्ञा स्त्री. [हिं. गद्दी] गद्दी ।

गाधेय– संज्ञा पुं. [सं.] विश्वामित्र ।

गान—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गाने की क्रिया, गाना । (२) गाने की चीज, गीत ।

गानत—क्रि. स. पुं. [हिं. गाना] गाते हैं । उ.—परे रहत द्वारे सोभा के वोई गुन गनि गानत—पृ. ३२८।

गानति—क्रि. स. स्त्री. [हिं गाना] गाती हैं । उ.—ग्वालन संग रहत जे माई, यह कहि कहि गुन गानति —१८०५ ।

गाना —क्रि. स. [सं. गान] (१) ताल, स्वर के ध्यान से मधुर ध्वनि निकालना । (२) मधुर ध्वनि करना । (३) विस्तार के साथ वर्णन करना ।
मुहा.—अपनी गाना—(१) अपना दुखड़ा रोना। (२) अपनी बात कहना । अपनी ही गाना—अपने मतलब की कहना ।
(४) स्तुति या प्रशंसा करना ।
संज्ञा पुं.—(१) गाने की क्रिया, संगीत । (२) गाने की चीज, गीत ।

गानि—क्रि. स. [हिं. गाना] बखान कर, प्रशंसा करके । उ.—तेहि समय सुख स्याम स्यामा सूर क्यों कहै गानि— पृ. ३४३ (२२) ।

गानी —क्रि. स. [हिं. गाना] वर्णन की, गायी, सविस्तार कही । उ.—(क) तब पठयौ ब्रज-दूत, सुनी नारद-मुख-बानी । बार-बार रिषि-काज, कंस अस्तुति मुख गानी—५८६ । (ख) जो तुम अंग अंग अवलोक्यौ धन्य धन्य मुख अस्तुति गानी—१३१६ ।

गाने—क्रि. स. [हिं. गाना] गाये, बखान किये । उ.—ताही के जाहु स्याम जाके निसि बसे धाम मेरे गृह कहा काम सूरदास गाने—१६५२ ।

गानै—क्रि. स. [हिं. गाना] गाता है, स्तुति करता है । उ.—बार बार स्याम राम अक्रूरहि गानै । अबहिं तुम हरष भए तबहिं मन मारि रहे, चले जात रथहिं बात, बूझत हैं बानैं—२५५७ ।

गान्यौ—क्रि. स. भूत. [हिं. गाना] गाया, बखान किया

स्तुति की। उ.—गुरु की कृपा भई जब पूरन तब रसना कहि गान्यौ—पृ. ३५० (५७)।

गाफिल—वि. [अ. ग़ाफ़िल] (१) बेसुध, बेखबर। (२) लापरवाह, असावधान।

गाब—संज्ञा पुं. [देश.] एक पेड़।

गाभ—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ, पा. गब्भ] (१) पशुओं का गर्भ। (२) नया कल्ला, कोंपल। (३) बरतन का साँचा।

गाभा—संज्ञा पुं. [सं. गर्भ, पा. गब्भ] (१) नया कल्ला, कोंपल। (२) पेड़ के डंठल के बीच का भाग या हीर। (३) लिहाफ आदि से निकली हुई पुरानी रुई। (४) कच्ची खेती।

गाभिन, गाभिनी—वि. स्त्री. [सं. गर्भिणी, पा. गब्भिणी] मादा पशु जिसके पेट में बच्चा हो।

गाम—संज्ञा पुं. [सं. ग्राम, पा. गाम] गाँव। उ.—.... सुभ दिन हरि आये निज धाम। तौलौं घर घर प्रति दुर्गा कौ पूजन कियौ सब गाम—सारा-६५१।

गाभिनी—सं. स्त्री. [सं.] एक तरह की नाव।

गामी—वि. [सं. गामिन्] (१) चलनेवाला, चालवाला। उ.—तिनको कौन परेखो कीजै जे हैं गरुड़ के गामी—३०८०। (२) संभोग या रमण करनेवाला।

गामुक—वि. [सं.] जानेवाला।

गाय—संज्ञा स्त्री. [सं. गो] (१) गैया, गऊ।

मुहा.—गाय की तरह काँपना—बहुत डरना, थर्राना। गाय का बछिया और बछिया का गाय के तले करना— थोड़े में काम चलाने के लिए हेरा-फेरी करना।

(२) बहुत सीधा आदमी, दीन मनुष्य।

क्रि. स. [हिं. गाना] गाकर, बखान करके। उ.—नंद महर को गारी गाय—२४०६।

गायक—संज्ञा पुं. [सं.] गानेवाला, गवैया।

गायगोठ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाय+सं. गोष्ठ] गैयों का बाड़ा, गोशाला।

गायत—वि. [अ. ग़ायत] बहुत, अत्यंत।

गायताल—संज्ञा पुं. [हिं. गाय + तल] (१) निकम्मा बैल या चौपाया। (२) बेकार या रद्दी चीज।

वि.—निकम्मा, बेकार, गया-गुजरा, रद्दी।

गायत्र—संज्ञा पुं. [सं.] गायत्री छंद।

गायत्री—संज्ञा पुं. [सं. गायत्रिन्] खैर का पेड़।

संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) एक वैदिक छंद। (२) एक पवित्र मंत्र। उ.—तिन गायत्री सुने गर्ग सों प्रभु गति अगम अपार—२६२६। (३) खैर। (४) दुर्गा।

गायन—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गानेवाला, गायक, गवैया। (२) गाकर जीविका कमानेवाला। (३) गीत, गान। (४) स्वामी कार्तिकेय।

संज्ञा स्त्री. बहु [ब्रज. गैयन] गैयाँ। उ.—गायन घर घर घेर चरावत लोभ नचावन हारे—सा. उ. ८।

गायब—वि. [अ. ग़ायब] लुप्त, अंतर्धान।

गायबाना—क्रि. वि. [हिं. गायब] चुपके से, धीरे धीरे, अनुपस्थिति में।

गायिका—संज्ञा स्त्री. [सं. गायक] गानेवाली।

गायिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गानेवाली स्त्री, गायिका। (२) एक मात्रिक छंद।

गायौ—क्रि. स. [सं. गान, हिं. गाना] स्तुति की, बखान किया, प्रशंसा की। उ.—(क) कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं, पाँडु की बधू जस नैंकु गायौ। लाज के साज मैं हुती ज्यौं द्रौपदी, बढ़्यौ तन- चीर नहिं अंत पायौ—१-५। (ख) सरन गए राखि लेत सूर सुजस गायौ—१-२३।

संज्ञा पुं. सवि. [हिं. गैया] गाय (का)। उ. गायौ-घृत भरि धरी कटोरी—३६५।

गार—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली] गाली।

संज्ञा पुं. [अ.] (१) गड्ढा। (२) गुफा।

गारडू—संज्ञा पुं. [हिं. गारुड़ी] साँप का विष उतारने वाला।

गारत—वि. [अ. ग़ारत] नष्ट, बरबाद।

गारना—क्रि. स. [सं. गालन = निचोड़ना] (१) पानी या रस निकालना या निचोड़ना। (२) घिसकर मिलाना। (३) त्यागना, दूर करना।

क्रि. स. [सं. गल] (१) गलाना, घुलाना।

मुहा.—तन [देह या शरीर] गारना—तप करना जिससे शरीर गले या कष्ट हो।

(२) नष्ट करना, बरबाद करना।

गारभेजी—संज्ञा स्त्री. [देश.] **फालसे की जाति का एक जंगली फल।**

गारा—संज्ञा पुं. [हिं. गारना] **गाढ़ा चूना या मिट्टी जो जोड़ाई या पलस्तर के काम आता है।**

संज्ञा पुं. [देश.] **नीची भूमि जिसमें पानी न टिके।**

गारि—क्रि. स. [सं. गालन = निचोड़ना] **निकालना, त्यागना, दूर करना।**

क्रि. स. [हिं. गारना] (१) **गलाना, घुलाना।**

मुहा.—तन (तनु) गारि—**तप द्वारा शरीर को कष्ट देकर या गला कर।** उ.—(क) तब तन गारि बहुत स्रम कीन्हो सो फल पूरन दैन। (ख) सरद ग्रीसम डरत नाहीं, करति तप तनु गारि—७८१।

(२) **नष्ट करके, खोकर मिटाकर, समाप्त करके।** उ.—ससि-गन गारि रच्यौ बिधि आनन, बाँके नैननि जोहै—१०-१५८।

संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली] (१) **दुर्वचन, शाप।** उ.—बंस निबंस करि डारिहौं छिनक मैं गारि दै दै ताहि त्रास दीन्हो—२६०२। (२) **उत्सवों में गाये जाने वाले गीत जिनमें दी हुई गाली प्रिय लगती है।** उ.—(क) गावत नारि गारि सब दै दै—६-२५। (ख) सजन प्रीतम नाम लै लै दै परस्पर गारि—१०-२६।

गारियाँ—संज्ञा स्त्री. बहु. [हिं. गाली] (१) **गालियाँ, दुर्वचन।** (२) **गीत जो उत्सवों में गाये जाते हैं जिनमें दी हुई गाली प्रिय लगती हैं, उत्सवों में गायी जानेवाली गालियाँ।** उ.—आईं जुरि जुवती दूहूँ दिसि मनों देति आनँद गारियाँ—पृ. ३४८ (४)।

गारी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली] (१) **गाली, दुर्वचन, अपशब्द।** उ.—(क) गारी देहि प्रात उठि मोकौ सुनत रहत यह बानी—२६३६। (ख) नारी गारी बिनु नहिं बोलै पूत करै कलकानी। घर में आदर कादर कोसौं खीझत रैन बिहानी। (२) **कलंकजनक आरोप।** उ.—(क) सूरस्याम इहिं बरजि कै मेल्यो अब कुल-गारी हो—१-४४। (ख) खीझ कह्यो ताहि क्यों इहाँ ल्यायौ मुझे मम पिता-मात कौ लगै गारी—१० उ.—५६।

मुहा.—गारी आवै (पड़े, लगे)—**कलंक लगता है, लांछन लगता है।** उ.—लोचन लालच भारी। इनके लए लाज या तन की सबै स्याम सौं हारी। बरजत मात पिता पति बांधव अरु आवै कुल गारी। तदपि रहत न नंद नँदन बिनु कठिन प्रकृति हठ धारी। हाथ रहेगी गारी—**गाली देकर व्यर्थ ही पछताना होगा।** उ.—अब दुख मानि कहा धौं करिहौ हाथ रहैगी गारी—२६३८। गारी लाना—**कलंक या दाग लगाना।**

(३) **एक गीत जो उत्सवों में स्त्रियाँ गाती हैं जिनमें दी हुई गालियाँ प्रिय लगती हैं।** उ.—निर्भय अभय-निसान बजावत, देत महर कौं गारी—१०-४।

क्रि. स. [सं. गल] **गलाया, घुला दिया।**

मुहा.—कीन्हो तनु गारी—**तप करके या कष्ट सहकर, सारा शरीर गला कर।** उ.—(क) व्रत-साधति नीकैं तन गारी—७६६। (ख) षटरितु तप कीन्हो तनु गारी—१००५।

गारुड़—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मंत्र जिसका देवता गरुड़ हो, साँप का विष उतारने का मंत्र।** उ.—आवति लहर मदन बिरहा की को हरि बेगि हँकारै। सूरदास गिरिधर जौ आवहिं हम सिर गारुड़ डारै—३२५४।

गारुड़ि, गारुड़ी, गारुड़िक—संज्ञा पुं. [सं. गारुडिन्] (१) **मंत्र से साँप का विष उतारनेवाला, साँप झाड़नेवाला।** उ.—(क) कृष्न सुमंत्र जियावन मूरी जिन जन मरत जिवायौ। बारंबार निकट स्रवनन ह्वै गुरु गारुड़ी सुनायौ—२-३२। (ख) औरै दसा भई छिन भीतर, बोले गुनी नगर तैं। सूर गारुड़ी गुन करि थाके, मंत्र न लागत थर तैं—७४४। (ग) चले सब गारुड़ी पछिताइ। नैकुहूँ नहिं मंत्र लागत समुझि काहु न जाइ—७४५। (घ) डसी री स्याम भुअंगम कारे। ······ । सूर स्याम गारुड़ी बिना को, जो सिर गाढ़ उतारै—७४७। (२) **मंत्र से साँप पकड़नेवाला, सँपेरा।**

गारुत्मत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **मरकत, पन्ना।** (२) **गरुड़ जी का अस्त्र।**

गारुरी—संज्ञा पुं. [हिं. गारुड़ी] **साँप का विष उतारने**

वाला। उ.—डसी री माई स्याम भुअंगम कारे।…। आनहु वेगि गारुरी गोबिंदहिं जो यहि बिषहिं उतारै।

गारै—क्रि. स. [सं. गल] **गलाती या घुलाती हैं।**

मुहा.—तनु गारै—**शरीर गलाती या क्षीण करती हैं।** उ.—नैनन ते बिछुरी भौहैं भ्रम ससि अजहूँ तन गारै—३१८६।

गारो, गारौ—संज्ञा पुं. [सं. गर्व] **(१) गर्व, अहंकार, अभिमान।** उ.—(क) छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारौ—१-१३१। (ख) बिदुर दास के भोजन कीन्हौ, दुरजोधन कौ मेट्यो गारौ—१-१७२। (ग) देखत बल दूरि करयौ मेघनाद गारौ। (घ) हमको नँदनंदन को गारो—६८७। (ङ) बात सुनत रिस भरयौ महावत तुमहि कहा इतनो रे गारो—२५६०। **(२) मान, प्रतिष्ठा।** उ.—जो मेरो लाल खिझावै। सौ अपनो कियो फल पावै। तेहि दैहौं देस-निकारो। ताको ब्रज नाहिंन गारो—१०-१८३।

क्रि. स. [हिं. गारना, गलाना] **गलाओ, गलाकर समाप्त करो, तप द्वारा क्षीण करो।** उ.-(क) राम-नाम सरि तऊ न पूजैं, जौ तन गारौ जाइ हिवार—२-३। (ख) जप-तप करि तनु अब जनि गारौ—७६७।

गारौं—क्रि. स. [हिं. गाड़ना] **गाड़ दूँ, धसा दूँ।** उ.—कहौ तौ परबत चाँपि चरन तर, नीर-खार मैं गारौं—६-१०७।

गार्गी—संज्ञा स्त्री. [सं.] **(१) गर्ग गोत्र की एक प्रसिद्ध विदुषी। (२) याज्ञवल्क्य की एक स्त्री। (३) दुर्गा।**

गार्ग्य—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) गर्ग गोत्रीय व्यक्ति। (२) एक प्राचीन वैयाकरण।**

गारयौ—क्रि. स. भूत. [हिं. गलाना] **नष्ट किया, खोया, बरबाद किया।** उ.—आछौ जनम अकारथ गारयौ। करी न प्रीति कमल-लोचन सौं, जन्म जुवा ज्यौं हारयौ—१-१०१।

गार्हस्थ्य—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) गृहस्थाश्रम। (२) गृहस्थ के मुख्य क ँ।**

वि.—**गृहस्थी-संबंधी।**

गाल—संज्ञा पुं. [सं. गंड, गल्ल] **(१) गंड, कपोल।**

मुहा.—गाल फुलाना—**(१) गर्व प्रकट करना। (२) रूठकर बोलना।** गाल बजाना—**(१) बढ़ बढ़ कर बातें करना। (२) व्यर्थ बकबाद करना।** गाल बजैहै—**बढ़ बढ़कर बातें करेगी, डींग मारेगी।** उ.—देखहु जाइ चरित तुम वाके जैसे गाल बजैहै—१२६३। गाल में जाना—**मुँह में जाना।** काल के गाल में जाना—**मृत्यु के मुख में पड़ना, मरना।** गाल मारना—**(१) डींग डाकना। (२) व्यर्थ की बकवाद करना।**

(२) बड़बड़ाने या मुँहजोरी करने का स्वभाव।

मुहा.—गाल करना—**(१) मुँहजोरी करना, निसंकोच अंडबंड बकना। (२) बहुत बढ़ बढ़ कर बातें करना, डींग हाँकना।** बहुत करत हैं गाल—**निसंकोच अंडबंड बकते हैं।** उ.—आई हँसत कहति हरि एई बहुत करत हैं गाल—२४२७। करि करि गाल—**बहुत बढ़ बढ़कर बातें करके, खूब डींग हाँककर।** उ.—बेगि करो मेरों कह्यौ पकवान रसाल। वह मघवा बलि लेत है नित करि करि गाल।

(३) मध्य भाग, बीच का अंश। (४) फंका, कौर।

मुहा.—गाल मारना—**कौर मुँह में रखना।**

(५) अन्न जो एक बार में चक्की में डाला जाय।

संज्ञा पुं. [देश.] **एक तरह की तंबाकू।**

गालगूल—संज्ञा पुं. [हिं. गाल (अनु.)] **व्यर्थ की गपशप, अंडबंड बात।**

गालबंद—संज्ञा पुं. [हिं. गाल + बंद] **एक बंधन।**

गालमसूरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] **एक तरह की मिठाई।** उ.—(क) अरु तैसियै गालमसूरी। जो खातहिं मुख-दुख दूरी—१०-१८३। (ख) दूध बरा, उत्तम दधि-बाटी, गालमसूरी की रुचि न्यारी—१०-२२७।

गालव—संज्ञा पुं. [सं.] **(१) एक ऋषि। (२) एक प्राचीन वैयाकरण। (३) एक पेड़।**

गाला—संज्ञा पुं. [हिं. गाल=ग्रास] **(१) कपास की डोंड़ी से निकली हुई रुई। (२) धुनी हुई रुई की पूनी।**

मुहा.—रुई का गाला (गाला सा)—**बहुत सफेद।**

संज्ञा पुं. [हिं. गाल] **(१) बड़बड़ाने या मुँह-जोरी का स्वभाव। (२) कौर, ग्रास।**

गालिब—वि. [अ. ग़ालिब] **विजयी, श्रेष्ठ।**

गालिम—वि. [अ. ग़ालिब] **प्रबल, बली।**

गाली—संज्ञा स्त्री. [सं. गालि] (१) दुर्वचन, अपशब्द। (२) कलंक, कलंकसूचक आरोप।

गालीगलौज—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाली+अनु. गलौज] गाली की अदला-बदली, तू-तू मैं-मैं।

गालीगुफ्ता—संज्ञा पुं. [हिं. गाली+फ़ा. गुफ्तार=कहना] (१) दुर्वचन, अपशब्द। (२) तू-तू मैं-मैं।

गालना—क्रि. अ. [सं. गल्प = बात] बात करना।

गालू—वि. [हिं गाल + ऊ (प्रत्य.)] (१) बढ़ बढ़कर बातें करनेवाला, गाल बजानेवाला। (२) डींग हाँकनेवाला, डींगिया।

गालोड्य—संज्ञा पुं. [सं.] कमलगट्टा।

गाल्हना—क्रि. अ. [हिं. गालना] बात करना।

गाव—संज्ञा पुं. [सं. गो या फ़ा. गाव] गाय-बैल।

गावकुशी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] गोवध।

गावकुस—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा + कुश] लगाम।

गावकोहान—संज्ञा पुं. [फ़ा.] घोड़ा जिसके कूबड़ हो।

गावखाना—संज्ञा पुं. [फ़ा.] गोशाला।

गावड—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीवा] गला, गर्दन।

गावत—क्रि. स. [हिं. गाना] (१) गाते हैं। (२) प्रशंसा करते हैं, बखानते हैं। उ.—(क) कमल नैन की लीला गावत कटत अनेक विकार—२-२। (ख) बारंबार ग्यान गीता को ब्रज बनितनि आगे गावत —२६८६।

गावतकिया—संज्ञा पुं. [फ़ा.] बड़ा तकिया, मसनद।

गावति—क्रि. स. [हिं. गाना] गाती है। उ.—अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुल्लित मगन होति नँद-घरनी—१०-४४।

गावते—क्रि. स. [हिं. गाना] गाते हैं। उ.—कबहुँक काहू भाँति चतुर चित अति ऊँचे सुर गावते—२७३५।

गावदी—वि. [हिं. गाय+दी या सं. धीर] (१) मूर्ख, नासमझ। (२) कुंठित बुद्धि का।

गावदुम—वि. [फ़ा.] (१) ढालू। (२) चढ़ाव-उतार।

गावन—संज्ञा स्त्री. [सं. गान, हिं. गाना] गाने की क्रिया, गाना। उ.—(क) द्वारैं ठाढ़े हैं द्विज बावन। चारौ बेद पढ़त मुख आगर, अति सुकंठ-सुर-गावन —८-१३। (ख) सूरदास निस्तरिहैं यह जस करि-करि दीन-दुखित जन गावन—९-१३१। (ग) अमर-नगर उत्साह अपसरा-गावन रे—१०-२८। (घ) बेनु पानि गहि मोको सिखावत मोहन गावन गौरी —२८७७।

गावनो—क्रि. स. [हिं. गाना] गाना, बखान करना। उ.—सूर स्याम सुप्रेम उमँग्यौ हरि जस सु लीला गावनो—२२८०।

गावहि—क्रि. स. [हिं. गाना] प्रशंसा करता है, बखानता है। उ.—जो गावहि ताकी गति होइ—२-५।

गावहिंगे—क्रि. स. [हिं. गाना] गायँगे। उ.—तैसेइ मोर पिक करत कुलाहल हरषि हिंडोला गावहिंगे —२८८६।

गावहु—संज्ञा पुं. [हिं. गाना] गाओ। उ.—बलि-बलि जाउँ मधुर सुर गावहु—१०-१७६।

गावैं—क्रि. स. [हिं. गाना] स्वर निकालते हैं, बखानते हैं। उ.—भक्त बछल है बिरद हमारौ, बेद सुमृति हूँ गावैं—१-२४४।

गावै—क्रि. स. [हिं. गाना] (१) गाता है। (२) स्तुति करता है, प्रशंसा करता है। उ.—जरासंध बंदी कटैं नृप कुल जस गावै—१-४।

गावैगो—क्रि. स. [हिं. गाना] गायगा, पढ़ेगा, पाठ करेगा। उ.—तू कृत मम जस जो गावैगो सदा रहै मम साथ—सारा. ११०४।

गावौ—क्रि. स. [हिं. गाना] गाओ, मधुर स्वर निकालो, आलापो। उ.—गावौ हरि कौ सोहिलौ (हो)—१०-४०।

गास—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास] संकट, दुख। उ.—अजहूँ नाहिं डरात मोहन बचे कितने गास।

क्रि. स. [हिं. ग्रसना] ग्रसे हुए है, गाँसे है। उ.—सिंधु-सुत-धर सुहित सुत गुन गहक गोपी गास —सा. उ. ४२।

गासिया—संज्ञा पुं. [अ. ग़ाशियः] जीनपोश।

गाह—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दुर्गम या गहन स्थान। (२) गहन स्थान में विचरनेवाला मनुष्य।

संज्ञा पुं. [सं. ग्राह] (१) गाहक। (२) घात। (३) ग्राह, मगर।

गाहक—संज्ञा पुं. [सं. ग्राहक, प्रा. गाहक] (१) खरीदनेवाला, मोल लेनेवाला। उ.—सूरदास गाहक नहिं

कोऊ दिखिअत गरे परी—३१०४ । (२) चाहने वाल, अभिलाषी, प्रेमी, इच्छुक । उ.—(क) स्याम गरीबनि हूँ के गाहक। दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति निबाहक—१-१६ । (ख) हम तौ प्रेम-प्रीति के गाहक—१-२३६ । (ग) सुर नर सब स्वारथ के गाहक—८-६ । (घ) तुम अलि सब स्वारथ के गाहक नेह न जानत आधो—३२४४ ।

गाहकी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाहक] (१) बिक्री, खरीदारी । (२) ग्राहक की रुचि ।

गाहकताई—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्राहकता] (१) खरीदारी । (२) कदरदानी, चाह ।

गाहत—क्रि. स. [हिं. गाहना] झाड़ता है, ओहने में लगा है । उ.—झारि भूरि मन तौ तू लै गयो बहुरि पयारहिं गाहत—३०६५ ।

गाहन—संज्ञा पुं. [सं.] स्नान करना ।

गाहना—क्रि. स. [सं. अवगाहन] (१) थाह लेना, अवगाहना। (२) विलोडना, मथना । (३) झाड़ना, ओहना । (४) दूर दूर पर खेत जोतना ।

गाहा—संज्ञा स्त्री. [सं. गाथा, प्रा. गाहा] (१) कथा, वृत्तांत । (२) एक छंद ।

गाही—संज्ञा स्त्री. [हिं. गहना] गिनने का एक मान जो पाँच पाँच का होता है।

गाहे—क्रि. स. [हिं. गाहना] झाड़ने से, ओहने की क्रिया से । उ.—यह भ्रम तौ अब हीं भजि जैहै ज्यों पयार के गाहे—३०६७ ।

गिंजना—क्रि. अ. [हिं. गींजना] कपड़े आदि का सिकुड़ जाना, गींजा जाना ।

गिंजाई—संज्ञा स्त्री. [सं. गुंजन] एक बरसाती कीड़ा ।

गिंड़नी—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक साग ।

गिंडुरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. इँडुरी] गेंडुरी, बिड़ई । उ. —नीके देहु न मेरी गिंडुरी—८५४ ।

गिंदौड़ा, गिंदौरा—संज्ञा पुं. [हिं. गेंद] गलाकर बड़े पेड़े के आकार में ढाली हुई शकर ।

गिंदौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. गिंदौड़ा, गिंदौरा] गलाकर बड़े पेड़े के आकार में जमाई हुई चीनी । उ.—पेठा पाक जलेबी कौरी । गोंदपाक तिनगरी, गिंदौरी —३६६ ।

गिआन—संज्ञा पुं. [सं. ज्ञान] जानकारी ।

गिउ—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा] गला, गरदन ।

गिचपिच, गिचरपिचर, गिचिरपिचिर—वि. [अनु.] (१) बहुत ज्यादा मिलाजुला। (२) अस्पष्ट ।

गिजगिजा—वि. [अनु.] (१) बहुत मुलायम । (२) मुलायम मांस-सा।

गिजा—संज्ञा स्त्री. [अ. ग़िज़ा] भोजन ।

गिटकिरी, गिटकौरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गिट्टी] कंकड़ी ।

गिट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेरू + ड़ा (प्रत्य.)] (१) कंकड़ी । (२) ठिकरे का टुकड़ा। (३) फिरकी, रील ।

गिठुआ—संज्ञा पुं. [देश.] जुलाहे का करघा ।

गिड़गिड़ाना—क्रि. अ. [अनु.] बहुत दीनता से किसी बात के लिए प्रार्थना करना ।

गिड़गिड़ाहट—क्रि. अ. [हिं. गिड़गिड़ाना] (१) दीनता से युक्त प्रार्थना । (२) दीनता का भाव ।

गिड़राज—संज्ञा पुं. [सं. ग्रहराज] सूर्य ।

गिड्डा—वि. [देश.] नाटा, ठिगना ।

गिद्ध—संज्ञा पुं. [सं. गृध्र] (१) एक मांसाहारी बड़ा पक्षी जिसकी दृष्टि बहुत तेज होती है। (२) जटायु जिसे भगवान ने तारा था ।

गिद्धराज—संज्ञा पुं. [हिं. गिद्ध + राज] जटायु जिसे भगवान ने तारा था।

गिध—संज्ञा पुं. [सं. गृध्र, हिं. गिद्ध] (१) गिद्ध, गीध पक्षी । (२) जटायु जिसे भगवान ने तारा था ।

गिधए—क्रि. अ. [हिं. गीधना] लुब्ध हुए, परच गये, रीझ गये । उ.—सारँगरिपु के रहत न रोके हरि स्वरूप गिधए री—पृ. ३३५ और सा. उ. ७ ।

गिनगिनाना—क्रि. अ. [अनु. गनगन = काँपना] (१) बल लगाते समय काँपना । (२) रोंगटे खड़े होना । क्रि. स. [हिं. गिन्नी = चक्कर] झकझोरना ।

गिनत—क्रि. स. [हिं. गिनना] महत्व देते हैं, मान करते हैं, कुछ समझते हैं, मानते हैं । उ.—ऊँच-नीच हरि गिनत न दोइ—७-२ ।

गिनती—संज्ञा स्त्री. [हिं. गिनना + ती (प्रत्य.)] (१) गणना, शुमार ।

मुहा.—गिनती में आना (होना)—कुछ समझा जाना, कुछ महत्व का होना । किहिं गिनती मैं आऊँ

—किस काम या महत्व का समझा जाऊँ। उ.—रजनी-मुख आवत गुन-गावत, नारद तुंबुर नाऊँ। तुमही कहौ कृपानिधि रघुपति, किहिं गिनती मैं आऊँ—९-१७२। गिनती कराना—किसी विशेष कोटि या वर्ग में समझा जाना। गिनती कराने (गिनाने) के लिए—नाम मात्र के लिए। गिनती होना—कुछ समझा जाना।

(२) संख्या, तादाद।

मुहा.—गिनती के—बहुत थोड़े।

(३) उपस्थिति, हाजिरी। (४) एक से सौ तक की अंकमाला।

गिनना—क्रि. स. [सं. गणन] (१) गणना करना।

मुहा.—गिनगिन कर सुनाना (गालियाँ देना)—बहुत अधिक और चुभती हुई गालियाँ देना। गिनगिन कर लगाना (मारना)—खूब मारना। गिनगिन कर दिन काटना—बहुत कष्ट के दिन बिताना। दिन गिनना—(१) आशा या सुख के दिनों की प्रतीक्षा बेचैनी से करना। (२) बेचैनी से समय काटना।

(२) हिसाब लगाना। (३) मान या प्रतिष्ठा के योग्य समझना।

गिनवाना, गिनाना—क्रि. स. [हिं. गिनना (प्रे.)] (१) गिनने का काम कराना। (२) अपने को या अन्य किसी को गिनती में शामिल कराना।

गिनि—क्रि. स. [सं. गणन, हिं. गिनना] गिनकर, गणना करके। उ.—चार पसार दिसानि, मनोरथ घर, फिरि फिर गिनि आनै—१-६०।

गिन्नी—संज्ञा स्त्री. [हिं. घिरनी] चक्कर, चक्कर देने की क्रिया।

गिय—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा] गला, गरदन।

गियाह—संज्ञा पुं. [सं. हय (?)] एक तरह का घोड़ा।

गिर—संज्ञा पुं. [सं. गिरि] (१) पहाड़। (२) एक तरह के संन्यासी। (३) एक भैंसा।

गिरई—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक मछली।

गिरगिट, गिरगिटान—संज्ञा पुं. [सं. कृकलास या गलगति] छिपकली की जाति का एक जंतु जो कई रंग बदल सकता है, गिरदौना। उ.—(क) नृगतैं गिरगिट कीन्हे ताको को करि सकै बखान—१०-उ.-३६। (ख) कृष्न भक्ति बिन बिप्र साप तैं गिरगिट की गति पाये—सारा. ८२१।

मुहा.—गिरगिट की तरह रंग बदलना—बात, नियम या सिद्धांत से जल्दी जल्दी हट जाना।

गिरगिरी—संज्ञा स्त्री [अनु.] एक खिलौना जो चिकारे की तरह का होता है। उ.—फूले बजावत गिरगिरी गार मदन मेरि घहराई अपार संतन हित ही फूल डोल।

गिरजा—संज्ञा पुं. [देश.] एक पक्षी।

संज्ञा स्त्री. [सं. गिरिजा] पार्वती जी।

गिरजापति-पतनी पति जा सुत-गुन—संज्ञा स्त्री. [सं. गिरिजा (पार्वती जी) + पति (पार्वती के पति = शिव जी) + पत्नी (शिव की पत्नी=गंगा) + पति (गंगा का पति = समुद्र) + जा=पुत्री (समुद्र की पुत्री शुक्ति या सीप) + सुत (शुक्ति का पुत्र मोती) + गुण (मोती का गुण—प्रातःकाल शीतल हो जाना)] शीतलता। उ.—गिरजापति-पतनी-पति-जा-सुत-गुन गुनगनन उतारै—सा. ६।

गिरजापति पितु पितु—संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा = पार्वती + पति (पार्वती के पति शिव) + पितु (शिव के पिता ब्रह्मा) + पितु (ब्रह्मा का पिता कमल)] कमल। उ.—गिरजापति पितु पितु से दोऊ कर-बर देख बिचारो—सा. १०३।

गिरजापति पितु पितु पितु—संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा-पति = शिव जी + पितु (शिव के पिता ब्रह्मा) + पितु (ब्रह्मा का पिता कमल) + पितु (कमल का पिता समुद्र)] समुद्र। उ.—गिरजापति पितु पितु पितु ही ते सौ गुन सी दरसावै—सा. १५।

गिरजापति भूषन—संज्ञा. पुं. [सं. गिरिजा = पार्वती + पति (पार्वती के पति शिव) + भूषण (शिव का भूषण = चंद्रमा)] चंद्रमा। उ.—(क) गिरजा-पति भूषन पै मानहु मुनि भष पंक प्रकासी—सा. १३ (ख) गिरजापति भूषन जिन देखे ते कह देखत हैं नभ तारो—सा. १११।

गिरत—क्रि. अ. [हिं. गिरना] गिर पड़ता है। उ.—जरत ज्वाला, गिरत गिरि तैं, स्वकर काटत सीस—१-१०६।

मुहा.—गिरत-परत—गिरता-पड़ता, उतावली से, हड़बड़ी में। उ.—ब्रजवासी नर-नारि सब गिरत-परत चले धाइ—५८६।

गिरतनया—संज्ञा स्त्री [सं. गिरि + तनया = पुत्री] पार्वती जी।

गिरतनया-पतिभूषन—संज्ञा स्त्री. [सं. गिरि + तनया = पुत्री (पर्वत की पुत्री पार्वतीजी) + पति (पार्वती के पति शिव) + भूषण (शिव का भूषण विभूति = राख—विभूति का अर्थ 'आग' भी होता है)] आग। उ.—गिरतनयापति-भूषन जैसे बिरह जरी दिन रातें —सा. उ. ४६।

गिरद—अव्य. [हिं. गिर्द] आसपास, चारो ओर।

गिरदा—संज्ञा पुं. [फा. गिर्द] (१) घेरा, चक्कर। (२) तकिया। (३) काठ की थाली। (४) ढाल। (५) ढोल आदि का मुड़ेरा।

गिरदान—संज्ञा पुं. [हिं. गिरगिट] गिरगिटान।

गिरधर, गिरधारन, गिरधारी—संज्ञा पुं. [सं. गिरि + धर] (१) पर्वत उठानेवाला। (२) श्रीकृष्ण जिन्होंने गोवर्द्धन उठाया था। उ.—जो तिय चढ़त सीस गिरधर के सो अब कंठ गहोरी—सा. उ. ५२। (३) हनुमान जी।

गिरना—क्रि. अ. [सं. गलन] (१) ऊपर से नीचे आ जाना। (२) खड़ा न रह सकना, जमीन पर पड़ जाना। (३) अवनति होना। (४) जलधारा (नाली, नदी आदि) का बड़े जलस्थान में मिलना। (५) प्रतिष्ठा, शक्ति आदि कम होना।

मुहा.—गिरे दिन—दुर्दशा का समय।

(६) किसी पर टूटना, झपटना। (७) अपने स्थान से हटना या झड़ना। (८) रोग होना। (९) सहसा आ जाना। (१०) युद्ध में मारा जाना।

गिरनाथ—संज्ञा पुं. [सं. गिरि + नाथ (शंकर = भव = संसार)] संसार। उ.—प्रभु कब देखिहौ मम ओर। ज्ञान आपुन आप ते गिरनाथ गाठी छोर—सा.उ.४२।

गिरफ्त—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गिरफ़्त] (१) पकड़, पकड़ने का भाव। (२) पकड़ने की क्रिया।

गिरफ्तार—वि. [फ़ा. गिरफ़्तार] (१) जो पकड़ा या कैद किया गया हो। (२) ग्रसा हुआ।

गिरफ्तारी—संज्ञा स्त्री [फ़ा. गिरफ़्तारी] (१) पकड़ने का भाव। (२) पकड़ने की क्रिया।

गिरवर—संज्ञा पुं. [सं. गिरि + वर] श्रेष्ठ पर्वत।

गिरवान—संज्ञा पुं. [सं. गीर्वाण] सुर, देवता।

संज्ञा पुं. [फ़ा. गरेबान] (१) अंगे या कुरते का गला या कालर। (२) गला, गरदन।

गिरवाना—क्रि. स. [हिं. गिराना] गिराने का काम कराना, गिराने की प्रेरणा देना।

गिरवीं—वि. [फ़ा.] बंधक, गिरों, रेहन।

गिरह—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) गाँठ, ग्रंथि। (२) जेब, खरीता। (३) दो पोरों के जुड़ने का स्थान। (४) कलाबाजी, उलटने की क्रिया।

गिरहकट—वि. [फ़ा. गिरह + हिं. काटना] जेब काटने वाला।

गिरहदार—वि. [फ़ा.] गाँठदार, गँठीला।

गिरहबाज—वि. [फ़ा. गिरह + बाज़] एक कबूतर जो उड़ते उड़ते कलाबाजी खा जाता है। उ.—देखि नृप लमकि हरि चमकि तहाँई गये दमकि लीन्हों गिरहबाज जैसे—२६१५।

गिरहर—वि. [हिं. गिरना + हर (प्रत्य.)] गिरनेवाला, अवनति की ओर बढ़ता हुआ।

गिरही—संज्ञा पुं. [सं. गृहिन्] घरबारी, गृहस्थ।

गिराँ—वि. [फ़ा. गराँ] (१) मँहगा। (२) जो हलका न हो, भारी। (३) जो भला न लगे, अप्रिय।

गिरा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) बोलने की शक्ति। उ.—गिरा-रहित बृक ग्रसित अजा लौं अंतक आनि ग्रस्यौ —१-२०१। (२) जीभ। (३) वचन, वाणी। उ.—(क) अमृत गिरा बहु बरषि सूर प्रभु भुज गहि पार्थ उठाए—१-२६। (ख) गदगद गिरा सजल अति लोचन हिय सनेह-जल छायो—९-५५। (४) भाषा, बोली। (५) कविता। (६) सरस्वती देवी।

गिराइ—क्रि. स. [हिं. गिराना] किसी ऊँचे स्थान से फेंक कर।

प्र०—देहु गिराइ—ऊपर से फेंक दो। उ.—पर्वत सों इहिं देहु गिराइ—७-२। दियौ गिराइ—फेंक दिया, गिराया। उ.—असुरनि गिरि तैं दियौ गिराइ—७-२।

गिराऊँ—क्रि. स. [हिं. 'गिरना' का सक.] (१) नीचे डाल दूँ, पतित कराऊँ। (२) युद्ध में मार डालूँ। उ.—स्यंदन खंडि, महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ—१-२७०।

गिराए—क्रि. स. [हिं. गिराना] खड़ी चीज को तोड़ कर जमीन पर गिरा दिया। उ.—नगर-द्वार तिन सबै गिराए—४-१२।

गिराना—क्रि. स. [हिं. गिरना का सक.] (१) नीचे फेंकना या डालना। (२) घटाना या अवनत करना। (३) बहाना। (४) शक्ति, मान आदि कम करना। (५) रोग उत्पन्न करना। (६) सहसा प्रकट करना। (७) लड़ाई में मार डालना।

गिरानी—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] (१) महँगी। (२) अकाल। (३) कमी, घटी। (४) किसी चीज का भारीपन।

गिरापति—संज्ञा पुं. [सं.] ब्रह्मा।

गिरापितु—संज्ञा पुं. [सं. गिरा + पितृ] ब्रह्मा।

गिरायौ—क्रि. स. [हिं. गिराना] गिराया, फेंका, डाल दिया, छोड़ दिया। उ.—लगत त्रिसूल इंद्र मुरझायौ। कर तैं अपनौ बज्र गिरायौ—६-५।

गिराव—संज्ञा पुं. [हिं. गिरना + आव (प्रत्य.)] गिरने की क्रिया या भाव, पतन।

गिरावट—संज्ञा स्त्री. [हिं. गिराव] गिरने की क्रिया।

गिरास—संज्ञा पुं. [सं. ग्रास] कौर, ग्रास।

गिरासना—क्रि. स. [सं. ग्रसना] भक्षण करना, खा जाना, ग्रस लेना।

गिराह—संज्ञा पुं. [सं. ग्राह] मगर, ग्राह।

गिराहिं—क्रि. अ. [हिं. गिराना] गिरते हैं, पतित होते हैं। उ.—बहुरि कह्यौ सुरपुर कछु नाहिं। पुन्य-छीन तिहिं ठौर गिराहिं—१-२९०।

गिरि—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत, पहाड़। (२) गोवर्द्धन। उ.—(क) सक्र कौ दान-बलि मान ग्वारनि लियौ, गह्यौ गिरि पानि, जस जगत छायौ—१-५। (ख) गोपी-ग्वाल-गाय-गोसुत-हित सात दिवस गिरि लीन्हौ—१-१७। (३) एक तरह के संन्यासी।

क्रि. अ. [हिं. गिरना] गिरकर, गिरने पर। उ.—धरनि पत्ता गिरि परे तैं फिरि न लागै डार—१-८८।

गिरिजा—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) हिमाचल कन्या पार्वती, गौरी। (२) गंगा। (३) चमेली।

गिरिजापति-भष—संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा + पति (गिरिजा के पति शिव) + भष=भक्ष (शिव का भक्षण विष)] विष। उ.—गिरिजापति-भष बीच को न सो ह्वै गै मोंको माई—सा. ६३।

गिरिजापति-रिपु—संज्ञा पुं. [सं. गिरिजा + पति (शिव) + रिपु (शिव का शत्रु कामदेव)] काम। उ.—गिरिजापति-रिपु नख सिख ब्यापतु बसत सुधा पिय कथा सुनाई—सा. उ. ३०।

गिरिधर—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पर्वत उठानेवाला। (२) श्रीकृष्ण जिन्होंने गोवर्द्धन को उठाकर व्रज-वासियों की रक्षा की थी। उ.—सूरदास ए रीझे गिरिधर मनमाने उनही के—सा. उ. ८।

गिरिधरन—संज्ञा पुं. [सं. गिरिधारिन्] गोवर्द्धन पर्वत को उठानेवाले श्रीकृष्ण। उ.—कबहुँ न रिझए लाल गिरिधरन, बिमल बिमल जस गाइ—१-१५५।

गिरिधातु—संज्ञा पुं. [सं.] गेरू।

गिरिधारन—संज्ञा पुं. [सं. गिरि + धारण] श्रीकृष्ण।

गिरिधारी—संज्ञा पुं. [सं. गिरिधारिन्] श्रीकृष्ण।

गिरिध्वज—संज्ञा पुं. [सं.] इंद्र।

गिरिनंदिनी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) पार्वती (२) नदी। (३) गंगा नदी।

गिरिनंदी—संज्ञा पुं. [सं. गिरिनंदिन्] शिव के गण।

गिरिनाथ—संज्ञा पुं. [सं.] शिव, महादेव।

गिरिपति—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) गणेश जी। उ.—जौ गिरिपति मसि घोरि उदधि मैं, लै सुरतरु बिधि हाथ। मम कृत दोष लिखैं बसुधा भरि, तऊ नहीं मिति नाथ—१-१११।

गिरिपथ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) दो पर्वतों के बीच का मार्ग, दर्रा। (२) पहाड़ी मार्ग।

गिरिबूटी—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक वनस्पति या औषध।

गिरिराज, गिरिराजा—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा पर्वत। (२) हिमालय। (३) गोवर्द्धन पर्वत। उ.—गोपनि सत्य मानि यह लीनो बड़े देव गिरिराजा—६१६। (४) सुमेरु पर्वत।

गिरिवरधारी—संज्ञा. पुं. [सं. गिरिवर + धारी = धारण करनेवाले] गोवर्द्धन को उठानेवाले श्रीकृष्ण ।

गिरिव्रज—संज्ञा पुं. [सं.] जरासंध की राजधानी ।

गिरिशृंग—संज्ञा पुं. [सं.] (१) पहाड़ की चोटी । (२) गणेश जी ।

गिरिसुत—संज्ञा पुं. [सं.] मैनाक पर्वत ।

गिरिसुता—संज्ञा स्त्री. [सं.] पार्वती ।

गिरींद्र—संज्ञा पुं. [सं.] (१) बड़ा पर्वत । (२) हिमालय । (३) गोवर्द्धन पर्वत । (४) शिव जी ।

गिरी—क्रि. अ. स्त्री. [हिं. गिरना] नीचे आ पड़ी ।
संज्ञा स्त्री. [हिं. गरी] अखरोट आदि की गरी ।

गिरीश, गिरीस—संज्ञा पुं. [सं. गिरि+ईश] (१) शिव, भव । उ.—भानुअंस गिरीस आखर आदि अंग प्रकास—सा. उ. ४१ । (२) हिमालय पर्वत । (३) सुमेरु पर्वत । (४) कैलाश पर्वत । (५) गोवर्द्धन पर्वत ।

गिरे—क्रि. अ. [हिं. गिरना] (जमीन पर) आ पड़े, गिर पड़े । उ.—यह सुनत तब मातु धाईं, गिरे जानि भहरि—१०-६७ ।

गिरेबान—संज्ञा पुं. [फ़ा. गरेबान] कुरते, कोट आदि का गला ।

गिरैयाँ—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेराँव (प्रत्य.)] गले की रस्सी ।
वि. [हिं. गिरना] जो गिरने को हो, जो गिर रहा हो, गिरनेवाला ।

गिरों—वि. [फ़ा.] रेहन, बंधक, गिरवीं ।

गिर्गिट—संज्ञा पुं. [हिं. गिरगिट] गिरगिटान ।

गिर्द—अव्य. [फ़ा.] आसपास, चारो ओर ।

गिर्दावर—वि. [फ़ा.] (१) घूमनेवाला । (२) दौरा करके जाँचनेवाला ।

गिर्यौ—क्रि. अ. [हिं. गिरना] मारा गया, मरकर गिरा । उ.—कनक-मृग मारीच मार्यौ, गिर्यौ लषन सुनाइ—९-६० ।

गिल—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) मिट्टी । (२) गारा ।
संज्ञा पुं. [सं.] (१) मगर, ग्राह । (२) वह जो निगल ले या भक्षण कर ले ।

गिलई—क्रि. स. [हिं. गिलना] निगल ले, खा डाले ।

गिलगिल—संज्ञा पुं. [सं.] नक्र, मगर ।

गिलगिलिया—संज्ञा स्त्री. [अनु.] एक चिड़िया ।

गिलटी—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रंथि] (१) शरीर के संधि-स्थानों की गाँठ । (२) शरीर के संधि स्थानों का सूजा हुआ भाग जो गाँठ के आकार का हो जाता है ।

गिलन—संज्ञा पुं. [सं.] निगलना ।

गिलना—क्रि. स. [सं. गिरण] (१) निगलना । (२) मन में रखना, प्रकट न करना ।

गिलबिला—वि. [अनु.] पिलपिला, मुलायम ।

गिलबिलाना—क्रि. अ. [अनु.] अस्पष्ट बात कहना ।

गिलम—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गिलमि = कंबल] (१) ऊनी कालीन । (२) मुलायम बिछौना या गद्दा ।
वि.—जो बहुत मुलायम या कोमल हो ।

गिलगिल—संज्ञा पुं. [देश.] एक कपड़ा ।

गिलहरा—संज्ञा पुं. [देश.] (१) एक कपड़ा । (२) पान का बेलहरा ।

गिलहरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गिरि = चुहिया] एक छोटा जंतु, गिलाई, चिखुरी ।

गिला—संज्ञा पुं. [फ़ा.] (१) उलाहना । (२) शिकायत, निंदा ।

गिलान, गिलानि—संज्ञा स्त्री [सं. ग्लानि] (१) घृणा, नफरत । (२) लज्जा ।

गिलाफ—संज्ञा पुं. [अ. गिलाफ़] (१) तकिए आदि का खोल । (२) बड़ी रजाई । (३) म्यान ।

गिलाव, गिलावा—संज्ञा पुं. [फा. गिल + आब] गारा ।

गिलि—क्रि. स. [हिं. गिलना] (१) निगल कर, बिना दाँतों से चबाये गले में उतार कर । (२) नष्ट हो गयी, प्रभावरहित हो गयी । उ.—बेनु के राज मैं औषधी गिलि गईं, होइहैं सकल किरपा तुम्हारी —४-११ ।

गिलिम—संज्ञा स्त्री. [हिं. गिलम] (१) ऊनी कालीन । (२) मुलायम गद्दा या बिछौना ।

गिलिहै—क्रि. स. [हिं. गिलना] मन ही मन में रखेगी, प्रकट न करेगी । उ.—की धौं हमहिं देखि उठि हमकौं मिलिहै कीधौं बाति उघारि कहैगी की मन ही गिलिहै—१२६५ ।

गिली—संज्ञा स्त्री [हिं. गुल्ली] गुल्ली डंडे के खेल की छोटी गुल्ली ।

गिले—क्रि. स. [हिं. गिलना] (१) **निगल गये।** उ.—(क) आजु जसोदा जाइ कन्हैया महा दुष्ट इक मारयौ। पन्नग-रूप गिले सिसु गोसुत, इहिं सब साथ उबारयौ—४३३। (२) **गुप्त रखा, प्रकट न किया।**

संज्ञा पुं. [फ़ा. गिला] (१) **उलाहना।** उ.—खरिकहू नहिं मिलै कहै कह अनभले करन दै गिले तू दिननि थोरी। (२) **शिकायत, निंदा।**

गिलेफ—संज्ञा पुं. [हिं. गिलाफ] **तकिए आदि का खोल।**

गिलो, गिलोय—संज्ञा स्त्री. [फ़ा.] **गुरुच, गुड़ूची।**

गिलोला—संज्ञा पुं. [फ़ा. गुलेला] **मिट्टी की छोटी गोली जो गुलेल से फेंकी जाती है।**

गिलौरी—संज्ञा स्त्री. [देश.] **पान या मलाई का बीड़ा जो तिकोना-चौकोना होता है।**

गिल्यान—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्लानि] **घृणा, नफरत।** उ.—ताके मन उपजी गिल्यान। मैं कीन्ही बहु जिय की हान।

गिल्ला—संज्ञा पुं. [फ़ा. गिला] (१) **उलाहना।** (२) **शिकायत, निंदा।**

गिल्ली—संज्ञा स्त्री [हिं० गुल्ली] **गुल्ली।**

गिष्ण, गिष्णु—संज्ञा पुं. [सं.] **गवैया।**

गींजना—क्रि. स. [हिं. मींजना] **मोसना, दबाना, मलना, मसलना।**

गींव—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीव] **गर्दन, गला।**

गी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **बोलने की शक्ति।** (२) **सरस्वती।**

गीउ—संज्ञा स्त्री. [सं. ग्रीव] **गरदन।**

गीठम—संज्ञा पुं. [देश.] **घटिया कालीन या गलीचा।**

गीड़, गीड़र—संज्ञा पुं. [हिं. कीट=मैल] **आँख का मैल, मैल।**

गीत—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **गाना, गाने की चीज।**

मुहा.—गीत गाना—**बड़ाई करना।** अपना ही गीत गाना—**अपनी ही हाँके जाना।**

(२) **बड़ाई, यश।** (३) **गीत का नायक।**

गीता—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **उपदेश।** (२) **भगवद् गीता।** उ.—(क) वेद, पुरान, भागवत, गीता, सबकौ यह मत सार—१-६८। (ख) समुझति नहीं ग्यान गीता कौ हरि मुसुकानि अरे—३१५०। (३) **एक राग।** (४) **एक छंद।** (५) **कथा-वृत्तांत।**

गीति—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) **गान, गीत।** उ.—(क) चर-अचर-गति बिपरीत। सुनि बेनु-कल्पित गीति—६२३। (ख) सूर बिरह ब्रज भलो न लागत जहीं ब्याहु तहीं गीति—३११३। (२) **एक छंद।**

गीतिका—संज्ञा पुं. [सं.] (१) **एक छंद।** (२) **गाना।**

गीतिरूपक—संज्ञा पुं. [सं.] **रूपक जिसमें गद्य कम और पद्य अधिक हो।**

गीदड़, गीदर—संज्ञा पुं. [सं. गृध्र। फ़ा. गीदी] **सियार।**

वि.—**कायर, डरपोक, असाहसी।**

गीध—संज्ञा पुं. [सं. गृध्र, हिं. गिद्ध] (१) **गिद्ध पक्षी।** (२) **जटायु पक्षी जिसको भगवान ने तारा था।**

गीधना—क्रि. अ. [सं. गृध=लुब्ध] **ललचना, परचना।**

गीधि—क्रि. अ. [हिं. गीधना] **ललचकर, परचकर।** उ.—जानि जु पाए हौ हरि नीकैं। चोरि चोरि दधि माखन मेरौ, नित प्रति गीधि रहे हौ छीकैं—१०-२८७।

गीधिनी—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. गिद्ध] **गिद्ध की मादा।** उ.—बग-बगुली अरु गीध-गीधिनी आइ जन्म लियौ तैसौ—२-२४।

गीधे—क्रि. अ. [हिं. गीधना] **ललचाये, परचे।** उ.—(क) इंद्री लई नैन अब लीने स्यामहिं गीधे भारे—पृ. ३२०। (ख) अब हरि कौन के रस गीधे—३२३६। (ग) लोचन लालच ते न टरे। हरि सारँग सों सारँग गीधे दधि-सुत काज अरे—सा.उ.६।

गीध्यौ—क्रि. अ. भूत. [हिं. गींधना] **परच गया, ललचा गया, लिप्त रहा।** उ.—(क) गीध्यौ दुष्ट हेम तस्कर ज्यों, अति आतुर मतिमंद—१-१०२। (ख) धोखैं ही धोखैं डहकायौ। समुझि न परी, विषय-रस गीध्यौ हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ—१-३२६। (ग) स्याम रूप में मन गीध्यौ भलो बुरौ कहौ कोई—१४६३।

गीर—संज्ञा स्त्री. [सं. गिर या गी:] **वाणी।**

गीरवाण, गीरवान—संज्ञा पुं. [सं. गीर्वाण] **देवता।**

गीर्ण—वि. [सं.] (१) **जिसका वर्णन किया गया हो।** (२) **निगला हुआ।**

गीर्वाण—संज्ञा पुं. [सं.] **देवता, सुर।**

गीला—वि. [हिं. गलना] भीगा हुआ, तर, नम्र।
संज्ञा पुं. [देश.] एक लता।

गीलापन—संज्ञा पुं. [हिं. गीला + पन (प्रत्य.)] नमी।

गीली—संज्ञा स्त्री. [देश.] एक बड़ा पेड़।
वि. स्त्री. [हिं. पुं. गीला] भीगी हुई, तर। उ.—(क) पग द्वै चलति ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि के रस गीली—१३०६। (ख) कुच कुंकुम कंचुकि बँद टूटे लटकि रही लट गीली—१८४६।

गीव, गीवा—संज्ञा पुं. [सं. ग्रीवा] गरदन, गला।

गुंग, गुंगा—वि. [हिं. गूँगा] जो बोल न सके, मूक, गूँगा। उ.—भक्ति बिन बैल बिराने ह्वैहौ। पाउँ चारि, सिर सृंग गुंग मुख, तब कैसैं गुन गैहौ—१-३३१।
संज्ञा पुं.—गूँगा मनुष्य। उ.—बोलै गुंग, पंगु गिरि लंघै अरु आवै अंधौ जग जोइ—१-६५।

गुंगी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गूँगा] दोमुहाँ साँप।
वि. स्त्री.—जो (स्त्री) बोल न सके।

गुँगुआना—क्रि. अ. [अनु.] (१) अच्छी तरह न जलना। (२) गूँगे की तरह अस्पष्ट शब्द निकालना।

गुंचा—संज्ञा पुं. [अ.] (१) कली। (२) नाच-रंग।

गुंची—संज्ञा स्त्री. [हिं. घुँघची] घुँघची की लता।

गुंज—संज्ञा स्त्री. [सं. गुंजन] (१) भौंरों की गुंजार। उ.—(क) नित प्रति अलि जिमि गुंज मनोहर, उड़त जु प्रेम-पराग—२-२२। (ख) गये नवकुंज कुसुमनि के पुंज अलि करैं गुंज सुख ह्म देखि भई लवलीन—सा. उ.-४८। (२) अस्पष्ट गुंजार। उ.—अति बिलच्छन्न गुंज जोग मति लाए—२६६१। (३) कलरव। (४) घुँघची की लता या उसका फल। (५) एक गहना।
संज्ञा पुं.—सलई नामक पेड़।

गुंजत—क्रि. अ. [हिं. गुंजना] गुनगुनाते हैं, भनभनाते हैं। उ.—जहँ सनक-सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि प्रभा प्रकास। प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुबास—१-३३७।

गुंजन—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गुंजार, भनभनाहट। (२) आनंद-ध्वनि, कलरव।

गुंजना—क्रि. अ. [सं. गुंज] (१) भनभनाना, गुनगुनाना। (२) मधुर या आनद-ध्वनि निकालना, कलरव करना।

गुंजनिकेतन—संज्ञा पुं. [सं.] भौंरा।

गुंजरत—क्रि. अ. [हिं. गुंजारना] (१) (भौंरे) गूँजते हैं, भनभनाते हैं। उ.—गूँगो बातनि यौं अनुरागति, भँवर गुंजरत कमल मौं बंदहिं—१०-१०७। (२) बोलते हैं, ध्वनि करते हैं, गरजते हैं। उ.—गर्जत गगन गयंद गुंजरत अरु दादुर किलकार—२८९३।

गुंजरना—क्रि. अ. [हिं. गुंजार] (१) भौरों का गूँजना या भनभनाना। (२) शब्द करना, गरजना।

गुंजरै—संज्ञा पुं. [सं. गुंजान] गुंजार।

गुँजहरा—संज्ञा पुं. [हिं. गुंजार] बच्चों का कड़ा।

गुंजा—संज्ञा स्त्री [सं.] (१) घुँघची नाम की लता। (२) घुँघची के लाल दाने। उ.—ज्यौं कपि सीत-हतन-हित गुंजा सिमिट होत लौलीन। त्यौं सठ बृथा तजत नहिं कबहूँ, रहत बिषय-आधीन—१-१०२।

गुंजाइश, गुंजाइस—संज्ञा पुं. [फ़ा. गुंजाइश] (१) स्थान, अँटने की जगह। उ.—जनम साहिबी करत गयौ। काया-नगर बड़ी गुंजाइस, नाहिंन कछु बढ़यौ—१-६४। (२) समाई, सुबीता।

गुंजान—वि. [फ़ा.] घना, सघन।

गुंजायमान—वि. [सं.] (१) गूँजता या ध्वनि करता हुआ। (२) बोलता या शब्द करता हुआ।

गुंजार—संज्ञा पुं. [सं. गुंज + आर] (१) भौंरों की गूँज, भनभनाहट। उ.—जहँ बृंदाबन आदि अजिर जहँ कुंजलता बिस्तार। तहँ बिहरत प्रिय प्रियतम दोऊ निगम भृंग-गुंजार। (२) मधुर ध्वनि, कलरव।

गुंजारना—क्रि. अ. [हिं. गूँजना] गूँजना।

गुंजारित, गुंजित—वि. [सं. गुंजित] भौरों आदि की गुंजार से युक्त।

गुंजिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. गूँज] एक गहना।

गुंजैं—क्रि. अ. [हिं. गुंजना] (भौंरे) भनभनाते या गुनगुनाते हैं। उ.—बृथा बहति जमुना तट खगरो बृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं—२७२१।

गुंटा—संज्ञा पुं. [देश.] छोटा तालाब।

गुंठा—संज्ञा पुं. [हिं. गठना] नाटा घोड़ा, टाँगन।

संज्ञा पुं, [सं.] कसेरू का पौधा ।

वि.—महीन पिसा हुआ ।

गुंड—संज्ञा पुं.—मलार राग का एक भेद । उ.—राग रागिनी सँचि मिलाई गावैं गुंड मलार—२२७६ ।

गुंडई—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुंडा + अई (प्रत्य.)] गुंडापन ।

गुंडरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुंडा] गुंडापन ।

गुंडली—संज्ञा स्त्री. [सं. कुंडली] (१) फेंटा । (२) गेंडुरी ।

गुंडा—वि. [सं. गुंडक=मलिन] (१) दुराचारी, कुमार्गी । (२) झगड़ा करनेवाला । (३) छैला ।

गुंडापन—संज्ञा पुं. [हिं. गुंडा+पन] बदमाशी ।

गुंडो—संज्ञा स्त्री. [हिं. गेंडुरी] इँडुरी, गेंडुरी ।

गुँथना—क्रि. अ. [सं. गुत्स=गुच्छा] (१) (तागों, बालों आदि का) उलझना । (२) मोटी सिलाई करना । (३) लड़ने को भिड़ना ।

गुंदल—संज्ञा पुं. [सं. गुंडाला] एक घास ।

गुंदहि—क्रि. स. [हिं. गूँधना] गूँधते हैं । उ.—बाजीपति अग्रज अंबा तेहि. अरक थान सुत माला गुंदहिं—१०-१०७ ।

गुँधना—क्रि. अ. [सं. गुध=क्रीड़ा] (आँटे आदि का पानी से) साना या माड़ा जाना ।

क्रि. अ. [सं. गुत्सा=गुच्छ] (बाल आदि का) गूँथना ।

गुँधवाना—क्रि. स. [हिं. गूँधना] गूँधने का काम कराना या इसकी प्रेरणा देना ।

गुँधाई—संज्ञा स्त्री. [हिं गूँधना] गूँधने की क्रिया, भाव या मजदूरी ।

गुँधावट—संज्ञा स्त्री [हिं. गूँधना] (१) गूँधने की क्रिया । (२) गूँधने की रीति ।

गुंफ—संज्ञा पुं. [सं.] (१) फँसाव, गुत्थमगुत्था । (२) गुच्छा । (३) गलमुच्छा । (४) अलंकार ।

गुंफन—संज्ञा पुं. [सं.] उलझाव, गूँधना ।

गुंफित—वि. [सं. गुंफन] गुँथा हुआ, उलझा हुआ ।

गुंबज, गुंबद—संज्ञा पुं. [फा. गुंबद] गोल छत ।

गुंबा—संज्ञा पुं. [हिं गोल+अंब] गोल सूजन जो चोट लगने से सिर या माथे पर आ जाय ।

गुँभी, गुंभ—संज्ञा पुं० [सं गुंफ=गुच्छा] अंकुर, गाभ । उ.—टरति न टारे वह छबि मन में चुभी ।... । सूरदास मोहन मुख निरखत उपजी सकल तन काम गुँभी—१४४६ ।

गुआ—संज्ञा पुं. [सं. गुवाक] (१) चिकनी सुपारी । (२) सुपारी ।

गुआर, गुआरि, गुआरी, गुआलिन—संज्ञा स्त्री. [सं. गोराणी, हिं. ग्वार] एक पौधा, कौरी, खुरथी ।

गुइयाँ—संज्ञा. स्त्री., पुं. [हिं. =गोहन=साथ] साथी, सखी, सहचर, सहेली ।

गुग्गुर, गुग्गुल—संज्ञा पुं. [सं.] (१) एक पेड़ । (२) एक सुगंधित द्रव्य ।

गुचची—संज्ञा स्त्री. [अनु.] छोटा गड्ढा ।

वि.—बहुत छोटी, नन्ही ।

गुचचीपारा, गुचचीपाला—संज्ञा पुं. [हिं. गुची+पारना] लड़कों का एक खेल ।

गुच्छ, गुच्छक—संज्ञा पुं. [सं.] (१) गुच्छा । (२) घास की जूरी । (३) झाड़ । (४) हार । (५) मोर की पूँछ ।

गुच्छा—संज्ञा पुं. [सं. गुच्छ] (१) पत्ती, या किसी चीज का समूह । (२) फुलरा, फुँदना ।

गुच्छी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुच्छ] (१) कंजा । (२) एक साग ।

गुच्छेदार—वि. [हिं. गुच्छा] जिसमें गुच्छे हों ।

गुजर—संज्ञा पुं. [फ़ा. गुज़र] (१) निकास । (२) पहुँच, प्रवेश । (३) निर्वाह, काम चलना ।

गुजरना—क्रि. अ. [हिं. गुजर+ना प्रत्य.)] (१) समय कटना । (२) आना-जाना ।

मुहा.—गुजर जाना—मर जाना ।

(३) निर्वाह होना, निभना, काम चलना ।

गुजर-बसर—संज्ञा पुं. [फ़ा.] निर्वाह, काम चलाना ।

गुजराती—वि. [हिं. गुजरात] गुजरात का ।

संज्ञा स्त्री.—गुजरात की भाषा ।

गुजरान—संज्ञा पुं. [हिं. गुजर] निर्वाह, निवाह ।

गुजराना—क्रि. स. [हिं. गुजारना] बिताना, काटना ।

गुजरिया—संज्ञा स्त्री. [हिं. गूजर] ग्वालिन, गोपी ।

गुजरी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गूजर] (१) एक तरह की पहुँची। (२) एक रागिनी।

गुजरेटा—संज्ञा पुं. [हिं. गूजर] (१) गूजर का लड़का। (२) ग्वाला।

गुजरेटी, गुजरेठी—संज्ञा. स्त्री [हिं. गूजर] (१) गूजर की बेटी। (२) ग्वालिन, गोपी।

गुजारना—क्रि. स. [फ़ा.] बिताना, काटना।

गुजारा—संज्ञा पुं. [फ़ा. गुज़ारा] (१) निर्वाह। (२) निर्वाह की वृत्ति। (३) नाव की उतराई।

गुजारिश, गुजारिस—संज्ञा स्त्री. [फ़ा. गुजारिश] प्रार्थना, निवेदना, विनय।

गुज्जरी—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गूजरी। (२) एक रागिनी।

गुज्झा—संज्ञा पुं. [सं. गुह्यक] (१) एक घास। (२) गूदा।

वि.— गुप्त, छिपा हुआ, अप्रकट।

गुझरोट, गुझरौट, गुझौट—संज्ञा पुं. [सं. गुह्य, प्रा. गुज्झ + सं. आवर्त] (१) कपड़े की सिकुड़न। (२) स्त्रियों की नाभि के आसपास का भाग।

गुझा—संज्ञा पुं. [हिं. गोझा] एक पकवान, गुझिया। उ.—गुझा इलाचीपाक अमिरती—३६६।

गुझाना—क्रि. स. [सं. गुह्य] छिपाना, लुकाना।

गुझिया—संज्ञा स्त्री. [सं. गुह्यक, प्रा. गुज्झअ, गुज्झा] (१) एक पकवान, पिराक। (२) एक मिठाई।

गुटकना—क्रि. अ. [अनु.] गुटरगूँ करना।

क्रि. स. — (१) निगलना (२) खा लेना।

गुटका—संज्ञा पुं. [सं. गुटिका] (१) गोटी, बटी। (२) छोटे आकार की पुस्तक। (३) लट्टू। (४) एक मिठाई।

गुटरगूँ—संज्ञा स्त्री. [अनु.] कबूतरों की बोली।

गटिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] (१) गोटी, बटी। (२) एक सिद्धि जिसमें गोली मुँह में रखने पर साधक सब जगह जा सके और कोई उसे देख न पावे।

गुट्ट—संज्ञा पुं. [सं. गोष्ठ=समूह] झुंड, दल।

गुट्ठल—वि. [हिं. गुठली (१) जो तेज या पैना न हो। (२) जड़, मूर्ख। (३) गुठली के आकार का।

संज्ञा पुं.—(१) गाँठ, गुलथी। (२) गिलटी।

गुट्टी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गाँठ] गोल या लंबी गाँठ।

गुठली—संज्ञा स्त्री. [सं. गुटिका] फल का कड़ा बीज।

गुठाना—क्रि. अ. [हिं. गुठली] (१) गुठली-सी बँध जाना। (२) बेकार या निकम्मा हो जाना।

गुडंबा—संज्ञा पुं. [हिं. गुड़ + आँब, आम] गुड़ की चाशनी में उबाली हुई कच्चे आम की फाँकें।

गुड़—संज्ञा पुं. [सं.] ऊख का जमाया हुआ रस। उ.—(क) रस लै लै औटाइ करत गुड़ (गुर) डारि देत हैं खोई। फिर औटाये स्वाद जात है, गुड़ तें खाँड़ न होई—१-६३। (ख) दानव-प्रिया सेर चालीसो सुरभी रस गुड़ सीचो—सा. ६०।

मुहा.—कुल्हिया में गुड़ फूटना—(१) गुप्त रूप से काम होना। (२) छिपाकर पाप होना। गुड़ भरा हँसिया—ऐसा काम जिसे न करने से जी ललचाये और करने से संकोच हो। जो गुड़ खायगा सो कान छेदायेगा—जिसे लाभ होगा, उसे कष्ट भी सहना पड़ेगा। गुड़ खायगा, अँधेरे में आयगा—जिसे लाभ होगा वह कष्ट सहकर भी समय-कुसमय काम करेगा। गुड़ दिखाकर ढेला मारना = कुछ लालच देने के बाद रूखा या कठोर व्यवहार करना। गुड़ दिये मरे तो जहर क्यों दे—जब सीधेसे काम चल जाय तो कठोर बर्ताव क्यों किया जाय। गुड़ खाना गुलगुलों से परहेज (घिनाना)—कोई बड़ी बुराई करना पर उसी ढंग की छोटी बुराई करने में संकोच करना। गूँगे का गुड़—विषय या वस्तु का अनुभव करना परन्तु उसे शब्दों में उचित ढंग से समझा न पाना। चोरी का गुड़—छिपाकर पाया हुआ बेमेहनत का माल। उ.—मिसरी सूर न भावत घर की चोरी को गुड़ मीठो—सा. ६०। जहाँ गुड़ होगा, चीटियाँ (मक्खियाँ) आजायँगी – पासमें धन या दूसरों के लाभ की चीज होगी तो लाभ उठानेवाले बिना बुलाये अपने आप जुट आयँगे।

गुड़मुड़—संज्ञा पुं. [अनु.] वह शब्द जो बन्द चीज (जैसे पेट, हुक्का) में हवा के चलने से होता है।

गुड़गुड़ाना—क्रि. अ. [अनु० गुड़गुड़] गुड़गुड़ शब्द होना।

गुड़धनिया, गुड़धानी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुड़ + धान]

मिठाई जो भुने हुए गेहूँओं को गुड़ में पागने से बनती है।

गुड़ना—क्रि. अ. [हिं. गोड़ना] बेकार या खराब होना।

गुड़रा, गुडरू—संज्ञा पुं. [देश.] गड़ुरी चिड़िया।

गुड़हर गुड़हल—संज्ञा पुं. [हिं. गुड़ + हर] (१) अड़हुल का पेड़ या फूल। (२) एक वृक्ष जिसकी पत्तियाँ चबाने के बाद गुड़ का स्वाद ही नहीं आता।

गुडाकेश—संज्ञा पुं. [सं.] (१) शिव। (२) अर्जुन।

गुड़िया, गुड़िला—संज्ञा स्त्री. [हिं. पुं. गुड्डा] कपड़े, मोम आदि की बनी छोटी पुतली जिससे बच्चे खेलते हैं।

मुहा.—गुड़िया सी—छोटी और सुन्दर। गुड़ियों का खेल—बहुत सरल काम।

गुड़ी—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुड्डी] पतंग, चंग। उ.—(क) बँधी दृष्टि यों डोर गुडी बस पाछे लागति धावति—१४३१। (ख) परबस भई गुड़ी ज्यों डोलति परति पराये कर ज्यों—पृ. ३३२।

गुड़ीला—वि. [हिं. गुड़ + ईला (प्रत्य.)] (१) गुड़ सा मीठा। (२) उत्तम, बढ़िया।

गुडुची, गुड़ूची—संज्ञा स्त्री. [हिं. गुरुच] एक बड़ी लता, गिलोय।

गुड्डा—संज्ञा पुं. [सं. गुरु=खेलने की गोली] कपड़े, मोम आदि का बना पुतला जिससे बच्चे खेलते हैं।

मुहा.—गुड्डा बाँधना—बुराई या निन्दा करना।

संज्ञा पुं. [हिं. गुड्डी] बड़ी पतंग।

गुड्डी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुरु + उड्डीन] पतंग, चंग। उ.—(क) अति आधीन भई संग डोलति ज्यों गुड्डी बस डोर—पृ. ३३३। (ख) हम दासी बिन मोल की ऊधो ज्यों गुड्डी बस डोर—३३२०।

गुढ़, गुढ़ा—संज्ञा पुं. [सं. गूढ़] छिपने का स्थान।

गुढ़ना—क्रि. अ. [हिं. गुढ़] छिपना, लुकना।

गुढ़ि—क्रि. स. [हिं. गढ़ना (अनु०)] गढ़-गढ़कर, ठीक ठाक करके। उ.—कन्हैया हालरु रे। गढ़ि-गुढ़ि ल्यायौ बाढ़ई धरनी पर डोलाई बलि हालरु रे—१०-४७।

गुढ़ी—संज्ञा स्त्री. [सं. गूढ़] गाँठ, गुत्थी।

गुण—संज्ञा पुं. [सं.] (१) किसी वस्तु की विशेषता। (२) निपुणता, चतुरता। (३) कला, विद्या, हुनर। (४) प्रभाव, असर। (५) शील, सद्वृत्ति।

मुहा.—गुण गाना—प्रशंसा करना। गुण मानना—अहसान मानना।

(६) विशेषता, खासियत। (७) तीन की संख्या। (८) रस्सी, डोरा। (९) धनुष की डोरी।

प्रत्य.—एक प्रत्यय जो संख्यावाची शब्दों के अंत में रहता है।

गुणक—संज्ञा पुं. [सं.] वह अंक जिससे किसी अंकको गुणा किया जाय।

गुणकर—वि. [सं.] लाभदायक।

गुणकरी, गुणकली—संज्ञा स्त्री. [सं.] एक रागिनी।

गुणकार—संज्ञा पुं. [सं.] (१) संगीतज्ञ। (२) रसोइया। (३) पाकशास्त्रज्ञ। (४) भीमसेन।

गुणकारक, गुणकारी—वि. [सं.] लाभदायक।

गुणगौरि, गुणगौरी—संज्ञा स्त्री. [सं. गुणगौरि] (१) गौरी के समान सौभाग्यवती स्त्री। (२) एक व्रत जो सौभाग्यवती स्त्रियाँ चैत की चौथ को करती हैं।

गुणग्राहक, गुणग्राही—वि. [सं.] गुण या गुणी का आदर करनेवाला।

गुणज्ञ—वि. [सं.] (१) गुण का पारखी। (२) गुणी।

गुणज्ञता—संज्ञा स्त्री. [सं.] गुण की परख।

गुणन—संज्ञा पुं. [सं.] गुणा, जरब।

गुणनिका—संज्ञा स्त्री. [सं.] वह नाटकीय अनुष्ठान जो नट कार्यारम्भ के पूर्व विघ्न-शांति के लिए करते हैं।

गुणनफल—संज्ञा पुं. [सं.] वह संख्या जो गुणा करने पर निकले।

गुणवन्त—वि. [सं.] गुणवान, गुणी।

गुणवती—वि. स्त्री. [सं.] जो गुणवान हो।

गुणवाचक—वि. [सं.] गुणसूचक।

गुणवान—वि. [सं.] गुणवाला।

गुणसागर—वि. [सं.] गुणों का समुद्र, गुणनिधि।

मुद्रक
नवभारत प्रेस, नादान महल रोड, लखनऊ